पं० भगवद्दत्त जी द्वारा सम्पादित

अथवा रचित ग्रन्थ

१. ऋषि दयानन्द का स्वरचित (लिखित वा कथित) जीवनचरित ।
२. ऋग्मंत्रव्याख्या ।
३. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, चारभाग (अप्राप्य)
४. गुरुदत्त लेखावली—हिंदी अनुवाद, सहकारी अनुवादक श्री संतराम बी० ए० । (अप्राप्य)
५. अथर्ववेदीय पञ्चपटलिका । ६. ऋग्वेद पर व्याख्यान ।
७. माण्डूकी शिक्षा ।
८. बार्हस्पत्य सूत्र की भूमिका । ९. आथर्वण ज्योतिष ।
१०. वाल्मीकीय रामायण (पश्चिमोत्तर पाठ) बालकाण्ड, तथा अरण्यकाण्ड का भाग ।
११. उद्गीथाचार्य रचित ऋग्वेद भाष्य-दशम मण्डल का कुछ भाग ।
१२. वैदिक कोष की भूमिका ।
१३. वैदिक वाङ्मय का इतिहास-तीन भाग ।
प्रथम भाग—वेदों की शाखाएं ।
द्वितीय भाग—वेदों के भाष्यकार ।
तृतीय भाग—ब्राह्मणग्रन्थ ।
चतुर्थ भाग—कल्पसूत्र । मुद्र्यमाण
१४. भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण । मूल्य १५)
१५. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन—बृहत् संस्करण मूल्य ५॥) ।

लेख

१. बैजवाप गृह्यसूत्र संकलनम् ।
२. शाकपूणि का निरुक्त और निघण्टु ।
३. शुङ्ग-अग्निमित्र-इन्द्राणीगुप्त ।
४. साहसांक विक्रम और चन्द्रगुप्त विक्रम की एकता ।
५. Date of Visvarupa. आदि ।
६. आर्य वाङ्मय ।

भारत वर्ष का बृहद् इतिहास

प्रथम भाग

(भूमिका-आत्मक)

विविध पाश्चात्य कल्पनाओं का युक्तियुक्त खण्डन

वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भारतवर्ष का इतिहास आदि ग्रन्थों के रचयिता, विविध लुप्त संस्कृत ग्रन्थों के सम्पादक तथा उद्धारक, दयानन्द महाविद्यालय लाहौर के भूतपूर्व अनुसन्धानाध्यक्ष

तथा

महिला विद्यापीठ, लाहौर के संस्थापक

पण्डित भगवद्दत्त बी. ए.

द्वारा

रचित

प्रेमनाथ गुप्ता १० रामनगर देहली ने भेंट की

श्रीभगवानस्वरूप 'न्यायभूषण' प्रबन्धकर्त्ता के प्रबन्ध से

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित.

++卐++

सन् १९४७ मास जनवरी में भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, मैंने माडल टाउन, लाहौर से प्रकाशित कर दिया था। तदनन्तर इस वृहद् इतिहास आदि के मुद्रण के लिए कई सहस्र रुपए का कागज लाहौर में मोल ले लिया गया था। वृहद् इतिहास के पहले अध्याय अन्तिम रूप में सज्जित थे। मुद्रणालय में इसकी छपाई का आरम्भ होने वाला था। सहसा ४ मार्च से पंजाब में विप्लव की चिंगारियां उठीं। लाहौर उनका केन्द्र बनने लगा भविष्य की घटनाओं के लक्षण दिखाई देने लगे। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के कलुषित ध्येय का भावी रूप प्रकाश में आ रहा था। इण्डियन नैशनल कांग्रेस की भयंकर भूलों का सन्न परिणाम क्षितिज में उदय होने लगा था। इस से दो वर्ष पूर्व से मेरी धारणा बन रही थी कि मैं अब लाहौर में नहीं रह सकूंगा। छपाई आरम्भ नहीं हो सकी। ३ जून की रात्रि को मुम्बई जाने वाली पंजाब मेल में यात्रा करने के लिए मैंने माडल टाउन, लाहौर से परिवार सहित प्रस्थान कर दिया। ५ तारीख को नासिक पहुंच कर विश्राम लिया। इस मास के अन्त में नासिक से मैं पुनः माडल टाउन, लाहौर आया। अनेक स्थानों पर अग्निकाण्ड हो रहे थे। लाहौर के बाहर के बाजार सूने बन रहे थे। दशा अधोगति की थी। वायुमण्डल हिंसा की तरङ्गों से भरित था। ६ जुलाई को पुनः पंजाब मेल में यात्रा के लिए अपने पुत्र श्री सत्यश्रवा सहित मैंने लाहौर का त्याग कर दिया। यह ज्ञान नहीं था कि विभाजन के पश्चात् एक वस्तु भी अपने घर से नहीं ले सकूंगा। फिर भी अन्य सब सामान छोड़ कर अलभ्य हस्तलिखित ग्रन्थ मैंने अपने साथ ले जाने के लिए बांध लिए थे।

दिन बीतते गये। पंजाब में रोमांचकारी हत्याकाण्ड हुआ। सहस्रों हिन्दू-मुसलमान छुरा, गोली और बम्बों द्वारा यमलोक सिधारे। राजनीतिक नेताओं की प्रतिज्ञाएं कि पश्चिम पंजाब और पेशावर आदि में हिन्दू निःशङ्क बसे रह सकते हैं, विफल सिद्ध हुईं। यह होना था। निमित्त बनने वालों ने वृथा पाप शिर लिया।

मेरा घर सितम्बर में कई बार लूटा गया। मुझे घर के किसी सामान की चिन्ता न थी। बार, बार अपने पुस्तकालय का ध्यान आता था। उसमें ऐतिहासिक वस्तुओं का अनुपम भण्डार था। तीस सहस्र रुपये से अधिक मूल्य के पुस्तक मेरे पास थे। ऋषि दयानन्द सरस्वती के लिखे लगभग दो सौ मूल पत्र वहाँ थे। यूट्रेख्ट (हालेण्ड) के डा० कालेण्ड, पेरिस के डा० सिल्वेन लेवी, जर्मनी के डा० ग्लासनेप, डा० वाल्थर वुस्ट, डा० हर्टल, डा० यकोबी, डा० जाली, इङ्गलेण्ड के डा० मैकडानल, डा० कीथ, डा० बार्नेट, इटली के डा० गिसिप्पी टूची, नारवे के डा० स्टेन कोनो, तथा अमेरिका के प्रो० लेनमैन और प्रो. मैरिस ब्लूमफिल्ड आदि अनेक ग्रन्थकारों के बहुमूल्य पत्र भी वहीं थे। इन पत्रों में विद्याविषयक अनेक बातों की आलोचनाएं थीं।

अगस्त के तीसरे सप्ताह में सत्यश्रवाजी के साथ मैं देहली आया। तीन, चार दिन देहली ठहर कर हम देहरादून चले गए। वहां मेरे भागिनेय ला. देवराज एम. ए. रहते थे। सितम्बर की २० तिथि तक हम वहीं रहे। गत एक सहस्र वर्ष के भारतीय इतिहास के अद्वितीय विद्वान्, दूरदर्शी, अनन्य देशभक्त श्री भाई परमानन्दजी एम. ए. भी वहीं ठहरे हुए थे। आदरणीय भाई जी से इतिहास-विषय पर बहुधा चर्चा रहती थी। उन्होंने भी वृहद् इतिहास के शीघ्र छाप देने का अनुरोध किया।

देहरादून से हम देहली आ गए। यहां श्री अयुध्यानाथजी खोसला, भारत राष्ट्र के प्रधान पाथस (जल) शास्त्रविद् के पास मैं रहने लगा। प्रथम अक्तूबर को मेरा परिवार नासिक से देहली आ गया।

अकतूबर के आरम्भ में मैंने एक पत्र भारत के वाईसराय लार्ड मांऊंट बैटन को लिखा कि मेरा पुस्तकालय निकलवाने में सहायता करें। वहाँ इस का क्या महत्त्व था। अकतूबर के अन्त में मुझे पता लगा कि लाहौर कालेज की प्रिंसिपल मिस सी. एल. एच. गियरी एम. ए. काश्मीर आदि की यात्रा के अनन्तर लाहौर पहुंच गई हैं। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सत्यवती शास्त्री इस कालेज में संस्कृत-भाषा की प्रधान व्याख्यातृ थीं। मिस गियरी के साथ हमारे परिवार का गहरा स्नेह है। वे बहुधा हमारे घर माडल टाऊन आया करती थीं। उनके साथ एक अन्य इङ्गलिश महिला थीं। नाम है उनका मिस यू. एम. वाज़मन। ये चिरकाल तक मुझसे इतिहास, समाज शास्त्र और हिन्दी का अध्ययन कर चुकी थीं। मैंने इन दोनों देवियों को लाहौर पत्र लिखा कि मेरा पुस्तकालय यदि बचा है, तो उसके भारत भेजने का प्रयत्न करें।

पञ्जाब के विभाजन के कारण, मेरी धर्मपत्नी की बदली अमृतसर के राजकीय महिला कालेज में हो गई थी। श्री खोसलाजी के प्रबन्ध से एक ट्रक में १४ नवम्बर की प्रातः को हम अमृतसर के लिए चले। रात्रि जालन्धर में बिताकर १५ को अमृतसर पहुंचे। कुछ दिन पश्चात् अमृतसर के महिला कालेज में एक सन्देश पहुंचा कि पुस्तकों की कुछ बोरियां अमृतसर के ईसाई मिशन में मेरे लिए पहुंची हैं। साथ ही एक पत्र था कि इतनी पुस्तकें बचाई जा सकी हैं। खोलने पर पता लगा कि लगभग ६०० पुस्तकें बच पाई हैं। आर्थिक दृष्टि से ये लगभग ४५०० रुपए के ग्रन्थ थे। मेरे लिए यह सर्वस्व था। मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा न थी। साथ ही रह रह कर कृतज्ञता का भाव भी आता था। मुझे इसके पश्चात् काल तक उन देवियों का कोई पत्र नहीं मिला।

तत्पश्चात् मैं अपने जामाता कविराज श्री सूरमचन्दजी बी. ए. के पास शिमला चला गया। विप्लव के पश्चात् वे शिमला में स्थिर हो गए थे। वहाँ फरवरी मास के मध्य में, सन् १९४८, फरवरी ८ का लण्डन से लिखा, मिस वाज़मन का एक पत्र मिला। उसकी निम्नलिखित पंक्तियां आवश्यक समझ कर नीचे उद्धृत की जाती हैं:—

Dear Pandit Ji,

We wrote to you in Amritsar before we left Lahore and again from Karachi; then from Port Said I sent you pages about Model Town, and when we reached Manchester just after Christmas. Connie sent you a precis of it in case my letter from Egypt did not reach you.

Now, I will try to tell you briefly about your books. We were very busy nursing and the roads were not very safe and also we were given some rather misleading information, so that we did not go out to Model Town at first. Then the daughter of the Muslim doctor who lived next door to you, met Sheila Lall and told that your house had been looted twice in September, but that many books were left if anyone could rescue them. This news reached us on the same day that we were warned to be ready to leave Lahore in ten days for our ship. We stopped early at the hospital one day and cycled out wearing our nursing uniform for protection through the crowds of refugees always moving in both directions on the road. We found your house like most of the Hindu houses in Model Town open, and empty of everything except a smashed chair and a broken charpoy. The thieves had timbled everything out in the library and the floor was knee-deep in

books and papers. The wall cupboards were there but the other book cases gone. Broken glass from picture frames and electric light fittings, broken nutshells from some bag dragged out from elsewhere, dust and dirt from outside, and obvious signs of pi-dogs nesting there at nights all mixed up with the books made a sorry sight. The girl from next door had begun to pick up some and stack them more safely on the windows hedges, but then someone had come and she was frightened off. We looked at the mess in despair and then found a sack of Mss. It had been half pulled out of the palm leaves scattered in broken. We spent a couple of hours crawling through the filth on our knees and picking up every scrap we could find. These we hid out of reach of the dogs. Next day we returned after hospital hours and put the Mss. with two huge bundles in our coats and fixed them on the back of our cycles. We then waited till there was no one in the street and escaped from the house with them. We did not dare go past the police post at the gates (now put to protect the town from the refugees). So we went off at the back and pushed our cycles over the fields. These Mss. we packed half in a yakdhan and half in a small metal box. One of these was taken to Amritsar by a C. M. S. nurse returning to the Mission Hospital: this box will be there I am sure. The other was taken by car by a man called Gupta, a friend of Henry Lall and something to do with university P. T. If you have got these Mss. let us know. If not ask at the hospital and try to find Mr. Gupta.

Meanwhile, we had to take the books. The High Commissioner for India said he could do nothing—he advised us to try to get them to D. A. V. College and tell you to come and fetch them on a refugee bus. We thought this bad advice and went out to the Muslim D. C. of Lahore. He gave us a permit to move them to Lahore, but said he did'nt think you'd get them through on a bus and doubted if it was safe to try. Next day we got an introduction to an Indian army man who promised us an army lorry space if we could get them out of Model Town. No Indian taxi driver, tonga-wallah or bullock owner would touch the job and we dared not ask Henry Lall becauase of his wife and children. We had no car and no petrol.

Finally Catherine Symmonds of Kinnaired offered to help and they lent us a car and a tiny drop of petrol. On Monday night we three drove out and loaded frenziedly. The books printed in English were nearly all gone, we had little knowledge of what to take of the Sanskrit and Hindi ones, and no time to select as we dared not let the car stand long lest word spread down to the road and a crowd gathered to stop us. A second load was rescued in the early morning and the army lorry came at ten for them. We got about 3/4 of the books left by the looters, and none of the mass of papers. We are sorry to have done so little, but doubt if any one else could have got any just then.

Ursula

जो काम कोई और न कर सका, उसकी आंशिक पूर्ति आङ्गल जाति की महिलाओं ने की । मैंने समझा मुझे इतिहास का काम करना शेष है ।

सन् १९४८ फरवरी के अन्त से मैं नई देहली में सत्यश्रवा के साथ एक तम्बू में रहने लगा । पुराने मित्र मिले। सबका अनुरोध था कि बृहद् इतिहास शीघ्र छपे। पर धन के बिना यह काम असम्भव था। वैदिक अनुसन्धान संस्थान की द्रव्य राशि लाहौर में नष्ट हो गई थी । संस्थान का अस्तित्व ही समाप्त हो गया था । संस्थान में कभी प्रसिद्ध विद्वान् पं० ईश्वरचन्द्रजी मेरे साथ अन्वेषण करते थे । मेरी संपत्ति में अब घर के बरतन और पहनने के वस्त्र भी पूरे न थे । इतिहास का मुद्रण असंभव दिखाई देता था । अपनी धर्मपत्नी का अध्यापन कार्य अमृतसर में होने के कारण मुझे बहुधा अमृतसर में रहना पड़ता था। पहले हमें अमृतसर के लक्ष्मनसर आर्यसमाज के एक छोटे से आगार में रहना पड़ा । वहीं स्नान का प्रबन्ध था, वहीं भोजन पकाने का, वहीं स्वाध्याय विश्राम तथा शयन होता था । वहीं मैंने बृहद् इतिहास के कई अध्याय पुनः सोधे । ऐसे समय में एक दैवी सहायता उपस्थित हो गई । अमृतसर के प्रसिद्ध दानवीर और वर्तमान काल के दधीचि अथवा कर्ण श्री बाबा गुरुमुखसिंहजी आर्य समाज मन्दिर से हमें अपने विशाल भवन में ले गए । श्री बाबाजी का हमारे परिवार से पुराना प्रेम है । उन्होंने मेरी सहायता में कोई न्यूनता नहीं रखी । इतनी सहायता, जिसका मुझे स्वप्न में भी अनुमान न था ।

सन् १९४८ मास जून की २८ ता० को मैं श्री डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी से मिला । उनसे मिलने का प्रयोजन-विशेष था । वे स्वयं पीपल्स हिस्टरी ऑफ इण्डिया के प्रकाशन की योजना के संचालक थे । डाक्टरजी से जो वार्तालाप हुआ, उसका सार निम्न पत्र से ज्ञात हो जाएगा । यह पत्र इस मिलन के तीन-चार दिन पश्चात् मैंने डाक्टरजी को लिखा था—

सेवामें

आदरणीय महामान्य विद्वद्वर श्री प्रधानजी

आपके साथ इतिहास विषयक जो वार्त्ता २८-६-४८ की सायं को हुई थी, उसमें जो आदेश आपने किया था, तदनुसार निम्नलिखित परमावश्यक बातें संक्षिप्त रूपसे लिख दी हैं । आशा है आप इन पर विचार करके निर्णय से मुझे शीघ्र अवगत करेंगे ।

इस समय भारतीय इतिहास लिखने के चार यत्न भारत में हो रहे हैं । वे निम्नलिखित हैं—

(क) आप द्वारा—पीपल्स हिस्टरी के रूप में,
(ख) इण्डियन हिस्टरी कांग्रेस द्वारा,
(ग) श्री मुन्शीजी द्वारा,
(घ) मेरे द्वारा,

ये सारे अपने को निष्पक्ष और सत्य मार्ग का अन्वेषी कहते हैं । इनमें से (क) और (ख) लगभग सदृश प्रयत्न हैं । श्री मुन्शीजीका प्रयत्न कुछ अन्य प्रकार का है । मेरे इतिहास में भारतीय परम्परा की सत्यताका दिग्दर्शन है । इस प्रकार ये यत्न तीन प्रकार के हैं । इनमें मत विभिन्नता बहुत अधिक रहेगी । पुराने काल में विवादास्पद विषयों का निर्णय मित्र-व्यवहार-युक्त वाद में होता था । महान् सम्राट् ऐसे वादों का प्रबन्ध करते थे । चीनी यात्री ह्यून सांग के यात्रा-विवरण में ऐसे कई वादों का इतिहास मिलता है । वर्तमान युग में आप का स्थान वही है, जो पुरातन काल में सम्राटों का था। यदि आप ऐसे वाद का प्रबन्ध न करेंगे, तो महान् हानि होगी ।

जब हम सबका ध्येय एक है, तो ऐसे आयोजन से लाभ ही होगा। लेखों द्वारा मनुष्य को अपने निर्बल पक्ष का उतना ज्ञान नहीं होता, जितना वाद में हो जाता है। अतः आप इसका कोई उपादेय मार्ग अवश्य निकालें।

यह काम अक्टूबर से दिसम्बर तक किसी मास के १५ दिनों में हो सकता है।

कुछ विद्वान् न्यायकर्त्ताओं को भी नियुक्त करें। वे इतना मात्र घोषित करते रहें कि अमुक विषयों का उत्तर नहीं बना। उनके इतने कथन मात्रसे ऐतिहासिक उन विषयों का उत्तर निकालने में प्रयत्नशील रहेंगे। उस वाद के लिए थोड़े से विषयों का संकेत मैं नीचे करता हूं—

१. भारत युद्ध सत्य घटना थी या नहीं। भारत युद्ध काल कब था। महाभारत ग्रन्थ कृष्ण द्वैपायन रचित है या नहीं। इसके पाठान्तर और प्रक्षेप। शेक्सपियर के ग्रन्थों में पाठान्तर और प्रक्षेप होने पर भी वह कल्पित नहीं माना जाता।

२. शौनक-ऋषि का काल, भारत युद्ध के लगभग ३०० वर्ष पश्चात्। उस समय कैसा पुराण संकलन हुआ।

३. पुराणों का प्रद्योत-वंश मागध प्रद्योत-वंश था, उज्जयिनी का प्रद्योत वंश नहीं। इस विषय में रैपसन और उसके अनुगामियों के मत की आलोचना।

४. तथागत बुद्ध का काल।

५. पुरातन जैन वाङ्मय में महावीर स्वामीजी का काल।

६. शक काल का आरम्भ कब हुआ।

७. विक्रम काल का आरम्भ।

८. गुप्तकाल का आरम्भ।

९. सिद्धसेन दिवाकर और संवत् प्रवर्तक विक्रम का काल। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित साहित्यिक प्रश्नों के विषय पर कुछ विचार आवश्यक होगा।

१०. वेद, वेदों के चरण तथा शाखा ग्रन्थ और ब्राह्मण ग्रन्थों का संकलन कब हुआ। इत्यादि।

वार्तालाप में आपने एक बहुमूल्य बात कही थी। अर्थात् इतिहास में अपना पक्ष लिखकर दूसरे पक्षों का वर्णन अवश्य करना चाहिए। यदि यह बात मान ली जाए, तो बहुत कल्याण हो सकता है। फिर वाद भी बहुत सरल हो जाएगा। पर आप द्वारा इतिहास का जो छटा भाग प्रकाशित किया गया है, उसमें इस बात का ज्ञान बूझकर वर्णन नहीं किया गया कि चन्द्रगुप्त गुप्त (द्वितीय) का एक नाम साहसांक था। तथा उसका विक्रम संवत् से सम्बन्ध था। इस प्रकार की और बातें भी बताई जा सकती हैं, अस्तु। आशा है जिस भाव से प्रेरित होकर मैंने यह प्रार्थना की है, आप उस पर पूरा ध्यान देकर इस काम को सफल बनाएंगे।

आप कृपया ध्यान रखें कि यह बात राजनीतिक या सामाजिक इतिहास में ही अपेक्षित नहीं, प्रत्युत दर्शन शास्त्र, संस्कृत साहित्य, आयुर्वेद, वैदिक वाङ्मय आदि के इतिहासों की उपकारिणी भी होगी। इन सब विषयों के प्रतिपादन से भावी में कुछ न कुछ ऐक्य उत्पन्न होगा। इस समय जर्मन विचार का अनुगामी होकर जो सब कुछ लिखा जा रहा है, उसका परीक्षण होगा।

कृपा बनाए रखें।

भगवद्दत्त

डाक्टरजी ने पहले कह दिया था कि उन्हें इस विषय में सफलता की आशा नहीं। फिर भी मुझे अपने सुझाव लिखित रूप में उन्हें दे देने चाहिए।

इस लिखित पत्र का कोई उत्तर मेरे पास नहीं आया। मैंने जान लिया कि प्रधानजी सफल नहीं हुए। इतने मात्र से प्रकट हो गया कि पाश्चात्य मतों का अनुकरण करने वाले लेखक साक्षात् विचार-विनिमय से बहुत भयभीत होते हैं। *सत्य भारतीय इतिहास के शीघ्र सर्वत्र प्रचलित होने का अन्तिम यत्न व्यर्थ गया।* मैंने बृहद् इतिहास के शीघ्र प्रकाशन का संकल्प दृढ़ कर लिया।

सन् १६४८ मास नवम्बर ता० १३ को इटली देश के प्रोफेसर हिज़ हाइनेस गिसिपी टूची नई देहली वाले पूर्व-लिखित तम्बू में मुझे मिलने आए। आते ही उन्होंने कहा कि कहां माडल टाऊन, लाहौर का तुम्हारा विशाल भवन और कहां यह तम्बू। समय की गति विचित्र है। लगभग एक घण्टा उनके साथ विभिन्न विषयों पर वार्तालाप होता रहा। वार्तालाप के अन्त में प्रोफेसर जी ने पूछा, *भारतीय इतिहास मुद्रण का कार्य आगे* कैसे चलेगा। क्या सरकार तुम्हारी सहायता करेगी। मेरा उत्तर था कि सरकार सहायता करे, ऐसी कोई आशा नहीं। और न मैं सरकार से सहायता माँगूंगा। फिर महोपाध्याय जी बोले, तब सहायता कहां से मिलेगी। मैंने उत्तर दिया, मित्रों से। एक क्षण के पश्चात् महोपाध्यायजी ने १०० रुपये का एक नोट निकालकर पटल पर रख दिया। मैंने लेने से इन्कार किया। वे बोले, *क्या मैं तुम्हारा मित्र नहीं हूं।* मेरी धर्मपत्नी सामने बैठी भोजन बना रही थी। उन्होंने कहा, महोपाध्यायजी! आप सहकारी प्रोफेसर हैं। आपसे ऐसी सहायता लेना उचित नहीं। महोपाध्याय माने नहीं। मेरे आश्चर्य की सीमा न थी। भारत के कितने इतिहास के महोपाध्याय इस काम के महत्त्व को समझते हैं।

जनवरी १६४६ तक मित्रों की सहायता से कागज़ खरीद लिया गया और परोपकारिणी सभा अजमेर की कृपा से बृहद् इतिहास के इस प्रथम भाग का मुद्रण अजमेर के वैदिक यन्त्रालय में प्रारम्भ हुआ।

बृहद् इतिहास के प्रकाशन में अन्य प्रोत्साहन—हमारा भारतवर्ष का इतिहास (आदि युग से गुप्त साम्राज्य के अन्त तक) पहले सन् १६४० में प्रकाशित हुआ। उसका दूसरा संस्करण सन् १६४७, मास जनवरी में प्रकाशित हो गया। इस इतिहास में भारतीय परम्परा के आधार पर प्राचीन भारत का अति-संक्षिप्त शृङ्खलाबद्ध, सत्य इतिहास उपस्थित कर दिया गया था। उसमें कल्पनाओं का अभाव था। उससे स्पष्ट हो गया था कि मैक्समूलर, मैकडानल, कीथ, रैप्सन प्रभृति लेखकों ने सर्वथा असत्य लिखा था कि आर्य लोग इतिहास नहीं लिखते थे। निष्कपट उच्च विद्वानों ने उस इतिहास का पर्याप्त स्वागत किया। उसके विषय में *निम्नलिखित विद्वानों के मत द्रष्टव्य हैं—*

अजमेर के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक श्री डाक्टर गौरीशङ्कर ओझा जी ने लिखा—

ऐसे तो विभिन्न विद्वानों-द्वारा लिखे गये कई भारतवर्ष के इतिहास अबतक निकल गये हैं परन्तु श्री भगवद्दत्त बी. ए. रचित "भारतवर्ष का इतिहास" सर्वथा नये दृष्टिकोण से लिखा होने के कारण विशेष स्थान रखता है। सुयोग्य लेखक ने भारतवर्ष के प्राचीनतम इतिहास को क्रमबद्ध करने का सराहनीय प्रयत्न किया है। उन्होंने मूलग्रन्थों को श्रमपूर्वक पढ़कर कितनी ही नई बातों पर प्रकाश डाला, जिनपर पिछले और आधुनिक विद्वानों का ध्यान नहीं गया था। उनके मतानुसार वैदिक ग्रन्थों, वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, पुराणों, प्राचीन अर्थशास्त्र आदि से प्राचीन भारत का सत्य इतिहास जाना जा सकता है। अपनी पुस्तक के आगे के अध्यायोंमें इतिहास के इन्हीं स्रोतों के आधार पर उन्होंने वैदिक काल से लगाकर गुप्तकाल तक का

संक्षिप्त इतिहास दिया है। संभव है उनके प्रतिपादित मतों से कई स्थलों पर विद्वान् सहमत न हों, परन्तु यह निश्चित है कि उन्हें भी रुक कर उन पर विचार अवश्य करना पड़ेगा।

गुप्तकाल के आरंभ, गुप्तकाल की अवधि, विक्रम संवत् आदि के सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ लिखा है; वह मुझे मान्य नहीं है……… …।

पुस्तक बहुत परिश्रमपूर्वक लिखी गई है इसमें सन्देह नहीं और रोचक तथा सुपाठ्य होने के साथ ही एक नई दिशा की ओर ध्यान आकर्षित करती है। आशा है विद्वान् उस पर विचार करेंगे।

गौरी शङ्कर हीराचंद ओझा

नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४७ अंक ३-४ में बनारस के प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्री (राय) कृष्णदासजी ने लिखा—

हाल ही में पंजाब के ख्यातनामा विद्वान् और वैदिक पंडित श्री भगवद्दत्त बी. ए. ने इस विषय में बहुत ही स्तुत्य प्रयत्न किया है और इतना नया मसाला बटोर दिया है जिससे विद्वानों का बहुत उपकार संभव है। समीक्ष्य इतिहास के रूपमें यह मसाला उन्होंने सुलभ कर दिया है। कितनी ही आर्थिक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी उन्होंने इस पुस्तक का प्रकाशन कराया है और अब भी वे बराबर इस प्रकार की सामग्री बटोरने में जुटे हुए हैं। उनका विचार है कि समय अनुकूल होते ही उसे भी जनता के समक्ष उपस्थित करें।

प्रस्तुत पुस्तक के सब निष्कर्षों से सहमत होना संभव नहीं…………।

यह बात निःसंकोच रूप से कही जा सकती है कि इस कृति द्वारा विद्वान् लेखक ने भारतीय अनुशीलन को आगे बढ़ाया है और हमें ऐसी सामग्री दी है जो अब तक अप्राप्त थी और जिससे अपने विगत के पुनर्निर्माण में हमें बहुत सहायता मिल सकेगी। स्तुत्य कार्य के लिये श्री भगवद्दत्तजी को बधाई है और उनके इतिहास का हार्दिक स्वागत।

(राय) कृष्णदास

श्री के० एम० शर्मा एम० ए० अड्यार (मद्रास) ने लिखा—

प्राचीन भारत के इतिहास सम्बन्धी जितने भी ग्रन्थ मैंने आज तक देखे हैं, आप का भारतवर्ष का इतिहास उनमें से बहुत अधिक उपयोगी है। यद्यपि यहां के सब प्रोफेसर आपकी बताई कालीदास की तिथि को नहीं मानते, तथापि वे सब मानते हैं कि आपने इतनी अधिक सामग्री एकत्र करके भारतीय संस्कृति की भारी सेवा की है। मैं आपके इस परिश्रम पर आपको बधाई देता हूं।

श्री डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल एम.ए.क्यूरेटर लखनऊ म्यूज़ियम अपने पत्र में लिखते हैं—

लखनऊ विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के प्रो० चारुदास चटर्जी एम० ए० ने भी उस दिन स्वयं आपके ग्रन्थ की बड़ी प्रशंसा मुझसे की और कहा कि मैंने आद्योपान्त पढ़ा है।

वासुदेव शरण

श्री डा० देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर ने लिखा—

"Both these books are works of meritorious intellect."

अर्थात्—भारतवर्ष का इतिहास तथा "शकास इन इण्डिया" दोनों ग्रन्थ उत्कृष्ट गुणयुक्त बुद्धि की कृतियां हैं ।

सन् १९५१ के जनवरी मास के आरम्भ में जब मैं उनके गृह पर उनसे मिला, तो अति निर्बल अवस्था में भी उन्होंने मिलने का कष्ट किया, और आनन्द से बातें करते रहे ।

अन्य अनेक विद्वानों ने भी इस इतिहास की भूरि प्रशंसा की । पर केवल अंग्रेजी छाप से प्रभावित लोग बहुत भयभीत हुए । उनके पैर-तले से भूमि खिसकने लगी, उन्होंने देखा कि उनका और उनके गुरुओं का गत १२० वर्ष का परिश्रम विफल होने लगा है । इस विफलता का आभास कभी हमारे मित्र वयोवृद्ध डा. स्टेनकोनो को भी हुआ था । अनेक दिनों के वार्तालाप के पश्चात् उन्होंने लाहौर के दयानन्द कॉलेज के पुस्तकालय में मुझे कहा—

Pandit ji ! do you mean that I should forget, what I have learnt during the last sixty years.

अर्थात्—पण्डित जी ! आपका अभिप्राय यह है कि मैं गत साठ वर्ष का पढ़ा-लिखा सब भूल जाऊं ।

मेरा उत्तर था—प्रिय डाक्टर, यह मेरा दोष नहीं कि आप ने बहुत कुछ अशुद्ध पढ़ा है ।

सन् १९४८, अगस्त २९ को मैं पूना में था । वहां अनेक मित्रों से विविध इतिहास-विषयों पर वार्तालाप हुआ । मैंने अनुभव किया कि अनेक अध्यापक सत्य कहने में संकोच करते हैं ।

मुझे निश्चय होता जाता था कि एतद्देशीय प्रोफेसरों के लेखों और उन के जर्मन, फ्रैंच, डच, अंग्रेज और अमरीकी आदि गुरुओं के प्रमाणशून्य शतशः लेखों का विस्तृत खण्डन अब शीघ्र प्रकाशित होना चाहिए । राजाश्रित इन लोगों की मौज के दिन तब तक हैं, जब तक इन की अविद्या आबाल-वृद्ध तक प्रकट नहीं की जाती । भारत का जो अनिष्ट इन्होंने किया है, उसका प्रतिकार अब विलम्ब नहीं चाहता ।

श्री मौलाना अब्दुल कलाम आज़ादजी की शिक्षा और इतिहास विषयक नीति—

सांस्कृतिक दृष्टि से अर्द्ध स्वतन्त्र भारत के शिक्षा-मन्त्री मौलाना आज़ादजी ने उस शिक्षा-कमीशन को स्वीकार किया, जिसमें दो विदेशीय और शेष अंग्रेजी छाप के भारतीय सदस्य थे । इन लोगों को शिक्षा के वास्तविक ध्येय का, शिक्षा की सूक्ष्मताओं का, ब्रह्मचर्य के आदर्शों का, युवकों को असाधारण प्रतिभा युक्त बनाने का, शील के उच्चतम स्तरों का और योगविद्या के महत्त्व आदि का मार्मिक ज्ञान अणुमात्र न था । मौलानाजी के ऐसे आयोजन से हमने समझ लिया कि भारत का कल्याणयुक्त-मार्ग अभी खुला नहीं ।

पुनः सन् १९४८ में मौलानाजी के विभाग से एक और योजना उपस्थित की गई । तदनुसार निर्णय हुआ कि वेद-काल से आरंभ होने वाला भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास भारतीय शासन की ओर से प्रकाशित हो । सोचने का स्थान है कि जिन पुरुषों ने वेद का कभी गंभीर अध्ययन न किया हो, जिन्होंने सत्य इतिहास स्वप्न में भी न पढ़ा हो, जिन्हें इतिहास और कल्पना का पार्थक्य अज्ञात हो, और जो कपिल से जैमिनि पर्यन्त ऋषिकोटि महापुरुषों को मिथिकल मानते हों, उन पाश्चात्य पद्धति के विश्वविद्यालयों में पढ़े लोगों से ऐसा ग्रन्थ लिखवाना और भारतीय शासन की ओर से उसका प्रकाशित करना दूसरी अक्षम्य भूल थी । हमने मौलानाजी का ध्येय पूर्णतया जान लिया । विज्ञान के नाम पर असत्य प्रकाशन को कौन विज्ञ भारतीय सहेगा ।

तत्पश्चात् एक तीसरी घटना घटी। इस का इतिवृत्त देहली से प्रकाशित होने वाले, सन् १९५०, मास नवम्बर, ता० ८ के टाईम्स आफ इण्डिया नामक दैनिक अंग्रेजी पत्र में छपा था। उसका अभिप्राय निम्नलिखित है—

देहली में नैशनल इन्स्टीच्यूट आफ साइन्स इन इण्डिया (भारतस्थ विज्ञान के जातीय संस्थान) द्वारा एक सभा बुलाई गई। इस काम में यू० एन० ई० एस० सी० ओ०[1] के साउथ एशिया साइन्स को-आपरेशन कार्यालय की सहकारिता थी। इस यू० एन० ई० एस० सी० ओ० को मौलानाजी के भारतीय शिक्षा-विभाग का आश्रय है। पूर्वोक्त सभा में दक्षिण एशिया के देशों को प्रोत्साहन दिया गया कि वे अपने नैशनल ग्रुप (जातीय संघ) बनाएं, ताकि "दक्षिण एशिया में विज्ञान का इतिहास" (The History of Science in South Asia) लिखा जा सके।

यहां तक कोई बुराई नहीं थी। पर आगे देखिए। इस सभा में डा० आर० सी० मजुमदार[2] ने कहा—

Dr. R. C. Majumdar emphasised the necessity of distinguishing between empirical knowledge and scientific knowledge based on observations followed by systamatised and classified conclusions.

डा० अनन्त सदाशिव अल्टेकरजी ने इस पर और रंग चढ़ाया—

Dr. A. S. Altekar gave a chronological resume of the scientific achievements of India.

अन्त में इस सभाने एक उपसभा बनाई। इसका प्रयोजन भारतीय इतिहास का कालक्रम निर्धारित करना था। इस उपसभा ने भविष्य के साहित्यिक काम के लिए निम्नलिखित कालक्रम प्रस्तुत किया—

The table placed among others the origin of Rigveda as between 2,000 and 1,500 B. C.; of old Upanishdas from 800 to 500 B. C.; of Charaka 100 A. D.; of Vedanga jyotisha(present text)as 500 B.C.; Dharma-sutras from 600 to 200 B.C.;and of Mahabharata, Manusmriti and Ramayana between 200 B. C. and 200 A. D.

मौलानाजी के विभाग को "वैज्ञानिक रूप" से इतिहास जानने वाले ये दो अच्छे व्यक्ति मिल गए। इनके द्वारा इस विभाग की मनोरथ-सिद्धि अभीष्ट थी। यदि ऐसे लोगों द्वारा विज्ञान की मोहर (छाप) से असत्य इतिहास न लिखवाए जाएं तो Composite culture ("संग्रथित संस्कृति")[3] का संगीत-शून्य राग कैसे अलापा जाए।

---

१. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization.

यह सभा शान्ति-स्थापना और ज्ञान-विस्तार के लिए बनाई गई थी, पर इस का उपरि-वर्णित अगला काम अज्ञान फैला कर शान्ति का न्यून करना है।

२. ये वही श्रीमान् हैं, जिन्होंने An Advanced History of India (सन् १९४८) नामक महा-निकृष्ट इतिहास में कुछ अध्याय लिखे हैं।

३. इस राग में भारतीय विद्याभवन बम्बई द्वारा प्रकाशित 'दि वैदिक एज' ग्रन्थ के कर्ता भी सम्मिलित हैं। देखो, पृ० १५७, अंतिम पंक्ति।

भारतीय इतिहास पर मौलाना जी का यह एक पूर्व-निर्णीत कुठाराघात था। यदि प्रदेय डा० राजेन्द्रप्रसाद जी एक बार इन प्रोफैसरों से दस, पन्दह दिन तक हमारा विचार विनिमय करा देते, तो सबकी योग्यता नग्न-रूप में दृष्टि-गत हो जाती। या हम अपना कथन छोड़ देते अथवा ऐसे प्रोफैसर योरपीय ऐतिहासिकों का उच्छिष्ट खाना छोड़ देते। अस्तु, हमारा उत्साह दिन-दिन बढ़ रहा था कि हमारा लिखा बृहद् इतिहास शीघ्र प्रकाशित हो।

श्री मुंशीजी का इतिहास—भारतीय विद्याभवन के प्रधान श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीजी के निरीक्षण में—The History and Culture of the Indian People, भाग प्रथम, दि वैदिक एज नामक अंग्रेजी ग्रन्थ सन् १९५१ के आरंभ में प्रकाशित हुआ है। हमें यह ग्रन्थ एप्रिल मास में मिला।

इस इतिहास का रूप—इस इतिहास के विभिन्न अध्याय विभिन्न प्रोफैसरों के लिखे हैं। वे सब प्रोफैसर न्यूनाधिक केवल अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त हैं। ग्रन्थ के प्रधान सम्पादक श्री आर० सी० मजुमदार हैं। इन श्रीमानों के ज्ञान का उल्लेख पूर्व हो चुका है। इनमें से एक प्रोफैसर भी आर्ष-विद्या प्राप्त नहीं है। इन्होंने संस्कृत शास्त्र पश्चिम की विकृत-दृष्टि से पढ़े हैं। वेद से ये सब पूरे कोरे हैं। इस इतिहास में जो थोड़ी सी अच्छाई होने की आशा थी, वह भी निराशा में पलट गई है। भारत के प्राचीन इतिहास के जो अंश पुराण, महाभारत और रामायण आदि से लिए गए हैं, साइंटिफिक अर्थात् वैज्ञानिक इतिहास की तुलना में उन्हें Traditional History का नाम देकर उन का मूल्य न्यून करने की चेष्टा की गई है। Traditional History की सत्य घटनाओं को prehistoric age of India की बातें कहा गया है—Thus began the great war which may be regarded as the greatest event in the prehistoric age of India (p. 302)

भारतीय इतिहास की इतनी अवहेलना मुंशीजी और मजुमदारजी का ही काम है। परंपरागत इतिहास सत्य इतिहास था, और इसे उसी रूप में प्रकट करना चाहिये था। इसके विपरीत कलि संवत (पृ० २९८) को असत्य ठहराना, वैवस्वत मनु (पृ० २९९) को ईसा से ३११० वर्ष पहले मानना, स्वायंभुव मनु (पृ० २७०) को मिथिकल लिखना आदि ऐसी बातें हैं, जिन से लेखक और सम्पादक का अशुद्ध ज्ञान पूर्ण व्यक्त होता है। इन अध्यायों में देवों का वर्णन और मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों का उल्लेख नहीं है। प्रतीत होता है इन अध्यायों को लिखते हुए, लेखक डर रहा था कि ऐसी बातें लिखूं या न लिखूं। अतः थोड़ी सी हो सकने वाली अच्छाई को भी पूर्ण नष्ट कर दिया गया है।

इसके अतिरिक्त सारा ग्रन्थ ऐतिहासिक अशुद्धियों से भरा पड़ा है। यथा—

(क) प्राक्कथन में भी मुंशीजी लिखते हैं—

The General Editor in his introduction has given the point of view of the scientific historian (p. 7)

ग्रन्थ में वैज्ञानिक शब्द की इतनी पुनरुक्ति है कि इस ग्रन्थ के वैज्ञानिक होने में सर्वथा सन्देह होता है। इस शब्द के आतंक से पाठकों के मन पर इस ग्रन्थ का लादना ही अभिप्रेत है।[१] जब इस ग्रन्थ के लेखक विज्ञान से कोसों दूर हैं, तो उन का ग्रन्थ वैज्ञानिक कैसे हो सकता है।

---

१. तुलना करो—

The student of Indian history must avoid these pitfalls and follow the modern method of scientific research (p. 40)

आधुनिक पद्धति बहुत गप्पों और कल्पनाओं से भरी पड़ी है। उसे वैज्ञानिक कहना, विज्ञान का शत्रु बनना है।

(ख) पुनः मुंशीजी की लेखनी चल रही है—

In the past Indians laid little store by history. (p. 8.)

मुन्शीजी का अभिप्राय है कि प्राचीन काल में भारतीयों ने इतिहासकी सामग्री एकत्र नहीं की।

अब यदि मुन्शीजी इतिहास समझने की शक्ति नहीं रखते, तो पुराण और महाभारत आदि लिखने वालों का क्या दोष। मुन्शीजी इतिहास समझने की शक्ति नहीं रखते, इस का प्रमाण उनके अपने लेख में है।

(ग) पाश्चात्यों का अन्ध अनुकरण करते हुए मुन्शीजी एक विचित्र कल्पना करते हैं—

Itihasa, or legends of the gods, (p. 8)

अर्थात्—इतिहास का अर्थ है, देवों की कहानियां।

अब यदि पाणिनि, यास्क, आपिशलि अथवा शाकपूणी जी जीवित होते, तो मुन्शीजी से पूछते कि क्या समझ सोचकर लिख रहे हैं। इतना अनर्थ। क्या यही scientific वैज्ञानिक मार्ग है। वस्तुतः यह पाश्चात्यों की दासता की पराकाष्ठा है। अच्छा होता यदि मुंशीजी वकालत करते और उपन्यास अथवा कहानी लिखते रहते, जिन विषयों में वे योग्य हैं, और इतिहास के क्षेत्र में न उतरते।

(घ) आगे प्रधान सम्पादक श्री मजुमदारजी लिखते हैं—

Although it is entitled the Vedic Age it begins from the dawn of human activity in India (p. 25)

जब श्रीमानों को इस पृथ्वी पर मनुष्य की उत्पत्ति का प्रकार ही ज्ञात नहीं, तो उन्हें भारत में मानव-जीवन के उषःकाल का ज्ञान कैसे हो सकता है। यही कारण है कि इस इतिहास में डरते डरते इन्होंने वैवस्वत मनु के काल से इतिहास का आरम्भ किया है। मनु से आरम्भ किया तो है, पर मनु के पिता विवस्वान् और चचा इन्द्र और विष्णु आदि का कोई वृत्तान्त नहीं लिखा। ब्रह्माजी का ज्ञान तो इन्हें हो ही नहीं सका। पाश्चात्यों के शिष्य मजुमदारजी यदि सांख्य ज्ञान जानते तो ब्रह्माजी से भारत का इतिहास आरम्भ करते। सांख्य ज्ञान की उत्कृष्टता के विषय में उनका कुछ निष्पक्ष पाश्चात्य लेखक A. W. Ryder लिखता है—"Nearer to the truth than any philosophy Western or Eastern." ज़िमर की हिन्दू मैडिसिन (सन् १९४८) प्राक्कथन पृ० २२ पर उद्धृत। यदि राइडरजी को सांख्य का कुछ अधिक ज्ञान होता तो वे इस पर मुग्ध हो जाते।

(ङ) पृ० २६, २७ पर प्रधान सम्पादकजी लिखते कि उनके इतिहास में रामायण, महाभारत और पुराणों में सुरक्षित राजवंशावलियों का प्रयोग पार्जिटर प्रदर्शित मार्ग से किया गया है। फिर वे लिखते हैं कि इन राजवंशों के उपयोग की केम्ब्रिज हिस्टरी आफ इण्डिया में भी विधिवत् उपेक्षा की गई है।

इस पर हमारा इतना कथन है कि पार्जिटर के मार्ग कुछ अंशों में युक्त है। अनेक स्थानों पर पार्जिटर ने भूल की है। (देखो, हमारा भारत वर्ष का इतिहास, द्वि० सं०, पृ० ५८, ६८, ७१ इत्यादि।) यह भूल इस पुस्तक में भी आ गई है। लेखक ने स्वतन्त्र परिश्रम कर के महाभारत आदि से लाभ नहीं उठाया। जिस प्रकार केम्ब्रिज हिस्टरी वालों ने महाभारत आदि की विधिवत् उपेक्षा की है, उसी प्रकार इस ग्रन्थ में भी वेद-विषयक सब बातों में महाभारत आदि ग्रन्थों के सत्य इतिहासों की विधिवत् उपेक्षा मिलती है। यथा – पुरुकुत्स (पृ० २७०) आदि राजाओं के नाम तो लिखे हैं, पर उनके ऋषि होने की बात पचा ली गई है। ठीक है, इससे वेद का काल अति प्राचीन सिद्ध होता है और योरपीय लेखकों की वेद-विषयक

कल्पनाओं का पूरा खण्डन हो जाता है । मजुमदारजी ! दो नौकाओं में पैर रखने वाले की जो गति होती है, वह आपकी हुई है । सत्य है, आप विवश हैं, आर्यविद्या के अभाव में आप पश्चिम के दास बन रहे हैं ।

(च) एक और भयङ्कर भूल—मुन्शीजी के इतिहास लेखकों को इतिहास से स्पर्श भी प्राप्त नहीं, इसका एक ज्वलन्त दृष्टान्त निम्नलिखित है । इस इतिहास में लिखा है—

The Ashvalayana Grihya Sutra refers to the Bharata and the Mahabharata and Shankhayana Shrauta-sutra, to the disastrous war of the Kauravas (p. 304)

शांखायन श्रौतसूत्र में भारत-युद्ध का कोई उल्लेख नहीं । इसमें महाराज प्रतीप के समकालिक महाराज घृद्युम्न के काल के कुरुक्षेत्र के युद्ध का उल्लेख है । यह युद्ध महाभारत युद्ध से कई सौ वर्ष पूर्व हो चुका था । ऐसी भूल को कौन क्षमा कर सकता है ।

इससे आगे इस इतिहास में लिखी उन बातों का संकेत किया जाता है, जिनका खण्डन हमारे ग्रन्थों में पहले किया जा चुका है । उन पर संक्षिप्त आलोचना की भी आवश्यकता नहीं ।

(छ) Along with the doctrine that "the Veda is eternal and everlasting", there are also ancient traditions to the effect that it was compiled by Vyasa not long before the great Bharta War. The view that dates the Rik-Samhita in its present form, to about 1000 B. C., cannot therefore be regarded as absolutely wide of the mark[1] and altogether without any basis of support in Indian tradition. (p. 28)

(ज) But the strongest argument against the supposed existence of regular historical literature is the absence of any reference to the historical texts. (p. 47)

(झ) India did not produce a Herodotus (p. 48)

(ञ) The earlier part of them (lists) is obviously mythical. (p. 48)

(ट) The attempt to reconstruct the skeleton of political history before the Great War cannot, therefore, be regarded as yet leading to any satisfactory result. (p. 48)

(ठ) असमञ्जस में पड़े लेखक के विरोधी कथन भी देखिए—

(1) There are indications that the ancient Indians did not lack in historical sense (p. 47)

(2) Lamentable paucity of historical talent in ancient India. (p. 50)

(ड) मैक्समूलर का उच्छिष्ट खा कर बिना ब्राह्मण ग्रन्थों को समझे लेखक लिखता है—

The Brahmanas, an arid desert of puerile speculations on ritual ceremonies (p. 225)

(ढ) आम्नाय, चरण, शाखा और, ब्राह्मण आदि की स्थिति समझे बिना लिखा है—

The fact that there are Mantras cited by Pratikas in the Brahmanas of the Rigveda which do not occur in our Samhita clearly shows that at the time of

---

१. वही, पृ० १०१ भी

these Brahmanas recently adopted or freshly manufactured Rik-verses were considered good enough for utilization in ritual, but were yet denied a place in the Samhita (p. 227)

Note:—See on this point particularly Oldenberg, Prolegomena, p. 367 (p.237)

वैदिक चरणों में ऐतरेय आम्नाय अथवा चरण की पुरातन संहिता की स्थिति को समझे बिना जिसमें ये सब मन्त्र संहिता के अङ्ग थे, पूर्वोक्त पंक्तियों का लिखना लेखक के अति निकृष्ट और दूषित ज्ञान का द्योतक है। शैशिरीय संहिता में ही सारा ऋग्वेद समाप्त नहीं हो गया।

श्री मुन्शीजी के इतिहास का यह प्रथम भाग वैदिक युग-विषयक है। पर इस में जहां निकृष्टतम विलायती लेखकों के वेद-विषयक अत्यन्त हीन मत उपलब्ध हैं, वहां वैदिक विषयों पर मौलिक, गम्भीर अथवा उपयोगी लेख लिखने वाले निम्नलिखित भारतीय विद्वानों के मतों का सर्वथा अभाव है—

१. श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती। २. श्री सत्यव्रत सामश्रमी। ३. श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा। ४. पं० शिवशङ्कर काव्यतीर्थ। ५. श्री नन्दुलाल दे। ६. उमेशचन्द्र विद्यारत्न। ७. श्री रुलियाराम कश्यप। ८. श्री डि.आर. मांकड। ९. श्री राजगुरु हेमराज। १० श्री प्रबोधचन्द्रसेन गुप्त। ११. श्री सीतानाथ प्रधान। १२. पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। १३. प्रोफेसर ज़िमरमन। १४. वि० रङ्गाचार्य। १५. श्री अप्यावले। १६. आर० वि० पाण्डेय। १७. पं० युधिष्ठिर मीमांसक।

वस्तुतः मुन्शीजी का ग्रन्थ पक्षपातान्ध लोगों की कल्पनाओं का संग्रह मात्र है। मौलिक और युक्त नूतन खोज का इस में अंश भी नहीं।

श्री मुंशीजी को चाहिए कि अपने लेखकों से हमारा वाद कराएं अन्यथा ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित करना बन्द करें। भारतीय इतिहास के अनेक विषयों का निर्णय इस प्रकार से शीघ्र हो जाएगा।

पाश्चात्यों ने भारतीय ऋषियों को गालियां दीं—

भारतीय ज्ञान का मूल सत्य कथन है। ऋषि लोग परम सत्यवक्ता थे। उन्होंने उपनिषद्, आरण्यक, ब्राह्मण और आयुर्वेद आदि के ग्रन्थों में सत्य भाषण किया। उनके स्वीकृत ऐतिहासिक महापुरुषों को मिथिकल कहना, सारे आर्य ऋषियों को गाली देना है। वर्तमान युगीन "वैज्ञानिक" गालियों का यही प्रकार है। हमने इस बृहद् इतिहास में बता दिया है कि अब ये गालियां सही न जाएंगी।

इन वैज्ञानिक-ब्रुवों के मिथ्या प्रचार से सोशलिस्ट और कम्यूनिस्ट भी आर्य ऋषियों के विरुद्ध अनेक लेख लिख रहे हैं। यथा राहुल सांकृत्यायन जी आदि। उन सबके लेखों की परीक्षा इस इतिहास में है। जिस प्रकार उदयन, कुमारिल और उद्योतकर की सतत चोटों से धर्मकीर्ति, दिङ्नाग और वसुबन्धु आदि के राजाश्रित विचार छिन्न भिन्न हुए और जिस प्रकार बौद्धमत का भारत भूमि से उच्छेद हो गया, इसी प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती, पं० गुरुदत्त एम. ए. और पण्डित युधिष्ठिरजी मीमांसक के लेखों से वैज्ञानिक-ब्रुवों के मिथ्या वाद शीघ्र जर्जरीभूत होंगे। इस विषय में यह बृहद् इतिहास भी अपना काम करेगा। इसके—

प्रथम अध्याय में—इतिहास आदि उन्नीस शब्दों का यथार्थ अर्थ प्रदर्शित किया गया है। इसके पाठ से ज्ञात होगा, कि भारत में प्राचीनतम काल से इतिहास विद्या का बड़ा आदर था।

द्वितीय अध्याय में—श्री ब्रह्माजी, बृहस्पति, नारद और उशना काव्य के काल से भारत में इतिहास का असाधारण आदर दिखाया गया है। प्राचीन काल में इतिहास ग्रन्थों की विपुलता का परिचय इस अध्याय में मिलेगा। पाश्चात्य लोगों ने भारतीय ग्रन्थों की तिथियों के निर्धारण में जो मन-मानी कल्पनाएं की हैं उन का आभास भी यहाँ मिलेगा।

तृतीय अध्याय में—भारतीय इतिहास की विकृति के कारणों पर प्रकाश डाला है। इस विकृति का फल ही वर्तमान विश्वविद्यालयों के अधिकांश प्रोफेसर हैं। उन्हीं के कारण भारतीय संस्कृति नष्ट हो रही है।

चतुर्थ अध्याय में—भारतीय इतिहास के स्रोत निदर्शित हैं। यह अध्याय भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण का प्रथम अध्याय था। यहां उस सामग्री का प्रभूत-विस्तार है।

पाश्चात्य मतों का यहां विशेष खण्डन है। श्री सदाशिव अल्टेकरजी के अर्थशास्त्र विषयक अनेक मिथ्या-विचारों का असत्यपन यहां प्रदर्शित किया है।

पञ्चम अध्याय में—प्राचीन वंशावलियों की सत्यता प्रमाणित की गई है। केम्ब्रिज हिस्टरी के भ्रान्त मत का विश्लेषण और निराकरण है। पार्जिटर ने लिखा था—

If any one maintains that those genealogies are worthless, the burden rests on him to produce not mere doubts and suppositions, but substantial grounds and reasons for his assertion. (A. I. H. T. p. 120)

हम ने इस बात पर अधिक बल न देकर ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किए हैं कि प्राचीन वंशावलियों के मानने में कोई विज्ञ आपत्ति न करेगा। यह अध्याय संक्षिप्त है, पर मूल तत्त्व इसमें सन्निहित है।

षष्ठ अध्याय में—दीर्घजीवी पुरुष कौन थे, इस का समास से उल्लेख है। मानव, ऋषि और देव आयु का रहस्य इस अध्याय में खोला गया है। इस विषय पर स्वतन्त्र ग्रन्थ के लिखे जाने की आवश्यकता है। इस विषय को न समझ कर आर्य इतिहास से बड़ा अत्याचार किया गया है। इस ज्ञान से अपरिचित होने के कारण श्री मुंशीजी के इतिहास में लिखा है—

In order to get over these obvious anachronisms a theory was promulgated, at a later date that Parshurama was chiranjiva (immortal) (p. 282)

लेखक महाशय को पता नहीं कि चिरञ्जीव का अर्थ अमर नहीं है। महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि परशुराम—मरिष्यति न संशयः। अवश्य मृत्यु को प्राप्त होगा। ब्रह्मचर्य ज्ञान हीन, योगविद्या-रहित, मिथ्याभिमानी वैज्ञानिक मूर्खों को दीर्घजीवी ऋषियों के जीवन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भूरि-प्रयास करना पड़ेगा।

सप्तम अध्याय में—पुरातन कालमान का संक्षिप्त वर्णन है। सप्ताह के वारों का प्रयोग अति प्राचीन काल से भारत में प्रचलित था, कलि संवत् इतिहास सिद्ध बात है, तथा शूद्रक संवत् प्रथम शक संवत् और शालिवाहन शक आदि विषयों पर यहां प्रकाश डाला गया है। आदि युग, देव युग, सत्युग, त्रेता द्वापर और कलियुग की गणना की अनेक बातें इस अध्याय में स्पष्ट की गई हैं। त्रेता, द्वापर आदि युगों का हमने न्यूनातिन्यून मान जो वर्तमान प्रतीत होता है, स्वीकार किया है। जब भावी विद्वान् इसका शुद्धतर मान दूसरा रूप उपस्थित करेंगे, और इतिहास को तदनुकूल जोड़ देंगे, तो उनकी बात स्वीकार कर ली जाएगी। सप्तर्षि संवत् के विषय में वर्तमान भूलों का निराकरण किया गया है।

अष्टम अध्याय में—ब्राह्मण ग्रन्थ और इतिहास का गौरव प्रदर्शित है। ज्ञान के बिना जो कोई ब्राह्मणों को पढ़ता है, उसे ब्राह्मण ग्रन्थ समझ में नहीं आते, यह स्पष्ट किया गया है।

नवम अध्याय में—वैदिक ग्रन्थों और महाभारत के रचनाक्रम का स्पष्टीकरण है। केम्ब्रिज हिस्टरी की एक उपहासजनक भूल का यहां (पृष्ठ १६८) संशोधन है। श्री सर्वेपिल्ले राधाकृष्ण के वृथा कथन का तिरस्कार भी यहीं है।

भारत-युद्ध कालीन अनेक महापुरुषों की ऐतिहासिकता के यहां सत्य-प्रमाण हैं।

दशम अध्याय में—भारतीय इतिहास को संसार इतिहास की तालिका सिद्ध किया गया है। इस विषय पर एक सहस्र से अधिक पृष्ठ लिखे जा सकते हैं। संसार में धर्म केवल एक है, और वह वेद धर्म है, संस्कृति केवल एक है और वह आर्य संस्कृति है, इन बातों के अकाट्य प्रमाण यहां संग्रहीत हैं।[1] काल्डिया, मिश्र, ईरान आदि देशों ने भारत से क्या २ सीखा, भारत का इतिहास इन सब देशों से प्राचीन काल का है, यह इस अध्याय में वर्णित है। हित्तिति भाषा वेद-काल से पुरानी नहीं है। हित्तिति लोगों का मूल-पुरुष मनु था। यह बाईबिल में स्वीकृत है। संसार की सब भाषाएं संस्कृत से भ्रष्ट हुई हैं, इसका दिग्दर्शन यहां कराया गया है। पाश्चात्यों के अनेक मिथ्यावादों का यहां खण्डन है।

एकादश अध्याय में—भारतीय इतिहास की तिथि गणना के मूलाधार स्तम्भों का उल्लेख है। अध्यापक विण्टर्निट्ज, पण्डित जवाहरलाल, श्री वट कृष्ण घोष आदि की सारहीन कल्पनाओं को यहां अपास्त किया गया है। वेद इस सृष्टि चक्र में विक्रम से १४००० वर्ष से पूर्व था, इन्द्र आदि देव वेद पढ़े थे, ब्रह्माजी ने वेद का उपदेश किया, इत्यादि ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन यहीं है। आयुर्वेद के अवतार का स्पष्ट ज्ञान यहीं है। यास्क, शौनक आदि अनेक ऋषियों का पौर्वापर्य यहीं स्पष्ट किया गया है और यास्क पाणिनि आदि के काल विषय में जो गप्पें पश्चिम के लेखकों ने हांकी हैं, उनका निराकरण यहीं है। अन्त में उस महान् भ्रांति का दूरीकरण है, जिसके कारण भारतीय इतिहास का कलेवर सर्वथा दूषित कर दिया गया था, अर्थात् सैण्ड्राकोटस और पलिबोथ का चन्द्रगुप्त मौर्य और पाटलिपुत्र से ऐक्य स्थापन। यूनानी ग्रन्थों के आधार पर यह दर्शाया गया है कि पलिबोथ्र पाटलिपुत्र कदापि न था। सैण्ड्राकोटस एक छोटा राजा था। इस लेख से भारतीय इतिहास में एक क्रांति उत्पन्न की गई है। पौराणिक कालक्रम सत्य है और यूनानी ग्रन्थों के आधार पर भारत के इतिहास का जो कालक्रम कल्पित किया गया था, वह सर्वथा मिथ्या है, इस विषय का बोलता चित्र यहां है।

द्वादश अर्थात् अन्तिम अध्याय में—"मिथ" आदि अंग्रेज़ी शब्दों का अर्थ बताया गया है। मूल ग्रीक शब्द को जर्मन और अंग्रेज़ी ग्रन्थकारों ने शनैः शनैः कैसे बिगाड़ा और उसका कल्पित अर्थ प्रचलित

---

१. इस विषय में अल-मसूदी की सम्मति द्रष्टव्य है—

El. Masudi says, all historians who unite maturity of reflexion with depth of research, and who have a clear insight into the history of mankind and its origin, are unanimous in their opinion, that the Hindus have been in the most ancient times that portion of the human race which enjoyed the benefits of peace and wisdom.

The greatmen amongst them said, "we are the beginning and end, we are possessed of perfection, preeminence, and completion. All that is valuable and important in the life of this world owes its origin to us. Let us not permit that anybody shall resist or oppose us; Let us attack any one who dares to draw his sword against us, and his fate will be flight or subjection."

Meadows of gold and mines of gems. Seventh chapter p. 152. London, 1841 edition.

किया, इसका प्रदर्शन यहाँ है । वर्तमान युग का अज्ञानी लेखक जिन अति पुरातन ऐतिहासिक बातों को नहीं समझता, उन्हें वह "मिथ" कह देता है, ऐसा यहां सिद्ध किया गया है। योरुप की पद्धति वालों को वेदार्थ का अणुमात्र ज्ञान नहीं, यह भी यहीं निदर्शित है ।

इस प्रकार बारह अध्यायों से युक्त यह प्रथम भाग प्रकाशित किया जाता है । भारत में लेखन कला, भारत की लिपियां, भारत की मुद्राएं, तथा गत १२० वर्ष के भारतीय इतिहास के लेखक आदि अध्याय आवश्यक होने पर भी स्थानाभाव से यहां सन्निविष्ट नहीं हो सके । अन्त में आवश्यक शब्द सूची भी नहीं जोड़ी जा सकी ।

इस इतिहास में अनेक लेखकों का जो खण्डन किया गया है, वह राग अथवा द्वेष से प्रेरित होकर नहीं किया गया प्रत्युत विद्या और ज्ञान के विस्तार के लिए ही किया गया है। अतः पाठक इसी दृष्टि से इसे पढ़ें ।

अनेक असुविधाओं के कारण मुद्रण की जो अशुद्धियाँ ग्रन्थ में रह गई हैं, विद्वान् पाठक उन्हें सुधारने का कष्ट करें और हमें क्षमा करें।

इतिहास-शोधन और इस ग्रन्थ के प्रकाशन में श्री बाबा गुरमुखसिंहजी की प्रमुख सहायता के अतिरिक्त, श्री डा० गिरिधारीलालजी इटली; पं० नानकचन्दजी एम. ए. बैरिस्टर, देहली; श्री जस्टिस मेहरचन्दजी महाजन एम.ए. श्री बख्शी टेकचन्दजी एम० ए०, भूतपूर्व जज पन्जाब हाई कोर्ट; सेठ जयदयालजी डालमियां, (पं० नानकचन्द जी द्वारा); श्री दीवान बहादुर ला० जगन्नाथजी भण्डारी एम० ए०, भूतपूर्व दीवान ईडर; ला० सदानन्दजी ठेकेदार; डा० गोकुलचन्दजी नारंग एम० ए०; कविराज हरनामदासजी बी० ए०; प्रो० वेदव्यासजी एम० ए०; श्री पण्डित जियालालजी, प्रधान दयानन्द कालेज कमेटी, अजमेर; ला० प्रकाशचन्दजी बी० ए० एडवोकेट, हिसार; श्री ला० मनमोहनलालजी रईस हिसार, श्री ला० केसर रामजी नारंग, शूगर मिलज़, बस्ती, उत्तर प्रदेश की सहायता प्राप्त हुई है । मैं इन सबका बहुत आभारी हूं।

मित्रवर श्री पण्डित युधिष्ठिरजी मीमांसक, मेरी धर्मपत्नी पण्डिता सत्यवती शास्त्रिणी, पुत्र श्री सत्यश्रवा एम० ए०, तथा मेरी कन्या कुमारी सुवर्चा ने ग्रन्थ के प्रूफ आदि पढ़ने में पूरी सहायता की है। इन सब का यह सांझा काम था।

श्रीमती परोपकारिणी सभा, अजमेर ने इस ग्रन्थ को वैदिक यन्त्रालय अजमेर में विशेष आर्थिक सुविधाओं के साथ छापने की स्वीकृति प्रदान करने की कृपा की। इस लिए मैं सभा का अपने पर महान् उपकार मानता हूं। यह ग्रन्थ लगभग सवा दो वर्ष में मुद्रित हुआ है । वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धकर्ता श्री पण्डित भगवानस्वरूपजी भी धन्यवाद के पात्र हैं । उन्होंने मुद्रण विषयक मेरे पत्रों का सदा ध्यान रखा है ।

ईश्वर की अपार कृपा से अविद्या-जन्य संस्कारों के नाश करने में यह ग्रन्थ सहायक हो और सत्य आर्य इतिहास का इस से संसार में विस्तार हो ।

स्थान—श्री अजुध्यानाथ खोसलाजी का निवास
१. क्लाइव रोड, नई देहली.
२० मई, सन् १९५१. आदित्यवार ।

भगवद्दत्त

विषय **पृष्ठ**

अथ

भारतवर्ष का बृहद् इतिहास

प्रथम भाग

प्रथम अध्याय

नमस्कार, प्रयोजन तथा इतिहास और उसका आनुषङ्गिक वाङ्मय

नमस्कार—काल-स्वरूप परब्रह्म को परम भक्ति से कोटि कोटि नमस्कार है, जिसकी अपार कृपा से अति दीर्घ काल की विस्मृतप्रायः घटनाएं हमारी समझ में आई हैं। तत्पश्चात् ब्रह्मा, वायु, उशना, बृहस्पति, विवस्वान्, इन्द्र, वाल्मीकि, पराशर, जातुकर्ण्य और कृष्ण द्वैपायन आदि ऋषि, मुनि और देवों को भी वारंवार श्रद्धाञ्जलि की भेंट है, जिनके दिव्य वचनों के पाठ से हमारा हृदयकमल कालरूपी जल की असीम तरङ्गों की थपकियां खाता हुआ, दिन दिन खिलता जाता है, तथा एक प्रकार की असहाय अवस्था में भी उसी महत्कर्म के करने में अग्रसर है, जिसके निमित्त आज से ३२ वर्ष पूर्व यह कृतसंकल्प हो चुका था।

अपरञ्च गुरुपरंपरा में अमृतसर-निवासी योगी लक्ष्मणानन्द स्वामी, आर्यसमाज के प्रवर्तक यतिप्रवर स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा पञ्जाब की पञ्चनद-प्रक्षालित उर्वरा भूमि को अपने जन्म से पुनीत करने वाले महा वैयाकरण दण्डी विरजानन्दजी को भी भक्ति-पुष्प प्राभृतक रूप में देते हैं, जिनकी कृपा से संस्कृत विद्या में और विशेषतया आर्षविद्या में हमारी अगाध रुचि उत्पन्न हुई। इसी से हमने समस्त उपलब्ध संस्कृत वाङ्मय का साङ्गोपाङ्ग सूक्ष्म अध्ययन और शतशः शास्त्रों का शतशः वार पारायण करके निष्पक्ष मन्थन किया।

आज कलि संवत् के ५०५० वर्ष बीते हैं। तब शुक्रवार भाद्र कृष्ण प्रतिपद् संवत् २००५ विक्रम, अथवा २० अगस्त सन् १९४८ के दिन हम वर्षों के अध्ययन के इस फल का अन्तिम शुद्ध लेख लिख रहे हैं। ईश्वर कृपा से शीघ्र मुद्रित होकर यह बृहद् इतिहास जिज्ञासु पाठकों के पास पहुंचे।

प्रयोजन—इस इतिहास शास्त्र का प्रयोजन क्या है। करालकाल से जो भारत इतिहास कुछ अस्पष्ट, शृङ्खलारहित और अन्धकारावृत होगया था, तथा जिसको योरुपीय अध्यापकों अथवा उनसे शिक्षा प्राप्त एतद्देशीय लोगों ने तर्कशून्य रीतियों या कुतर्कों से कलुषित कर दिया था, उसे पुनः स्पष्ट करके, शृङ्खला में बांध, तथा कुतर्कों के आवरण से मुक्त कर, उपलब्ध

तथा लुप्त-प्राय महती संस्कृत सामग्री, तथा भूतल से विलुप्त अनेक पुरातन जातियों के अवशिष्ट लेखों के समुचित आधार पर गंभीर अन्वेषणानन्तर अन्धकार से निकाल प्रकाश में रखना है।

इतिहास एक महान् शास्त्र है। इसके विना वेद भी बुद्धिगम्य नहीं होता। वर्तमान पाश्चात्य भाषाविदों ने, भूगर्भ वेत्ताओं ने, पुरातत्त्व के कार्यकर्ताओं ने, वैज्ञानिकों ने, डार्विन मतानुयायी विकासवादियों ने, चिकित्साशास्त्रियों ने, तथा अन्यान्य लोगों ने क्या क्या भूलें की हैं, इनका ज्ञान यथार्थ इतिहास से ही संभव है। अतः उस यथार्थ ज्ञान के लिए यह इतिहास लिखा गया है।

फल—इस इतिहास से संसारमात्र का कल्याण होगा, क्योंकि अविद्याविलीन संसार और विशेष कर उस का प्रमुख भाग भारत अपने भूत को न जान कर बहुधा वृथा क्रियाएं कर रहा है।

यह इतिहास शास्त्र नाटकों के समान रोचक और कथाओं की कथा तथा प्रवृत्ति-मार्ग का परम सहायक होगा।

इस इतिहास के पाठ से विचारवान् पाठकों को ज्ञात हो जायगा कि पुरातन संस्कृत-ग्रन्थों का जो रचना-काल योरुपीय लोगों ने निर्धारित किया है, वह ईसाई और यहूदी पक्षपात पर आश्रित और सर्वथा अशुद्ध है। महाभारत ग्रन्थ का कर्ता अज्ञात नहीं, प्रत्युत वह व्यास था और कृष्ण द्वैपायन व्यास था। रामायण का कर्ता वाल्मीकि व्यास से बहुत पहले हो चुका था। जर्मन लेखकों का कल्पित भाषा-विज्ञान अत्यन्त त्रुटि-पूर्ण है। आर्य ज्ञान असभ्य अथवा अर्ध-सभ्य लोगों की देन नहीं, प्रत्युत परम उत्कृष्ट और मनुष्य का एकमात्र हितसाधक है। वर्तमान युग में मनुष्य के भद्र के लिए जो नित्य नए मार्ग निकाले जा रहे हैं, वे सारहीन और अधूरे हैं। वस्तुतः संसार में एक सूर्य और एक चन्द्र के समान एक भाषा, एक संस्कृति और एक सत्य मार्ग है। अन्य भाषाएं, अन्य संस्कृतियां और अन्य मार्ग अपभ्रंश रूप हैं। यह इतिहास इन सत्य बातों को स्पष्ट करेगा।

इस इतिहास के पाठ से लोगों में इतिहासविषयक सत्य बुद्धि विकसित होगी। वे कल्पित इतिहास नहीं पढ़ेंगे, और न इतिहास के संकलन में मिथ्या कल्पनाएं करेंगे। वे अगाध संस्कृत-विद्या की ओर झुकेंगे और इस विद्या से अधिकाधिक रत्न निकालेंगे। वे आर्य-परंपरा की सत्यता का दिग्दर्शन करेंगे। उन के लिए कृष्ण द्वैपायन और उन का भारत, याज्ञवल्क्य और उन का शतपथ, मनु और उन की स्मृति इतिहास के यथार्थ तथ्य होंगे। वे दाशरथि राम, चक्रवर्ती भरत, अदिति पुत्र विवस्वान्, मनु-कन्या इळा, दक्ष और कश्यप प्रजापति आदि को स्वच्छ इतिहास का व्यक्ति समझेंगे और उन के काल को पूर्वापर संगति से पूरा जान लेंगे।

गत सहस्रों वर्षों में मनुष्य ऊंचा नहीं उठा, प्रत्युत वह कितना नीचे गया है, उस की प्रवृत्तियों में कितनी अधोगति हुई है, संसार में रजोगुण और तमोगुण का कितना विस्तार होता गया है, यह सब इस इतिहास के पाठ से ज्ञात हो जायगा।

अति पुरातन आर्य राज्य कितने सुखप्रद थे, उन में निर्धनता कितनी अल्प थी, राजा प्रजा का सम्बन्ध कितना घनिष्ठ था, प्रजा-पीडा की निवृत्ति कितनी शीघ्र की जाती थी, राज-

वर्ग और प्रजा-गण अधिकार-लोलुप नहीं थे, प्रत्युत कर्तव्य-परायण थे, आवश्यक होते हुए भी, आर्थिक प्रश्न भारत का मूल प्रश्न नहीं था, परलोक का ध्यान इस लोक को पुण्ययुक्त बनाता है, इत्यादि बातों का इस इतिहास के पाठ से ज्ञान होगा। दुष्ट राजा कैसे नष्ट हुए, प्रजा-पीडक राजगण कितनी अपकीर्ति को प्राप्त हुए, उनके विषय में महामुनि याज्ञवल्क्य का कथन—

प्रजापीडनसंतापात् समुद्भूतो हुताशनः। राज्ञः श्रियं कुलं प्राणान् चादग्ध्वा न निवर्तते ॥

स्मृति अ० १, अन्त।

कितना सत्य है, इत्यादि बातों का इस इतिहास में प्रत्यक्ष दर्शन होगा।

भारतीय संस्कृति का उस के सम्पूर्ण अङ्गों में इस इतिहास में उज्ज्वल दर्शन होगा। अधिक क्या लिखें, भावी मानव जीवन की प्रायः सभी समस्याओं में यह इतिहास प्रकाश का काम देगा।

इतिहास और उसका आनुषङ्गिक वाङ्मय

इतिहास-विषयक वाङ्मय का महान् विस्तार—जिस देश में उन्नीस प्रकार की स्वच्छ इतिहास-परक सामग्री विद्यमान थी, जिस देश के आचार्यों ने परम सूक्ष्म बुद्धि से उस सामग्री का लक्षण-पूर्वक विभाजनविशेष कर दिया था, तथा जिस देश के साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने अपनी उदारधी से अत्यन्त श्रेष्ठ इतिहास लिखे, उस देश में 'इतिहास-लेखन विद्या नहीं थी', यह कहना अन्याय की पराकाष्ठा अथवा अज्ञान की चरम सीमा है। भारत में इतिहास और उस के आनुषङ्गिक वाङ्मय का ज्ञान इस अन्याय अथवा अज्ञान को सर्वथा दूर कर देगा। अतः पहले इतिहास शब्द और फिर उस के आनुषङ्गिक वाङ्मय के नाम, लक्षण और अर्थ आदि सोदाहरण लिखे जाते हैं। इन शब्दों के लक्षण आदि देने वाले आर्ष ग्रन्थ अभी अनुपलब्ध हैं, तथापि हम ने उपलब्ध वाङ्मय से ऐसी सामग्री एकत्रित कर दी है, जिस से इस विषय की अनेक बातें स्पष्ट हो जाएंगी। पूरा सूक्ष्मभेद जानने के लिये भावी लेखकों को यत्न करना चाहिए।

१. इतिहास

प्राचीनता— इतिहास शब्द इतिहास-विद्या के अर्थ में अथर्ववेद में मिलता है। अथर्ववेद इस युग की सृष्टि के मूलपुरुष ब्रह्मा की देन है। अतः इस शब्द की प्राचीनता में कोई संदेह नहीं। याज्ञवल्क्य-प्रोक्त वाजसनेय ब्राह्मण के काल में देवासुर-संग्रामों का वर्णन करने वाले इतिहास ग्रन्थ मिलते थे।[1] भारत-युद्ध से लगभग २०० वर्ष पश्चात् आचार्य शौनक बृहद्देवता में लिखता है—इतिहासः पुरावृत्तं ऋषिभिः परिकीर्त्यते। ४। ४६॥ अर्थात्—इस विषय का इतिहास ऋषियों द्वारा कीर्तित है।

---

१. शतपथ ब्राह्मण ११। १। ६। ६॥ इङ्गलैण्ड देश के अध्यापक जूलियस एगलिङ्ग (सन १९००) ने शतपथ के अपने अंग्रेजी अनुवाद में इतिहास का अर्थ लीजेण्ड (legend) किया है। यह उनका पक्षपातमात्र है। इतिहास का अर्थ लीजेण्ड नहीं, इसका विचार आगे किया गया है। शतपथ ११। ५। ६। ८ में वह इतिहास पद का अनुवाद traditional myth अर्थात् परंपरागत कल्पित बात करता है। यह भी पक्षपातपूर्ण भ्रष्ट अनुवाद है। इस इतिहास से ऐसे सन्देह निवृत्त होंगे।

विख्यात आचार्यों का अर्थ—इतिहास शब्द के अर्थ-विषय में प्रामाणिक आचार्यों ने जो लिखा है, वह आगे उद्धृत किया जाता है—

(क) आचार्य दुर्ग (विक्रमीय षष्ठ शताब्दी से पूर्व) अपनी निरुक्तभाष्यवृत्ति में निरुक्तान्तर्गत इतिहास शब्द पर लिखता है—

इति हैवमासीदिति यः कथ्यते स इतिहासः । २७। १० ॥

अर्थात्—"यह निश्चय से इस प्रकार हुआ था," यह जो कहा जाता है, वह इतिहास है।

यह लक्षण जो इतिहास शब्द से स्वतः सूचित होता है, सत्यता-प्रदर्शक है । कल्पित, अनुमानित, और संदिग्ध बातें इतिहास नहीं हैं ।

(ख) अमर के नामलिङ्गानुशासन में दो पर्याय शब्द पढ़े गए हैं—

इतिहासः पुरावृत्तम् । १ । ६ । ४ ॥

इन पर सर्वानन्द अपने टीकासर्वस्व में लिखता है—

इति ह शब्दः पारंपर्योपदेशे ऽव्ययम ।[1] इति हास्तेऽस्मिन्निति इतिहासः ।

अर्थात्—परंपरा से जो कहा जा रहा है कि ऐसा हुआ था, वह इतिहास है । स्मरण रहे, आर्य लोग आरंभ अर्थात् ब्रह्माजी के काल से पठित चले आ रहे हैं। उनका पुरानी घटनाओं का उल्लेख सत्य था और सदा सुरक्षित रखा जाता था । वह कल्पनाओं और अनुमानों से बना हुआ नहीं था । ध्यान देना चाहिए, अमर पुरावृत्त को इतिहास का पर्याय प्रकट करता है और शौनक उसे इतिहास का विशेषण करके पढ़ रहा है ।

(ग) राजशेखर (दशम शताब्दी विक्रम) अपनी काव्यमीमांसा में लिखता है—

पुराणप्रविभेद एवेतिहास इत्येके । स च द्विविधा परक्रियापुराकल्पाभ्याम् । यदाहुः—

परक्रिया पुराकल्प इतिहासगतिर्द्विधा । स्यादेकनायका पूर्वा द्वितीया बहुनायका ॥ पृष्ठ ३ ।

अर्थात्—इतिहास की गति दो प्रकार की है । वे दो प्रकार परक्रिया और पुराकल्प हैं । परक्रिया में एक नायक अथवा प्रधान पुरुष वर्णित होता है, तथा पुराकल्प में अनेक प्रधान पुरुष होते हैं ।

परकृति और पुराकल्प का यह लक्षण भट्ट कुमारिल के मत[2] के समान है ।

परक्रिया और पुराकल्प का वर्णन आगे होगा । प्राचीन काल में भारतवर्ष में अनेक इतिहास ग्रन्थ लिखे गये थे । जय अथवा भारत या महाभारत ऐसा ही एक इतिहास था । जयनामेतिहासोऽयं........ । यह इतिहास सत्य इतिहास है, इस का निरूपण आगे होगा । प्रायः वर्तमान लोग इसे समझ नहीं सके ।

शुक्रनीति ४ । ३ । १०२, १०३ में इतिहास का लक्षण देखने योग्य है ।

विष्णुगुप्त और इतिहास—आचार्य कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इतिहास का सुन्दर अर्थ लिखा है । वह आगे उद्धृत किया जाता है—पुराणम् इतिवृत्तम् आख्यायिका-उदाहरणं-

---

१. सर्वानन्द ने अमर १ । ७ । ११ की व्याख्यानुसार यह पंक्ति लिखी है ।

२. देखो, आगे पृष्ठ ७ ।

धर्मशास्त्रं अर्थशास्त्रं चेति इतिहासः ।[1] अर्थात्—पुराण आदि छः विद्याएं इतिहास के अन्तर्गत हैं। कौटल्य सदृश अप्रतिम विद्वान् कितना व्यापक अर्थ करता है। उसकी दृष्टि में इस लक्षण के लिखते समय महाभारत ग्रन्थ अवश्य विद्यमान था, उसमें ये सब गुण घटते हैं। महाभारत ग्रन्थ इतिहास होता हुआ भी धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र है।

२. ऐतिह्य

व्युत्पत्ति—भारती वाङ्मय में इतिहास शब्द से मिलता जुलता दूसरा शब्द ऐतिह्य है। पाणिनीय वैयाकरण इतिह को अव्यय मानते हैं, और ष्यञ् प्रत्यय से ऐतिह्य शब्द सिद्ध करते हैं। पारम्पर्योपदेशः स्याद् ऐतिह्यम्, इतिह अव्ययम्। यह अमरकोष २।६।१२ का वचन है, अर्थात्—इतिह अव्यय है, और ऐतिह्य तथा पारम्पर्योपदेश समानार्थक हैं। इस मत का अनुकरण करके जैन वैयाकरण हेमचन्द्र अपने अभिधान चिन्तामणि में लिखता है—वार्तैतिह्यं पुरातनी। पुरातनी वार्ता, इतिह इति निपातसमुदायः। उपदेशपारम्पर्ये वर्तते। इतिह इत्येव ऐतिह्यम्, भेषजादित्वात् टयण्।[2]

ऐतिह्य शब्द पर प्राचीन मुनियों के वचन आगे लिखे जाते हैं—

(क) चरकसंहिता (कलि आरम्भ) विमान स्थान में लिखा है—

अथ ऐतिह्यम्—ऐतिह्यं नाम आप्तोपदेशो वेदादिः। ८। ४१॥

अर्थात्—चरकमुनि के अनुसार ऐतिह्य एक हेतु है और उसके द्वारा तत्त्व की उपलब्धि होती है। उसके अन्तर्गत वेदादि सब शास्त्र हैं। आदि पद के द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थ आदि लिए जा सकते हैं।

(ख) गोतममुनि (द्वापर का अन्त) आठ प्रमाणों में ऐतिह्य को भी एक प्रमाण गिनते हैं। उनका भाष्यकार वात्स्यायन लिखता है—

इति होचुः इति अनिर्दिष्टप्रवक्तृकं प्रवादपारंपर्यम् ऐतिह्यम्। २। २। १॥

अर्थात्—ऐसा विद्वानों ने कहा था, बिना वक्ता का नाम बताए यह जो परम्परागत कथन है, यह ऐतिह्य है।

ध्यान रखना चाहिये, न्यायसदृश सूक्ष्म तर्कग्रन्थ लिखने वाला महान् आचार्य कल्पित कहानी को ऐतिह्य नहीं मानता। कल्पित कहानी अथवा आंशिक कल्पित कहानी प्रमाण कोटि से बाहर है। गोतम मुनि के काल में, अर्थात् आज से लगभग ५२०० वर्ष पूर्व आप्तोक्त सत्य ऐतिह्य चले आ रहे थे। तभी उसने उन्हें प्रमाण की संज्ञा दी।

(ग) तित्तिरि मुनि (द्वापरान्त, विक्रम से ३२०० वर्ष पूर्व) अपने आरण्यक में चार प्रमाण मान कर ऐतिह्य को उनके अन्तर्गत मानते हैं—

स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यम् अनुमानश्चतुष्टयम्। एतैरादित्यमण्डलं सर्वैरेव विधास्यते॥ १। २॥

---

१. आदि से अध्याय ५। २. १। १०२॥

अर्थात्—धर्मशास्त्र, गृह्यशास्त्र तथा प्रत्यक्ष और इतिहास, तथा अनुमान ये चार प्रमाण हैं। इन चारों से सृष्टि के सब काम चलते हैं।

इस वचन पर भाष्य करते हुए भट्ट भास्कर (११ वीं शती विक्रम) लिखता है—

ऐतिह्यशब्देनेतिहासपुराणं गृह्यते ।

अर्थात्—ऐतिह्य शब्द से इतिहास पुराण का ग्रहण होता है।

तित्तिरि वैशंपायन का ज्येष्ठ भ्राता और शिष्य था।[1] इस संबन्ध में महाभारत सभापर्व अध्याय चार के निम्नलिखित श्लोकों के देखने से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं—

बको दाल्भ्यः स्थूलशिराः कृष्णद्वैपायन शुकः ।
सुमन्तुर्जैमिनिः पैलो व्यासशिष्यास्तथा वयम्[2] ॥ १७ ॥
तित्तिरिर्याज्ञवल्क्यश्च ससुतो रोमहर्षणः ।

भगवान् व्यास के चार प्रधान शिष्य थे। उनमें से वैशंपायन का नाम इन श्लोकों में नहीं है। वैशंपायन महाभारत का संस्कर्ता है। उसने अपने नाम के स्थान में "वयम्" पद रखा है। तित्तिरि वैशंपायन का शिष्य था। वह जानता था कि उसके गुरु और गुरु के गुरु कृष्ण द्वैपायन व्यासजी इतिहास की प्रामाणिकता को मानते हैं, अतः उसने चार प्रमाणों में ऐतिह्य की गणना की।

३. पुराकल्प

पुराकल्प शब्द तीन अर्थों में व्यवहृत दिखाई देता है, अर्थवाद पुराना काल या पुराने काल की घटना, तथा पुराने इतिहास का ग्रन्थ।

अर्थवाद—न्यायसूत्र है—स्तुतिर्निन्दा, परकृतिः, पुराकल्प इत्यर्थवादः । २ । १ । ६४ ॥ इस पर भाष्यकार वात्स्यायन लिखता है—ऐतिह्यसमाचारितो विधिः पुराकल्प इति ।

अर्थात्—ऐतिह्य सदृश विधि पुराकल्प है।

वात्स्यायन के अनुसार पुराकल्प एक विधि है।

पुरातन घटना—व्याकरण महाभाष्य में पतञ्जलि मुनि लिखते हैं—

पुराकल्प एतदासीत्—संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणा व्याकरणं स्माधीयते । भाग १, पृ० ५ ।

अर्थात्—पुरानी प्रथा या घटना थी, संस्कार के पश्चात् ब्राह्मण व्याकरण पढ़ा करते थे।

पुनः लिखते हैं—पुराकल्प एतदासीत् षोडशमाषः कार्षापणम् षोडशपणोऽथ मापरांवाद्यः । १।१।६४॥

गोभिलगृह्यसूत्र पर भट्टनारायण के भाष्य में किसी पुराने आचार्य का एक लक्षण उद्धृत किया गया है—

---

1. देखो, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, तैत्तिरीय शाखा वर्णन ।
2. "वयम्" पद की तुलना शतपथ ब्राह्मण की वंशावलियों के अन्तिम "वयम्" पद से करनी चाहिये । इन वंशावलियों में "वयम्" पद सम्पादक आदि का बोधक है ।

तथा च वाक्यार्थविद्भिरुक्तम्[1]—

विधिर्योऽनुष्ठितं पूर्वं क्रियते नेह साम्प्रतम् । पुराकल्पः स यद्वच्च विधवाया नियोजनम् ॥
गोवधो मधुपर्कादौ महोक्षोऽतिथिपूजने । सम्प्रत्यकरणात् तस्य पुराकल्पत्वमागतम् ॥ इति ।

अर्थात्—जो विधि पहले होती थी, और अब नहीं होती, वह पुराकल्प कहाती है ।

ऐसी ही एक पुरातन विधि यम के बहु-उद्धृत श्लोक में वर्णित है—

पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते ।

पुरातन इतिहास ग्रन्थ—महाप्राज्ञ भगवान् वासुदेव कहते हैं—

श्रूयते हि पुराकल्पे गुरूननुमान्य यः ।[2] युद्धयते स भवेद् व्यक्तमपध्यातो महत्तरैः ॥ भीष्मपर्व ४१।१८॥

अर्थात्—पुराने इतिहास ग्रन्थों में सुना जाता है ।

एक और वचन ध्यान देने योग्य है । आपस्तम्ब श्रौतवृत्ति में रुद्रदत्त लिखता है—

पुराकल्पश्रवणाच्च—प्रथमस्य पर्वणः समाख्या वैश्वदेवमिति । ८ । १२ ॥

अर्थात्—प्रथम पर्व की संज्ञा वैश्वदेव है । ऐसा पुराकल्प सुना जाता है ।

पुराकल्प और परकृति का भेद तन्त्रवार्त्तिक अध्याय २, पाद १, सूत्र ३३ में भट्ट कुमारिल ने दर्शाया है यथा—एकपुरुषकर्तृकम् उपाख्यानं परकृतिः । बहुकर्तृकं पुराकल्पः । अर्थात् एक पुरुष के कर्मयुक्त उपाख्यान को परकृति और बहुपुरुषों के कर्मयुक्त उपाख्यान को पुराकल्प कहते हैं । इन के अतिरिक्त राजशेखर द्वारा उद्धृत पुराकल्प का लक्षण पहले दिया जा चुका है । तदनुसार पुराकल्प वह इतिहास है, जिसमें अनेक प्रधान पुरुषों का उल्लेख रहता है । यह लक्षण पुरातन इतिहास ग्रन्थ अर्थ के अन्तर्गत है और कुमारिल-निर्दिष्ट लक्षण की छाया है ।

इन तीनों अर्थों से किञ्चित् विभिन्न एक और लक्षण वायुपुराण में मिलता है—

यो ह्यत्यन्ततरोक्तश्च पुराकल्पः स उच्यते । पुरा विक्रान्त वाचित्वात् पुराकल्पस्य कल्पना ॥ ५६।१३७॥

अर्थात्—जो बारंबार कहा गया है, वह पुराकल्प कहाता है ।

सामसंहिता के भाष्य में परकृति और पुराकल्प का वर्णन करके माधवाचार्य लिखता है—पुरा ब्राह्मणा अभैषुः, इति पुराकल्पः ।

अर्थात्—पहले ब्राह्मण डरते थे, यह पुराकल्प है ।

निस्सन्देह पुराकल्प का कोई शास्त्र था । उसमें इतिहासविषयक घटनाएं वर्णित रहती थीं । यह शास्त्र गाथा मिश्रित था और उसके विशेषज्ञ भी कभी थे । इसीलिए महाभारत में कहा है—

अत्र गाथाः कीर्तयन्ति पुराकल्पविदो जनाः । अंबरीषेण या गीता राज्ञा राज्यं प्रशासता ॥ आश्वमेधिक पर्व, १२।४॥

---

१. तुलना करो यही भाष्य ३ । १० । ६ ॥ यहां वाक्यार्थविद् कर्मप्रदीप का कर्ता कात्यायन है ।

२. तुलना करो वाक्यपदीय स्वोपज्ञटीका—श्रूयते हि पुराकल्पे……१ । १५५ ॥

४. परक्रिया=परकृति

परक्रिया शब्द राजशेखर के पूर्वोक्त प्रमाण में स्पष्ट कर दिया गया है। परकृति शब्द इसी का रूपान्तर है। परकृति के विषय में वायुपुराण में लिखा है—अन्यस्यान्यस्य चोक्तत्वाद् बुधाः परकृतिः स्मृता। ५९। १३६॥

परकृति-परक ग्रन्थों के विषय में अभी हम कुछ नहीं कह सकते।

५. इतिवृत्त तथा पुरावृत्त

इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट है। भरतमुनि इतिवृत्त को नाट्य का शरीर कहते हैं—इतिवृत्तं हि नाट्यस्य शरीरं। १९। १॥ इस इतिवृत्त शब्द पर टीका करता हुआ सागरनन्दी अपने नाटकलक्षणरत्नकोश में लिखता है—इतिवृत्तम् आख्यानम्। प्रतीत होता है, आख्यान से कुछ छोटा लेख इतिवृत्त होता था।

कथाभिः पूर्ववृत्ताभिर्लोकवेदानुगामिभिः। इतिवृत्तैश्च बहुभिः पुराणप्रभवैर्गुणैः॥ हरिवंश, १। ५३। १६॥

इस श्लोक में इतिवृत्त नामक इतिहासांश का सुन्दर उल्लेख है।

पुरावृत्त ग्रन्थों के अस्तित्व की भी संभावना है, पर निश्चय से अभी नहीं कह सकते। इतिहास और पुरावृत्त की पर्यायवाचकता अमर के प्रमाण से पहले लिखी गई है।

भामह के अनुसार देवादि चरित को कहने वाला लेख वृत्त होता है—

वृत्तं देवादिचरितशंसि चोत्पाद्यवस्तु च। कलाशास्त्राश्रयञ्चेति चतुर्धा भिद्यते पुनः॥ १। १७॥

पुराविद्—पुरावृत्त के ज्ञाता पुराविद् कहाते थे। उनके विषय में वायुपुराण में लिखा है—

अत्रानुवंश-श्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुराविदैः। ६६। २७८॥

अर्थात्—यह अनुवंश श्लोक पुराविद् विद्वानों ने गाया है।

यमस्मृति में पुराविदों की कीर्ति और पितृलोक अर्थात् फारस के विद्वानों की गाई गाथाएं उद्धृत हैं—

गाथाश्च पितृभिर्गीताः कीर्तयन्ति पुराविदः। अपि नः स कुले भूयाद् यो नो दद्यात् त्रयोदशीम्॥

६. अवदान

पुरातन अर्थ—ब्राह्मण ग्रन्थों और कल्पसूत्रों में अवदान शब्द अग्नि में होम योग्य पदार्थों का वाचक है। यथा—तस्मायत् किञ्चाग्नौ जुह्वति तदवदानं नाम। शतपथ १। ७। २। ६॥ बौधायन श्रौत में—अपानोऽवदानकल्पः। २४। ६ आदि प्रयोग बहुधा मिलते हैं। इस अर्थ के अतिरिक्त यज्ञ के निमित्त पदार्थों के काटने को भी अवदान कहते हैं। प्रतीत होता है, अवदान का इतिहास अर्थ उत्तरकाल में हुआ।

कोशों में—शाश्वत कोश में—अवदानम् इतिवृत्तं, ३१६, अवदान का इतिहासार्थ प्रसिद्ध है। अजयकोश में लिखा है—अवदानमितिवृत्ते खण्डने खण्डनेऽपि च। अकारवर्ग श्लोक ३१ अर्थात्—अवदान शब्द इतिवृत्त, काटना और ? अर्थ में प्रयुक्त होता है। बौद्ध ग्रन्थ महाव्युत्पत्ति कोश में संख्या ६२ अन्तर्गत बारह विद्याओं में अवदान एक विद्या है।

अनेक बौद्ध ग्रन्थकारों ने यह शब्द इतिहासार्थ में वर्ता है। जातकमाला को बोधिसत्त्वावदानमाला कहते हैं। इस शब्द का पाली अपभ्रंश अपदान है। अर्थ है इसका महत्कर्म की कथा। बौद्ध वाङ्मय में अशोकावदान, दिव्यावदान, अवदानकल्पलता और अवदानशतक आदि ग्रन्थ सम्प्रति मिलते हैं।

७. आख्यान

आख्यान शब्द अति पुरातन है। ऐतरेय ब्राह्मण (भारत युद्ध से ३०० वर्ष पूर्व) ७।१८ में शौनःशेप आख्यान शब्द का प्रयोग मिलता है। यह आख्यान किसी राजसूय आदि यज्ञ पर सुनाया गया था। शाङ्खायनश्रौत १५। २७ में भी—तदेतत् छौनःशेपम् आख्यानं लिखा है। आपस्तम्बश्रौत १८। १९ में इसे ही—शौनःशेपम् आख्यायते, लिखा है।

अर्थ—स्वल्पाकार, किसी प्रधान व्यक्ति की एक जीवन घटना पर लिखी गई, थोड़े काल में कही जाने वाली इतिहास विषयक कथा आख्यान है। इसलिए महाभारत में आख्यान को इतिहास से पृथक् गिना है—आख्यानानीतिहासांश्च.........। कभी कभी आख्यान के लिए अन्य शब्द भी गौणरूप से प्रयुक्त हो जाते थे। यथा—महाभारत, आरण्यक पर्व १५८। ५३, ५४ में एक ही वर्णन को पुराण, आख्यान और मनु का चरित कहा है।

सागरनन्दी के नाटकलक्षणरत्नकोश में, अथवा उसमें उद्धृत भरत मुनिकृत नाट्यशास्त्र के किसी पुरातन, पर सम्प्रति अनुपलब्ध पाठ में, आख्यान और इतिवृत्त में कोई भेद नहीं किया—

आख्यानमितिवृत्तं स्यादितिहासः स एव च। पृ० ४१॥

जैन आचार्य हेमचन्द्र अपने काव्यानुशासन के स्वरचित विवेक में लिखता है—

आख्यानकसंज्ञां तल्लभते यदाभिनयन् पठन् गायन्। ग्रन्थिक एकः कथयति गोविन्दवद् अवहिते सदसि॥

अर्थात्—जितनी बात को एक कहे, वह आख्यान होता है।

पुरातन आख्यान—महाभारतस्थ उद्योगपर्वान्तर्गत इन्द्रविजय आख्यान प्रसिद्ध है। महाभारत, आरण्यकपर्व अध्याय २९८ के अन्त में यक्ष-युधिष्ठिर संवाद को आख्यान कहा है। यास्कीय निरुक्त और उसकी उत्तरवर्ती बृहद्देवता में अनेक आख्यान मिलते हैं। व्याकरण महाभाष्य ४। २। ६० में आख्यान के दृष्टान्त में तीन उदाहरण दिए गए हैं—यावक्रीतक, प्रैयङ्गविक, यायातिक। अष्टाध्यायी की काशिकावृत्ति में लिखा है—याज्ञवल्क्यादयो ऽचिरकाला इत्याख्यानेषु वार्ता। ४। ३। १०५॥ शाकटायन व्याकरण २। ४। १७४ में अयिमारक आख्यान का उदाहरण मिलता है। इन सब लेखों से पता लगता है कि पुराने दिनों में अनेक आख्यान ग्रन्थ उपलब्ध थे।

पुराणगत आख्यान—व्यासजी की मूल पुराण-संहिता में आख्यान सम्मिलित थे। वायु-पुराण अध्याय ६० में लिखा है—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कुलकर्मभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः॥ २१॥

अर्थात्—पुराण विद्या में कुशल श्री व्यासजी ने आख्यान, उपाख्यान गाथाओं और वंशों से युक्त एक पुराण संहिता बनाई।

वस्तुतः व्यासरचित महाभारत और पुराण संहिता में अनेक आख्यान सम्मिलित किए गए थे।

आख्यानविद्—तदेतत् सौपर्णम् इति आख्यानविद आचक्षते। ऐतरेय ब्राह्मण ३।२५ के इस वचन में आख्यानविदों का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण ३।६।२।७ में आख्यान के स्थान में व्याख्यान पाठ है। इससे ज्ञात होता है कि महिदास ऐतरेय (लगभग ३०० वर्ष कलिपूर्व)के काल से पहले आख्यान रचनाओं के ज्ञाताओं की एक श्रेणि बन चुकी थी। ब्राह्मणों में उद्धृत आख्यान लोकभाषा में हैं, अतः आख्यानों की भाषा के विषय में कोई सन्देह नहीं होना चाहिए।

आख्यायते क्रियापद—जैमिनीय ब्राह्मण में निम्नलिखित वचन देखने में आते हैं—

> यद् युधाजीवो वैश्वामित्रोऽपश्यत् तस्माद्वैव यौधाजयम् इत्याख्यायते। १। १२२।
>
> यद् उशना काव्योऽपश्यत् तस्माद् औशनम् इत्याख्यायते। १। १२७॥

इसी प्रकार के अन्य वचन भी ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलते हैं। इनसे ज्ञात होता है कि मन्त्रों के ऋषि-ज्ञान परक अनेक आख्यान ब्राह्मणों के पहले विद्यमान थे। संभव है कुछ आख्यान मन्त्रों की आलंकारिक घटनाओं पर भी बने हों और उनका इतिहास से सम्बन्ध न हो।

८. आख्यायिका

नाम-प्राचीनता—तैत्तिरीय आरण्यक १।६।३ में आख्यायिका शब्द मिलता है। आचार्य कौटल्य आख्यायिका को इतिहास का एक अङ्ग मानता है।

पुराने आचार्यों के लक्षण—(क) अमरकोश की सर्वानन्दकृत टीका १।६।६ में कोहलाचार्य का किया निम्नलिखित लक्षण उद्धृत है—

> प्रबन्धकल्पनायां प्राक् यस्यां प्राज्ञाः कथां विदुः। परम्पराश्रयो यस्यां सा मताख्यायिका क्वचित्॥

(ख) भामह अपने काव्यालङ्कार के प्रथम परिच्छेद में लिखता है—

> प्रकृतानाकुलश्रव्यशब्दार्थपदवृत्तिना। गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासा आख्यायिका मता॥ २५॥
>
> वृत्तमाख्यायते यस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्। वक्त्रं चापरवक्त्रं च काले भाव्यर्थशंसि च॥ २६॥

(ग) अमरकोश १।६।५ पर सर्वानन्दकृत टीका सर्वस्व में किसी आचार्य का निम्नलिखित पाठ उद्धृत है—

> कन्याहरणसंग्राम-समागमाभ्युदयभूषितं यस्याम्। नायकचरितं ब्रूते नायक एवास्य चानुचरः॥
>
> वक्त्रापरवक्त्रयुता सोच्छ्वासा संस्कृतेन गद्येन। आख्यायिकेति कथिता सा यथा हर्षचरितादिः॥

इस लक्षण के उदाहरण में हर्षचरित स्मरण किया गया है। बाणकृत हर्षचरित भामह के पश्चात् रचा गया, अतः यह लक्षण भामह के आधार पर लिखा गया है।

(घ) जैन आचार्य हेमचन्द्र अपने काव्यानुशासन में लिखता है—

नायका ख्यातस्ववृत्ता भाव्यर्थशंसिवक्त्रादिः सोच्छ्वासा संस्कृता गद्ययुक्ताख्यायिका । ८ । ७ ॥[1] आचार्य हेमचन्द्र अपनी टीका में टीकासर्वस्व में उद्धृत वचनों का गद्यमात्र करता है।

(ङ) साहित्यदर्पण का नवीन लक्षण भी देख लीजिए—

आख्यायिका कथावत् स्यात् कवेर्वंशादिकीर्तनम् । अस्यामन्यकवीनाञ्च वृत्तं गद्यं क्वचित् क्वचित् ॥

दाक्षिणात्य ग्रन्थकार आख्यायिका में कैसी शैली रखते हैं, इसका वर्णन भरत नाट्यशास्त्र १६ । ११ में मिलता है—

ओजःसमासभूयस्त्वं तद्धि गद्यस्य जीवितम् । यद्यप्याख्यायिकास्वेव दाक्षिणात्याः प्रयुञ्जते ॥

अर्थात्—दाक्षिणात्य ग्रन्थकार आख्यायिकाओं में ओजस युक्त और समास-बहुला भाषा का प्रयोग करते हैं।

कात्यायन मुनि के व्याकरण वार्तिक ४ । २ । ६० में आख्यान और आख्यायिका का भेद माना है। चरकसंहिता शरीरस्थान ४ । ४४, तथा सूत्रस्थान १५ । ७ में लिखा है— श्लोकाख्यायिकेतिहासपुराणेषु कुशलम् । कौटल्य के अर्थशास्त्र में आख्यायिका इतिहास का अङ्ग है, यह इतिहास शब्द के अन्तर्गत लिखा जा चुका है।

चरक का लेख कात्यायन से पूर्वकाल का है। इतिहास के न जानने वाले अनेक लेखक चरकसंहिता को महाराज कनिष्क के काल का मानते हैं। अस्तु, इसी भूल में पड़ कर अध्यापक एस० एन० दास गुप्त ने लिखा है कि आख्यायिका शब्द का सब से पुरातन प्रयोग कात्यायन के वार्तिक में है।[2]

महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि महाभाष्य ४ । २ । ६० तथा ४ । ३ । ८७ में तीन आख्यायिकाओं के नाम स्मरण करते हैं—वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, भैमरथी।

बाण भट्ट कादम्बरी कथा ग्रन्थ में लिखता है—कदाचित् आख्यान-आख्यायिका-इतिहास-पुराण-आकर्णनेन············ ।[3]

६ उपाख्यान

काव्यानुशासन पर अपने विवेक में जैन आचार्य हेमचन्द्र लिखता है—

यदाह—नल-सावित्री-षोडशराजोपाख्यानवत् प्रबन्धान्तः । अन्यप्रबोधनार्थं यदुपाख्यातं तदुपाख्यानम् ॥

अर्थात्—नलोपाख्यान, सावित्री उपाख्यान और षोडशराजोपाख्यान आदि महाभारत ग्रन्थ में प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्मयज्ञ का उपाख्यान, जिस में इक्ष्वाकु कुल के बृहद्रथ का वर्णन है, मैत्रेयी आरण्यक के आरम्भ में पढ़ा गया है।

---

१. पृ० ४६१ ।

2. And commenting on Kātyāyana's oldest mention of Ākhyāyikā, which alluded not to narrative episodes found in the Epics, but to independent works, Patanjali gives the names of three Ākhyāyikās, Vāsavadattā, Sumanottarā, Bhaimarathī. संस्कृत वाङ्मय का इतिहास, पृ० ११ ।

३. निर्णयसागर संस्करण, पृ० १४ ।

आख्यान और उपाख्यान का सूक्ष्म भेद हम पूर्णतया नहीं जान सके। महाभारत में इन्द्रविजय आख्यान कह कर उसे ही आगे शक्र-विजय उपाख्यान लिखा है।[1] इसी प्रकार शकुन्तलोपाख्यान आदि भी प्रसिद्ध थे। भट्ट कुमारिल उपाख्यान को अर्थवादान्तर्गत समझता है—उपाख्यानानि तु अर्थवादेषु व्याख्यातानि। तन्त्रवार्तिक अ० १, पा० ३, सूत्र १।

१०. अन्वाख्यान

शतपथ ब्राह्मण (विक्रम से ३००० वर्ष पूर्व) से पहले अन्वाख्यान प्रसिद्ध थे। शतपथ ६।५।२।२२ में लिखा है—यदु भिक्षायै प्रायश्चित्तिरुत्तरस्मिंस्तद् अन्वाख्याने। तथा शतपथ ११।१।६।६—अन्वाख्याने त्वत् उच्यत इतिहासे त्वत् उच्यते।

दूसरे वचन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि याज्ञवल्क्य के काल में अन्वाख्यान और इतिहास का भेद सुविदित था।

वाधूल श्रौतसूत्र से सम्बन्ध रखने वाला एक अन्वाख्यान ब्राह्मण था। उस के ४६ लम्बे उद्धरण सन् १९२६ में डाक्टर कालेण्ड ने एक्टा ओरिअण्टेलिया के चतुर्थ भाग में प्रकाशित किए थे।[2]

११. चरित

चरित इतिहास का महान् अङ्ग है। महाभारत में मार्कण्डेय को चरितज्ञ कहा है।[3] वह तीर्थयात्रा करने वाला था। तीर्थ क्यों प्रसिद्ध हुए, किन किन मुनियों के कारण वे स्थान चिरस्मरणीय हो गये, यह उसने इन यात्राओं में जान लिया था। चरित ग्रन्थ अति पुरातन काल से लिखे जाते थे। कौटल्य अर्थशास्त्र अध्याय ५ के अनुसार इतिवृत्त और चरित समानार्थक थे। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार चरित का दूसरा नाम सकल कथा है, यथा समरादित्य चरित। यह चरित आचार्य हरिभद्र सूरि की रचना है।

अध्यापक एस. एन. दास गुप्त का कथन है कि बाण का हर्षचरित इतिहास विषय पर गद्य में लिखा जाने वाला प्रथम प्रयास है।[4] जब संस्कृत वाङ्मय के अनेक लुप्त पुरातन ग्रन्थ उपलब्ध हो जाएंगे, तब ऐसे लेख असत्य ठहरेंगे। महामंत्री चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य का एक चन्द्रचूड चरित लिखवाया था। यह हर्षचरित से बहुत पूर्व का ग्रन्थ था। यह गद्य में था या नहीं, यह अभी नहीं कह सकते। इस चन्द्रचूडचरित की उपलब्धि इतिहास की अनेक ग्रन्थियां खोल देगी। चन्द्रचूडचरित का वर्णन आगे होगा।

वाल्मीकीय रामायण दाक्षिणात्य पाठ के निम्नलिखित स्थल देखने योग्य हैं—

(क) यः पठेद् रामचरितं। बालकाण्ड १।९८॥

---

१. उद्योग पर्व १८।१६॥

२. देखो, हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, पृ० १४।

३. आरण्यकपर्व १८२।२॥

4. The Harsa-charita has the distinction of being the first attempt at writing a prose Kavya on an historical theme. History of Sanskrit Literature, S. N. Das Gupta and S. K. De, p. 227.

(ख) कुरु रामकथां पुण्यां । बालकाण्ड २ । ३६ ॥

(ग) रघुवंशस्य चरितं चकार भगवानृषिः । बाल० ३ । ६ ॥

(घ) काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत् । बाल० ४ । ७ ॥

(ङ) आश्चर्यमिदमाख्यानं मुनिना संप्रकीर्तितम् । बाल० ४ । २६ ॥

(च) एवमेतत् पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः । युद्ध० १११ । १२२ ॥

इन स्थलों में रामचरित, रघुवंशचरित और सीताचरित तथा रामकथा, काव्य, आख्यान और पुरावृत्ताख्यान शब्द प्रयुक्त हुए हैं। ये पाठ वाल्मीकि के अपने नहीं हैं, तथापि भिन्न भिन्न दृष्टियों से एक ही इतिहास ग्रन्थ अथवा उसके भिन्न भिन्न भागों के लिए वर्ते गए हैं।

१२. अनुचरित

अनुचरितों का वर्णन पुराणों में पाया जाता है। यथा—वंश्यानुचरितं चैव। इतिहास के इस अंग का हम ज्ञानविशेष अभी नहीं कर सके।

१३. कथा

प्राचीनता—पूर्व इसी पृष्ठ पर जो प्रमाण वाल्मीकीय रामायण से उद्धृत किये हैं, उनमें कथा शब्द व्यवहृत हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि दाशरथि राम के काल में कथा ग्रन्थ विद्यमान थे। तत्पश्चात् पाणिनीय सूत्र—कथादिभ्यष्ठक् ४ । ४ । १०२ में कथाविषयक ग्रन्थों का संकेत है। तदनुसार कथा में साधु को कथिक कहते हैं।

विख्यात आचार्यों के लक्षण—(क) अर्थ-ख्याति अथवा काव्यार्थ के नाम से कथा का द्रौहिणिकृत लक्षण राजशेखर ने काव्यमीमांसा में लिखा है—

स त्रिधा इति द्रौहिणिः दिव्यो, दिव्यमानुषो, मानुषश्च। नवम अध्याय।

अर्थात्—दिव्य, दिव्यमानुष और मानुष भेद से कथा तीन प्रकार की होती है।

(ख) कोहलाचार्य कृत कथा-लक्षण आख्यायिका के व्याख्यान में पहले लिखा जा चुका है। अमरकोशस्थ वचन—प्रबन्धकल्पना कथा १ । ६ । ६, उसकी प्रतिध्वनि मात्र है। इस लक्षण के अनुसार कथा में कल्पना का भाग रहता है।

(ग) भामह ने गुणाढ्य-कृत बृहत्कथा को लक्ष्य में रख कर कथा का निम्नलिखित लक्षण कहा है—

शब्दश्छन्दोऽभिधानार्था इतिहासाश्रयाः कथाः। ६ ॥

कवेरभिप्रायकृतैः कथनैः कैश्चिदङ्किता। कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयान्विता ॥ २७ ॥

न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छ्वासवत्यपि। संस्कृतं संस्कृता चेष्टा कथापभ्रंशभाक्तथा ॥ २८ ॥

इस लक्षण से ज्ञात होता है कि आख्यायिका के विपरीत, जिसमें वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्द तथा उच्छ्वास रहते हैं, कथा में न ये छन्द और न उच्छ्वास रहते हैं।

(घ) जैन आचार्य हरिभद्र सूरि समराइच्च कहा नामक प्राकृत ग्रन्थ में लिखता है—

तत्थ य तिविहं कहावत्थुंति पुव्वायरियपवाओ। तं जहा दिव्वं दिव्वमाणुसं माणुसं च।

यह लक्षण द्रौहिणि के लक्षण का अनुवादमात्र है।

(ङ) अमरकोश का टीकाकार सर्वानन्द किसी पुरातन आचार्य का कथा का निम्नलिखित लक्षण उद्धृत करता है—

यमाश्रित्य कथान्तरमातप्रसिद्धं निबध्यते कविभिः। चरितं विचित्रमन्यंत् सा च कथा चित्रलेखादिः॥

कथा और कल्पना—अमरसिंह कथा में कल्पना का भाग मानता है। महामुनि वाल्मीकि रामायण को रामकथा[1] नाम से भी स्मरण करते हैं। उसमें कल्पनांश नहीं था। रामकथा इतिहास है। इस भेद को ध्यान में रखकर भामह ने कल्पनांश मिश्रित कथाओं के अतिरिक्त इतिहासाश्रय वाली कथाएं भी कही हैं।[2]

१४. परिकथा

लक्षण—जैन आचार्य हेमचन्द्रकृत काव्यानुशासन में लिखता है—

एकं धर्मादिपुरुषार्थमुद्दिश्य प्रकारवैचित्र्येण अनन्तवृत्तान्तवर्णनप्रधाना शूद्रकादिवत् परिकथा।[3]

इस पर अपने स्वोपज्ञ विवेक में यही आचार्य हेम लिखता है—

पर्यायेण बहूनां यत्र प्रतियोगिनां कथाः कुशलैः। श्रूयन्ते शूद्रकवज् जिगीषुभिः परिकथा सा तु॥

आचार्य हेम से सर्वानन्द पूर्वकालीन है। सर्वानन्द अपने किसी पूर्ववर्ती लेखक का परिकथा का लक्षण उद्धृत करता है। उसका मुद्रित-पाठ निम्नलिखित है—

पर्यायेण बहूनां यत्र प्रतियोगिनां कथाकुशलैः। क्रियत शूद्रकवधवन् मनीषिभिः परिकथा सा तु॥१।६।६॥

इस मुद्रित श्लोक में शूद्रकवधवन् पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है सर्वानन्द के मुद्रित संस्करण में तीन कोशों का पाठ शूद्रकवज् जिगीषुभिः दिया है। इन तीनों कोशों के पाठ और हेम के पाठ की तुलना से प्रतीत होता है कि हेम ने ठीक पाठ सुरक्षित रखा है।

१५. अनुवंश श्लोक

प्राचीनता—प्राचीन पुराणों की राजवंशावलियों में वंश परंपरा बोधक श्लोक सामान्यतया पाए जाते हैं। उनके अन्तर्गत प्रतापी राजाओं के विषय में श्लोक विशेष भी कहीं कहीं लिखे गये हैं। और वंश-कथन के अन्त में उपसंहाररूप एक एक दो दो श्लोक मिलते हैं। ये अनुवंश श्लोक कहे जाते हैं। जैसे अनुब्राह्मण, अनुकल्प और अन्वाख्यान आदि ग्रन्थ थे, संभव है, ऐसे अनुवंशश्लोकों के संग्रह भी रहे हों।

अनुवंश-श्लोक-रूप—अनुवंशश्लोकों का रूप वायुपुराण में प्रदर्शित है—

अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुराविदैः। महाभाग्य यो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृतः।
क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ॥ ९९। २७८, ७९॥
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं भविष्यैरुदाहृतः। इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति।
सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्रप्स्यति वै कलौ॥ ९९। २९२, ९१॥

---

१. पूर्व, पृष्ठ ११। २. पूर्व (ग) में श्लोक ६। ३. मुम्बई संस्करण, पृ० ४६४।

यहां ब्रह्मचरस्य और इक्ष्वाकूणाम् श्लोक पुराविदों और भविष्यज्ञों के हैं। वायुपुराण ने ये श्लोक पुराने ग्रन्थों से लिए हैं।

१६. गाथा

प्राचीनता—याज्ञवल्क्य-प्रोक्त शतपथ ब्राह्मण में गाथाएं पाई जाती हैं। उस से पुराने ऐतरेय ब्राह्मण में भी गाथाएं मिलती हैं। शतपथ में उद्धृत कई गाथाएं ऐतरेय में भी उद्धृत हैं। ये गाथाएं भारत युद्ध से ४०० वर्ष पूर्व की अथवा उससे भी पुरातन होंगी। उन के पाठों में कहीं कहीं स्वल्प सा अन्तर है। यह अन्तर उन की अधिक प्राचीनता का द्योतक है। महाभारत में इन्द्रगीत और अंबरीष[1] आदि गीत गाथाएं हैं। अनेक गाथाएं पितृगीत हैं।[3] ये उस काल की हैं, जब पारसिक अथवा पितर देश का राजा वैवस्वत यम था। ऐसी गाथाएं ज़न्द अवेस्ता आदि के वाङ्मय में भी उपलब्ध होती हैं।

नाम-पर्याय—श्लोक, गाथा और यज्ञगाथा एक ही थे।[4] ऐतरेय ब्राह्मण ८। २३ जिसे श्लोक कहता है, शतपथ १३। ५। ४। १४ उसे गाथा कहता है। जैमिनीय ब्राह्मण १। २५८ जिसे श्लोक कहता है, ऐतरेय ३। ४३ उसे यज्ञगाथा कहता है।

गाथा वाङ्मय—जो गाथाएं ब्राह्मण ग्रन्थों में उद्धृत हैं, उन के अन्त में सर्वत्र इति पद का प्रयोग बताता है कि ये गाथाएं याथातथ्यरूप से उद्धृत होती रही हैं। वस्तुतः ये गाथा ग्रन्थों में विद्यमान थीं। महाभारत और पुराण आदि में भी उन्हीं गाथा ग्रन्थों से उद्धृत की गई हैं। पारसिक वाङ्मय का गाथा ग्रन्थ प्रसिद्ध है। बौद्ध वाङ्मय में अनेक गाथाएं मिलती हैं। प्राकृत भाषा का सातवाहन-राज हालसंकलित गाथा सप्तशती कोश सुप्रसिद्ध है।

ब्राह्मणान्तर्गत गाथाएं लोकभाषा में—ब्राह्मणगत गाथाएं लोक भाषा में हैं यह लोक भाषा महाभारत और श्रौतसूत्र आदि में पाई जाती है। अतः भारत युद्ध से, अथवा वर्तमान ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रवचनकाल से सैकड़ों वर्ष पूर्व लोकभाषा की रचनाएं विद्यमान थीं। यह तथ्य कल्पित और विकृत पाश्चात्य भाषाशास्त्र के बहुशः अशुद्ध होने का देदीप्यमान प्रमाण है।

इतिहास-विषयक गाथाएं प्राचीन ग्रन्थों में उद्धृत कुछ एक गाथाएं इतिहास की सहायिका हैं, सब नहीं। तथापि गाथाओं का गम्भीर अन्वेषण बहुत उपादेय है।

१७. नाराशंसी

प्राचीनता—माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्यशिष्य का प्रवचन है—

मध्वाहुतयो ह वाऽएता देवानाम्। यदनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा नाराशंस्यः, स य एवं विद्वान् ——— गाथा नाराशंसीः इत्यहरहः स्वाध्यायमधीते। ११। ५। ६। ८॥

---

१. आरण्यकपर्व ८८। ५॥ २. आश्वमेधिक पर्व १३। ४॥

३. पितृगीतास्तथैवात्र गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः। या गीताः पितृभिः पूर्वम् ऐलस्यासन् महीपतेः॥
कदा नः सन्ततावग्र्यः कस्यचित् भविता सुतः। यो योगिभुक्तशेषान्नात् भुवि पिण्डान् प्रदास्यति॥
हेमाद्रिकृत, चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, श्राद्धकल्प, अध्याय ६ में मार्कण्डेय पुराण से उद्धृत।

४. देखो, वैदिकवाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, पृ० १७।

इस वचन में योग और व्याकरणादिक अनुशासनों, विद्या, वाकोवाक्य, इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसियों के स्वाध्याय की मधु आहुतियों से तुलना की गई है। इस से ज्ञात होता है कि आज से लगभग पांच सहस्र वर्ष पूर्व इतिहास, पुराण और गाथा ग्रन्थों के समान नाराशंसी के ग्रन्थ भी विद्यमान थे।

अर्थ—(क) निरुक्त ८। ६ में लिखा है—नराशंसो यज्ञ इति कात्थक्यः। नरा अस्मिन्नासीनाः शंसन्ति। अर्थात् यास्क से पूर्ववर्ती कात्थक्य के अनुसार नराशंस यज्ञ है, नर इस में आसीन स्तुति करते हैं। यही अर्थ शौनक के बृहद्देवता ३। ३ में है—नरैः प्रशस्य आसीनैः।

(ख) यास्क से शाकपूणि आचार्य भी प्राचीन था। वह शाखा का प्रवचनकर्ता था। उसके निरुक्तस्थ मत को यास्क अपने निरुक्त में देता है—नरैः प्रशस्यो भवति, ८। ६। अर्थात्—अग्नि नराशंस है, नरों से स्तुतियोग्य है।

(ग) निरुक्त ६। ६ में मन्त्र को नाराशंस कहा है—येन नरा प्रशस्यन्ते स नाराशंसो मन्त्रः। अर्थात्—जिस मन्त्र के द्वारा नरों की स्तुति हो वह नाराशंस मन्त्र होता है।

इस निरुक्तवचन से पता लगता है कि नाराशंस द्वारा नरों की स्तुति होती है। अतः मन्त्रों के समान ऐसे श्लोक आदि भी थे, जो नाराशंस कहाते थे। उन श्लोकों के द्वारा यज्ञों में राजाओं की स्तुति गाई गई थी।

मैकडानल्ड और कीथ का भ्रम—वैदिक इण्डेक्स नामक अंग्रेजी ग्रन्थ के दोनों लेखक पक्षपातान्ध होकर लिखते हैं—

Vedic texts[1] themselves recognize that the literature thence resulting[2] was often false to please the donors.[3]

अर्थात्—वैदिक ग्रन्थ स्वयं मानते हैं कि नाराशंसी वाङ्मय दाताओं के प्रसन्न करने के लिए प्रायः असत्य था।

स्मरण रहे कि जिन वैदिक ग्रन्थों से यह अभिप्राय निकाला गया है, उन के अनुसार मनुष्यों की सब रचनाएं अनृतप्राय हैं। उन ऋषियों का अभिप्राय तो वेद-मन्त्रों की दैवी रचना बताने का था। उस की तुलना में उन्होंने मनुष्य-रचना को अनृत कहा।

नाराशंस वाङ्मय—पाणिनि के उत्तरवर्ती भगवान् बोधायन अपने श्रौतसूत्र के अन्त में लिखते हैं—

नाराशंसान् व्याख्यास्यामः। आत्रेय-वाध्र्यश्व-वाधूल-वसिष्ठ-कण्व-शुनक-सांकृति-यस्क-राजन्य-वैश्या इत्येते नाराशंसा प्रकीर्तिताः।

इस नाराशंस वाङ्मय द्वारा आत्रेय आदि ऋषि, मुनियों की कीर्ति गाई गई थी। कभी यह वाङ्मय बड़ा विस्तृत था।

---

१. काठक संहिता १४। ५— ॥ तै० ब्रा० १। ३। २। ६, ७ ॥
२. अर्थात् नाराशंसी।
३. वैदिक इण्डेक्स, भाग १, पृ० ८२, ८३।

१८. राजशासन

प्राचीनता—याज्ञवल्क्यादि कृत स्मृतियों में इन शासनों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। दाशरथि राम के काल में भी ताम्रशासन आदि प्रकाशित किए जाते थे।

इनका विस्तृत उल्लेख आगे होगा।

१९. पुराण

प्राचीनता—भारतीय वाङ्मय से पता लगता है कि इतिहास-शास्त्र के समान पुराण-शास्त्र भी प्राचीनतम काल से चला आया है। अथर्ववेद में विद्यावाची पुराण शब्द पठित है। महाभारत में पुराणविदों का स्मरण किया गया है। पुरानी बाइबिल में उत्पत्ति (जैनेसिस) का जो अध्याय है, वह पुराण के अनुकरण पर ही लिखा गया है।

अर्थ—वायुपुराण में पुराण शब्द का निम्नलिखित निर्वचन किया गया है—

यस्मात्पुरा ह्यनन्तीदं पुराणं तेन चोच्यते। निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १।२०३॥ तथा १०३।५५॥

यह निर्वचन यास्कीय निर्वचन से भिन्न है। प्रतीत होता है यह बहुत पुराना निर्वचन है।

पुराण का पञ्चावयवी लक्षण सुप्रसिद्ध है। अर्थात्—सृष्टि-प्रलय, वंश, मन्वन्तर और वंश्यानुचरितों को कहने वाला पुराण है।

महत्त्व—इतिहास आत्मा है और पुराण उसका शरीर है। इस पुराण शरीर के बिना इतिहास का क्रम स्मरण नहीं रह सकता। पुराण इतिहास की सूची है। यदि हमारे पास वायु आदि पुराण न होते, तो हम इस इतिहास को लिख न सकते। इतिहास को सुरक्षित रखने वाली ऐसी बहुमूल्य देन संसार-मात्र के वाङ्मय में अन्यत्र नहीं है। पुराण ने सृष्टि-उत्पत्ति की सूक्ष्म विवेचना की है। इस विवेचना से टक्कर लेकर वर्तमान विकासवाद का बाहर से सुन्दर प्रतीत होने वाला निस्सार सिद्धान्त जर्जरीभूत हो रहा है। संसार पुराण का महत्त्व शनैः शनैः समझेगा। स्वतंत्र भारत में इस महती विद्या के उद्भट पण्डित उत्पन्न होने चाहियें। अन्त में हम इतना कह दें कि साम्प्रदायिक पुराणों को हम पुराण नहीं मानते। पुराणों का विशेष विवेचन चौथे अध्याय में होगा।

उपसंहार—हमारा इतिहास पढ़ने वालों को पूर्वोक्त सारे वाङ्मय का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। तब वे इसका पूर्ण आनन्द ले सकेंगे, और हमारे परिश्रम को सफल करेंगे। अब आगे भारतीय इतिहास-शास्त्र की अनवच्छिन्न परंपरा का विषय लिखा जायगा।

इति प्रथमोऽध्यायः

द्वितीय अध्याय

भारतीय इतिहास शास्त्र की अनवच्छिन्न परम्परा

और

वर्तमान काल में उसका ह्रास

संसार की प्रायः जातियां अपना इतिहास भूल गईं—यवन, अरब (ताजिक), मिश्र, पह्लव, पारसिक, बाबल, असुर, सुमेर और काल्डिया आदि देशों के लोग अपना पुरातन इतिहास आधा अथवा सारा भूल गए, अथवा स्वयं इस भूतल से लुप्त हो गये। कभी इन सब लोगों के पास अपने अपने इतिहास की पूर्ण राशि थी। उनका अति पुरातन इतिहास समान रूप का था। सत्युग आदि युग-विभाग और देवासुरों की कथाएं उन सब में विद्यमान थीं। सत्युग में सब लोग निरामिषभोजी, धर्म-परायण और नीरोग थे, तथा भूमि अकृष्टपच्या थी इत्यादि तथ्य यवन आदि लोगों को सुविदित थे।[1] सब जातियों में इस परम्परा-साम्य का कारण था। संसार सहस्रों वर्षों तक एक रहा और तत्पश्चात् उस एक मूल से विविध जातियों का विस्तार हुआ।

उन की अवशिष्ट ऐतिहासिक सामग्री – यद्यपि इन जातियों के उत्तराधिकारी अपने पुरातन इतिहास को प्रायः भूल गए, तथापि इन में से यवन, मिश्री, पारसीक, बाबली, असुर और काल्डिया वालों की थोड़ी सी इतिहास-राशि अब भी उपलब्ध है। शेष उन के इतिहास-साहित्य के नष्ट होने से लुप्त हो गई। इन की जो अल्प सी इतिहास-सामग्री अब उपलब्ध है उसका यथार्थ स्वरूप भी योरुप के अन्वेषकों को अभी तक अज्ञात रहा है।

यहूदी जाति की सामग्री—पूर्वोक्त जातियों के अतिरिक्त यहूदी लोगों ने भी कुछ पुरातन इतिहास-विषयक सामग्री सुरक्षित रखी है।[2] परन्तु यह सामग्री इन की अपनी जाति की देन

---

1. Among the Greeks and Semites, therefore, the idea of a Golden age, and the trait that in that age man was vegetarian in his diet,—the earth was more productive, man more pious and their lives less vexed with toil and sickness, ... The Religion of the Semites, by W. Robertson Smith, 3rd ed. London 1927, p. 303.

In the older (the earlier Jahvistic) account, just as in the Greek fable of the Golden age, man in his pristine state of innocence, lived at peace with all animals, eating the spontaneous fruits of the earth, ... ibid, p 601.

ग्रन्थकार का पक्षपात देखिए, वह इसे ग्रीक फेबल कहता है। वर्तमान लेखक को जो बात अच्छी नहीं लगती, वह फेबल=कल्पित कथा हो जाती है।

2. That the Jewish race is by far the oldest of all these, and that, their philosophy, which has been commited to writing, preceded the philosophy of the Greeks,...... Megasthenes,...... writes most clearly...... "All that has been said regarding nature by the ancients is asserted also by philosophers out of Greeks, on the one part in India by the Brachmanes, and on the other in Syria by the people called the Jews." Ancient India as described by Megasthenes, Frag, XLII, Calcutta, 1926, p. 103.

नहीं है। उन्होंने इसका बहुत सा अंश सुमेर के द्वारा बाबल वालों से लिया है। जलप्लावन की यहूदी कथा इस बात का सुदृढ़ प्रमाण है। इस कथा का उद्गम आर्य वाङ्मय में है। बाबल वालों ने और बातें भी अपने पूर्वज आर्यों से ली थीं। बाबल वालों की युग-गणना आर्यों से ली गई थी।[1] यवनों ने भी युग-गणना भारतीयों से ली। अति पुरातन काल में विशालकाय पुरुष इस पृथ्वी पर रहते थे, यह सत्य यहूदियों ने भी सुरक्षित रखा है।[3]

भारतीय ग्रन्थों में इतिहास सामग्री सुरक्षित रही—इन सब जातियों के विपरीत भारतीय आर्यों की ही जाति है जिसने पुरातन सामग्री को अब तक सुरक्षित रखा है। अधिकांश भारतीय ब्राह्मण विद्या के लिए विद्याभ्यास करते थे, उदर-पूर्ति के लिए नहीं। उन्हीं की कृपा से अन्य विद्याओं के साथ इतिहास-विद्या भी यहां सुरक्षित रही। भारत में सिकन्दर, शक और इस्लामी आक्रमणों ने यद्यपि अन्य ग्रन्थों के साथ साथ इतिहास-ग्रन्थों का पर्याप्त नाश किया, तथापि पुराण, अर्थशास्त्र, काव्य, नाटक, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद, ब्राह्मण-ग्रन्थ, कल्पसूत्र, उपनिषद्, और माहात्म्यादि बहुविध ग्रन्थों के बचे रहने से इन ग्रन्थों में प्रयुक्त इतिहास-सामग्री का एक विपुल भाग बचा रहा। इसके साथ रामायण और महाभारत सदृश शुद्ध इतिहास-ग्रन्थ भी बचे रहे। इन सब ग्रन्थों में पुरातन इतिहास सामग्री की भारी मात्रा मिलती है। उस सामग्री द्वारा न केवल भारतीय इतिहास का यथार्थ ज्ञान उपलब्ध होता है, प्रत्युत संसार मात्र की सब पुरातन जातियों के सम्बन्ध में प्रकाशविशेष पड़ता है।

नव इतिहास-सामग्री का प्रयोग—वर्त्तमान ऐतिहासिक संस्कृत भाषा का व्यापक पाण्डित्य न होने के कारण उस सामग्री को समझ नहीं पाए और उससे प्रायः पराङ्मुख रहे। हमारा यह बृहद् इतिहास इस निष्पक्ष सत्य कथन को सुस्पष्ट करेगा। हमने इसमें उस बिखरी सामग्री को क्रम से एकत्र कर दिया है। विद्वान् देख सकते हैं कि यह इतिहास कितना सत्य, शृङ्खलित, ज्ञानपूर्ण और पक्षपात रहित सूक्ष्म विवेचन का फल है। इस में हमारी कोई अपनी कल्पना नहीं है। अनवच्छिन्न भारतीय इतिहास का यह एक अति संक्षिप्त रूप है।

आर्य इतिहास-शास्त्र का आरम्भ ब्रह्माजी से—आर्य लोग ऐसी सत्य परम्परा को क्यों सुरक्षित न रखते। इतिहास-विद्या ही प्राचीन ऋषियों से चली थी। जब यवन देश के नौमस और स्ट्रैबो, तथा प्लायनी और हैरोडोटस जन्मे न थे, तब उशना काव्य (अवेस्ता का कवि उसा), बृहस्पति तथा अनेक आङ्गिरस कवि इस दिव्य विद्या-विषयक अपने अद्वितीय ग्रन्थ लिख चुके थे। उन्होंने इतिहास तथा पुराण का शास्त्र साक्षात् ब्रह्मा से सीखा था। भगवान् ब्रह्मा के उपदेश से पृथु वैन्य के काल से इतिहास और पुराण की विद्या चल पड़ी थी।

बृहस्पति—कौटल्य, महाभारतकृत् व्यास और रामायण कर्त्ता वाल्मीकि का पूर्ववर्ती अथवा आज से न्यूनातिन्यून दश सहस्र वर्ष पूर्व होने वाला देवगुरु, परमविद्वान्, अङ्गिरपुत्र बृहस्पति ऋषि सचिवों का वर्णन करता हुआ सेनापति के विषय में अपने अर्थशास्त्र में लिखता

1. Myths of Babylonia and Assyria, by Donald A. Mackenzie, p 310.
2. Greek Mythology, p. 18, 19.
यवन लोगों के चार युगों के नाम थे—सुवर्णयुग, रजतयुग, कांसीयुग और अधमयुग।
3. There were giants in the earth in those days, and also after that when the son of God (देव) came in unto the daughters of men (मानव) Holy Bible, Genesis, ch. 6. 4.

है—देशकालविन् नीतिनिगम-इतिहासकुशल'''सेनापतिः स्यात्, इति।[1] अर्थात् राष्ट्र का सेनापति देश-काल का ज्ञाता, नीति, निगम और इतिहास कुशल हो।

नारद—उसी काल का दीर्घजीवी देवर्षि नारद असुरों के विजेता, वीतराग भगवान् सनत्कुमार अपरनाम स्कन्द को कहता है—ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि''''''इतिहासपुराणं पञ्चमम्।[2] अर्थात्—भगवन्, मैं चारों वेद और पांचवें इतिहास, पुराण को पढ़ता हूं, इत्यादि। इस इतिहास पुराण के श्रेष्ठ ज्ञान के कारण नारद उपनाम पिशुन अपना अद्वितीय अर्थशास्त्र लिख सका। कृष्ण द्वैपायन का साक्ष्य है कि नारद इतिहास का पण्डित था—

इतिहासपुराणज्ञः पुराकल्पविशेषवित्।
न्यायविद् धर्मतत्त्वज्ञः षडङ्गविदनुत्तमः।
वक्ता प्रगल्भो मेधावी स्मृतिमान् नयवित् कविः।[3]

उशना काव्य—बृहस्पति, सनत्कुमार और नारद के समकालिक असुरों के आचार्य, काव्य उशना भार्गव ने लिखा है—पर्वणीतिहासवर्जितानां सर्वासां विद्यानाम् अनध्यायः। इति।[4] अर्थात्—पर्व के दिन इतिहास का अध्ययन विहित है, इस से अतिरिक्त अन्य सब विद्याओं का अध्ययन वर्जित है। पुनः, ब्रह्मयज्ञ का वर्णन करते हुए उशना लिखता है—अथ ब्रह्मयज्ञे दर्भेष्वासीनो दर्भान् धारयमाणः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा प्रणवव्याहृतिसावित्रीपूर्वं वेदानामेकदेशं पठेत्, वेदानामादिं वा ऋग्यजुस्साम्नामेकं वा त्रिर्वा प्रणवम् ऐतिहासिकं श्लोकं वा समाहितः।[5] अर्थात्—समाहित चित्त से वेद के एक देश का, अथवा ओम् का अथवा किसी ऐतिहासिक श्लोक का पाठ करे। उशना की दृष्टि में इतिहास के श्लोक का कितना महत्त्व है।

बृहस्पति, नारद और उशना के पूर्वोक्त लेखों से ज्ञात होता है कि त्रेतायुग के आरम्भ से, जब राजनीतिक परिस्थितियों में विशेष परिवर्तन आरम्भ हुए, तभी इतिहास की उपादेयता का उपदेश ऋषिगण दे चुके थे, और इतिहास लिखे पढ़े जाते थे।

त्रेता के अन्त तक—पूर्वोक्त ऋषियों का काल त्रेता का आरम्भ काल था। त्रेता के लगभग मध्य में, चक्रवर्ती सम्राट् मान्धाता के काल में ब्रह्मोपेत महर्षि कण्व ने इतिहासाध्ययन के महत्त्व पर बल दिया—अथर्ववेदेतिहासपुराणानि ध्यायन्,[6] अर्थात्—अथर्ववेद, इतिहास पुराण

---

१. याज्ञवल्क्य स्मृति पर लिखी गई छठी शती विक्रम के आचार्य विश्वरूप की बालक्रीडा टीका में १।३१७ पर उद्धृत।

यहां इतिहास पद से वेदमंत्रों पर लिखे गए आख्यानों का अभिप्राय नहीं है। सेनापति को युद्धविषयक इतिहासों का ज्ञान अभीष्ट है। अतः मैकडानल आदि की वैदिक इण्डैक्स में यह लेख कि पुरातन ग्रन्थों में जहां इतिहास का उल्लेख है, वहां उस पद से मन्त्रों पर लिखे गए आख्यानों का अभिप्राय लेना चाहिए, सर्वथा अशुद्ध है।

२. छान्दोग्य उपनिषद् ७।१।२॥

३. पूना संस्करण, सभापर्व २।५। १ के पश्चात्। इस पर्व के सम्पादक अमेरिका निवासी ईसाई इजर्टन ने वृथा ही इन श्लोकों को मूलपाठ से पृथक् कर दिया है।

४. गौतमधर्मसूत्र १३।३६ के मस्करी भाष्य में उद्धृत।

५. गौतमधर्मसूत्र ५।४ के मस्करी भाष्य में उद्धृत।

६. गौतमधर्मसूत्र १।२६ के मस्करी भाष्य में उद्धृत।

को पढ़ते हुए। महर्षि कण्व अथर्ववेद और इतिहास पुराण का सम्बन्ध जानते थे, अतः उन्होंने सूक्ष्म-दृष्टि से इनका साथ साथ उल्लेख किया। कण्व से लेकर त्रेता के अन्त तक इतिहास लिखने और पढ़ने की प्रथा सर्वथा चलती रही। त्रेता के अन्त में इतिहास के पण्डित दीर्घजीवी देवर्षि नारद ने ही भगवान् वाल्मीकि को दाशरथि राम का इतिहास लिखने की प्रेरणा की। नारद जानता था कि इस काम के लिए प्राचेतस वाल्मीकि उपयुक्ततम व्यक्ति है। वाल्मीकि की कृति इतिहास का एक आदर्श ग्रन्थ है। अर्धशिक्षित लोगों ने इस इतिहास और इसके निर्माण काल पर अनेक आक्षेप किए हैं। उनकी विवेचना आगे होगी।

त्रेता के अन्त में इतिहास की विद्यमानता के साथ साथ ताम्रशासनों का प्रचलन भी स्वतः सिद्ध है। श्री रामभद्र ने ताम्रशासन निकाले, इसका प्रमाण भूमिदान विषयक उन अनेक श्लोकों से मिलता है जो गुप्तकाल और उसके उत्तरवर्ती काल के ताम्रपत्रों पर अब भी मिलते हैं। उनमें—याचते रामभद्रः, पद इसी बात का परिचायक है। ताम्रशासन विना तिथि के न दिए जाएं ऐसा शास्त्र का आदेश है, अतः उन परम पुरातन ताम्रशासनों पर तिथियों का प्रयोग भावी अनुसन्धान का विषय है।

द्वापर का आरम्भ—अब इससे आगे चलिए। मनुस्मृति की भृगुप्रोक्त संहिता उन दिनों लगभग वर्तमान रूप में आई। मनुस्मृति के पुरातन पाठ पाणिनीय व्याकरणबद्ध भाषा से अति प्राचीन काल के हैं। अतः श्लोकबद्ध मनुस्मृति नवीनकाल का (विक्रम से दो चार सौ वर्ष पहले का) ग्रन्थ नहीं है। यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन है। उस मनुस्मृति के तृतीय अध्याय में पितृकर्म में इतिहास का पाठ बहुत महत्वपूर्ण कहा गया है—

ब्रह्मोद्याश्च कथा कुर्यात् पितृणामेतदीप्सितम् ॥ १२१ ॥
स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च ॥ १२२ ॥

अर्थात्—पितरों के राजा वैवस्वत यम की प्रजाएं अथवा पुरातन पारसी आदि लोग ब्रह्म अर्थात् वेद-शाखागत देवासुर संग्राम आदि की पुरातन कथाओं में बड़ा प्रेम रखते थे। अतः पितृकर्म में ऐसी कथाओं और आख्यान, इतिहास तथा पुराण आदि का श्रवण कराए।

आश्चर्य का विषय है कि जिस जाति के धर्मकृत्यों में इतिहास श्रवण को इतना महत्व दिया जाता था, उस जाति के लोगों पर यह मिथ्या दोष आरोपित किया जाए कि वे इतिहास, यथार्थ इतिहास विद्या, नहीं जानते थे।

इस से कुछ उत्तरकाल में सांख्याचार्य भिक्षु पंचशिख का शिष्य ऋषि देवल अपने धर्मशास्त्र में लिखता है—पार्वापूर्ववृत्तान्तामयाः प्रवृत्तिफला इतिहासाः। इति।[1] अर्थात्—आर्ष, अपूर्व वृत्तान्तों पर आश्रित, प्रवृत्ति फल वाले इतिहास। यहां इतिहास को 'प्रवृत्तिफल वाला कहा है। यह बात विशेष ध्यान योग्य है। इसके पश्चात् पुराणप्रोक्त ऐतरेय ब्राह्मण का काल है। अष्टाध्यायी की काशिका व्याख्या के अनुसार यह कुछ पुराना ब्राह्मण ग्रन्थ है।[2]

---

१. कात्यायन प्रणीत कर्मप्रदीप की टीका, अंक २, पृ० ११ पर उद्धृत।

२. ४।३।१०५॥

ऐतरेय ब्राह्मण ३। २५ में आख्यानविदों का उल्लेख है। वे इतिहास के अंग आख्यानों से सुपरिचित थे। भारत-युद्ध-कालीन यास्क ने भी निरुक्त में ऐतिहासिकों के मत दिए हैं।

आख्यानों के साथ पुरातन गाथाएं इतिहास सामग्री सुरक्षित रखती थीं। ये गाथाएं लोकभाषा में थीं। नए और पुराने ब्राह्मणों और महाभारत में ये बहुधा उद्धृत हैं। इन में राजाओं के युद्धों और संग्राम विजयों का वर्णन था। शतपथ ब्राह्मण १३।४।३।५ में लिखा है—अथ सायं धृतिषु हूयमानासु राजन्यो वीणागाथी दक्षिणत उत्तरमन्द्रामुदाघ्नंस्तिस्रः स्वयंसंभृता गाथा गायति इत्ययुध्यत इत्यमुं संग्राममजयत् इति। अर्थात्—सायं समय धृतिनामक हवियों के दिए जाते समय, राजन्य=क्षत्रिय वीणा बजाकर गानेवाला, दक्षिण दिशा में उत्तरमन्द्रा स्वर बजाता हुआ तीन स्वयं संभृत गाथाएं गाता है, ऐसा युद्ध किया, उस संग्राम को जीता। शतपथ की प्रतिध्वनि बौधायन श्रौत में है—अथैव राजन्यो वीणागाथी गायति इति अजिना इति अयुध्यथा इति अमुं संग्रामम् अहन् इत्येवं मिश्रा तिस्रो गाथाः। १५।६॥ इन गाथाओं का पाठ ग्रन्थों में सुरक्षित था। इस कारण ब्राह्मण ग्रन्थों में गाथाएं उद्धृत कर के अन्त में इति पद लिखा रहता है। अर्थात् इनका पाठ याथातथ्य से है।

पंचशिख के समकालिक और कृष्ण द्वैपायन के पिता पराशरजी अपनी ज्योतिषसंहिता में लिखते हैं—वेदवेदाङ्गेतिहास-पुराण-धर्मशास्त्रावदातं।[1] अर्थात्—इतिहास, पुराण में विद्वान्।

द्वापर का अन्त—देवल और ऐतरेय के पश्चात् तथा भारत युद्ध से कुछ पहले अर्थात् आज से लगभग पांच सहस्र दो सौ वर्ष पूर्व तीन महान् इतिहासवेत्ता हुए। वे थे, ब्रह्मिष्ठ याज्ञवल्क्य, व्याघ्रपाद गोत्रज देवव्रत भीष्म पितामह और कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास।

ब्रह्मिष्ठ याज्ञवल्क्य ने वाजसनेय शतपथ ब्राह्मण का प्रवचन किया। उसके माध्यन्दिन पाठ में लिखा है—तस्मादाहुः—नैतदस्ति यद्दैवासुरं यदिदमन्वाख्याने त्वत् उद्यत इतिहासे त्वत्।११।१।६।९॥ अर्थात् इस लिए पुरातन विद्वान् कहते हैं, मन्त्रगत दैवासुर युद्ध वह युद्ध नहीं है, जो अन्वाख्यान अथवा इतिहास में मिलता है।[2] इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि याज्ञवल्क्य से पूर्व मन्त्रों वाले दैवासुर से भिन्न दैवासुर संग्रामों के वर्णन करने वाले अन्वाख्यान और इतिहास ग्रन्थ भारत में विद्यमान थे। ये ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण से भी पहले बन चुके थे। उन्हीं ग्रन्थों के आधार पर वाल्मीकि और व्यास ने राम रावण युद्ध और भारत युद्ध की अनेक घटनाओं की तुलनाएं दैवासुर संग्रामों की घटनाओं से की है। यथा—स्कन्देनेवासुरी चमूम्।

पुनः माध्यन्दिन शतपथ ११।५।६।८ में मधु आहुतियों से इतिहास पाठ की तुलना की है। इसके पाठ से योगक्षेम की प्राप्ति कही है। शतपथ के इन शब्दों का लोकभाषा रूपान्तर याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति में स्वयं कर दिया है—

वाकोवाक्यं पुराणं च नाराशंसीश्च गाथिकाः। इतिहासांस्तथा विद्यां योऽधीते शक्तितोऽन्वहम्॥ ४५॥
मांसक्षीरौदनमधुतर्पणं स दिवौकसाम्। करोति तृप्तिं च तथा पितॄणां मधुसर्पिषा॥ ४६॥

---

१. बृहत्संहिता, भट्ट उत्पल की टीका, पृ० ८१ पर उद्धृत।

२. निरुक्त भाष्य २।१६ पर व्याख्या करता हुआ आचार्य दुर्ग (लगभग विक्रम प्रथम शती) लिखता है—धर्मेऽस्मिन्मन्त्रे मायामात्रमेव युद्धमिति श्रूयते। विज्ञायते च—तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद्दैवासुरमिति।

पुनः शतपथ १३।४।३।१२ में इतिहास वेद के पाठ का विधान है। शांखायन श्रौतसूत्र १६।२।२२—२४ में भी यही मत दर्शाया गया है:—इतिहासवेदो वेदः सोऽयमितीतिहासमाचक्षीत। शतपथ और शांखायन के इस प्रसंग में इस कण्डिका से पूर्व अनेक ग्रन्थ और उनके अवान्तर विभाग कहे गए हैं, पर इतिहासवेद के विषय में 'इतिहासमाचक्षीत' मात्र कहा है। इसका तात्पर्य स्पष्ट है। प्रत्येक ग्रन्थ का अपना अवान्तर विभाग था। इतिहास ग्रन्थ अनेक थे। उनका अवान्तर विभाग भिन्न भिन्न था। अतः वह न कहकर 'इतिहासमाचक्षीत' मात्र कहा गया।

शांखायन श्रौतसूत्र के कर्ता सुयज्ञ का याज्ञवल्क्य के समान विश्वास था कि वेदपाठ आदि के समान इतिहास-पाठ का महान् फल है। याज्ञवल्क्य के शतपथ में और शांखायन के आरण्यक में गुरु-शिष्य परम्परा के जो वंश दिए हैं, उन से निश्चित होता है कि ये महात्मा ऐतिहासिक परम्परा को यथेष्ट जानते थे। हमारे इतिहास के पाठ से इन वंशों की परम्परा की सत्यता स्वयं प्रकट हो जायगी।[1] ये वंश ब्रह्मा से चलते हैं, और वही वर्तमान इतिहास का आदि पुरुष है।

याज्ञवल्क्य इतिहास के प्रधान अंग का अर्थात् घटनाओं के काल-क्रम का प्रौढ पण्डित था। इसका प्रदर्शन शतपथ में बहुधा मिलता है। दाक्षायण यज्ञ के विषय में शतपथ २।४।४।१—६ में लिखा है—

१. पहले इसे दक्ष प्रजापति ने किया।

२. पुनः वसिष्ठ ने।

३. पुनः प्रतिदर्श श्वैक्न ने।

४. पुनः सहदेव सुप्ला साञ्जय ने।

५. पुनः कुरु-सृञ्जयों के पुरोहित देवभाग श्रौतर्ष ने।

६. पुनः दक्ष पार्वति ने।

ये सब महानुभाव उत्तरोत्तर इस यज्ञ को करने वाले थे।

देवव्रत भीष्म—इस काल के दूसरे महान् इतिहासवेत्ता नीतिविशारद, महासेनापति, बालब्रह्मचारी, मृत्युञ्जय भीष्म थे। उनकी स्तुति करते हुए भारत-हृदय-सम्राट् भगवान् वासुदेव कहते हैं—इतिहासपुराणार्थाः कार्त्स्न्येन विदितास्तव।[2] अर्थात्—इतिहास और पुराण आप

---

१. कलकत्ता के अध्यापक उपेन्द्रनाथ घोषाल ने इन वंशों में कहे गए अग्नि, वायु, इन्द्र और ब्रह्मा आदि के मनुष्य होने में सन्देह किया है। वे इन्हें पुरुषेतर देवता समझते हैं। (इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरलि, मास मार्च सन् १९४२, पृ० २१)। इनके सन्देह की निवृत्ति के लिए आगे सामग्री प्रस्तुत करेंगे।

छान्दोग्य उपनिषद् के अन्त में भी एक वंश परम्परा दी है। उसका आरम्भ ब्रह्मा से होता है। इसके विषय में जर्मन लेखक बूहलर लिखता है—"This legend proves". ये लोग यथार्थ इतिहास से अनभिज्ञ होने के कारण ही ऐसा लिखते हैं।

२. महाभारत, शान्तिपर्व ५१।१७॥

ऐतरेय ब्राह्मण ३ । २५ में आख्यानविदों का उल्लेख है। वे इतिहास के अंग आख्यानों से सुपरिचित थे। भारत-युद्ध-कालीन यास्क ने भी निरुक्त में ऐतिहासिकों के मत दिए हैं।

आख्यानों के साथ पुरातन गाथाएं इतिहास सामग्री सुरक्षित रखती थीं। ये गाथाएं लोकभाषा में थीं। नए और पुराने ब्राह्मणों और महाभारत में ये बहुधा उद्धृत हैं। इन में राजाओं के युद्धों और संग्राम विजयों का वर्णन था। शतपथ ब्राह्मण १३।४।३।५ में लिखा है—अथ सायं धृतिषु हूयमानासु राजन्यो वीणागाथी दक्षिणत उत्तरमन्द्रामुदाघ्नंस्तिस्रः स्वयंसंभृता गाथा गायति इत्ययुध्यत् इत्यमुं संग्राममजयत् इति। अर्थात्—सायं समय धृतिनामक हवियों के दिए जाते समय, राजन्य=क्षत्रिय वीणा बजाकर गानेवाला, दक्षिण दिशा में उत्तरमन्द्र स्वर बजाता हुआ तीन स्वयं संभृत गाथाएं गाता है, ऐसा युद्ध किया, उस संग्राम को जीता। शतपथ की प्रतिध्वनि बौधायन श्रौत में है—अथैष राजन्यो वीणागाथी गायति इति अजिना इति अयुध्यथा इति अमुं संग्रामम् अहन् इत्येवं मिश्रा तिस्रो गाथाः। १५।६॥ इन गाथाओं का पाठ ग्रन्थों में सुरक्षित था। इस कारण ब्राह्मण ग्रन्थों में गाथाएं उद्धृत कर के अन्त में इति पद लिखा रहता है। अर्थात् इनका पाठ याथातथ्य से है।

पंचशिख के समकालिक और कृष्ण द्वैपायन के पिता पराशरजी अपनी ज्योतिषसंहिता में लिखते हैं—वेदवेदांगेतिहास-पुराण-धर्मशास्त्रावदातं।[1] अर्थात्—इतिहास, पुराण में विद्वान्।

द्वापर का अन्त—देवल और ऐतरेय के पश्चात् तथा भारत युद्ध से कुछ पहले अर्थात् आज से लगभग पांच सहस्र दो सौ वर्ष पूर्व तीन महान् इतिहासवेत्ता हुए। वे थे, ब्रह्मिष्ठ याज्ञवल्क्य, व्याघ्रपाद गोत्रज देवव्रत भीष्म पितामह और कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास।

ब्रह्मिष्ठ याज्ञवल्क्य ने वाजसनेय शतपथ ब्राह्मण का प्रवचन किया। उसके माध्यन्दिन पाठ में लिखा है—तस्मादाहुः—नैतदस्ति यद्दैवासुरं यदिदमन्वाख्याने त्वत् उद्यत इतिहासे त्वत्।११।१।६।६॥ अर्थात् इस लिए पुरातन विद्वान् कहते हैं, मन्त्रगत दैवासुर युद्ध वह युद्ध नहीं है, जो अन्वाख्यान अथवा इतिहास में मिलता है।[2] इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि याज्ञवल्क्य से पूर्व मन्त्रों वाले दैवासुर से भिन्न दैवासुर संग्रामों के वर्णन करने वाले अन्वाख्यान और इतिहास ग्रन्थ भारत में विद्यमान थे। ये ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण से भी पहले बन चुके थे। उन्हीं ग्रन्थों के आधार पर वाल्मीकि और व्यास ने राम रावण युद्ध और भारत युद्ध की अनेक घटनाओं की तुलनाएं दैवासुर संग्रामों की घटनाओं से की है। यथा—स्कन्देनेवासुरीं चमूम्।

पुनः माध्यन्दिन शतपथ ११।५।६।८ में मधु आहुतियों से इतिहास पाठ की तुलना की है। इसके पाठ से योगक्षेम की प्राप्ति कही है। शतपथ के इन शब्दों का लोकभाषा रूपान्तर याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति में स्वयं कर दिया है—

> वाकोवाक्यं पुराणं च नाराशंसीश्च गाथिकाः। इतिहासांस्तथा विद्यां योऽधीते शक्तितोऽन्वहम्॥ ४५॥
> मांसक्षीरौदनमधुतर्पणं स दिवौकसाम्। करोति तृप्तिं च तथा पितॄणां मधुसर्पिषा॥ ४६॥

---

१. बृहत्संहिता, भट्ट उत्पल की टीका, पृ० ८१ पर उद्धृत।

२. निरुक्त भाष्य २।१६ पर व्याख्या करता हुआ आचार्य दुर्ग (लगभग विक्रम प्रथम शती) लिखता है—इत्येवमनियन्त्रे मायामात्रमेव युद्धमिति श्रूयते। विज्ञायते च—तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद्दैवासुरमिति।

पुनः शतपथ १३।४।३।१२ में इतिहास वेद के पाठ का विधान है। शांखायन श्रौतसूत्र १६।२।२२—२४ में भी यही मत दर्शाया गया है:—इतिहासवेदो वेदः सोऽयमितीतिहासमाचक्षीत। शतपथ और शांखायन के इस प्रसंग में इस कण्डिका से पूर्व अनेक ग्रन्थ और उनके अवान्तर विभाग कहे गए हैं, पर इतिहासवेद के विषय में 'इतिहासमाचक्षीत' मात्र कहा है। इसका तात्पर्य स्पष्ट है। प्रत्येक ग्रन्थ का अपना अवान्तर विभाग था। इतिहास ग्रन्थ अनेक थे। उनका अवान्तर विभाग भिन्न भिन्न था। अतः यह न कहकर 'इतिहासमाचक्षीत' मात्र कहा गया।

शांखायन श्रौतसूत्र के कर्ता सुयज्ञ का याज्ञवल्क्य के समान विश्वास था कि वेदपाठ आदि के समान इतिहास-पाठ का महान् फल है। याज्ञवल्क्य के शतपथ में और शांखायन के आरण्यक में गुरु-शिष्य परम्परा के जो वंश दिए हैं, उन से निश्चित होता है कि ये महात्मा ऐतिहासिक परम्परा को यथेष्ट जानते थे। हमारे इतिहास के पाठ से इन वंशों की परम्परा की सत्यता स्वयं प्रकट हो जायगी।[1] ये वंश ब्रह्मा से चलते हैं, और यही वर्तमान इतिहास का आदि पुरुष है।

याज्ञवल्क्य इतिहास के प्रधान अंग का अर्थात् घटनाओं के काल-क्रम का प्रौढ़ पण्डित था। इसका प्रदर्शन शतपथ में बहुधा मिलता है। दाक्षायण यज्ञ के विषय में शतपथ २।४।४।१—६ में लिखा है—

१. पहले इसे दक्ष प्रजापति ने किया।

२. पुनः वसिष्ठ ने।

३. पुनः प्रतिदर्श श्वैक्न ने।

४. पुनः सहदेव सुप्ला सार्ञ्जय ने।

५. पुनः कुरु-सृञ्जयों के पुरोहित देवभाग श्रौतर्ष ने।

६. पुनः दक्ष पार्वति ने।

ये सब महानुभाव उत्तरोत्तर इस यज्ञ को करने वाले थे।

देवव्रत भीष्म—इस काल के दूसरे महान् इतिहासवेत्ता नीतिविशारद, महासेनापति, बालब्रह्मचारी, मृत्युञ्जय भीष्म थे। उनकी स्तुति करते हुए भारत-हृदय-सम्राट् भगवान् वासुदेव कहते हैं—इतिहासपुराणार्थाः कार्त्स्न्येन विदितास्तव।[2] अर्थात्—इतिहास और पुराण आप

---

१. कलकत्ता के अध्यापक उपेन्द्रनाथ घोषाल ने इन वंशों में कहे गए अग्नि, वायु, इन्द्र और ब्रह्मा आदि के मनुष्य होने में सन्देह किया है। वे इन्हें पुरुषेतर देवता समझते हैं। (इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरलि, मास मार्च सन् १९४२, पृ० २१)। इनके सन्देह की निवृत्ति के लिए आगे सामग्री प्रस्तुत करेंगे।

छान्दोग्य उपनिषत् के अन्त में भी एक वंश परम्परा दी है। उसका आरम्भ ब्रह्मा से होता है। उसके विषय में जर्मन लेखक बूहलर लिखता है—"This legend proves". ये लोग यथार्थ इतिहास से अनभिज्ञ होने के कारण ही ऐसा लिखते हैं।

२. महाभारत, शान्तिपर्व ४६। २७॥

को पूर्णरूप से विदित हैं। ध्यान रहे कि स्तुति करने वाला स्वयं अद्वितीय ऐतिहासिक है। इन भीष्मजी ने कौणपदन्त नाम से एक अर्थशास्त्र लिखा था। यह अर्थशास्त्र कितना अपूर्व होगा।

भारत-युद्ध-कालीन अन्य ऐतिहासिक—याज्ञवल्क्य के शतपथ, सुयज्ञ के शांखायन श्रौतसूत्र और भीष्म से लेकर भारतग्रन्थ के रचना काल तक भारतीय इतिहास की परम्परा अटूट रही। इस काल के आयुर्वेद के वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखने वाले अग्निवेश और चरक आदि ऋषि सूक्ष्म ऐतिहासिक बुद्धि रखते थे। उन्होंने अनेक ऋषि-सम्मेलनों का वृत्त सुरक्षित रखा है। वे विवादास्पद विषयों पर एक एक ऋषि की सम्मति पृथक् पृथक् लिखते हैं।[1]

उन दिनों की पांचरात्र संहिता में चौदह विद्यास्थानों में इतिहास पुराण का भी स्थान है—चतुर्दश विद्यास्थानानि वेदितव्यानि भवन्ति। तद्यथा—ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेद इतिहासपुराणं न्यायो मीमांसा शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषामयनं छन्दोविचितिः इति।

भारत युद्ध काल के पश्चात्—अब आई तीसरे महान् इतिहासवेत्ता भगवान् वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन की बात। उन्होंने पाण्डवों की मृत्यु के पश्चात् कलि के आरम्भ में अपना भारत ग्रन्थ रचा। वेदव्यास इतिहास के पारदर्शी पण्डित थे। व्यास-सदृश ऐतिहासिक बुद्धि गत पांच सहस्र वर्ष में संसार भर के किसी विद्वान् को प्राप्त नहीं हुई। हैरोडोटस, मैगस्थनीज़ और प्लूटार्क, इयने हाकल और अबूरिहां अलबेरूनी, तथा गिब्बन और मैकाले व्यास के विस्तृत और सत्य ज्ञान तथा वर्णनशैली के सम्मुख बालक हैं। उनके ग्रन्थों में साक्षात् किए ज्ञान का अभाव है, अथवा सत्य की जिज्ञासा रहते भी सत्य का पूर्ण दर्शन नहीं है। इतिहास और पुराण ज्ञान के लिए वैशम्पायन और लोमहर्षण[3] तुल्य व्यक्ति व्यास को उपासते थे। व्यास रचित भारत संसार के पुरातन इतिहास पर प्रकाश डालने के लिए सूर्य का काम दे रहा है। भारतवर्ष के इतिहास का एक विशेषांश इसमें स्वतः सिद्ध रूप से विद्यमान है।

व्यास अपने पूर्वजों की ऐतिहासिक कृतियों से सुपरिचित—भगवान् व्यास की भारत संहिता में पचास से अधिक ऐसे दिव्य इतिहासों का पता दिया गया है, जो व्यास से पहले विद्यमान थे—

येषां दिव्यानि कर्माणि विक्रमस्त्याग एव च।
माहात्म्यमपि चास्तिक्यं सत्यता शौचमार्जवम्। १८१॥
विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणैः कविसत्तमैः। १८२॥

व्यास इन इतिहासों में पारंगत था। उन्हीं इतिहासों के आधार पर भीष्म और युधिष्ठिर के संवादों में उन्होंने बहुधा भीष्म-मुख-वचन लिखा है—अत्रापि उदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।[4] अर्थात् इस विषय में भी यह पुरातन इतिहास उदाहृत होता है। व्यास का अपना

१. चरकसंहिता, सिद्धिस्थान ११।३—१०॥ इत्यादि।
२. याज्ञवल्क्य स्मृति, अपरार्क टीका के आरम्भ में पांचरात्र संहिता से उद्धृत।
३. वायु पुराण १।२१—२५॥
४. शान्तिपर्व ६७। ३, इत्यादि।

ग्रन्थ इतिहास का उत्कृष्टतम ग्रन्थ है। अनेक वर्तमान लेखक इसे समझ नहीं पाए। वे इसमें पूर्वापर विरोध और दूसरे दोष दिखाते हैं। वे इसे अथवा रामायण आदि को इतिहास कोटि में नहीं गिनते।[1] उन्होंने इसकी अकारण निन्दा की है। आज इसी ग्रन्थ की अपार कृपा से हम यवन=योन, बाबली, असुर, यहूदी और पारसीक आदि पुरातन जातियों के लुप्त इतिहास के उद्‌घाटन में समर्थ हुए हैं।

व्यास की भारतसंहिता में तिथिक्रम का अपूर्व दर्शन—महाभारत में तिथि और नक्षत्रों का क्रमशः वर्णन अनेक घटनाओं के सम्बन्ध में किया गया है। जब विद्वान् उस ओर ध्यान देंगे, तो उन्हें इतिहास क्रम का सूक्ष्म ज्ञान होगा।

भगवान् कृष्ण द्वैपायन और पुराणसंहिता—भगवान् व्यास ने भारत संहिता के अतिरिक्त एक पुराण संहिता रची। यह संहिता इतिहास का आधार थी। उस संहिता की सामग्री ब्रह्माण्ड, वायु, मत्स्य आदि कई वर्तमान पुराणों में मिलती है। हमने उसे नवीन सांप्रदायिक अंशों से पृथक् किया है। इस सामग्री के बिना हमारा प्रस्तुत ग्रन्थ सर्वथा अधूरा रह जाता। व्यास ने लोमहर्षण को इतिहास और पुराण पढ़ाया और व्यास की आज्ञा से लोमहर्षण इतिहास और पुराण का वक्ता बना।[2] कृष्ण द्वैपायन व्यास का मत है कि इतिहास पुराण को न जानने वाला मनुष्य विचक्षण नहीं होता।

व्यासानुसार राजमन्त्री ऐतिहासिक होना चाहिए—राज्य-संचालन में इतिहास ज्ञान का महत्व व्यास जानता था। मन्त्री मण्डल के गुणों के वर्णन में महाभारत में लिखा है—इतिहासार्थकोविदान्।[3] अर्थात्—राजमन्त्री इतिहास-तत्त्व के विद्वान् होने चाहिएं।

इतिहास पुराण-लेखक अथर्वाङ्गिरस—पुरातन इतिहासों और पुराणों के लेखक अथर्वाङ्गिरस ऋषि थे। उनके इस महत्व को न जान कर "वैदिक इण्डेक्स आफ नेम्स एण्ड सब्जैक्ट्स" के लिखने वाले अध्यापक आर्थर एनथनि मैकडानल और आर्थर बैरिडेल कीथ ने इतिहास तथा पुराण के प्रवक्ता अथर्वाङ्गिरसों पर कोई टिप्पण नहीं लिखा।[4] छान्दोग्य उपनिषत् ३।४।२

---

१. अभी अभी परलोकगामी अंग्रेज लेखक आर्थर बैरिडेल कीथ ने हिस्ट्री आफ ए संस्कृत लिटरेचर पृ० १४४ पर लिखा था—

In the whole of the great period of Sanskrit literature there is not one writer who can be seriously regarded as a critical historian.

ऐसे उच्छृङ्खल लेख की परीक्षा आगे होगी। कीथ का एक सजातीय भ्राता, अध्यापक इ० जे० रैप्सन पुरातन इतिहास को न जानता हुआ लिखता है—

In all the large and varied literatures of the Brahmanas, Jains and Buddhists there is not to be found a single work which can be compared to the *Histories* in which Herodotus recounts the struggle between the Greeks and Persians, or to the *Annals* in which Livy traces the growth and progress of the Roman power. (Camb. H. I. p. 57)...........and in ancient India its (history's) development was not carried beyond the rudimentary stage. (p. 58)

इस लेख का ओछापन इस इतिहास के पाठ से स्वयं स्पष्ट होगा।

२. वायु पुराण ६०।१२—१६॥

३. कृत्यकल्पतरु, राजधर्मकाण्ड, पृ० १०४ पर उद्धृत।

४. सन् १९१२ में मुद्रित। इसमें अथर्वाङ्गिरस शब्द तो है, पर अन्य प्रकरण का।

में लिखा है—ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतादितिहासपुराणमभ्यतपन्। अर्थात्—वे अथर्वाङ्गिरस ऋषि थे, जिन्होंने इस इतिहास पुराण को प्रकाशित किया। वे ऋषि निस्सन्देह छान्दोग्य आदि उपनिषदों के रचे जाने से पूर्व हो चुके थे। इस उपनिषद् वचन के तथ्य से भयभीत होकर मैकडानल और कीथ ने इस नाम का अपने वैदिक नामकोश में स्पष्टीकरण नहीं किया। क्या यह नाम पद नहीं। कहां है इन मिथ्या-अभिमानियों की "सूक्ष्म विद्वत्ता" (critical scholarship). मैकडानल के पूर्ववर्ती मोनियर विलियम्स ने भी अपने कोश में (सन् १८९९) इस शब्द पर पुराण और इतिहास की बात नहीं लिखी।

अथर्वाङ्गिरस ऋषियों का इतिहास तथा पुराण से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इतिहास पुराण आदि के तर्पण के साथ-साथ उनका तर्पण बहुधा उल्लिखित है। तैत्तिरीय आरण्यक २।११।११ में लिखा है—

यच्छिरश्चक्षुषी नासिके श्रोत्रे हृदयमालभते तेनाथर्वाङ्गिरसो ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीः प्रीणाति।

अर्थात्—जो वह शिर, दो आंख, दो नासिका, दो कान और हृदय इन आठ का स्पर्श करता है, वह (१,२) अथर्वाङ्गिरस, (३) ब्राह्मणग्रन्थ, (४) इतिहास, (५) पुराण, (६) कल्प, (७) गाथा, और (८) नाराशंसी का तर्पण करता है।

कहां ये इतने पवित्र सत्य और कहां उन्हें मनघड़न्त कहना। प्रबुद्ध भारत इसके विरुद्ध खड़ा होगा।

दीर्घसत्रकाल तक—विष्णुस्मृति—व्यासजी के महाभारत से कुछ उत्तरकाल की विष्णुस्मृति में पंक्तिपावनों के उल्लेख में कहा है—पुराणेतिहासव्याकरणपारगः।[1] तथा पुरोहित के विषय में कहा है—वेदेतिहासधर्मशास्त्रकुशलं कुलीनमव्यङ्गं तपस्विनं च पुरोहितं……।[2]

शौनक के बृहद्देवता में—आचार्य शौनक ने बृहद्देवता में लिखा है—इतिहासः पुरावृत्तं ऋषिभिः परिकीर्त्यते।४।४६॥ अर्थात्—अगस्त्य, इन्द्र और मरुत आदि के विषय का इतिहास ऋषियों ने लिखा है। ऋषियों और उनके इतिहासों की परम सत्यता हमारे इतिहास से प्रकट होगी।

आश्वलायन—दीर्घसत्रकर्ता भगवान् शौनक का शिष्य मुनि आश्वलायन अपने श्रौतसूत्र १०।७ में इतिहासवेद का स्मरण करता है। इसी प्रकार अग्निवेश गृह्यसूत्र २।६ में चारों वेदों के तर्पण के वर्णन के पश्चात् इतिहास, पुराण का तर्पण विहित है। वेदों के साथ इतिहास, पुराण का तर्पण इन के महत्व का सूचक है।

सूत—उन दिनों तक भारत में इतिहास, पुराण के विशेषज्ञ और संस्कृतविद्या के प्रगल्भ वक्ता विद्यमान थे। वायु पुराण १।३२ में लिखा है—

वंशानां धारणं कार्यं श्रुतानां च महात्मनाम्। इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभिः॥

अर्थात्—इतिहास और पुराणों के वंश ब्रह्मवादियों के कहे हुए हैं। इससे पार्जिटर आदि के इस मत का खण्डन हो जाता है कि पुराण आदि पहले प्राकृत में थे।

१. अपरार्क, पृ० ४४० पर उद्धृत।

२. ३।६७–७०॥

पाणिनि तक—भगवान् पाणिनि शब्द-शास्त्र के ही पण्डित नहीं थे, अपितु इतिहास के भी असाधारण ज्ञाता थे। उन्होंने अनेक आख्यान, इतिहास और अर्थशास्त्र पढ़े थे। इन शास्त्रों के आधार पर उन्होंने चरण और शाखा-प्रवक्ता ऋषियों के इतिहास के विलक्षण संकेत किए हैं। पुराने और नए ब्राह्मण और कल्पों का पता दिया है। गोत्रों और ऋषि नामों के सूक्ष्म भेदों का विश्लेषण पाणिनि के बिना और कौन कर पाया है। कुरु, वृष्णि, अन्धक आदि क्षत्रियों तथा आयुधजीवी आदि संघों तथा पूगों का वृत्त पाणिनि से जाना जा सकता है। भूगोल की बातें, प्राच्य और पूर्व आदि विभाग पाणिनि के सूत्रों में पाए जाते हैं। पुराकाल के अनेक महान् राजाओं ने जो कई नगरियां बसाईं, उन्हें पाणिनि स्पष्ट बताता है। ६।२।१०२ में वह आख्यानों का वर्णन करता है। उसकी ऐतिहासिक सूक्ष्मेक्षिका इस बात से ज्ञात होती है कि उसने विपाशा नदी के उत्तर कूल पर विशेष स्वर रखने वाले गोप्तः कूपः और दात्तः कूपः नाम बताए हैं। पतञ्जलि के अनुसार पाणिनि वृत्तज्ञ आचार्य था।[1] हमारे इतिहास के अगले पृष्ठों में पाणिनि से अनेक ऐतिहासिक बातें ली गई हैं। पाणिनि के अद्वितीय ऐतिहासिक ज्ञान में कौन सन्देह कर सकता है।

पाणिनि से कात्यायन तक—पाणिनि के महान् व्याकरण पर कात्यायन ने अपना वार्तिक रचा। उसने पाणिनीय सूत्र ४।२।६० पर एक वार्तिक बनाया। आख्यान-आख्यायिका-इतिहास-पुराणेभ्यः ठग्वक्तव्यः अर्थात्—इतिहास को पढ़ने और जानने वाला ऐतिहासिक है। उसके काल तक अनेक ऐतिहासिक हो चुके थे। ऐतिहासिक शब्द वाङ्मय में पूरा प्रसिद्ध था। अतः ऐसा वार्तिक पढ़ने की आवश्यकता पड़ी।

बौधायन के धर्मसूत्र में—यत्प्रथमं परिमार्ष्टि तेनाथर्ववेदं यद् द्वितीयं तेनेतिहासपुराणम्॥ चतुर्थ प्रश्न, तृतीय अध्याय, सूत्र ४। यहां इतिहास पुराण की स्तुति गाई गई है।

मज्झिम निकाय के काल में—म० नि० २।४।३ में श्रावस्ती के आश्वलायन का वर्णन है। वह इतिहासवेद में पारंगत था।[2] यह आश्वलायन श्रौतसूत्र कर्ता मुनि आश्वलायन से अन्य था।

कौटल्य के काल में—कृष्ण द्वैपायन व्यास के भारत-रचन से कौटल्य तक लगभग १५०० वर्ष का अन्तर था। विष्णुगुप्त कौटल्य के काल तक भारत में इतिहास निर्माण की रुचि न्यून नहीं हुई। राजा की दिनचर्या का व्याख्यान करता हुआ वह लिखता है—पश्चिममितिहासश्रवणे। पुराणम्, इतिवृत्तम्, आख्यायिका, उदाहरणं, धर्मशास्त्रम्, अर्थशास्त्रं चेति इतिहासः। इति।[3] अर्थात्—दिन के पश्चिम काल में राजा इतिहास का श्रवण करे। पुराण, इतिवृत्त आदि इतिहास के अंग हैं। विष्णुगुप्त कौटल्य ने महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य विषयक एक चरित ग्रन्थ लिखवाया था। इससे ज्ञात होता है कि आचार्य कौटल्य इतिहास पढ़ने पर ही बल नहीं देता था, प्रत्युत इतिहास-निर्माण भी कराता था। विष्णुगुप्त के पश्चात् अशोक हुआ।

---

१. महाभाष्य भाग प्रथम, पृ० ११६। पतञ्जलि के इस वचन की अद्वितीय तुलना श्री डा० वासुदेव शरण अग्रवाल जी ने यूनसांग के पाणिनि विषयक लेख से की है। देखो, गङ्गानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट जर्नल, फर्वरी-मई १९४५, पृ० ८४,८६।

२. राहुल सांकृत्यायन का भाषानुवाद, पृ० ३८६।

३. अर्थशास्त्र, आदि से अध्याय ५।

अशोक से सातवाहनों तक—अशोक के शिलालेखों पर उस के राजवर्ष उत्कीर्ण हैं। राजवर्षों की गणना इतिहास के सूक्ष्म ज्ञान का फल है। प्राचीन राजा इस गणना का महत्व समझते थे। उन्होंने इस गणना की शिक्षा व्यास से प्राप्त की थी। भारत युद्ध के पश्चात् जब युधिष्ठिर का राज्य हुआ, तो उसमें होनेवाली कई प्रसिद्ध घटनाएं व्यास ने इसी राजवर्ष गणना के अनुसार वर्णित की हैं। अशोक के पश्चात् खारवेल और सातवाहन राजाओं ने भी अपनी राजवर्ष गणनाओं में अपने राज्य की घटनाएं लिखी हैं।

सातवाहनान्तर्गत शूद्रक-काल में—रामिल और सोमिल नामक कवियों ने शूद्रक-कथा इस काल में लिखी। अश्मकवंश ग्रन्थ संभवतः उसी काल में लिखा गया। सातकर्णीहरण भी उस काल का ग्रन्थ प्रतीत होता है।

विक्रमों अर्थात् गुप्त सम्राटों के काल में—सातवाहनों के पश्चात् गुप्तों का काल आया। महाराज समुद्रगुप्त की प्रयाग की प्रशस्ति उस काल में लिखी गई। उसमें ऐतिहासिक ज्ञान की सूक्ष्म छाया है। गुप्त सम्राटों के ताम्रपत्रों और शिलालेखों में संवत्-क्रम से सब घटनाएं उल्लिखित हैं। जो पराक्रमी राजा शिलाओं पर ऐसे लेख उत्कीर्ण कराते थे, उन्होंने इतिहास ग्रन्थ भी अवश्य लिखवाए थे। *ऐसा साहित्य विदेशीय आक्रमण-कारियों ने नष्ट किया।*

हर्षवर्धन और उस के पश्चात्—विक्रम की लगभग सातवीं शताब्दी में हर्षचरित सदृश अपूर्व ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा गया। हर्षचरित का रचयिता भट्ट बाण अपने ग्रन्थ में अठारह पुरातन घटनाओं का वर्णन विशेष करता है। उनमें से अनेक घटनाओं का उल्लेख विष्णुगुप्त के अर्थशास्त्र आदि में है, पर बाण अर्थशास्त्र की अपेक्षा अनेक बातें अधिक विस्तार से लिखता है। उसके पास पर्याप्त स्वतन्त्र ऐतिहासिक सामग्री थी। यदि उस के पास कौटल्य-उत्तरकाल की मूल ऐतिहासिक सामग्री न होती, तो वह मौर्य बृहद्रथ की मृत्यु-घटना का और शुङ्ग देवभूति के निधन का इतना स्पष्ट वर्णन न कर सकता। भट्ट बाण को अपने काल के इतिहास की सामग्री अपने राजकीय भण्डार से पूर्णतया उपलब्ध थी।

ह्यूनसांग का साक्ष्य—हर्षवर्धन का समकालीन महाचीन देश का यात्री ह्यूनसांग अथवा युवङ्चवन अपने यात्रा विवरण में लिखता है—

(क) पुराने इतिवृत्त कहते हैं।[1]

(ख) घटनाओं के लिपिबद्ध करने के विषय में, प्रत्येक विषय अथवा प्रान्त का अपना कार्यकर्ता, उन्हें लेख रूप में सुरक्षित करने वाला होता है। इन घटनाओं का लिखित रूप अपने पूर्णरूप में नीलपट कहाता है।[2]

(ग) भारत के लिखितवृत्त वर्णन करते हैं—पुराने काल में, जब अशोकराज ने ८४,००० स्तूप बनवाए।[3]

(घ) यह उदार कर्म वार्षिक वृत्त में प्रमुख ऐतिहासिक द्वारा लिखा गया था।[4]

---

१. बील का अंग्रेज़ी अनुवाद, भाग १, पृ० २२।
२. ,, ,, ,, भाग १, ,, ७८।
३. ,, ,, ,, ,, ६४।
४. ,, ,, ,, भाग १, ,, १०७।

(ङ) देश के लिखितवृत्त वर्णन करते हैं—इस समय से ६० वर्ष पूर्व शीलादित्य था, वह अत्यन्त बुद्धिमान् और विद्वान् था।[1]

इन उद्धरणों से प्रतीत होता है कि ह्यूनसांग ने राजभंडारों अथवा राजकीय पुस्तकालयों में लिखे हुए अनेक इतिवृत्त देखे, पढ़े अथवा सुने थे। ये इतिवृत्त इतिहास का अङ्ग थे।

इसके कुछ काल पश्चात् इतिहास लिखने पढ़ने की मर्यादा न्यून हुई। कारण था भारतीय राज्य का खण्ड खण्ड होना। महाप्रतापी, धर्मपरायण आर्य राजाओं का अब अभाव होने लगा था। फिर भी अनेक लेखक छोटे २ ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखते रहे। विक्रम की नवम शताब्दी में अथवा उससे कुछ पूर्व मञ्जुश्री मूलकल्प नामक बौद्ध ग्रन्थ की रचना हुई। उसमें इतिहास की पर्याप्त सामग्री है। उसका आधार पुराने इतिहास ग्रन्थ हैं। इस काल से इतिहास विद्या का उत्तरोत्तर ह्रास यद्यपि आरम्भ हो गया, तथापि आश्चर्य की बात है कि विक्रम से लेकर ६०० वर्ष के इस महा लम्बे काल में यह परम्परा अक्षुण्ण कैसे बनी रही। निस्सन्देह इसमें दैवी विभूति है।

नाटक ग्रन्थ—नाट्य शास्त्र के प्रधान आचार्य मुनि भरत का आदेश है कि नाटक का आधार ऐतिहासिक और नायक इतिहास प्रसिद्ध पुरुष होना चाहिए। संस्कृत साहित्य में नाना महाकवियों ने अनेक उत्कृष्ट नाटक रचे। उनके पास उन नाटकों की मूल ऐतिहासिक सामग्री उपस्थित थी।

इतिहास विद्या के ह्रास का आरम्भ

गत नौ सौ वर्ष में इतिहास प्रेम की न्यूनता—उत्तर भारत दास होने लगा। व्यसन और खण्ड खण्ड राज्य का यह अवश्यंभावी फल था। भारतीय ऐतिहासिकों को राजाश्रय मिलना बन्द हो गया। जन साधारण कष्ट में पड़ने लगे। सिन्धु, पंजाब और मथुरा तक दासता का उग्ररूप प्रकट होने लगा। उन दिनों विदेशी मुसलमान राजाओं को ज्योतिष शास्त्र की आवश्यकता पड़ती थी। यह विद्या इन प्रदेशों में बची रही। इतिहास का यहां कोई महत्व नहीं रहा। इसीलिए संवत् १०८७ में अरबी ग्रन्थ लिखने वाला मुसलमान यात्री अलबेरूनी लिखता है—

दुर्भाग्य से हिन्दू लोग बातों के ऐतिहासिक क्रम पर बहुत अल्प ध्यान देते हैं। अपने राजाओं की कालक्रमानुगत परम्परा का वर्णन करने में वे बड़े असावधान हैं। जब उन पर जानकारी के लिए बल दिया जाए, और न जानने के कारण वे कुछ बता न सकें, तब वे सदा कहानियां सुनाने लग जाते हैं। इति, (उनचासवां परिच्छेद)।

सन्देह नहीं, अलबेरूनी यहां उन हिन्दुओं का कथन करता है, जिन के साथ उसका समागम हुआ। अन्यथा जिन आर्य राजाओं का वर्ष वर्ष का वृत्तान्त लिपिबद्ध हो जाता था, उनका इतिवृत्त जानने वाले लोगों के विषय में वह ऐसा न कहता। एक दूसरे स्थान में उन पददलित और विद्या-विरहित हिन्दुओं के विषय में वह स्वयं कहता है—

महमूद ने भारत के ऐश्वर्य को सर्वथा नष्ट कर दिया, और यहां ऐसे ऐसे अद्भुत पराक्रम दिखाए कि हिन्दू मृत्तिका के परमाणुओं की भांति चारों ओर बिखर गए, और

---

१. बील का अंग्रेजी अनुवाद, भाग २, पृष्ठ १६१।

उनका नाम लोगों के मुख में एक प्राचीन कथा के समान ही रह गया।.........हिन्दू विद्याएं हमारे द्वारा विजित देशों से भाग कर कश्मीर, बनारस आदि सुदूर स्थानों में चली गई हैं, जहां हमारा हाथ नहीं पहुंच सकता, इति।

इससे निश्चित होता है कि अलबेरूनी के काल में सिन्धु, पञ्जाब और मथुरा तक अन्य अनेक विद्याओं के समान इतिहास विद्या का अभाव सा हो गया था। मध्य भारत और दक्षिण आदि देशों में इतिहास विद्या कुछ २ बची थी। धारा नगरी में महाराज भोज के पास साधारण इतिहास जानने वाले दो चार व्यक्ति अवश्य थे। उन दिनों के पद्मगुप्त और काश्मीरक बिल्हण इसी अति साधारण कोटि के लेखक थे। पद्मगुप्त का नव साहसाङ्क चरित बताता है कि कभी पहले कोई साहसाङ्क चरित भी था।

काश्मीर की राजतरङ्गिणी—जब सिन्धु, पञ्जाब और मथुरा तक के प्रदेशों में इतिहास विद्या का अभाव हो रहा था, तथा जब धारा के अन्तिम बली आर्यराजा की ब्रह्मसभा के कुछ पण्डित इतिहास का कुछ कुछ रक्षण कर रहे थे, तब कश्मीर देश स्वतन्त्र, यद्यपि गृह कलहपूर्ण था। उस समय से थोड़ा पश्चात् कश्मीर में एक अच्छा ऐतिहासिक हुआ। उसका नाम था कल्हण। उसने शक शती बारहवीं में काश्मीर की राजतरंगिणी लिखकर भारत पर बड़ा उपकार किया। उसका ग्रन्थ बारह पुरातन इतिहास ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया। उसकी राजतरंगिणी अच्छी विवेचना का फल है। इससे ज्ञात होता है कि काश्मीर के विद्वान् वहां का इतिहास चिरकाल से लिखते आए थे। उस इतिहासशून्य युग का यह एक उज्ज्वल ग्रन्थ है।

चन्द बलिद्दक—उस काल में पृथ्वीराज चौहान (विक्रम सं०१२३०) के सखा और सामन्त लाहौर में लब्धजन्म चन्द बलिद्दक ने अपना ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो लिखा। इस ग्रन्थ को कई लोग जालग्रन्थ कहते हैं। इस ग्रन्थ में प्रक्षेप बहुत हैं, पर सारा ग्रन्थ अप्रामाणिक नहीं है। इसके सुसम्पादन की महती आवश्यकता है। जैन मुनि जिनविजय जी ने जो पुरातन प्रबन्ध संग्रह नाम का लगभग संवत् १५०० से पूर्व का ग्रन्थ सिंघी जैन ग्रन्थ माला में प्रकाशित किया है,[1] उसमें रासो के चार पद्य उद्धृत हैं।[2] अतः रासो ग्रन्थ पुराना है और उसके सम्बन्ध में गवेषणा की महती आवश्यकता है। रासो ग्रन्थ के साथ का पृथ्वीराजविजय काव्य भी अल्प महत्व का ग्रन्थ नहीं है। रासो में एक संवत् प्रयुक्त है, जो विक्रम से ९०-९१ वर्ष पश्चात् चला। उसके सम्बन्ध में विद्वानों को बड़ा ऊहापोह करना पड़ा है। रहा है यह संवत् उनकी समझ से परे। अभी भारतकौमुदी नामक प्रशस्ति ग्रन्थ के दूसरे भाग में श्री माधव कृष्ण शर्मा का एक लेख छपा है। उसका आधार लगभग २०० वर्ष से अधिक पुराना एक हस्तलिखित ग्रन्थ है। उस ग्रन्थ में राजस्थान के अनेक पुराने लोगों की जन्म-तिथियां तथा कुण्डलियां दी गई हैं। उसमें महाराज पृथ्वीराज चौहान की जन्म-तिथि भी दी गई है। यह तिथि रासो में प्रयुक्त संवत् में है।[3] यदि यह ग्रन्थ इस

१. प्रकाशन संवत् १९९२।

२. पृ० ८६,८८।

३. संवत् १११५ वर्षे वैशाख वदि २ गुरौ चित्रानक्षत्रे। सिद्धियोगे। गर नाम करणे। श्री पृथ्वीराज चहवाण जन्म। मेषलग्न मध्ये। भारत कौमुदी, भाग २, पृ० ७५३।
One Hundred and Fifty five Dates in the History of Rajasthan (p. 747-764).

तिथि की रासो से प्रतिलिपि नहीं कर रहा तो इस संवत् के प्रचलित रहने में एक और प्रमाण मिला समझना चाहिए।

जैन लेखकों का प्रयास—हेमचन्द्राचार्य तथा मेरुतुङ्ग आदि ग्रन्थकार भी कुछ ऐतिहासिक सामग्री सुरक्षित कर गए हैं।

अबुलफ़ज़ल के पास पुरातन ऐतिहासिक सामग्री—अबुलफ़ज़ल ने मुग़ल सम्राट् अकबर के राज्य में आईन-ए-अकबरी नामक एक इतिहास ग्रन्थ लिखा। उसमें देहली, उज्जयिनी, कामरूप, आसाम आदि सूबों (=विषयों) का उल्लेख पाया जाता है। उसका वंशावलियों वाला भाग पुरातन इतिहास ग्रन्थों के आधार के विना लिखा नहीं जा सकता था। यदि अबुल फ़ज़ल उनका विशद और सद् उपयोग करता, तो भारतीय इतिहास की कुछ अधिक रक्षा हो जाती।

इतिहास-विद्या तथा इतिहास प्रेम का नाश

भारत में अंग्रेज़ों का आगमन—यहां तक इतिहास की परम्परा कुछ कुछ बनी रही। भारत में विद्या का ह्रास हुआ, लोग अशिक्षित होते गए, पर इतने नहीं, जितने संवत् १८०० से संवत् १६८० तक हुए। महाराज रणजीतसिंह के राज्य काल के पश्चात् संवत् १६१५ के समीप पंजाब में लगभग ६० प्रतिशत जन साक्षर थे। यह एक अंग्रेज का लेख है। संवत् १६४० के समीप यहां १ प्रतिशत जन साक्षर रह गए। इस प्रकार समय बीता। अंग्रेज समस्त भारत के राजा बने। उन्हें इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान् यहां नहीं मिले। फिर भी थोड़ा थोड़ा इतिहास जानने वाले, थे यहां अवश्य। ऐसे ही जैन विद्वान् ने कर्नल जेम्स टाड को उनका राजस्थान-विषयक इतिहास ग्रन्थ लिखने में सहायता दी।

अंग्रेज़ों ने कल्पित इतिहास लिखने आरम्भ किए—शताब्दियों की राजनीतिक दासता के कारण आर्षविद्या और साधारण संस्कृत विद्या का यहां ह्रास हो रहा था। पठित कहे जाने वाले लोग केवल अंग्रेज़ी के दस बीस ग्रन्थ पढ़े होते थे। ऐसी अवस्था में इतिहास एक मृतप्राय विषय था। इसके सूक्ष्म तत्त्व दर्शाने वाले पण्डित यहां नहीं थे। ऐसे टक्कर लेने वाले मर्मदर्शी ऐतिहासिकों के अभाव में अंग्रेज लेखकों ने लिखना आरम्भ किया कि भारत के लोग इतिहासप्रिय नहीं थे। इसमें अंग्रेज का एक उद्देश्यविशेष था। इस उद्देश्य को अपना कर अधिकांश जर्मन और अंग्रेज लेखकों ने भारत-इतिहास लिखने का काम आरम्भ किया, और उसमें अगणित निराधार कल्पनाएं करने लगे। इन सारहीन कल्पनाओं से भारतीय इतिहास सर्वथा विकृत हो गया।

पूर्वपक्षी का प्रथम आक्षेप—हमारा पूर्वोक्त लेख पढ़ कर वर्तमान काल के अंग्रेज़ी शैली से पठित अनेक लोग प्रश्न करेंगे कि संस्कृत वाङ्मय के पुरातन ग्रन्थों का जो काल-क्रम हमने लिखा है, वह सत्य नहीं। योरुपीय लेखकों ने भाषा-विज्ञान के आधार पर जो कालक्रम लिखा है, वह सत्य है। इस पर हमारा उत्तर है कि जर्मन-देश के लेखकों ने जो भाषा विज्ञान-शास्त्र लिखा है, वह दोष-पूर्ण और उच्छृङ्खल है। उसमें सत्य का अंश स्वल्प, और कल्पना का अंश अत्यधिक है। उस पर आश्रित भारतीय वाङ्मय की तिथियां अशुद्ध हैं। भाषाविषयक जर्मन-

वादों का किञ्चित् निराकरण आगे और विशाल खण्डन हमारे अन्य ग्रन्थों में होगा। इस इतिहास में वर्णित घटनाओं से भी उसका स्वाभाविक खण्डन पाठक को आगे यत्र तत्र मिलेगा।

दूसरा आक्षेप—इसके अतिरिक्त एक और प्रश्न है जो कई विचारक करेंगे। वे कहेंगे कि पुरातन संस्कृत वाङ्मय में इतिहास शब्द भले ही विद्यमान रहा हो और इतिहास पुस्तकें भी प्राचीन काल से लिखी चली आती हों, पर जिस वैज्ञानिक और परिष्कृत अर्थ में यह शब्द अब प्रयुक्त होता है, और यादृश इतिहास अब लिखे जाते हैं, उस प्रकार के इतिहास ग्रन्थ भारत में पहले कभी न थे। यह एक कोरी गप्प है। भारत में जब महाभारत ग्रन्थ के पढ़ानेवाले विद्वान् उत्पन्न हो जाएंगे, तब ऐसा कथन कोई ज्ञानवान् न करेगा। वस्तुतः पुरातन इतिहास ही इतिहास थे और उनमें सत्य घटनाओं का यथार्थ वर्णन और निष्पक्षता थी।

जर्मन लेखक अडोल्फ केगी लिखता है, कि पुरातन संस्कृत वाङ्मय अर्थात् ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में इतिहास शब्द का अर्थ "लीजेण्ड" है।[1] यह उसका भ्रममात्र है। वैवस्टर ने लीजेण्ड का अर्थ लिखा है—कोई कहानी जो प्राचीनकाल से चली आ रही है, विशेषतया, जिसे प्रायः लोग ऐतिहासिक-कहानी मानते हैं, परन्तु उसकी ऐतिहासिकता प्रमाणित नहीं हो सकती, इति।[2] भारतीय इतिहासों की प्रामाणिकता हमारे इतिहास से सिद्ध होगी। फिर विद्वान् जानेंगे कि भारतीय इतिहासों के विरुद्ध योरुप के ईसाई, यहूदी लेखकों ने कैसा पक्षपातपूर्ण आन्दोलन खड़ा किया है। और इतिहास शब्द का अर्थ बिगाड़ने का इन को क्या अधिकार था।

इसी प्रकार इतिहास आदि शब्दों के यथार्थ तत्व को न जानते हुए अथवा आर्यविद्या की सत्यता से भयभीत ईसाई पक्षपाती मैकडानल और कीथ अपने वैदिक इण्डेक्स में 'इतिहास" शब्द की विकृत व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

सीग विचारता है कि इतिहास पुराण का संकेत, उस विशालकाय, कल्पित और कहानी रूपी इतिहास से, अथवा सृष्टि उत्पत्ति की कल्पित कथाओं से है, जो वैदिक ऋषियों को उपलब्ध थीं, और स्थूलरूप से पांचवें वेद की श्रेणी में रखी जाती थीं, यद्यपि निश्चित और अन्तिम रूप में उनकी स्थिति निर्धारित नहीं थी।[3]

मैकडानल की अपेक्षा जर्मन लेखक सीग कुछ अधिक विचारवान् है, पर इस स्थान में उसने भी पक्षपात से काम लिया है। वैदिक ऋषियों को पुरानी घटनाओं के इतिहास सुविदित थे। वे सत्य और सर्वसम्मत थे, वे कल्पित नहीं थे। बृहस्पति, उशना, भरद्वाज, भीष्म, द्रोण और कौटल्य आदि अर्थशास्त्रकार केवल वेदमन्त्र-सम्बन्धी आख्यानों को ही इतिहास नहीं मानते थे। उनके सामने राजनीतिक घटनाओं से ओतप्रोत इतिहास ग्रन्थ उपस्थित थे। मैकडानल और कीथ, जो थोड़ी सी संस्कृत-विद्या पढ़े थे, भला इस बात को क्या जानें।

---

1. The Rigveda, Notes, p. 105.
2. Any story coming down from the past, especially one popularly taken as historical though not verifiable. Websters collegiate Dictionary, 1947.
3. Sieg considers that the word Itihāsa and Purāna referred to the great body of mythology, legendry history, and cosmogonic legend available to the Vedic poets, and roughly classed as a fifth Veda, though not definitely finally fixed. Vol. I. p. 77.

तथा च केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया के नाम से जो ग्रन्थ इङ्गलैण्ड में लिखा गया है, और जिसे वर्तमान पाश्चात्य पद्धति के लेखक वैज्ञानिक (scientific) इतिहास कहते हैं, वह यथार्थ विज्ञान से कोसों दूर है। उसके प्रथम भाग में प्रति पृष्ठ कितनी अशुद्धियां हैं, यह हमारे इतिहास के अगले पृष्ठों से स्पष्ट हो जायगा।

जर्मन विचार-धारा के उच्छिष्टभोजी एक अन्य अंग्रेज लेखक ने इसी प्रकार का एक और विचार लिखा था—

बहुत प्राचीन काल में भारत में किसी व्यक्ति ने यह नहीं सोचा कि वह बैठ कर देश में होनेवाली सुनी या देखी हुई घटनाओं का इतिवृत्त लिखे, फलतः मुसलमान-विजय तक भारत में कोई प्रामाणिक इतिहास नहीं लिखा गया।[1]

यह ग्रन्थ भारत में सर्वत्र पढ़ाया गया और अंग्रेजों ने इस प्रकार से भारत पर सांस्कृतिक विजय प्राप्त की। वर्तमान शिक्षित समाज इसी प्रकार के विचारों के संस्कारों में पला है। ऐसे लोग तो आमूलचूल सत्य शिक्षा प्राप्त करके ही यथार्थ वैज्ञानिक मार्ग देखेंगे।

इन शब्दों के साथ इस अध्याय की समाप्ति की जाती है।

इति द्वितीयोऽध्यायः।

1. In very ancient times in India no one ever thought of sitting down and writing an account of the events which he saw or heard of as occuring in the country and in consequence of this negligence no trustworthy history was written in India until after the Mohammaden conquest The History of India by Sir Roper Lethbridge, K.C.I.E., M.A. First printed 1875, Revised and corrected 1893; edition 1902, p. 13.

तृतीय अध्याय

भारतीय इतिहास की विकृति के कारण

योरुप वासियों में भारत और संस्कृत के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ—संवत् १८१४ में प्लासी का भारत-भाग्य-निर्णायक युद्ध हुआ। इस युद्ध के पश्चात् वङ्गदेश विदेशीय अंग्रेजों के आधिपत्य में चला गया। सन् १७८३ अथवा संवत् १८४० में कलकत्ता के फोर्टविलियम नामक अंग्रेजी उपनिवेश में सर विलियमजोन्ज़ प्रधान न्यायाध्यक्ष बना। उसने संवत् १८४६ में महाकवि कालिदासकृत शकुन्तला नाटक का अंग्रेजी अनुवाद किया। संवत् १८५१ में इसी महाशय ने मनु के धर्मशास्त्र का अंग्रेजी अनुवाद किया। इसी वर्ष जोन्ज़ का देहान्त हो गया। जोन्ज़ के कनिष्ठ सहकारी हैनरी टामस कोलब्रुक ने संवत् १८६२ में "आन दि वेदास" नामक एक वेद-विषयक निबन्ध लिखा। संवत् १८७५ में जर्मन देश के "बान" विश्वविद्यालय में आगस्ट विल्हैल्म फान श्लैगल प्रथम संस्कृताध्यापक बना। इसका भ्राता फ्राइड्रिश श्लैगल था। दोनों भ्राताओं ने संस्कृत के प्रति अगाध श्रद्धा दिखाई। आगस्ट श्लैगल के साथ इर्न विल्हैल्म फान हम्बोल्ट नाम का एक और संस्कृत-भाषा-भक्त काम में लगा। श्लैगल के कारण हम्बोल्ट गीता की ओर झुका। संवत् १८८३ में उसने अपने एक मित्र को लिखा—"यह कदाचित् गम्भीरतम और उच्चतम वस्तु है, जो संसार ने दिखानी है।"[1] इसी युग में प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक आर्थर शोपेन हावर (संवत् १८३५-१९१७) हुआ। उस ने फ्रैञ्च लेखक अङ्क्वेटिल डूपेरोन का उपनिषदों का लैटिन अनुवाद (संवत् १८५८-१८५९) पढ़ा। उसके हृदय और बुद्धि पर उपनिषदों की छाप पड़ी। उसने लिखा—"उपनिषदें सर्वोच्च मानव बुद्धि की उपज हैं।"[2] "इनमें लगभग अतिमानुष विचार हैं।"[3] "यह सब से अधिक सन्तोषप्रद और उन्नत करनेवाला है (मूल ग्रन्थ के पाठ के अतिरिक्त) जो संसार में संभव है। यह मेरे जीवन के लिए आश्वासन रहा है, और यह मेरी मृत्यु के लिए आश्वासन होगा।............। हमारी शताब्दी की सब से बड़ी देन है।"[4] उसने भविष्यवाणी की कि उपनिषद् ज्ञान पश्चिम का भी सर्वप्रिय विश्वास हो जायगा। यह सुविख्यात है कि लैटिन "औपनेखत्" ग्रन्थ उसकी मेज पर खुला पड़ा रहता था, और विश्राम से पूर्व वह इसमें अपनी आराधना किया करता था।

---

1. It is perhaps the deepest and loftiest thing the world has to show.
2. The production of the highest human wisdom.
3. Almost superhuman conceptions p. 266.
4. It is the most satisfying and elevating reading (with the exception of the original text) which is possible in the world; it has been the solace of my life and will be the solace of my death. विण्टर्निट्ज़ का भारतीय वाङ्मय का इतिहास, अंग्रेजी अनुवाद, प्रथम भाग, पृ० २६७।

इस प्रेम का प्रभाव—ऐसे लेखों से अनेक जर्मन विद्वानों की भक्ति संस्कृत के प्रति बढ़ी। उन्होंने भारतीय संस्कृति को बड़ा महत्त्वशाली समझना आरम्भ किया। संस्कृत विद्या और भारतीय संस्कृति के प्रति भक्ति के इस प्रभाव को जर्मन अध्यापक विएटर्निट्ज़ ने बड़े सुन्दर शब्दों में लिखा है—

"जब भारतीय वाङ्मय पश्चिम में सर्वप्रथम विदित हुआ, तो लोगों की रुचि भारत से आने वाले प्रत्येक साहित्यिक ग्रन्थ को अति प्राचीन युग का मानने की थी। वे भारत पर इस प्रकार दृष्टि डाला करते थे, मानो वह मनुष्यमात्र की अथवा न्यून से न्यून मानव सभ्यता की दोला के समान है।"[1]

यह प्रभाव स्वाभाविक और सत्य था। इसमें कृत्रिमता नहीं थी। भारतीय विद्वानों ने जो स्थूल ऐतिहासिक तथ्य बताये, वे परम्परागत अनवच्छिन्न सत्य पर आश्रित थे। उन्हें मान कर ये लेखक ऐसा कहने लगे थे। वे उदार थे और संकीर्ण विचार के नहीं थे।

जिस समय जर्मनी आदि देशों में एक ओर यह रुचि थी, वहां दूसरी ओर, प्रतीत होता है, अनेक लोगों को यह बात अखर रही थी। वे लोग किस कारण ऐसे थे?

प्रथम कारण

यहूदी और ईसाई पक्षपात—बहुत पुराने यहूदी आर्यों के वंशज थे। उनके विश्वास आर्यों के विश्वास थे। उनका आदम संसार का मूलपुरुष आत्मभू ब्रह्मा था। ब्रह्मा ने संसार के आरम्भ में सब पदार्थों के नाम रखे। आदम ने अनेक पदार्थों के नाम रखे, ऐसी अनुश्रुति यहूदियों में है। ये यहूदी लोग उत्तरकाल में अपना इतिहास भूले। वे संकीर्ण विचार के होगए। यहूदियों को अभिमान था कि "उनकी जाति सब जातियों में प्राचीनतम है।"[2] यहूदी लोग मानने लगे कि ईसापूर्व ४००४ वर्ष में आदम का जन्म हुआ। इस तिथि को सत्य मानकर लाटपादरी अशर ने संसार के इतिहास का जो तिथिक्रम निश्चित किया, वह उनको मान्य था।[3] भारतीय इतिहास की पुरातनता उनको बहुत बुरी लगती थी। इसका प्रमाण ए०एच० सेस के लेख (संवत् १९८७) के निम्नलिखित शब्दों से मिलता है—"परन्तु जहां तक मनुष्य का सम्बन्ध था, उसका इतिहास अभी तक हमारी बाईबिल के प्रान्तों पर लिखी गई तिथियों से सीमित था। भूतल पर मनुष्य के अचिरकालीन आविर्भाव का यह पुराना विचार आज भी उन लोगों में व्याप्त है, जहां हमें इसके होने की सब से न्यून आशा करनी चाहिए और कथित सूक्ष्मदर्शी ऐतिहासिक प्राचीन इतिहास की तिथियों की पुरातनता के न्यून करने में यत्नशील रहते हैं।.........मनुष्यों की उस पीढ़ी के लिए जो इस विचार में पली कि

---

1. When Indian literature became first known in the West, people were inclined to ascribe a hoary age to every literary work hailing from India. They used to look upon India as something like the cradle of mankind, or atleast of human civilization. कलकत्ता विश्वविद्यालय में व्याख्यान, मास अगस्त, सन् १९११, पृ० १।
2. That the Jewish race is by far the oldest of all these. Fragments of Megasthenes, p. 103.
3. "Archbishop Usher's famed chronology, which so long dominated the ideas of man." Historians history of the world, Vol. I, 1908, p. 626.

ईसापूर्व ४००४ वर्ष अथवा उसके आस पास संसार उत्पन्न किया जा रहा था, यह विचार कि मनुष्य ही एक लाख वर्ष से पुराना है, विश्वास के अयोग्य और बुद्धि के अगम्य था।[1]

अन्वेषक सेस का लेख अति स्पष्ट है। ऐसी ही और सम्मतियां उद्धृत की जा सकती हैं। पर विद्वान् इतने लेख से सब समझ सकते हैं। इस पक्षपात से प्रभावित योरुप में संस्कृत का अध्ययन आगे बढ़ने लगा। संवत् १८५८-१८६७ तक इयूजेन बर्नफ नाम का एक संस्कृताध्यापक फ्रांस में था। उसके शिष्य रुडल्फ राथ और मैक्समूलर दो जर्मन थे।

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की बोडन अध्यापक-आसन्दी का उद्देश्य—संवत् १८९० में होरेस हेमन विलसन आक्सफोर्ड का बोडन महोपाध्याय बना। कर्नल बोडन ने जिस उद्देश्य से आक्सफोर्ड के विश्वविद्यालय को इस महोपाध्याय की आसन्दी बनाने के लिए विपुल दान दिया था, उसका उल्लेख दूसरे बोडन महोपाध्याय मोनियर विलियम्स ने निम्नलिखित शब्दों में किया है—

मुझे इस स्थिति की ओर अवश्य ध्यान आकर्षित करना चाहिए कि मैं बोडन आसन्दी का दूसरा पूरक हूँ। और इसके संस्थापक कर्नल बोडन ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में अपने स्वीकारपत्र (मास अगस्त, सन् १८११=संवत् १८६८) में लिखा, कि उसकी इस अति विपुल भेंट का उद्देश्यविशेष यह था कि ईसाई धर्मग्रन्थों का संस्कृत में अनुवाद किया जाए, जिससे भारतीयों को ईसाई बनाने के काम में अंग्रेज़ आगे बढ़ें। इति।[2]

इस बोडन आसन्दी का प्रथम अध्यापक होरेस हेमन विलसन एक भला व्यक्ति था, पर अपने अन्नदाता के भावों के प्रति उसका कुछ कर्तव्य था। उसने एक पुस्तक लिखी—हिंदुओं की धार्मिक और दार्शनिक पद्धति।[3] इस पुस्तक के निर्माण के उद्देश्य में लिखा गया है कि—

ये व्याख्यान जान मूर के दो सौ पाउण्ड के पारितोषिक के लिए छात्रों को सहायता देने के निमित्त लिखे गए थे। यह मूर एक बड़ा संस्कृत विद्वान् और हेलिबरी का प्रसिद्ध वृद्ध पुरुष था। पारितोषिक का उद्देश्य था—हिन्दू धार्मिक पद्धति का अतिश्रेष्ठ खण्डन।[4]

---

1. But as far as man was concerned, his history was still limited by the dates in the margins of our Bibles. Even today the old idea of his recent appearance still prevails in quarters where we should least expect to find it and *so-called critical historians* still occupy themselves in endeavouring to reduce the dates of his earlier history......................To a generation which had been brought up to believe that in 4004 B. C or thereabouts, the world was being created the idea that man himself went back to 100,000 years ago was both incredible and inconceivable." Antiquity of civilized Man. Journal of the Royal Anthropological Institute of Great Britain and Ireland. Vol. 60, July-Dec. 1930.
2. I must draw attention to the fact that I am only the second occupant of the Boden Chair, and that its founder, Colonel Boden, stated most explicitly in his will (dated August 15,1811) that the special object of his munificent bequest was to promote the translation of Scriptures into Sanskrit; so as to enable his countrymen to proceed *in the convertion of the natives of India to the Christean Religion.* Sanskrit-English Dictionary, by Sir Monier Williams, preface, p. IX, 1899.
3. The Religious and Philosophical system of the Hindus.
4. These lectures were written to help candidates for a prize of £200 given by John Muir, a well known old Haileybury man and great Sanskrit scholar,—for the best refutation of the Hindu Religious system. Eminent Orientalists, Madras, p. 72.

ये लेखक आर्य संस्कृति का कितना यथार्थ चित्र खींचेंगे, विद्वान् स्वयं जान सकते हैं। ऐसे ही पूर्व वर्णित राथ ने संवत् १६०३ में "सुर लिट्टरेटर उण्ट गैशिख्टे डस वेद" (वैदिक साहित्य और वेद के इतिहास पर) ग्रन्थ लिखा। राथ ने संवत् १६०६ में निरुक्त ग्रन्थ मुद्रित किया। उसे अपनी विद्या का व्यर्थ अभिमान था। उसने लिखा कि जो भाषा-विज्ञान शास्त्र जर्मन अध्यापकों ने बनाया है उसके द्वारा वेदमन्त्रों का निरुक्त से अधिक अच्छा अर्थ किया जा सकता है।[1] इस प्रकार की और कई अनर्गल बातें उसने लिखीं। उसके अभिमान की प्रतिध्वनि ह्विटने के लेख में भी पाई जाती है—"जर्मन पद्धति के नियम एकमात्र ऐसे नियम हैं, जो वेद के सत्यता से समझे जाने का मार्ग दिखा सकते हैं।"[2]

मैक्समूलर—उसका सहपाठी मैक्समूलर था। इसका नाम भारतीय जनता में बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसके दो कारण थे। प्रथम था उसका बहु-ग्रन्थ निर्माण कर्म। दूसरा था स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा व्याख्यानों और लेखों में उसका कठोर खण्डन। अतः स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यान सुनने वालों में मै० मू० के नाम की बहुत प्रसिद्धि थी। मै० मू० के भाव उस के निम्नलिखित वचनों से जाने जा सकते हैं—

क—वैदिक सूक्तों की एक बड़ी संख्या परम बालिश, जटिल, अधम और साधारण है।[3]

आर्यधर्म और मनुष्यमात्र के परमपवित्र धर्मग्रन्थ के सम्बन्ध में ऐसा लेख कोई ईसाई मत पक्षपातान्ध अथवा ज्ञानशून्य नास्तिक व्यक्ति ही लिख सकता है। ईसाई धर्म के अतिरिक्त मै०मू० प्रत्येक धर्म का हृदय से विरोधी था। जर्मन अध्यापक डाक्टर स्पीगल ने एक लेख लिखा कि यहूदी धर्म में जो उत्पत्ति का विश्वास है, वह पारसी धर्म से लिया गया है। मै०मू० को यह रुचिकर नहीं लगा। उसने स्पीगल की आलोचना करते हुए लिखा—

डाक्टर स्पीगल सदृश लेखक को जानना चाहिए कि वह किसी दया की आशा नहीं कर सकता, नहीं, उसे स्वयं किसी दया की इच्छा नहीं करनी चाहिए। बाइबिल की आलोचना के तूफानी जलों में गोले बरसाने वाला जो जलपोत उसने उतारा है, उसके विरुद्ध उसे गोलों की भारी बौछाड़ को निमन्त्रित करना चाहिए।[4] इति।

डाक्टर स्पीगल का मत इस अंश में ठीक था, यह हमारे इतिहास के पाठ से स्पष्ट होगा।

एक दूसरे लेख में मैक्समूलर ने पुनः लिखा—

इन सब बातों के होने पर भी, यदि बहुत लोग जो निर्णय करने में योग्यतम हैं, पारसियों के मत परिवर्तन करने में विश्वास से आगे की ओर देखते हैं, तो इसका कारण

---

१. राथ ने निरुक्त के संस्करण की अपनी भूमिका में ऐतरेय ब्राह्मण के एक वचन का भ्रष्ट अनुवाद किया। गोल्डस्टकर ने उस अशुद्ध अनुवाद पर लिखते हुए राथ की योग्यता पर उपहास किया है।

2. 'The principles of the 'German school' are the only ones which can ever guide us to a true understanding of the Veda." Whitiney, A.M. Or. Soc. Proc. Oct. 1867.

3. Large number of Vedic hymns are childish in the extreme: tedious, low, common place. Chips from a German Workshop, second edition, 1866, p. 27.

4. A writer like Dr. Spiegel should know that he can expect no mercy; nay, he should himself wish for no mercy, but invite the heaviest artillery against the floating battery which he has launched into the troubled waters of Biblical criticism. Chips:—Genesis and the Zend Avesta, p. 147.

है। पारसी लोग परम आवश्यक बातों में ईसाई धर्म के पवित्र सिद्धान्तों के समीप बिना जाने पहले ही आगए हैं। उन्हें केवल ज़न्द अवस्ता पढ़नी चाहिए, जिसमें विश्वास रखने की बात वे कहते हैं और उन्हें पता लगेगा कि उनका मत अब यज्न, वेन्डिडड और विसपेरेड का मत नहीं है। ये ग्रन्थ यदि जीर्ण-ऐतिहासिक-सामग्री के रूप में व्याख्यात किए जाएं, तो पुरातन संसार के पुस्तकालय में सदा प्रमुख स्थान रखेंगे। धार्मिक विश्वास के प्रवक्ताओं के रूप में वे नष्ट हैं, और जिस युग में हम रहते हैं, उसके सर्वथा विपरीत हैं।[1] इति।

इस विषय में मैक्समूलर को पारसी लोगों को स्वयं उत्तर देना चाहिए। हमारा यहां इतना वक्तव्य है कि इस लेख में भी मै० मू० का ईसाई पक्षपात अत्यन्त स्पष्ट है। इन विचारों में पले हुए मै० मू० आदि लोगों ने यदि कहीं २ भारतीय संस्कृति की प्रशंसा की है, तो इस संस्कृति की अद्वितीय और अनुपम महत्ता के कारण।

मैक्समूलर और जैकालियट—चन्द्रनगर के प्रधान न्यायाधीश फ्रैञ्च विद्वान् लुई जैकालियट ने संवत् १९२६ में La Bible Dans Linde ("भारत में बाइबिल") नामक एक ग्रन्थ लिखा। एक वर्ष पश्चात् संवत् १९२७ में उसका अंग्रेजी अनुवाद मुद्रित हो गया। उस ग्रन्थ में जैकालियट महाशय ने सिद्ध किया कि संसार की सब प्रधान विचार-धाराएं आर्यविचार से निकली हैं। उसने भारत को "मनुष्यमात्र की दोला" लिखा—

"प्राचीन भारत भूमि, मनुष्य जाति के जन्मस्थान (दोला)[2] तेरी जय हो! पूजनीय और समर्थ धात्री, जिस को नृशंस आक्रमणों की शताब्दियों ने अभी तक विस्मृति की धूल के नीचे नहीं दबाया, तेरी जय हो! श्रद्धा, प्रेम, कविता और विज्ञान की पितृभूमि तेरी जय हो! क्या कभी ऐसा दिन भी आयेगा, जब हम अपने पाश्चात्य देशों में तेरे अतीत काल की-सी उन्नति देखेंगे।"[3]

मैक्समूलर को यह पुस्तक बहुत बुरी लगी। उसने इसकी आलोचना में लिखा कि जैकालियट "अवश्य ब्राह्मणों के धोखे में आया है"।[4]

मैक्समूलर के पत्र—किसी के पत्र उसके हार्दिक भावों का चित्र होते हैं। पत्रों में व्यक्ति अपना स्पष्ट चरित्र लिपिबद्ध करता है। सौभाग्य से मैक्समूलर के अनेक पत्रों का संग्रह छपा है।[5] उनमें उसके अन्तरतम विचार निहित हैं। उन पत्रों से कुछ उद्धरण आगे दिए जाते हैं। इनसे उसकी पक्षपातपूर्ण ईसाई मनोवृत्ति का दिग्दर्शन होगा।

---

1. If in spite of all this, many people, most expetent to judge look forward with confidance to the conversion of the Parsis, it is because, in the most essential points, they have already, though unconsciously, approached as near as possible to the pure doctrines of Christianity. Let them but read Zend Avesta, in which they profess to believe, and they will find that their faith is no longer the faith of the Yasna, the Vendidad and the Vispered. As historical relics, these works, if critically interpreted, will always retain a preeminent place in the great library of the ancient world. As oracles of religious faith, they are defunct, and a mere anachronism in the age in which we live. Chips........, The Modern Parsis, p. 180.
2. Cradle of humanity.
३. [illegible] भाषानुवाद, प्रथम अध्याय, आरम्भ।
४. The author seems to have been taken in by the Brahmans in India.
५. Life and letters of Frederich Max Muller, Two Vols.

(क) सन् १८६६=संवत् १९२३ के एक पत्र में वह अपनी स्त्री को लिखता है—

वेद का अनुवाद और मेरा (सायण भाष्य सहित ऋग्वेद का) यह संस्करण उत्तर काल में भारत के भाग्य पर दूर तक प्रभाव डालेगा। यह उनके धर्म का मूल है, और मैं निश्चय से अनुभव करता हूँ कि उन्हें यह दिखाना कि यह मूल कैसा है, गत तीन सहस्र वर्ष में उससे उपजने वाली सब बातों के उखाड़ने का एक मात्र उपाय है।[1]

(ख) एक पत्र में वह अपने पुत्र को लिखता है—

संसार की सब धर्मपुस्तकों में से नई प्रतिज्ञा (ईसा की बाइबिल) उत्कृष्ट है। इस के पश्चात् कुरान, जो आचार की शिक्षा में नई प्रतिज्ञा का रूपान्तर है, रखा जा सकता है। इसके पश्चात् पुरातन प्रतिज्ञा, दाक्षिणात्य बौद्ध त्रिपिटक, वेद और अवेस्ता आदि हैं।[2]

(ग) १६ दिसम्बर सन् १८६८ अथवा संवत् १९२५ में भारत सचिव, ड्यूक आफ आर्गाइल को वह एक पत्र में लिखता है—

भारत का प्राचीन धर्म नष्टप्राय है, और यदि ईसाई धर्म उसका स्थान नहीं लेता, तो यह किस का दोष होगा।[3]

(घ) २६ जनवरी सन् १८८२ अथवा सं० १९३६ में उसने बाइरामजी मालाबारी को लिखा—

.........मैं केवल पाश्चात्य या ईसाई दृष्टि से नहीं, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से बताना चाहता था कि पुरातन धर्म (वेदधर्म) का सत्य ऐतिहासिक मूल्य क्या है।.........परन्तु अब तुम इस (वेदधर्म) में वाष्प यन्त्र, विद्युत् और पाश्चात्य दर्शन और आचार का आविष्कार करते हो, तो तुम इसका सत्य स्वरूप नष्ट करते हो।[4]

मैक्समूलर गर्व करता है कि यह वेदधर्म का ऐतिहासिक मूल्य बता रहा है। इतिहास शास्त्र में उसकी और उसके साथियों की योग्यता का परिचय हमारे इतिहास के अगले पृष्ठों में मिलेगा।

वेबर का पक्षपात—जिस समय ईसाई पक्षपात के कारण मैक्समूलर भारतीय संस्कृति और इतिहास को विकृत कर रहा था, उस समय अध्यापक अलबर्ट वेबर भी इस काम में

1. ....This edition of mine and the translation of the Veda will here after tell to a great extent on the fate of India, ...It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure, is the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years.
2. Would you say that anyone sacred book is superior to all others in the world ?........ I say the New Testament. After that, I should place the Koran, which in its moral teachings, is hardly more than a later edition of the New Testament. Then would follow,...............the old Testament, the Southern Buddhist Tripitaks, ... — The Vedas and the Avesta.
3. The ancient religion of India is doomed and if Christianity does not step in, whose fault will it be ?
4. I wanted to tell............what the true historical value of this ancient religion is, as looked upon, not from an exclusively European or Christian, but from a historical point of view. But discover in it "steam engines and electricity and European philosophy and morality," and you dprive it of its true character.

दत्तचित्त था। हम पहले हम्बोल्ट की गीता की प्रशंसा का उल्लेख कर चुके हैं। वैबर को यह प्रशंसा अच्छी नहीं लगी। उसने लिखा कि गीता और महाभारत के सिद्धान्तों पर ईसाई प्रभाव पड़ा है—

कृष्ण के मत का विशेष रंग, जो सारे महाभारत में व्यापक है, द्रष्टव्य है। ईसाई कथानक और दूसरे पाश्चात्य प्रभाव निस्सन्देह उपस्थित हैं।[1]

वैबर के विचार को दो अन्य व्यक्तियों ने सुदृढ किया। वे थे लोरिंसर[2] और ई० वाश्बर्न हापकिन्स[3]। यह एक मुख्य विचार था, जिसके कारण कई पाश्चात्य लेखक महाभारत के काल को ईसा से पूर्व नहीं रखना चाहते। परन्तु यह विचार इतना भद्दा था कि योरुप के अनेक ईसाई अध्यापक भी इसे सिद्ध करने का सामर्थ्य न रखने के कारण इस पर दृढ नहीं रहे।

वैबर और गोल्डस्टकर—वैबर और बिहटलिङ्क ने एक संस्कृत कोश बनाया। कुहन इस कोश में उनका सहायक था। इन लोगों ने मिथ्या-भाषा-विज्ञान की आड़ में उसमें अनेक अशुद्धियां कीं। उनका परिश्रम पर्याप्त था, पर उनके पक्षपात ने उनके काम को बहुत दूषित कर दिया। अध्यापक गोल्डस्टकर ने उन पर कड़ी आलोचना की। फलतः कुहन और वैबर ने गोल्डस्टकर के विरुद्ध लेख लिखे। वैबर ने लिखा कि गोल्डस्टकर के "मस्तिष्क में पूर्ण विकार" हो गया है। ये शब्द अशिष्ट कथन हैं, पर इनके लिखे जाने पर हम ईश्वर को धन्यवाद देते हैं। गोल्डस्टकर ने इन लोगों को उत्तर दिया। उसमें उसने इस बात का भण्डा फोड़ा कि राथ, वैबर, ह्विटलिङ्क, कुहन आदि लेखक कृतसङ्कल्प हैं कि प्राचीन भारत का गौरव नष्ट किया जाए। कुहन ने लिखा कि इस प्रवृत्ति के कारण "रहस्यमय" हैं।[4] हम जानते हैं कि ईसाई और यहूदी पक्षपात और आर्य संस्कृति को नीचा करने के अतिरिक्त ये "रहस्यमय" कारण और न थे।

रुडल्फ हर्नलि—अब हम आगे चलते हैं। बनारस अथवा काशी में एक क्वीन्स कालेज है। संवत् १९२६ में उसका प्रिंसिपल रुडल्फ हर्नलि था। उन दिनों स्वामी दयानन्द सरस्वती का काशी में प्रचारार्थ प्रथम बार गमन हुआ। रुडल्फ हर्नलि कई बार उनसे मिला। उसने स्वामी दयानन्द सरस्वती पर एक लेख लिखा।[5] उसकी निम्नलिखित पंक्तियां देखने योग्य हैं—

यह (दयानन्द) संभवतः हिन्दुओं को विश्वास दिला सकता है कि उनका वर्तमान हिन्दूमत वेदों के सर्वथा विरुद्ध है। ....यदि एक बार उन्हें इस मौलिक भूल का पूर्ण विश्वास हो जाए, तो वे हिन्दूमत को निस्संदेह तत्काल त्याग देंगे। वे वैदिक परिस्थिति की

1. The peculiar colouring of the Krishna sect, which pervades the whole book, is noteworthy; Christian legendry matter and other Western influences are unmistakably present: The History of Sanskrit Literature, Popular Ed 1914, p. 189, foot note, p. 300, foot note.

२. इसने संवत् १९२६ में Bhagavad Gita लेख लिखा।

3. India, Old and New New: York, 1902, p. 146 ff.

4. Panini his place in Sanskrit literature, ग्रन्थ के साथ पृ ४।

5. The Christian Intelligencer, Calcutta, March 1870, p. 79.

और नहीं लौट सकते, यह मृत है और जा चुकी है, और कदापि पुनर्जीवित न होगी। कुछ अधिक या न्यून नूतनता अवश्य आएगी। हम आशा करेंगे, यह ईसाई मत होवे।[1]

अधिकांश भारतीय इस पक्षपात से अपरिचित—योरुप के इस दूसरे दल के लेखकों की मनोवृत्ति का हमने दिग्दर्शन करा दिया। इस पक्ष के लोगों को धन की बहुत सहायता मिली। उस धन के बल से उन्होंने अपना साहित्य सर्वत्र फैलाया। उन्होंने महान् यत्न किया कि उनके अनुसन्धान के ग्रन्थों में पक्षपात के ये भाव व्यक्त न हों। भारतीय लोग और अन्य संसार यही समझे कि ये सब निष्पक्ष हैं। वे इस काम में पूर्णतया सफल मनोरथ हो जाते, यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती उनकी इस बात का उद्घाटन न करते। स्वामी दयानन्द सरस्वती विशेष प्रतिभाशाली महान् पुरुष थे। बूह्लर, मोनियर विलियम्स, रुडल्फ हर्नलि और थीबो आदि योरुपीय विद्वानों से उनका साक्षात्कार हुआ था। उन्होंने अनायास उनकी मनोभावना पहचान ली। शेष भारतीय अधिकांश संख्या में यही समझते रहे कि ये लोग बहुत विद्वान्, निष्पक्ष और उदारभाव युक्त हैं। हमने इस विषय की सूक्ष्म विवेचना की और उसका संक्षिप्त सार लिख दिया है।

मद्रास विश्वविद्यालय के इतिहास के महोपाध्याय श्री नीलकण्ठ शास्त्री को, जो पाश्चात्य विचारधारा से पर्याप्त प्रभावित हैं, थोड़ी सी ऐसी प्रतीति हुई है। उन्हीं ने लिखा है—

भारतीय समाज और भारतीय इतिहास के विषय में जो आलोचना (पाश्चात्य पद्धति के अनुसार) की गई है, वह उन्नीसवीं शती ईसा के योरुप के पूर्वस्वीकृत विचारों के प्रभाव से प्रभावित है। यह आलोचना अंग्रेज शासकों और योरुपीय ईसाई पादरियों द्वारा आरंभ की गई और लैसन की विशाल विद्वत्ता द्वारा स्वच्छता से अंकित है। उन्नीसवीं शती ईसा के आरंभ में जर्मनी की अपूरित वासनाओं का लैसन की विचारधारा के बनाने में निस्सन्देह भाग था।[2]

मद्रास के रावबहादुर श्री० सी० आर० कृष्णमाचार्लु को जो भारत सरकार के लिपि विशेषज्ञ रहे हैं, इस सत्य का अधिक आभास मिला है[3]—

1. he (Dayanand) may possibly convince the Hindus that their modern Hinduism is altogether in opposition to the Vedas,..............If once they become thoroughly convinced of this radical error, they will no doubt abandon Hinduism at once .... They can not go back to the Vedic state; that is dead and gone, and will never revive. Something more or less new must follow. We will hope it may be Christianity,........A. F. R. H. Quoted in "The Arya Samaj". by Lajpat Rai, 1932, p. 42.
2. What is this but a critique of Indian society and Indian history in the light of the nineteenth century prepossessions of Europe ? This criticism was started by the English administrators and European missionaries and has been neatly focussed by the vast erudition of Lassen; the unfulfilled aspirations of Germany in the early nineteenth century, doubtless had their share in shaping the line of Lassen's thought. All India O. Conf. Dec. 1941, Part II, p. 64. Printed 1946.
3. These authors, coming as they do from nations of recent growth, and writing this history with motives other than cultural-which in some cases are apparently racial and prejudicial to the correct elucidation of the past history of India, cannot acquire testimony for historic veracity or cultural sympathy The Cradle of Indian History P. 3. The Adyar library, Madras, 1947

ये पाश्चात्य ग्रन्थकार, जो अचिरकालीन जातियों के व्यक्ति हैं, और जो सांस्कृतिक उद्देश्य के स्थान में दूसरे उद्देश्य विशेष से, जो कई अवस्थाओं में स्पष्ट ही पुरातन भारतीय इतिहास के शुद्ध स्पष्टीकरण के विषय में पक्षपात युक्त होता है, इस इतिहास को लिखते हैं। उनमें ऐतिहासिक सत्यता नहीं हो सकती । इति ।

ईश्वर करे सब भारतीय विचारकों को शनैः २ इस सत्य का ज्ञान हो जाए ।

दूसरा कारण--मिथ्या "भाषाविज्ञान"

भारतवर्ष के विद्वान्—बृहस्पति, इन्द्र और भरद्वाज आदि वैयाकरण तथा शाकपूणि और यास्क आदि नैरुक्त यथार्थ भाषाविज्ञान को जानते थे । उन बहुशास्त्रवेत्ता परम विद्वानों का विश्वास था कि आर्य जाति के पास आदि-सृष्टि से इतिहास की अनवच्छिन्न परम्परा चली आ रही है । उनका भाषाशास्त्र इस बात को बताता था । वह इतिहासज्ञान का गौण सहायक था । योरुप के सांप्रदायिक लेखकों को भय हुआ कि यदि आर्य इतिहास सत्य मान लिया गया, तो उनके अनेक धर्म विश्वास असत्य सिद्ध होंगे । तब जर्मन देश के यहूदी और ईसाई पक्षपातवाले लेखकों ने अपना भाषाविज्ञान कल्पित करना आरम्भ किया । उन्होंने इस परम उपादेय शास्त्र को अपने कल्पित रंग में रंगना आरम्भ किया । जर्मन लेखक भाषा शास्त्र के क्षेत्र में जो यत्न कर रहे थे, उसका उल्लेख विलियम ड्वाईट व्हिटने ने संवत् १९२४ में कर दिया था—

दूसरे सब देशों की अपेक्षा, जर्मनी सबसे अधिक भाषा के अध्ययन का घर और उत्पत्ति-स्थान है ।[1] इति ।

जब जर्मन लेखकों ने अधिकांश मिथ्या यह भाषाशास्त्र कल्पित कर लिया, तो उन्होंने घोषणा करनी आरम्भ की कि संसार का इतिहास जानने में उनका कल्पित "भाषाविज्ञान" एकमात्र साधन है । व्हिटने के ज्येष्ठ सतीर्थ्य मैक्समूलर ने लिखा—

भाषा का साक्ष्य अखण्ड्य है, और यह एकमात्र साक्ष्य है जो प्रागैतिहासिक युगों के विषय में सुनने योग्य है ।[2] इति ।

स्थूल ज्ञानवाले मैक्समूलर को पता नहीं कि संसारमात्र के इतिहास में प्रागैतिहासिक युग कोई नहीं था । इस युग का अनुमान योरुपियन लेखकों के अधूरे, ज्ञान और हेय कल्पना का फल है । मैक्समूलर और उसके गुरुओं ने भाषाविज्ञान की जिस रट का श्रीगणेश किया, उसे ब्रह्म वाक्य मान कर उत्तरवर्ती लेखक दोहराते चले गए । संवत् १९६१ में अध्यापक रैपसन ने लिखा—

केवल भाषा ने वह लिखित वृत्त सुरक्षित रखा, जो अन्यथा नष्ट हो गया होता ।[3] इति ।

---

1. "Germany is far more than any other country, the birth place and home of language" Language and the study of Language W D. Whitney 1867 Lec. I.
2. The evidence of language is irrefragable, and it is the only evidence worth listening to with regard to ante-historical periods. A His of A. S L. Max Muller, sec. ed. 1860, p 13.
3. Language alone has preserved a record which would otherwise have been lost, Camb His. Ind Vol. I. p. 41.

मैक्समूलर की आलोचना, उसके जातीय भ्राता द्वारा—भाषाविज्ञान के विषय में हमारा अगला लेख अधूरा रहेगा, यदि हम मैक्समूलर की इस विषय की योग्यता पर प्रकाश न डालें। हमारा यह काम अमेरिका अन्तर्गत कैनेडा प्रदेश के प्रोफेसर रिचर्ड अलबर्ट विल्सन ने बहुत योग्यता से कर दिया है। अध्यापक विल्सन की भूरि प्रशंसा इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध लेखक बर्नार्ड शा (सन् १६४१=संवत् १६६८) ने की है—

भाषा के समस्त क्षेत्र पर मूलर का व्यापक संश्लेषणात्मक अधिकार नहीं था।[1] ………परन्तु उसके साहित्यिक लेख का बल समय समय पर उसकी निर्बलता थी। साहित्यिक भाषा का जो स्वरूप वह बना रहा होता था, उसके साम्य से आकर्षित वह रुचि रखता था कि तथ्य को तोड़े मरोड़े ताकि भाषा के कलेवर में वह रूप अधिक स्वच्छता से सजे। अनुप्रास के प्रति उसकी भावना उसे रंगीन और वर्णन के बलशाली रूपों में ले जाती थी, जहां विषय को शान्ति और सन्तोलन की अपेक्षा होती थी।[2] इति।

अब हम प्रस्तुत विषय पर आते हैं। हमारा उद्देश्य यहां भाषा शास्त्र का वर्णन करना नहीं है। हम यहां भाषा विषयक मूल सिद्धान्तों का उल्लेख करेंगे और उन परिणामों को भ्रान्त दिखाएंगे जो इस कल्पित पाश्चात्य-भाषाविज्ञान पर आश्रित हैं। इस प्रकार वर्तमान भाषाविज्ञान के दोष स्वतः प्रकट हो जाएंगे। भाषा के विषय में योरुप के लेखक दो श्रेणियों में विभक्त हैं। एक श्रेणी के अनुसार भाषा मनुष्य द्वारा विकसित होती गई और दूसरी श्रेणी के अनुसार यह अपौरुषेय है। यह दूसरी श्रेणी सत्य के अधिक निकट है, यद्यपि यथार्थ इतिहास के अभाव में इस श्रेणी को भी भाषा के उत्तरोत्तर इतिहास का याथातथ्य रूप से ज्ञान नहीं है।

भाषाविषयक कतिपय मूल सिद्धांत

१. अनवच्छिन्न इतिहास का साक्ष्य है कि वाक् अपौरुषेय और आदि अन्त रहित है। उस वेदवाक् का रूप सदा एक समान और प्रति सृष्टि में एकसा होता है। उसमें आनुपूर्वी नित्य रहती है।[3] उसके रूपान्तर जो चरणों और शाखाओं में उपलब्ध हो रहे हैं, अनित्य आनुपूर्वी वाले हैं। मुनि पतञ्जलि इस तथ्य को जानता था। अतः उसने लिखा—तद् भेदाच्चैतद् भवति काठकं कालापकं…………इति। अर्थात्—वर्णानुपूर्वी के भेद से काठक आदि शाखाएं बनीं।

---

1. Muller had not the same comprehensive synthetic grasp of the whole field, The Miraculous Birth of Language, गिल्ड संस्करण, सन् १६४८, पृ० ६५.
2. But his strength here was at times his weakness. Fascinated by the symmetry of the structure he was building, he had a tendency to strain or modify the fact so as to make it fit more neatly its particular niche in the system His impulse towards rhetoric often led him also into colourful and telling forms of expression where the subject required quietness and precision. वही, पृ० ६५।

३. इसके विपरीत योरुपीय लोगों का भ्रमपूर्ण कथन है—
But it (the language) is clearly, as preserved in the hymns (of the Rigveda), a good deal more than a spoken tongue. It is a hieratic language which doubtless diverged considerably in its wealth of variant forms from the speech of the ordinary man of the tribe. C. H. India, Vol. I. p. 109.

२. इस मूल वाक् के आधार पर भाषा प्रवृत्त हुई। भाषा का अस्तित्व वेदवाक् के लगभग साथ साथ हुआ। भाषा में व्यवहृत शब्द मूलवाक् सदृश थे, परन्तु वाक्य रचना थी भिन्न। इस भाषा में आज से न्यूनातिन्यून १६००० वर्ष पूर्व अथवा आदि में भगवान् ब्रह्मा ने सब पदार्थों के नाम आदि रचे। उनमें से अनेक द्रव्य नाम आजतक वैसे के वैसे आ रहे हैं, विकृत नहीं हुए। ब्रह्माजी द्वारा प्रदत्त होने के कारण भाषा का एक नाम पर्याय ब्राह्मी है। यह नाम अमरकोश १। ६। १ में मिलता है—ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग् वाणी सरस्वती। शौनककृत बृहद्देवता में एक ऋचा के आधार पर ब्राह्मी और सौरी समानार्थक पढ़ी गई हैं—तस्मै ब्राह्मी तु सौरी वा नाम्ना वाच ससर्परीम् ॥ ४। ११३॥ काठक संहिता के काल से पहले मन्त्रों के साथ मानुषी वाक् प्रचलित थी—तस्माद् ब्राह्मण उभे वाचौ वदति दैवीं च मानुषीं च। १४। ५॥ अर्थात्—ब्राह्मण मन्त्र भी बोलता है, और मानुषी वाक् संस्कृत भी बोलता है।

३. भाषा वस्तुतः यही है और एक है। इसे भाषा अथवा संस्कृत कहते हैं। पृथ्वी-मात्र की बोलियां भाषा नहीं हैं। उनके लिए भाषा शब्द गौणरूप से प्रयुक्त होता है। वे सब म्लेच्छ भाषा,[1] अपभ्रंश अथवा प्राकृत के अन्तर्गत हैं। आदि सृष्टि में सब स्त्री, पुरुष सभ्य, ज्ञानवान् और शिष्ट थे। वे भाषा का यथार्थ प्रयोग करते थे।[2]

४. युग के बीतने पर शक्ति के ह्रास तथा आलस्य के कारण कई लोग असभ्य अथवा अशिष्ट हुए। उनकी भाषा का रूप अशिष्ट बन गया। अतः भाषा विकसित नहीं होती जाती, प्रत्युत अनभ्यास, विद्याभाव, उच्चारणदोष, मूर्खता और आलस्य आदि के कारण स्वभावतः अपभ्रंशों और प्राकृतों का रूप धारण करती जाती है।[3] बहुधा वह संकुचित होती जाती है। भाषा के संकुचित होने और उच्चारण के ग्रामीण होने से कई मूल वर्णों का उच्चारण विकृत अथवा लुप्त हो जाता है। तदनुकूल लिपि संकुचित होती जाती है। आरंभ में भाषा को अक्षरों में प्रकट लिखने के लिए ६३ वर्ण थे। संस्कृत में उच्चारण स्थिरता

१. न म्लेच्छभाषां शिक्षेत। म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्द इति विज्ञायते। भारद्वाज गृह्यसूत्र।
तेऽसुरा आत्तवचसो हेऽलवो हेऽलव इति वदन्तः परा बभूवुः ।२३॥ तस्मैतामपि वाचमूदुः। उपजिज्ञास्यां स म्लेच्छस्तस्मान्न ब्राह्मणो म्लेच्छेद् असुर्या हैषा वाग् एवमेवैष द्विषतां सपत्नानामादत्ते वाचं तेऽस्यात्तवचसः पराभवन्ति य एवमेतद्वेद ॥ २४ ॥ शतपथ ब्रा० ३ । २ । १ ॥
गोमांसभक्षको यस्तु लोकबाह्यं च भाषते। सर्वाचारविहीनोऽसौ म्लेच्छ इत्यभिधीयते ॥
अमरकोश २ । १० । २१ पर टीकासर्वस्व में उद्धृत।
अन्तिम श्लोक नवीन काल का है।

२. इसी देशवासी एक भोला लेखक लिखता है—
Sanskrit, a purely literary language, never employed in daily life The Alphabet, by David Diringer, D Litt, 1947, p 361
Nevertheless, the recent critique of the grammar of Chandragomin by Louis Renou of the Paris University shows that Sanskrit had developed further than in Panini's time, Some Problems of Historical Linguistics in Indo-Aryan, by S M Katre, 1944, p. 25.

३. युधिष्ठिर मीमांसक का ग्रन्थ "संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास" मुद्रित होने पर इस देशोक्ति का यह विषय स्पष्ट होगा।

के कारण ये लगभग बने रहे, पर कुछ २ मूर्ख होती हुई योन अथवा यवन जाति से चल कर रोमन लोगों से होकर योरुप की वर्तमान जातियों में ये २६ रह गए। पं० रघुनन्दन शर्मा का मत ठीक है कि मूर्ख लोग क्लिष्ट उच्चारणों को त्यागते गए, और अनेक मूल अक्षरों को भूल कर उनके स्थान में सामान्य अक्षरों से काम चलाने लग पड़े।[1]

५. भाषा अथवा संस्कृत में अति प्राचीनकाल में शब्दराशि अत्यधिक विस्तृत थी। यदि संस्कृत का पुरातन वाङ्मय खोजा जाए तो पृथ्वी की अनेक बोलियों के मूल शब्द, जिन का इस समय ज्ञान नहीं, मिल जाएंगे। यथा—

(क) धातु पाठ में कल्ल=अव्यक्ते शब्दे धातु है। संस्कृत में इसका प्रयोग अन्वेषणीय है। पोठोहारी बोली में कल्ला शब्द गूंगे अथवा बधिर के अर्थ में इस समय भी प्रयुक्त होता है।

(ख) वाप (=बोने वाला) शब्द पिता के अर्थ में संस्कृत कोशों में मिलता है। ग्रन्थों में यह शब्द हमारे देखने में नहीं आया। हिन्दी और पञ्जाबी भाषा में बाप शब्द पिता के अर्थ में सम्प्रति प्रयुक्त होता है।

(ग) गर्त्त शब्द गढा अर्थ में संस्कृत में मिलता है। तैत्तिरीय संहिता भाष्यकार भट्ट भास्कर मिश्र किसी पुरातन निघण्टु के आधार पर गर्त्त का रथ अर्थ भी देता है। यास्कीय निरुक्त में भी गर्त्त का रथ अर्थ माना गया है। इस रथ अर्थ वाले गर्त्त शब्द से पंजाबी का गड्ड शब्द बना है।

६. आरम्भ में भाषा भिन्न २ प्रदेशस्थ मनुष्य समूहों में नहीं उपजी, प्रत्युत एक उद्गम स्थान से सर्वत्र फैली। वह आदि पुरुष ब्रह्माजी द्वारा एक स्थान से सर्वत्र गई। अतः संसारमात्र की बोलियां पुरातन संस्कृत का रूपान्तर हैं। यास्क इस तथ्य से परिचित था। उसने मूल संस्कृत भाषा के ऐसे रूप लिखे हैं, जो आर्यावर्त्त में उसके काल में भी अप्रयुक्त हो चुके थे, पर दूर देशों में बोले जाते थे। योरुप के ईसाई अथवा यहूदी लेखकों ने जो इण्डो-योरुपियन अथवा इण्डो-जर्मनिक भाषा कल्पित की है, उसका कभी अस्तित्व नहीं रहा। हमारे पक्ष के समर्थन में दो प्रधान कारण हैं—

(क) हमारा इतिहास महाराज विक्रम से पांच छः सहस्र वर्ष पूर्व की मध्य एशिया, योरुप और भारत की पुरातन जातियों का पता देता है। उन सब की भाषाओं का हमें अब भी यत्किञ्चित् ज्ञान है। उन भाषाओं में इस कल्पित भाषा का कोई स्थान नहीं है। ईसाई और यहूदी लेखकों ने, इस भय से कि वेदमन्त्र और संस्कृत भाषा अति पुरातन सिद्ध न होजाएं, और संस्कृत भाषा का प्रभुत्व संसार पर अङ्कित न हो जाए, इस निस्सारवाद को प्रचरित किया।

(ख) इस कल्पित भाषा के अस्तित्व के साधन में भाषा-विज्ञान के कई नियम जो योरुपीय लेखकों ने बनाए, वे एकदेशीय और विद्या-विरुद्ध हैं। यथा—

वर्णमाला के प्रत्येक वर्ग का दूसरा और चौथा अक्षर उत्तरोत्तर भाषाओं में पहले और तीसरे अक्षर तथा हकार का रूप धारण करता है। पहला और तीसरा अक्षर दूसरे

---

१. वैदिक सम्पत्ति, पृ० २१४।

और चौथे अक्षर का रूप धारण नहीं करते, और न हकार को वर्ग के दूसरे अथवा चौथे अक्षर का रूप मिलता है।

यह नियम एकदेशीय है और इस पर आश्रित इण्डो-योरपीय भाषा का कल्पित अस्तित्व खण्डित हो जाता है। निम्नलिखित उदाहरण ध्यान देने योग्य हैं—

संस्कृत	पंजाबी	हिन्दी	
१. कर्परिका	खपरिया[1] (खपड़ा)		क को ख
२. अङ्कोठः	अङ्खोड़[2]		क को ख
३. कोटर	खोड़		क को ख
४. शृङ्गाटक	संघाड़ा	सिंघाड़ा[3]	ग को घ
५. गुडाका	घुराड़ा		ग को घ
६. चुचुन्दरी	झींगर[4]		च को झ
७. तुत्थ	थोथा[5]	=	त को थ
८. परूपक	फालसा[6]	=	प को फ
९. नीलोत्पल	नीलोफ़र	=	प को फ
१०. बिस	भें[7]	भिस	ब को भ
११. विदिशा		भिलसा	ब को भ

अब हकार के अपभ्रंश में रूपान्तर देखिए—

१. गुहा	कुभा (पाली)	गुफा (पञ्जाबी)
२. सिंह		सिंघ ,,
३. नहुष	नघुष (पाली)	
४. वैवस्वत =	वैवह्वत =	विवघ्वन्त (ज़न्द)
५. हिञ्जीर	ज़ञ्जीर (उर्दू)	जञ्जीर (पञ्जाबी)

---

१. सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान, डल्हण टीका, ३८ । ३८ ॥
२. ,, ,, ,, ,, ३७ । १२ ॥
३. ,, ,, ,, ,, ४६ । २१८ ॥
४. बौधायन धर्मसूत्र १ । ७ । ८ में मूल संस्कृत शब्द—झिङ्गिकः है। गोविन्द स्वामी की टीका में इसका अर्थ—चुचुन्दरी दिया है। चुचुन्दरी का निकटस्थ अपभ्रंश छुछुन्दर है, पर मूल शब्द झिङ्गिक, पञ्जाबी शब्द झिंगी के अधिक निकट है। झिंगी को पञ्जाबी में झींगर कहते हैं। अतः चुचुन्दरी से झींगर अपभ्रंश बहुत सम्भव है। मोनियर विलियम्स ने कोश में झिङ्गक का अर्थ चूहा किया है। यह विचार योग्य है।
५. इसी नियम के अनुसार संस्कृत—तृषा अंग्रेजी में थर्ट और त्रिंशत् थर्टी बना है।
६. सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान, डल्हण टीका, ४६ । १६६ ॥
७. लोक में इसे भिसण्ड भी कहते हैं।

६. अहि — अज़ि (ज़न्द) — अफि (फारसी)
७. दुहिता — दुख़्तर (फारसी)
८. मही (नदी) — मोफिस (ग्रीक=यवन, टालेमी, भूगोल, पृ० ३८)[1]

जिस प्रकार इन पांचवें और छठे उदाहरणों में हकार को ज़कार अथवा फकार हो गया है, उसी प्रकार संस्कृत हंस का जर्मन में गंज़ और अंग्रेजी में गूज़ रूप हुआ है। अतः इण्डो-योरुपियन भाषा का अस्तित्व मानना अपने को भयानक भ्रम में डालना है।

इण्डो-योरुपियन का अस्तित्व कल्पित करनेवाले एक और बात कहते हैं। उनके अनुसार संस्कृत में जहां अ अथवा आ स्वर है, वहां योन=ग्रीक भाषा में अ, इ, ओ आदि अनेक स्वर हैं। इस से वे सिद्ध करते हैं कि ग्रीक सीधी संस्कृत से नहीं निकली, प्रत्युत एक ऐसी भाषा से निकली है, जिस में स्वर अधिक थे, और उसी भाषा से संस्कृत निकली है, और संस्कृत में उन स्वरों के स्थान में केवल अ अथवा आ रह गया है। अब इस एकदेशीय नियम के विरुद्ध हम भारतीय आदि अपभ्रंशों में से उदाहरण देते हैं। यथा—

१. चटक	चिड़ा (पञ्जाबी)
२. यम	यिम (फारसी)
३. पण्डित	पिण्डित (हरियाणा प्रान्त में)
४. चष्टन	टिअस्टनेस (Tiastanes) (योन भाषा में)
५. चन्द्रगुप्त	सैण्ड्रकोटस (योन भाषा में)
६. काक	कौआ (हिन्दी)
७. दशार्ण	दोसरोन (टालेमी) दोसरेने (पैरिप्लस)

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि अ को इ, ऐ, और आ को औ हो गया है। इसी प्रकार ग्रीक भाषा के रूपों में उच्चारणभेद से एक अ के, अ, इ, ओ आदि रूप बन गए, इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं। सातवां उदाहरण बहुत स्पष्ट है। यहां अधिक क्या लिखें, जर्मन लेखकों ने इस एकदेशीय मत के आधार पर जो इण्डो-योरुपियन भाषा का अस्तित्व कल्पित किया है, वह सिद्ध नहीं होता। एक ही टक्कर में वह जर्जरी-भूत हो रहा है। इस अशुद्ध भाषा-विज्ञान के आधार पर लिखे गए, भारत के इतिहास, सब अशुद्ध हैं।

जब योन अथवा ग्रीक लोग इतिहास से आर्यों के वंशज सिद्ध हो रहे हैं, तो जर्मन-लेखकों की इन मिथ्या-कल्पनाओं को कौन मानेगा।

७. अब आगे सुनिए। भाषा अथवा संस्कृत से विकृत अपभाषाओं के दो रूप बने। एक प्राकृत का रूप था। इसमें विकार के नियम अधिक व्यापक थे। दूसरा रूप था म्लेच्छ-अपभ्रंशों का। इनमें अपभ्रंश होने के नियम नहीं थे। प्रायः अपभ्रंश अनियमित थे। यथा—

---

१. टालेमी के ग्रन्थ का सम्पादक सुरेन्द्रनाथ, मजुमदार, शास्त्री अपने टिप्पण, पृ० १४१ पर लिखता है—इस शब्द के ग्रीक रूप से अनुमान है कि पुरातन नाम माफी था। शास्त्री जी को ज्ञान नहीं, कि टालेमी से ११०० वर्ष पहले जैमिनि ब्राह्मण में माही रूप ही है। योरुपीय मिथ्या प्रभाव के कारण सत्य की कितनी अवहेलना हो रही है।

१. अहिदानय — अज़िदहाक अथवा दाहक
२. चिरविल्वः — चिरिहिलिः इति लोके।
३. उटज (कुटि) — काटेज (Cottage)
४. वितस्त — हाइडेस्पस (Hydaspes)

यहां न को ह, व को ह, उ को क और व को ह हो गए हैं। ये परिवर्तन व्यापक नियमानुसार नहीं हैं। अतः आर्य ऋषियों ने सहस्रों वर्ष पहले अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से ये भेद जान कर, प्राकृत और अपभ्रंश दो नाम प्रयुक्त किए। पक्षपाती जर्मन लेखक इस तत्त्व को नहीं समझ पाए।

८. Dialects अर्थात् बोलियों अथवा ग्रामीण बोलियों से भाषा नहीं बनी, प्रत्युत भाषा, शिष्ट भाषा अथवा साहित्यिक भाषा से अपभ्रंश होकर dialects अथवा बोलियां बनी हैं। यदि कोई कहे कि योरुप में ऐङ्गलो-सैक्सन आदि बोलियों से वर्तमान अंग्रेजी बनी, तो यह सत्य नहीं। कथित साहित्यिक अंग्रेजी का आधार लैटिन और योन=ग्रीक वाङ्मय है, और ग्रीक वाङ्मय का आधार पुरानी फारसी और संस्कृत पर है। फारसी का आधार भी पुरानी संस्कृत पर है। और संस्कृत स्वयं ब्रह्माजी ने अपनी अनेक रचनाओं में दी। अतः आदर्श के बिना साहित्यिक भाषा का क्रम बन ही नहीं सकता। वस्तुतः टक्कर तो डार्विन के कल्पित विकासवाद से है, जो सत्य इतिहास रूपी सूर्य के प्रकट होते ही छिन्न भिन्न हो रहा है।

भाषाएं किस प्रकार संकुचित और विकृत होती हैं, इसका उदाहरण निम्नलिखित शब्दों में है—

"In Vakhan there is also spoken an older Iranian language as well as the Shugnan tongue, which Shugnan is only spoken by the people of quality. This older Iranian tongue is the original tongue of the Vakhans, which now seems to have degenerated into a country dialect. All the people of Vakhan speak this language;[1] ....

अर्थात्—मध्य एशिया के वखान देश में पुरानी ईरानी बोली, एक ग्रामीण बोली की अवस्था में गिर गई है।

इसी प्रकार संसार में भाषा के क्षेत्र में सर्वत्र गिरावट हुई है। योरुप के वर्तमान भाषाविदों ने जो dialect, tongue और literary language=साहित्यिक भाषा के भेद अब स्थिर किए हैं, वैसे भेद पहले नहीं थे। वर्तमान योरुपीय लेखकों ने dialect का अर्थ बदला है। देखिए—

Dialect—the form oridiom of a language peculiar to a province or to a limited region or people, as distinguished from the literary language of the whole people.

अर्थात्—साहित्यिक भाषा का विस्तार अधिक होता है और डायालेक्ट में प्रान्तानुसार शैलीभेद हो जाता है।

1. Through the unknown Pamirs, by O. Olufsen, London, 1904, p. 60.

डायालेक्ट से ग्रीक शब्द डायालेक्टोस का संबन्ध है। डायालेक्ट का अर्थ तर्क विद्या अथवा वाकोवाक्य है। इस पुराने अर्थ को बिगाड़ कर, पक्षपाती लोगों ने अपने कल्पित अर्थ जोड़कर, संसार के सामने विज्ञान के नाम पर एक मिथ्या ज्ञान उपस्थित कर दिया है।

९. अति प्राचीन काल में देश विभेद से थोड़ा थोड़ा भाषा-भेद हो गया था। वृद्ध मनु लिखता है—वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते। (अपरार्क, पृ० (६०५)

१०. इसी प्रकार पञ्च द्राविड़ों में से मद्रास के अधिकांश द्राविड़ तुर्वसु की सन्तान में हैं। उनकी मूल भाषा भी संस्कृत थी।

अस्तु, बुद्धिमानों के लिए इतना लिखना पर्याप्त है। इस विषय की विस्तृत आलोचना अन्यत्र होगी।

ईसाई मतस्थ वर्तमान लेखकों का विचार

पूर्वोक्त सिद्धान्तों के विपरीत वर्तमान यहूदी और ईसाई भाषा-ज्ञानवादियों का विलक्षण मत है। उनका निदर्शन आगे किया जाता है—

(क) अध्यापक रैपसन ने सन् १६२२=संवत् १६७६ में लिखा—

भारतीय-आर्य-लिखित वृत्त साहित्यिक भाषाओं में सुरक्षित रखे गए हैं, जो बोल-चाल की प्रमुख भाषाओं से विकसित की गई[1]।

अर्थात्—बोल चाल की बोली का परिणाम साहित्यिक आर्य भाषा है।

यह विचार सन् १८७१ के पश्चात् अर्थात् डार्विन के वाद के अनन्तर लिखा गया है। इस पर डार्विन के वाद की गम्भीर छाप है। स्मरण रहे कि विद्वान् सदा साहित्यिक भाषा बोलते हैं, और मूर्ख बोलचाल की। इस इतिहास से आगे पता लगेगा कि ब्रह्माजी ने आदि में सब शास्त्र दे दिए। उनको सीख कर आदि सृष्टि के लोग विद्वान् हुए। पहले अर्थात् सत्युग में कोई मूर्ख नहीं था। अतः बोलचाल की ग्रामीण बोली नहीं थी। उस के चिरकाल पश्चात् मानव-शक्ति के ह्रास से कुछ लोग न्यून ज्ञानवाले हो गए। तब संसार में भाषा से विकृत होकर बोलचाल की ग्रामीण बोलियां प्रवृत्त हुईं। अतः रैपसन का लेख एकदेशीय सत्य भी नहीं, प्रत्युत सर्वथा अयुक्त है।

शब्द अनादि हैं—विचारना चाहिए कि ऐसा लिखने वाला शब्दों का आगम कहां से मानता है। बोलचाल शब्दों द्वारा होती है। वे शब्द कहां से आए। और शब्दों का अर्थों के साथ सम्बन्ध कैसे जुड़ा। इसके अतिरिक्त गत दो सहस्र वर्ष के योरप के इतिहास से हम जानते हैं कि अंग्रेजी, फ्रैञ्च, जर्मन आदि बोलियों का साहित्यिक रूप पुराने लैटिन और यूनानी साहित्य के आधार पर खड़ा किया गया। बिना पुराने साहित्यिक रूप या आधार के किसी बोली का कोई नया साहित्यिक रूप संसार में कहीं खड़ा नहीं हो सका। अतः आरम्भ में बोलचाल की बोलियों का परिवर्तन बिना किसी आदर्श साहित्यिक भाषा के किसी नवीन साहित्यिक बोली में हो गया, यह शशशृङ्गवत् कल्पना है। वस्तुतः भगवान्

1. They (Indo Aryan records) have been preserved in literary language developed from the predominent spoken languages. Cambridge History of India, Ch. II. p 56,57.

१. अहिदानव	अज़िदहाक अथवा दाहक
२. चिरविल्वः	चिरिहिलि, इति लोके।
३. उटज (कुटि)	काटेज (Cottage)
४. वितस्त	हाइडेस्पस (Hydaspes)

यहां न को ह, व को ह, उ को क और व को ह हो गए हैं। ये परिवर्तन व्यापक नियमानुसार नहीं हैं। अतः आर्य ऋषियों ने सहस्रों वर्ष पहले अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से ये भेद जान कर, प्राकृत और अपभ्रंश दो नाम प्रयुक्त किए। पक्षपाती जर्मन लेखक इस तत्त्व को नहीं समझ पाए।

८. Dialects अर्थात् बोलियों अथवा ग्रामीण बोलियों से भाषा नहीं बनी, प्रत्युत भाषा, शिष्ट भाषा अथवा साहित्यिक भाषा से अपभ्रंश होकर dialects अथवा बोलियां बनी हैं। यदि कोई कहे कि योरुप में एंग्लो-सैक्सन आदि बोलियों से वर्तमान अंग्रेजी बनी, तो यह सत्य नहीं। कथित साहित्यिक अंग्रेजी का आधार लैटिन और योन=ग्रीक वाङ्मय है, और ग्रीक वाङ्मय का आधार पुरानी फारसी और संस्कृत पर है। फारसी का आधार भी पुरानी संस्कृत पर है। और संस्कृत स्वयं ब्रह्माजी ने अपनी अनेक रचनाओं में दी। अतः आदर्श के बिना साहित्यिक भाषा का क्रम बन ही नहीं सकता। वस्तुतः टक्कर तो डार्विन के कल्पित विकासवाद से है, जो सत्य इतिहास रूपी सूर्य के प्रकट होते ही छिन्न भिन्न हो रहा है।

भाषाएं किस प्रकार संकुचित और विकृत होती हैं, इसका उदाहरण निम्नलिखित शब्दों में है—

"In Vakhan there is *also spoken an older Iranian language as* well as the Shugnan tongue, which Shugnan is only spoken by the people of quality. This older Iranian tongue is the original tongue of the Vakhans, which now seems to have degenerated into a country dialect. All the people of Vakhan speak this language,[1]......................

अर्थात्—मध्य एशिया के वखान देश में पुरानी ईरानी बोली, एक ग्रामीण बोली की अवस्था में गिर गई है।

इसी प्रकार संसार में भाषा के क्षेत्र में सर्वत्र गिरावट हुई है। योरुप के वर्तमान भाषाविदों ने जो dialect, tongue और literary language=साहित्यिक भाषा के भेद अब स्थिर किए हैं, ऐसे भेद पहले नहीं थे। वर्तमान योरुपीय लेखकों ने dialect का अर्थ बदला है। देखिए—

Dialect—the form *oridiom of a language peculiar to a province or* to a limited region or people, as distinguished from the literary language of the whole people.

अर्थात्—साहित्यिक भाषा का विस्तार अधिक होता है और डायालेक्ट में प्रान्तानुसार शैलीभेद हो जाता है।

1 Through the unknown Pamirs, by O Olufsen, London, 19 4, p 60

डायालेक्ट से ग्रीक शब्द डायालेक्टोस का संबन्ध है। डायालेक्ट का अर्थ तर्क विद्या अथवा वाकोवाक्य है। इस पुराने अर्थ को बिगाड़ कर, पक्षपाती लोगों ने अपने कल्पित अर्थ जोड़कर, संसार के सामने विज्ञान के नाम पर एक मिथ्या ज्ञान उपस्थित कर दिया है।

९. अति प्राचीन काल में देश विभेद से थोड़ा थोड़ा भाषा-भेद हो गया था। वृद्ध मनु लिखता है—वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते। (अपरार्क, पृ० (६०५)

१०. इसी प्रकार पश्च द्राविड़ों में से मद्रास के अधिकांश द्राविड़ तुर्वसु की सन्तान में हैं। उनकी मूल भाषा भी संस्कृत थी।

अस्तु, बुद्धिमानों के लिए इतना लिखना पर्याप्त है। इस विषय की विस्तृत आलोचना अन्यत्र होगी।

ईसाई मतस्थ वर्तमान लेखकों का विचार

पूर्वोक्त सिद्धान्तों के विपरीत वर्तमान यहूदी और ईसाई भाषा-ज्ञानवादियों का विलक्षण मत है। उनका निदर्शन आगे किया जाता है—

(क) अध्यापक रैपसन ने सन् १६२२=संवत् १६७६ में लिखा—

भारतीय-आर्य:लिखित वृत्त साहित्यिक भाषाओं में सुरक्षित रखे गए हैं, जो बोल-चाल की प्रमुख भाषाओं से विकसित की गईं[1]।

अर्थात्—बोल चाल की बोली का परिणाम साहित्यिक आर्य भाषा है।

यह विचार सन् १८७१ के पश्चात् अर्थात् डार्विन के वाद के अनन्तर लिखा गया है। इस पर डार्विन के वाद की गम्भीर छाप है। स्मरण रहे कि विद्वान् सदा साहित्यिक भाषा बोलते हैं, और मूर्ख बोलचाल की। इस इतिहास से आगे पता लगेगा कि ब्रह्माजी ने आदि में सब शास्त्र दे दिए। उनको सीख कर आदि सृष्टि के लोग विद्वान् हुए। पहले अर्थात् सत्युग में कोई मूर्ख नहीं था। अतः बोलचाल की ग्रामीण बोली नहीं थी। उस के चिरकाल पश्चात् मानव-शक्ति के ह्रास से कुछ लोग न्यून ज्ञानवाले हो गए। तब संसार में भाषा से विकृत होकर बोलचाल की ग्रामीण बोलियां प्रवृत्त हुईं। अतः रैपसन का लेख एकदेशीय सत्य भी नहीं, प्रत्युत सर्वथा अयुक्त है।

शब्द अनादि हैं—विचारना चाहिए कि ऐसा लिखने वाला शब्दों का आगम कहां से मानता है। बोलचाल शब्दों द्वारा होती है। वे शब्द कहां से आए। और शब्दों का अर्थों के साथ सम्बन्ध कैसे जुड़ा। इसके अतिरिक्त गत दो सहस्र वर्ष के योरुप के इतिहास से हम जानते हैं कि अंग्रेजी, फ्रैञ्च, जर्मन आदि बोलियों का साहित्यिक रूप पुराने लैटिन और यूनानी साहित्य के आधार पर खड़ा किया गया। विना पुराने साहित्यिक रूप या आधार के किसी बोली का कोई नया साहित्यिक रूप संसार में कहीं खड़ा नहीं हो सका। अतः आरम्भ में बोलचाल की बोलियों का परिवर्तन विना किसी आदर्श साहित्यिक भाषा के किसी नवीन साहित्यिक बोली में हो गया, यह शशशृङ्गवत् कल्पना है। वस्तुतः भगवान्

1. They (Indo Aryan records) have been preserved in literary language developed from the predominent spoken languages. Cambridge History of India, Ch. II. p 56,57.

ब्रह्मा द्वारा आदि में वाङ्मय रचा गया, यही इतिहास-सिद्ध सत्य पक्ष है। ब्रह्माजी में यह शक्ति योगज और दैवी थी।

भाषा का उत्तरोत्तर संकोच विण्टर्निट्ज़ ने माना—हम लिख चुके हैं कि भाषा का मूल वेद-वाक् है। पाणिनि के काल की संस्कृत में अनेक पुराने रूप लुप्त हो गए, और भाषा अत्यन्त संकुचित हो गई, यह ऐसा सत्य है जिसे अनिच्छा होने पर भी पाश्चात्य लोगों को मानना पड़ा है। अध्यापक विण्टर्निट्ज़ लिखता है—

मन्त्रों में विद्यमान अनेक रूप उत्तरकाल की संस्कृत में नहीं रहे।[1] इति।

अर्थात् उत्तर काल की संस्कृत संकुचित हुई। इस कथन में थोड़ा सा परिवर्तन अभीष्ट है। मन्त्रों में विद्यमान अनेक रूप पाणिनि से पूर्वकाल की लौकिक रचनाओं में विद्यमान थे। अतः हमें कहना चाहिए कि पाणिनि के लौकिक संस्कृत के रूप पुरातन लौकिक संस्कृत के रूपों की अपेक्षा बहुत अधिक संकुचित और वैदिक रूपों से दूर जा पड़े हैं। हम जानते हैं कि आदि में जो भाषा थी, उसमें वेदगत अधिकांश रूप पाए जाते थे। भगवान् व्यास के शिष्य जैमिनि मुनि ऐसा लिखते हैं, और वे इस तथ्य को आज से ५००० वर्ष पूर्व जानते थे।[2] अतः यह अनुमान कि बोलचाल की बोली से साहित्यिक संस्कृत उपजी, ठीक नहीं। साहित्यिक संस्कृत परम श्रेष्ठ वेदवाक् के आधार पर प्रवृत्त हुई।

भाषाविज्ञान और व्याडि—यवनदेशोत्पन्न प्लैटो और सुकरात ने भाषा के विषय में विचार उपस्थित किए हैं। वे विचार भी वर्तमान भाषाविज्ञान के विचार के समान अधूरे हैं। परन्तु सुकरात आदि से बहुत पूर्व अर्थात् आज से ४५०० वर्ष से भी पूर्व अपने लक्षश्लोकात्मक संग्रह ग्रन्थ में भाषाशास्त्र के परम पण्डित, शब्दशास्त्र-निष्णात भगवान् व्याडि ने लिखा है—

सम्बन्धस्य न कर्तास्ति शब्दानां लोकवेदयोः। शब्दैरेव हि शब्दानां सम्बन्धः स्यात्कृतः कथम्॥

अर्थात्—लोक अथवा संस्कृत भाषा और वेद के शब्दों का उनके अर्थों के साथ सम्बन्ध जोड़ने वाला कोई नहीं है। शब्दों द्वारा शब्दों और अर्थों का सम्बन्ध असम्भव है। इसमें अनवस्था दोष है। कारण, संसार में प्रथम शब्द का उसके अर्थ के साथ सम्बन्ध कैसे जोड़ा गया। जो लोग इस विषय में विकासवाद का मत उपस्थित करते हैं, उनके विकासवाद की परीक्षा आगे होगी। यदि विकासवाद असिद्ध है, तो उससे निकाले गए परिणाम सिद्ध नहीं होंगे।

हमारा इतिहास-प्रासाद सारे संसार के ज्ञान की अनवच्छिन्न परम्परा की भित्ति पर खड़ा किया गया है। इससे पता चलेगा कि भगवान् ब्रह्माजी ने इस सृष्टि के आरम्भ में

1. Thus for instance, Ancient High Indian, has a subjunctive which is missing in Sanskrit, it has a dozen different infinitive-endings, of which but one single one remains in Sanskrit. The aorists, very largely represented in the Vedic language, disappear in the Sanskrit more and more. Also the case and personal endings are still much more perfect in the oldest language than in the later Sanskrit, History of Indian Literature vol. 1, p. 42.

२. देखो, पं० युधिष्ठिरकृत संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पृ० ४।

साहित्यिक रचनाएं दीं। उन्हीं शास्त्रों के वाक्यों और शब्दों के भ्रष्ट रूप संसार की विभिन्न बोलियां हैं। अतः रैपसन का पूर्वोक्त मत कल्पनामात्र है।

(ख) रैपसन पुनः लिखता है—

पाणिनि के युग-प्रवर्तक ग्रन्थ में वर्णित भाषा से वैदिक वाङ्मय की भाषा निश्चित पूर्वकालीन है, यद्यपि आवश्यक नहीं कि बहुत पूर्वकालीन हो। सूत्रग्रन्थ भी, जो निस्सन्देह ब्राह्मण ग्रन्थों के उत्तरवर्ती हैं, एक स्वच्छन्दता दिखाते हैं, जो पाणिनि के पूर्ण-प्रभाव के पश्चात् कठिनता से समझ में आ सकती है। इति।[1]

इस लेख में इतनी सत्यता है कि सूत्रग्रन्थ पाणिनि से पूर्वकाल के हैं। पर रैपसन को पाणिनि का काल ज्ञात नहीं। पाणिनि विक्रम से २६५० वर्ष से पूर्व का है, उत्तर का नहीं। सूत्र ग्रन्थ उससे कई सौ वर्ष पूर्व के हैं। पाणिनि स्वयं उनका स्मरण करता है। पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु।[2] अर्थात्—पाणिनि से पहले पुरातन और उनसे अपेक्षाकृत नूतन दोनों प्रकार के सूत्र ग्रन्थ बन चुके थे। पैङ्गीकल्प और आरुणपराजी (आरुणपराशरी) आदि कल्प पुरातन सूत्र ग्रन्थ थे और आश्मरथ कल्प अपेक्षाकृत नूतन सूत्र ग्रन्थ था। थे ये सब पाणिनि से पूर्वकालीन। इससे भी अधिक—पाणिनि के अगले सूत्र के अनुसार शौनक की शिक्षा, शौनक का बृहद्देवता और शौनक का प्रातिशाख्य आदि भी बन चुके थे। ये ग्रन्थ भारत युद्ध के ३०० वर्ष पश्चात् तक अथवा विक्रम से २७०० वर्ष पूर्व तक बन चुके थे। अतः रैपसन का अन्यत्र (पृष्ठ ७० पर) लिखना कि ईसा से २४०० वर्ष पूर्व आर्यों का भारत प्रवेश हुआ, सर्वथा अयुक्त और उपहासास्पद है।[3]

पक्षपातयुक्त होने से रैपसन के ध्यान में एक और बात नहीं आई। सूत्रों और पुरातन स्मृतियों में महाभारत सदृश भाषा मिलती है। महाभारत सदृश भाषा यास्कीय निरुक्त में भी है। अतः यास्क और सूत्रकार ऋषि यदि पाणिनि से पहले के हैं, तो महाभारत भी पाणिनि से पहले का है। महाभारत के पूना संस्करण में यद्यपि शोधन का पूरा अवकाश है, तथापि उसमें पाणिनि से पूर्व के और सूत्र सदृश प्रयोग अत्यधिक हैं। रैपसन और उसके समान मति रखनेवाले ईसाई लेखकों को यह बात जानकर अपना हठ त्यागना चाहिए। महाभारत संहिता विक्रम से २७०० वर्ष पूर्व अपना यह रूप धारण कर चुकी थी।

(ग) रैपसन की भ्रान्ति का कारण कथित भाषाविद् वाकरनागल का लेख था। रैपसन लिखता है—

रामायण और महाभारत भाषा और इसके रूप का वह आदर्श उपस्थित करते हैं, जो धर्मसूत्रों, स्मृतियों और पुराणों में अनुकृत है। इनका मूल भाटों के परम्परागत गानों

1. The language also of the Vedic literature is definitely anterior, though not necessarily much anterior, to the classical speech as prescribed in the epoch making work of Pāṇini: even the sūtras, which are undoubtedly later than the Brāhmaṇas, show a freedom which is hardly conceivable after the period of the full influence of Pāṇini, Camb. His. Ind. p. 113.

२. अष्टाध्यायी ४।३।१०५॥

३. देखो, मद्रचित, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग प्रथम, पृष्ठ १, विक्रमसंवत् १९९१.

में खोजा जा सकता है। वे चारण भाट न पुरोहित थे, न विद्वान्। इस प्रकार उनकी भाषा स्वभावतः शिष्ट संस्कृत से अधिक सर्वप्रिय और अल्प संयत है। (वाकरनागल, आल्ट इण्डीश, ग्रामर, भाग प्रथम, पृष्ठ ४५) बहुत अंशों में यह वैयाकरणों के बताए नियमों पर नहीं चलती और उनसे उपेक्षित है।[1] इति।

आलोचना—इस लेख का प्रथम वाक्य ठीक है। दूसरे वाक्य से एक युक्तिहीन, असंगत, कल्पित और प्रमाणशून्य तर्क का आरम्भ होता है। वस्तुतः—

१. रामायण और महाभारत की भाषा परम शिष्ट भाषा है। उसमें अनेक वैदिक रूपों की छाया है।

२. इनके रचयिता वाल्मीकि और व्यास थे। वे पाणिनि से पूर्वकाल के थे। उनके समय में भाषा का रूप पाणिनि-प्रदर्शित रूप नहीं था। पाणिनि के काल में शिष्ट भाषा बहुत संकुचित हो चुकी थी। पाणिनि ने उसी संकुचित भाषा का संक्षिप्त व्याकरण रचा। उसके आधार पर उत्तरकाल में संस्कृत भाषा और अधिक संकुचित होगई। वस्तुतः पाणिनि की भाषा पाणिनीय व्याकरण की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। यह उसके सूत्रपाठ और जाम्बवती विजय से स्पष्ट है।

३. उन दिनों साधारण चारण या भाटों के गीत लेकर ग्रन्थ लिखने की रीति नहीं थी। इस कल्पित कथन को किसी दूसरे प्रमाण से सिद्ध करना होगा। तब तक यह असिद्ध है। न्याय की परिभाषा में यह साध्यसम हेत्वाभास है, हेतु नहीं है।

४. वाकरनागल और रैपसन ने पाणिनि का ग्रन्थ भी ध्यान से नहीं देखा। फिर शाकटायन, भरद्वाज और इन्द्र आदि के व्याकरणों का उन्हें कुछ ज्ञान नहीं। आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व कृष्णद्वैपायन व्यास ने जब भारत संहिता रची, तब पाणिनि का अस्तित्व नहीं था। व्यास की भाषा पर ऐन्द्र आदि प्राचीन व्याकरणों का प्रभाव था। देवबोध लिखता है—

यान्युजहार महेन्द्राद् व्यासो व्याकरणार्णवात्। पदरत्नानि किं तानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे॥

अर्थात्—भारत संहिता के पदरत्नों की सिद्धि पाणिनि के अति संक्षिप्त व्याकरण में नहीं मिलेगी। हैं वे पदरत्न परमपुनीत शिष्ट भाषा के।

(घ) वाकर्नागल के भाव को रैपसन पुनः लिखता है—

रामायण और महाभारत की भाषा वैदिक नहीं, परन्तु संस्कृत का एक सर्वप्रिय रूप है, जो चारण भाटों ने विकसित किया।[2] इति।

आलोचना—अपने काल की परिस्थितियों और विचारों से पुरातन इतिहास का तोलना, इस लेख में सुस्पष्ट है। रैपसन ने नहीं सोचा कि चारण, भाट किस वर्ण के थे। उन दिनों

1. The Epics supply the model both for language and form which is followed by the Law-books and the Puranas. Their source is to be traced to the traditional recitations of bards who were neither preists nor scholars. Their language is thus naturally more popular in character and less regular than Classical Sanskrit (Wackernagel, Altind. Grammar, Vol I. p. XLV.). In many respects it does not conform to the laws laid down by the grammarians and is ignored by them. Camb. Hist. of India, Vol. I. p 220.

2. The language of both epics is not Vedic but a popular form of Sanskrit, which was developed by the bards. वही पृ० २५१।

जब अधिकांश शूद्र भी संस्कृत भाषा में अभ्यस्त थे, तब सर्वप्रिय संस्कृत शिष्ट संस्कृत थी। उसका कोई पृथक् रूप नहीं था। वह पाणिनीय व्याकरणानुसारी संकुचित संस्कृत नहीं थी। और लोमहर्षण आदि तो विद्वान् ब्राह्मण थे।

उन दिनों राजाओं के अपने शिष्ट विद्वान् कवि, जो ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि थे, उन-उन राजाओं का इतिवृत्त लिखते रहते थे। यज्ञों में उनकी स्तुति में ऋषि-मुनि ऐतिहासिक मूल्य की गाथाएं गाया करते थे। ये गाथाएं शिष्ट संस्कृत में थीं। अपनी भ्रान्त बात को सिद्ध करने के लिए चारण भाटों की संस्कृत की कल्पना करना एक पङ्गु-तर्क है। गत पांच सहस्र वर्ष के उद्भट विद्वान् महाभारत संहिता को कृष्ण द्वैपायन की कृति मानते आये हैं। कृष्ण द्वैपायन कौरव पाण्डव भ्राताओं का समकालिक था। उसने अपने ग्रन्थ का मूल चारण भाटों से लिया था, यह कथन घृणित ही नहीं, प्रमत्तवाक् है। पाश्चात्य लेखकों ने इसी कारण कृष्ण द्वैपायन के अस्तित्व को नष्ट करने का यत्न किया। इसमें वे कृतकार्य नहीं हो सके। उनके ऐसे लेख उनके पल्लवग्राही पाण्डित्य के प्रदर्शक हैं।

(ङ) भयभीत रैपसन अपने पाश्चात्य गुरुओं की प्रतिध्वनि पुनः करता है—

महाभारत का कर्ता एक पुरुष नहीं, एक वंश नहीं, परन्तु अनेक व्यक्ति या वंश हैं।[1]

आलोचना—इस का विस्तृत उत्तर आगे मिलेगा। पाश्चात्यों के इस प्रलाप का निराकरण हमने आगे किया है। ईसाई पक्षपातान्ध लोगों के अतिरिक्त ऐसे कथन और कोई नहीं कर सकता था। जिस ग्रन्थ को रामानुज, शंकर, कुमारिल, उज्जट, शबर, भट्टार हरिचन्द्र, वररुचि, बौधायन, पाणिनि, आश्वलायन और शौनक आदि कृष्णद्वैपायन की कृति मानते हैं, उसकी अप्रामाणिकता के सम्बन्ध में रैपसन का लेख त्याज्य है। जिन वैशंपायन और सौति आदि का महाभारत संहिता में थोड़ा सा भाग है, वे सब व्यास के साक्षात् शिष्य थे। वे सब संस्कृत के अद्वितीय पण्डित थे। उनमें से एक को भी चारण, भाटों से कुछ सीखने या सामग्री प्राप्त करने की आवश्यकता न थी। चारण भाट उनके चरणों में बैठ कर स्वयं विद्वान् बन रहे थे।

विण्टर्निट्ज की भूल—पाणिनि से पूर्व के व्याकरणों को न जान कर यही भूल अध्यापक विण्टर्निट्ज़ ने की है—

रामायण और महाभारत की भाषा संस्कृत है। हम इसे "रामायण, भारत की संस्कृत" कहते हैं। शिष्ट संस्कृत से इसका थोड़ा सा अन्तर है। इसमें कुछ तो पुराने रूप हैं, पर अधिक अन्तर इस बात का है कि इसमें व्याकरण के नियमों का पूर्णतया पालन नहीं है। यह जनसाधारण की भाषा के अधिक निकट है। इसे संस्कृत का सर्वप्रियरूप कह सकते हैं।[2] इति।

---

1. The epic was composed not by one person nor even by one generation, but by several, C. H. I. p. 261.
2. The language of the epics is likewise Sanskrit. We call it "Epic Sanskrit", and it differs but little from the "Classical Sanskrit" partly in that it has preserved some archaisms, but more in that it keeps less strictly to the rules of grammar and approaches more nearly to the language of the people, so that one may call it a more popular form of Sanskrit. Indian Literature, Winternitz, p. 44.

पाणिनि से पूर्व की शिष्ट भाषा भारत-संहिता की भाषा से मिलती थी। इसका प्रमाण इस तथ्य में है कि भारत-संहितान्तर्गत रूप, ब्राह्मणग्रन्थों, श्रौत और धर्मसूत्रों, निरुक्त, बृहद्देवता और भास तथा कालिदास के ग्रन्थों तक में पाए जाते हैं। कालिदास पर यद्यपि पाणिनि का पूर्ण प्रभाव पड़ चुका था, तब भी उसमें पुराने रूपों की कुछ झलक अत्यन्त स्पष्ट है।

योरुप के जिन दो एक लेखकों ने इस ईसाई विचार का खण्डन किया, उनके विषय में अध्यापक विण्टर्निट्ज़ ने लिखा—

महाभारत मूल में एक ग्रन्थ था, ऐसे विरोधीवाद असिद्ध हैं।[1] इति।

इस असंगत लेख की साररहितता आगे स्पष्ट होगी।

(च) इन बातों के अतिरिक्त पाश्चात्य लेखकों का वर्तमान भाषा-विज्ञान के अनुसार मत है कि मनु[2], याज्ञवल्क्य[3] आदि स्मृतियां, आपस्तम्ब आदि धर्मसूत्र और रामायण, महाभारत आदि इतिहास विक्रमपूर्व ६०० वर्ष से अधिक पुराने नहीं हैं। इन पाश्चात्य लोगों ने ईसाई पक्षपात के कारण इस विषय में अणुमात्र प्रयास नहीं किया। अधिकांश धर्मसूत्र कल्पसूत्रान्तर्गत हैं। ये उन्हीं ऋषियों की कृति हैं, जिन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रवचन किया था। याज्ञवल्क्य स्मृति वाजसनेय ब्राह्मण के प्रवक्ता ने बनाई थी। भारत संहिता उस कृष्ण द्वैपायन व्यास की रचना है, जिसके शिष्य-प्रशिष्यों ने शाखा-प्रवचन किया। रामायण इनसे पुराना ग्रन्थ है और वर्तमान मनुस्मृति भी नया ग्रन्थ नहीं है। इस विषय का सप्रमाण विषद-विवेचन पं० ईश्वरचन्द्रजी के ग्रन्थ में देखिए। याज्ञवल्क्य स्मृति के १०० से अधिक प्रयोग पाणिनि से पूर्व के हैं। महाभारत के पूना संस्करण से भी ऐसे बहुत प्रयोग प्रकाश में आए हैं। मनुस्मृति का कहना ही क्या? पाश्चात्य लोगों ने पक्षपात से अनेक कल्पनाएं की हैं। हमारे सैकड़ों प्रमाणभूत ग्रन्थों की तिथियां उलट दी हैं। हमारे ग्रन्थों की तिथियां ही नहीं, प्रत्युत पारसी, यूनानी ग्रन्थों की तिथियां भी उलट दी हैं। उन सब का निराकरण इस इतिहास के अगले पृष्ठों में होगा।

इस सम्बन्ध में एक बात कह देनी आवश्यक है। इन पक्षपातान्ध लोगों को भी कहीं कहीं विवशता से सत्य स्वीकार करना पड़ा है। विण्टर्निट्ज लिखता है—

गाथाएं, छन्दोबद्ध रचनाएं, जो भाषा और छन्द में वैदिक श्लोकों से सर्वथा भिन्न हैं और महाभारत के निकट हैं।[4] इति। तथा—

---

1. Untenable, too, are the opposite theories upon the origin of the epic as one work. Indian Lit. p. 316.

2. This indicates atleast that the fabulous age ascribed to the Law-book by the Hindus and by early European (निष्पक्ष) scholars may be disregarded in favour of a much later date. C. H. I. p. 278.

3. The law-book of Yajna valkya belongs to the fourth century. C.H.I. p. 279.

4. Gathas, verses which both in language and meter are entirely different from the Vedic verses and approach the epic. Some problems of Indian Literature, Winternitz, p. 12.

ऐतरेय ब्राह्मण में एक आख्यान मिलता है। उसके गद्य में गाथाएं या छन्दोबद्ध रचनाएं यत्रतत्र हैं। ये गाथाएं महाभारत की भाषा तथा छन्दों के निकट हैं।[1] इति।

आलोचना—ब्राह्मण ग्रन्थों में ये गाथाएं अन्त में प्रायः इति पद के साथ उद्धृत हैं। इसका प्रत्यक्ष कारण है। ये पुराने गाथा ग्रन्थों से उद्धृत हैं। जब वे ग्रन्थ वर्तमान ब्राह्मणों से पूर्व विद्यमान थे, तो लगभग वैसी भाषा रखने वाले रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थ, उस अथवा उससे पूर्वकाल में क्यों न थे। पाश्चात्य लोगों के पास इसका कोई उत्तर नहीं। स्मरण रहे कि ब्राह्मणस्थ गाथाएं ब्राह्मण-प्रवचन-काल से कई सौ वर्ष पहले बन चुकी थीं। अतः ब्राह्मण ग्रन्थों से कई सौ वर्ष पहले महाभारत सदृश भाषा विद्यमान थी। उसी भाषा में वे पुराण आदि ग्रन्थ; जो ब्राह्मण में उल्लिखित हैं, विद्यमान थे।

आर्य इतिहास ने अनेक गाथाओं के विषय में ऐतिहासिक तथ्य यहां तक सुरक्षित रखा है कि कौनसी गाथा किस व्यक्ति ने बनाई।

तीसरा कारण—डार्विन का विकासवाद

आधुनिक विकासवाद से सत्यज्ञान का अनिष्ट—संवत् १९२८ के अन्त अथवा सन् १८७१ के आरम्भ में इङ्गलैण्डदेशोत्पन्न चार्लस डार्विन ने अपना ग्रन्थ "दि डिसैण्ट आफ मैन" अर्थात् "मनुष्य की परम्परागत उत्पत्ति" प्रकाशित किया। उस समय योरुप के यहूदी और ईसाई विद्वानों के पास संसार का सत्य पुरातन इतिहास सुरक्षित नहीं था। वे लोग योग विद्या के ज्ञान से भी शून्य थे। इसके अतिरिक्त योरुप के लोगों में नई बातों के लिए अन्धाधुन्ध रुचि हो जाती है। देखो, कार्यालयों में काम करने वाली कुछ कुमारियों ने जब शिरः केश कटाने आरम्भ किए, तो दो चार वर्ष में सारे योरुप और अमेरिका की स्त्रियां लूत-केशी हो गईं। जब एक बार योरुप में सिगरेट का प्रचार हुआ तो कुव्यसन होने पर भी सारे पाश्चात्य संसार के अधिकांश नर, नारी सिगरेट पीने वाले हो गए। इसी प्रकार नूतनता की पुट लिया हुआ डार्विन का मत योरुप में दिन दिन बद्धमूल होता गया। थोड़े काल में यह मत योरुप और अमेरिका में सर्वव्यापी हो गया। इस असत्य मत के कारण पश्चिम के लोगों को अपनी उत्कृष्टता प्रदर्शित करने का अवसर मिला। संसार की सब बातें विकासवाद के प्रकाश में देखी जाने लगीं। भारत पर भी अंग्रेजी राज्य और शिक्षा के कारण इस मत का तीव्र प्रभाव पड़ा। सब पुरातन विद्याएं और सिद्धान्त जो इस मत के प्रमाणित होने में बाधा थे, असत्य ठहराए जाने लगे। इतिहास का एक कल्पित कलेवर खड़ा कर दिया गया। अपने वृथा अभिमान में योरुप के लेखकों ने इस वाद के रंग में लिखे गए विचारों को वैज्ञानिक (scientific), तर्कयुक्त (rationalistic) और सूक्ष्म विवेचनात्मक (critical) लिखना आरम्भ कर दिया। है यह बात सर्वथा सत्य विरुद्ध। ये गुण इन लोगों में थे, पर शतांश में।

प्रस्तर युग, धातुयुग, प्रागैतिहासिकयुग आदि कल्पनाएं—विकासवाद के स्वीकार कर लेने पर मनुष्य के ज्ञान की क्रमिक उन्नति मानी गई। तदनुसार यह निश्चय किया गया कि पहले

1. We find in the Aitareya Brahmana an Akhyana in which the Gathas or verses scattered among the prose approach the epic in Language as well as in meter. His. of Indian Lit. Winternitz, p. 24.

मनुष्य अज्ञानी था। वह पत्थर के पदार्थों से अपना काम चलाता था। फिर मनुष्य ने धातुओं का आविष्कार कर लिया। फिर वह उत्तरोत्तर उन्नति करता गया। इसके प्रमाण में पुरातत्त्व की असंगत सहायता ली गई। योरुप में, जहां वर्तमान सभ्यता पर बड़ा गर्व किया जाता है, इस समय भी अनेक स्थान हैं, जो अर्धसभ्य लोगों के हैं। उन स्थानों के अतिनिर्धन लोग प्रस्तर आदि की वस्तुओं का उपयोग करते हैं। भारत में ऐसे अनेक स्थान हमने स्वयं देखे हैं। यदि कोई ऐसा पुराना स्थान खोद कर निकाला जाए, तो उससे यह परिणाम नहीं निकाला जाना चाहिए कि उन दिनों का शेष भारत वैसा असभ्य था। अतः विकासवादियों की ऐसी कल्पनाओं से सत्य इतिहास रचा नहीं जा सकता था।

डार्विन मत की तर्क-विरुद्धता—विकासवादियों की परिभाषा के अनुसार "अमीबा" नामक अति सूक्ष्म सजीव प्राणी से लेकर मनुष्य तक की योनियों के शरीर की समानता को देख कर चार्लस डार्विन ने एक जाति से दूसरी जाति के उद्भव के मत को प्रकट किया। इस मत में तर्क की न्यूनताएं हैं। डार्विन की बुद्धि तर्क के पाठ से परिमार्जित न थी। केवल दृष्टान्तों को देखकर किसी अर्थ की सिद्धि नहीं होती।[१] उसके लिए दृष्टान्त के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध रखने वाला हेतु होना चाहिए। दो जातियों के प्राणियों के शरीर रचना में सम हो सकते हैं, पर उनकी समानता का कारण परस्पर प्रकृति-विकृति भाव हो सकता है और विना प्रकृति-विकृति भाव के रचयिता की इच्छा भी। डार्विन के मत में वह हेतु जो दो जातियों के शरीर में प्रकृति-विकृति भाव को प्रकाशित करता हो, नहीं है।

प्राणियों की जाति का लक्षण है, सन्तति का होना। एक गौ से दूसरी गौ और एक अश्व से दूसरा अश्व उत्पन्न होता है। इसलिए गौ की एक जाति और अश्व की एक जाति है। घोड़े और अफ्रीका के "ज़ेबरा" की भी एक जाति है। कारण, उन दोनों के मेल से सन्तान उत्पन्न होती है। गधे और घोड़े की भी एक जाति है। वे दोनों भी मेल से सन्तति उत्पन्न करते हैं। जिन दो के मेल से सन्तति उत्पन्न नहीं होती, उन दो की एक जाति नहीं हो सकती। गौ और अश्व परस्पर मिल कर सन्तान उत्पन्न नहीं करते। इसलिए दोनों की जाति भिन्न है।

मनुष्य और वानर की जाति भी भिन्न है। उन दोनों के मेल से सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती। इस हेतु से डार्विन के सब हेतुओं का निराकरण हो जाता है। उनका जातियों की उत्पत्ति (origin of species) का सारा मत कल्पित सिद्ध होता है।[२] अतः उन्नति होते होते वानर मनुष्य नहीं हुआ। मनुष्य आदि सृष्टि से ही मनुष्य था। डार्विन के विकास-

---

१. अध्यापक विल्सन का "दि मिरेकल्स ऑफ़ लैंग्वेज" नामक ग्रन्थ श्री ला० फीरोज़चन्द जी एम० ए० ने पठनार्थ हमें मार्च १६४७ में दिया। हमारा यह अध्याय सन् १६४६ में लिखा जा चुका था। हमें अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध लेखक श्री बर्नार्ड शा ने पूर्वोक्त ग्रन्थ के प्राक्कथन के पृ० १ पर डार्विन के विरुद्ध कुछ अंशों में यह युक्ति दी है। यदि शा महाशय को सृष्टि के आरम्भ से ले कर आज तक का मूल इतिहास ज्ञात होता, तो उनकी युक्ति अधिक परिमार्जित और बल लिए होती।

२. इस विषय का विस्तृत खण्डन प्रसिद्ध दार्शनिक पं० ईश्वरचन्द्रजी लिखित, और सरस्वती मासिक पत्रिका में प्रकाशित लेखों में देखें।

वाद-का खण्डन इस इतिहास से स्पष्ट समझ आएगा। योरुप में यदि सत्य इतिहास जानने वाले विद्वान् विद्यमान होते, तो यह कल्पित विकास सिद्धान्त संसार में कभी न फैलता।

मनुष्य आदि से कैसा था, उस ने भारतवर्ष के इतिहास में क्या क्या किया, उसका उत्तरोत्तर विकास हुआ या ह्रास, यह वर्णन इस बृहद् इतिहास के दूसरे भाग में होगा।

संसार में ह्रास का प्राधान्य—जिस प्रकार प्राणियों की उत्पत्ति के विषय में विकासमत निराधार है, उस प्रकार मानव परिस्थिति तथा मानव ज्ञान की दिन दिन उन्नति का मत भी निस्सार है। सत्यता, धर्मपालन, आयु, स्वास्थ्य, शक्ति, बुद्धि, स्मृति, आर्थिक स्थिति, राज्य व्यवस्था और भूमि की उपज शक्ति दिन दिन न्यून हुई है। वर्तमान युग में पचास वर्ष के पश्चात् जिस प्रकार मनुष्य निर्बल होना आरम्भ हो जाता है, तथा उसकी मस्तिष्क शक्ति किञ्चित् किञ्चित् ह्रासोन्मुख होती जाती है, ठीक उसी प्रकार सत्युग के दीर्घकाल के पश्चात् पृथ्वी से बने सब प्राणियों में ह्रास का युग आरंभ हो जाता है। पृथ्वी से आगे सूर्य आदि पर भी यही नियम लागू है। इस समय सूर्य संकुचित हो रहा है और भूमि की उपज शक्ति न्यून हो रही है। संसार के सब पदार्थों में ह्रास हो रहा है। इसलिए तत्त्ववेत्ता ऋषि कह चुके हैं—

(क) ६००० वर्ष पूर्व के मानव धर्मशास्त्र[1] (भृगु-प्रोक्त-संहिता) में लिखा है—

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः। कृते त्रेतादिषु ह्येषां वयो ह्रसति पादशः॥ १। ८३॥

अर्थात्—सत्युग में मनुष्य नीरोग और सर्व प्रकार से पूर्णकाम थे। तब मानव आयु ४०० वर्ष, त्रेता में ३०० वर्ष, द्वापर में २०० वर्ष और कलि में १०० वर्ष है। प्रति युग मानव आयु पाद पाद न्यून होती जाती है।

इस तथ्य को पुराने ऐतिहासिक साक्षात् जानते थे। उन के लिए मनु का यह वचन कथनमात्र न था, प्रत्युत इतिहाससिद्ध सत्य था।

(ख) भृगु का साथी दीर्घजीवी नारद था। नारद प्रोक्त मानव धर्मशास्त्र में लिखा है—

नष्टे धर्मे मनुष्येषु व्यवहारः प्रवर्तितः। द्रष्टा च व्यवहाराणां राजा दण्डधरः कृतः॥ १। २॥

अर्थात्—सत्युग के अधिकांश भाग में न राजा था, न दण्ड था। मानव सृष्टि धर्मपरायण थी। जब धर्म नष्ट होने लगा तो राजा बनाना निश्चित हुआ और सब अनृत व्यवहारों में दण्ड-व्यवस्था चली।

(ग) नारद के साथी बृहस्पति का भी यही मत है—

तपोज्ञानसमायुक्ताः कृते त्रेतायुगे नराः। द्वापरे च कलौ नृणां शक्तिहानिर्विनिर्मिता॥ अपरार्क टीका १।६६ पर उद्धृत।

अर्थात्—कृत और त्रेतायुग में नर तप और ज्ञान युक्त थे। द्वापर और कलि में नरों की इन शक्तियों में स्वाभाविक ह्रास होता है।

(घ) ५१०० वर्ष पूर्व के शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य के वचन का अनुवाद मात्र करते हुए उनके शिष्य माध्यन्दिन ने लिखा है—

---

१. मूल मानव धर्मशास्त्र स्वायंभुव मनु कथित है। उसका वर्तमानरूप महाभारत से कुछ पहले काल का है। उसके पश्चात् केवल थोड़े से प्रक्षेप हुए हैं।

तं ह स्मैतं पूर्वे उपयन्ति त्रिमहामतन्ते तेजस्विन आसुः सत्यवादिनः संशितव्रताः। १२ । १ । ४ । २१ ॥

इस पर कलिसंवत् ३७४० में आचार्य हरिस्वामी ने अपने भाष्य में लिखा—

तं ह एतं त्रिमहामतं पूर्वे उप्यन्ति स्म । ते तेजस्विन आसुः।..............पूर्वे प्राक् कलियुगाद् उपयन्ति स्म न सम्प्रति...............।

अर्थात्—याज्ञवल्क्य जो स्वयं महातेजस्वी थे, कहते हैं—उनसे पूर्व के ऋषि अधिक तेजस्वी थे।

(ङ) निरुक्त सदृश सूक्ष्म विद्या का लिखने वाला, उदारधि यास्क मुनि लिखता है—

मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन्। १३ । १२ ॥

अर्थात्—ऋषियों के ऊपर के लोकों को चलते जाने पर, मनुष्य परम विद्वानों से बोले।

इससे प्रतीत होता है कि यास्क के काल में (भारत युद्ध के ५० अथवा ६० वर्ष पश्चात्) ऋषि न्यून हो रहे थे। पूर्व युगों में ऋषि अधिक थे। शनैः शनैः विद्या के साक्षात् दर्शन का ह्रास हो गया था। इससे पूर्व १ । २० में भी यास्क ने सृष्टि में शनैः शनैः ज्ञान के ह्रास का कथन किया है।

(च) ४००० वर्ष पूर्व के दूसरे महापुरुष भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास ने लिखा है—

आयुर्वीर्यमथो बुद्धिर्बलं तेजश्च पाण्डव। मनुष्याणामनुयुगं ह्रसतीति निबोध मे ॥ आरण्यकपर्व १८८ । ११ ॥

अर्थात्—हे पाण्डव युग युग में मनुष्यों का आयु, वीर्य, बुद्धि, बल और तेज ह्रास को प्राप्त होता है।

(छ धर्मशास्त्र, ब्राह्मण और इतिहास के अतिरिक्त आयुर्वेद की विद्या, विज्ञान सम्बन्धिनी चरकसंहिता में भी इस बात का प्रतिपादन मिलता है—

आदिकाले अदितिसुतसमाजसो ऽतिबलविपुलप्रभावाः प्रत्यक्षदेवदेवर्षिधर्मयज्ञविधिविधानाः शैलेन्द्रसार-संहतशरीराः प्रसन्नवर्णेन्द्रियाः.......... पुरुषा बभूवुरमितायुषः। ततस्त्रेतायां लोभादभिद्रोहः।......... ततस्त्रेतायां धर्मपादोऽन्तर्धानमगमत्...........युगे युगे धर्मपादः क्रमेणानेन हीयते। विमान स्थान, अध्याय ३।

अर्थात्—आदिकाल में अतिबल और सुदृढ़शरीर पुरुष थे। त्रेता में धर्म का एक पाद नष्ट हुआ पुरुषों का बल कुछ क्षीण हुआ। इस क्रम से युग युग में धर्म का एक एक पाद नष्ट होता है।

(ज) इनसे कुछ उत्तरकाल के आपस्तम्ब धर्मसूत्र १ । २ । ५ । ४ में लिखा है—

तस्मादृषयोऽवरेषु न जायन्ते नियमातिक्रमात्।

अर्थात्—उत्तरकालों में ऋषि उत्पन्न नहीं होते, तप आदि के नियमों के अतिक्रमण होने से।

इस विषय में इतने विद्वानों का लेख पर्याप्त है।[1] वस्तुतः सत्यज्ञाननिष्ठ संसार का यह सर्वस्वीकृत सिद्धान्त था। डार्विन के काल के योरुप और अमेरिका के लोगों को संसार

१. महानैयायिक पण्डितप्रवर उदयन ने भी अपनी न्याय कुसुमाञ्जलि में इसी भाव पर प्रकाश डाला है—
जन्मसंस्कारविद्यादेः शक्तिस्वाध्यायकर्मणाम्। ह्रासदर्शनतो ह्रासः सम्प्रदायस्य मीयताम् ॥ १ । १ ॥

के पुराने इतिहास का ज्ञान नहीं था। जिन को कुछ बातें ज्ञात होती थीं, वे अपने अल्पज्ञान और पक्षपात के कारण उन्हें मिथ्या कल्पनाएं समझते थे, अतः उन्होंने कहना और लिखना प्रारम्भ किया कि पुरातन मनुष्य असभ्य था, उसने सहस्रों वर्ष में सभ्यता और ज्ञान में उन्नति की है। इस भ्रान्ति और अङ्गरेज़ी शिक्षा का फल है कि अनेक भारतीय विकासमत को अपनाते हैं। इस इतिहास के अगले पृष्ठ प्रमाणित करेंगे कि पूर्वोक्त सत्यतादि समस्त बातें संसार में क्रमशः ह्रास को प्राप्त हुई हैं।

ह्रास सिद्धान्त यवन वाङ्मय में—इस बात का सामान्य परिचय पूर्व पृष्ठ १८ पर दिया गया है। अध्यापक ए० एच० सेस के अगले वचन इसे अधिक स्पष्ट करेंगे—

मध्यकालीन परम्परा ने एक और भी विश्वास छोड़ा है।..................यह विश्वास था, सभ्यता और संस्कृति की उन्नति के स्थान में, ह्रास का। यह विश्वास शास्त्रीय संसार से परम्परा में आया है। संसार सुवर्ण युग के पुरातन काल को खेद से देखता था।[1] इति।

अध्यापक सेस को संसार का पूर्व इतिहास विदित नहीं था। उन्होंने इस विश्वास को यवनदेश के मध्यमकालीन लोगों का विश्वास कहा है। वस्तुतः यह विश्वास संसार की पुरातन जातियों में आरंभ से चला आरहा था। वे प्रत्यक्ष जानते थे कि मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति क्रमशः ह्रास को प्राप्त होरही हैं। योरुप के वर्तमान लेखक डार्विन के विकास सिद्धांत से पक्षपात में पड़े और उन्होंने पुरातन इतिहास को मिथ्या कहने का दुस्साहस किया।

बर्गसन और चाइल्डे—बैल्जियम देशोत्पन्न फ्रैञ्च अध्यापक दार्शनिक बर्गसां बर्गसन) विकासवाद को पाश्चात्य संस्कारानुसार यद्यपि पूर्णतया मानता था, तथापि वह समझता था कि उन्नति सतत दिखाई नहीं देती। इसमें बहुधा रिक्त स्थान दिखाई देते हैं। बर्गसां के इस विचार को गार्डन चाइल्डे ने अधिक अच्छी भाषा में रखने का मार्ग निकाला। उसने लिखा—

विकास यथार्थ है, यदि निरन्तर नहीं है। उन्नति नीचे ऊपर जाने की शृङ्खला का रूप धारण करती है। परन्तु उन क्षेत्रों में जहां पुरातत्त्व विद्या और लिखित इतिहास दृष्टि डाल सकते हैं, कोई भी निचली स्थिति पूर्व की निचली स्थिति के स्तर तक ह्रास को प्राप्त नहीं होती। इसके विपरीत विकास का प्रत्येक शिखर अपने पूर्व के उन्नत स्थान से अधिक ऊंचा जाता है।[2] इति।

इन पंक्तियों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि योरुप के लेखक इस कठिनाई को अनुभव करते हैं कि इतिहास, वह थोड़ा सा इतिहास भी; जो उन्हें त्रुटित रूप में ज्ञात है, मानव

1. Medieval tradition had left yet another belief,..................It was the belief in the decline instead of the progress of civilization and culture. The belief had been handed down from the classical world which had looked back with regret upon a "Golden age". A. H. Sayce, 1930.
2. Progress is real if discontinuous. The upward curve resolves itself into a series of troughs and crests. But in, those domains that archeology as well as written history can survey, no trough ever declines to the low level of the preceding one, each crest out-tops last precursor. What happened in history, by Gordon Childe, 1942, p. 252.

सभ्यता के सतत विकास का साक्ष्य नहीं देता। यदि वे पक्षपात त्याग कर संसार के पुराने इतिहास का अध्ययन करें, तो वे वर्तमान विकासवाद को मिथ्या समझेंगे।

विकास सिद्धान्त योगज शक्ति से अनभिज्ञ—ईश्वर-प्रेरणा से योगज शक्तियुक्त आत्माएं आदि सृष्टि की सर्वशरीर-निर्मातृ हैं। योरुप और अमेरिका में योगज्ञान का सर्वथा अभाव है। वस्तुतः योगज्ञान सृष्टि का सर्वमहान् ज्ञान है। इसका महत्त्व असीम है। पर योग की साधना में महान् संयम और तप अभीष्ट है। योग का नाममात्र सुन कर कोई इसके तत्त्व को समझ नहीं सकता। रसायनशास्त्री रसायनविद्या को, ज्योतिषी ज्योतिष को और धर्मशास्त्री धर्मशास्त्र को समझता है। इसी प्रकार योगज्ञान में गति रखनेवाला योग और उसके महत्व को समझता है। इस ज्ञान के ज्ञाता भारतवर्ष में अब भी विद्यमान हैं। जो व्यक्ति परिश्रमपूर्वक इस ज्ञान को सीखता है, वह इस में निपुण होता जाता है। अन्त में उसे योग का महान् बल प्राप्त होता है। ऐसे योगबलप्राप्त निष्कपट, तपस्वी, सर्वज्ञानवित् सत्यभाषी योगी ऋषियों का कथन है कि सब प्राणियों के आदि शरीर योगज शक्तिसम्पन्न आत्माओं ने बनाए। वे शरीर योगज शरीर कहाते हैं।[1] उनसे आगे मैथुनी सृष्टि आरंभ हुई।

अनेक वर्तमान लोग इस विषय को न जानने के कारण इसमें विश्वास नहीं करते। उन्हें ऋषि दयानन्द सरस्वती की कई जीवन घटनाएं पढ़नी चाहिएं। अधिक क्या लिखें। हमारे सुहृद श्री महात्मा खुशहालचन्दजी हृद्गति रोक सकते हैं। प्रतिष्ठित डाक्टर इस बात को जानते हैं। पश्चिमीय विद्या इस विषय में अवाक् है।

इस प्रकार सब विद्याओं की तुलना से हम जानते हैं कि योरुप के लोगों ने विकासवाद से प्रभावित होकर मनुष्य के पुराने इतिहास को तिरोहित कर दिया है। उस वास्तविक इतिहास को निष्पक्ष और सत्य दृष्टि से सजीव करने का यह हमारा प्रयास है।

चौथा कारण—बृटिश शासन का कलुषित ध्येय

अक्षुण्ण आर्यगौरव का नाश—जब बृटिश लोग भारत में शासनाधिकार स्थापित करने लगे, तो उन्होंने अनुभव किया कि भारतीय जाति पर राज्य करना असम्भव होगा। आर्य लोग, जो इस देश के वासी हैं, असाधारण आत्मगौरव रखते हैं। उस आत्मगौरव को नाश करने के लिए उन्होंने अनेक उपाय बर्ते।

आर्य गौरव स्वायंभुव मनु के काल में—आर्यों का आत्मगौरव स्वायंभुव मनु के काल से चला आ रहा था। मानव धर्मशास्त्र में लिखा है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥[2]

अर्थात्—भारतभूमि में जन्मे ब्राह्मण से पृथिवी के सब मानव अपना अपना चरित्र सीखें।

उस समय का मानवमात्र समझता था कि भारत का ब्राह्मण जीवन और ज्ञान में संसार का आदर्श था।

---

१. ये च योगशरीरिणः॥ सभापर्व ८। २६॥

२. २। २०॥

ह्यूनसांग के काल में—चीनी यात्री ह्यूनसांग ने स्वायंभुव मनु के अनेक युग पश्चात्, जब ब्राह्मण अपने अति पुरातन दिव्य रूप से नीचे था, तब भी उसका गौरव अनुभव किया। वह लिखता है—

भारत के परिवार वर्णों में विभक्त हैं। उनमें से पवित्रता और उच्चता में ब्राह्मण विशिष्ट हैं। परम्परा में इस वर्ण का नाम इतना उज्ज्वल है कि देशभेद का प्रश्न न करके, लोग सारे भारत देश को ब्राह्मणों का देश कहते हैं।[1] इति।

आर्य गौरव का अलबेरूनी को आभास—बहुत दिन की बात नहीं। नौ सौ वर्ष से कुछ पहले की घटना है। खीवा वासी मुहम्मद-बिन-अबुरिहां-अलबेरूनी अपनी अर्बी पुस्तक अल किताब-उल-हिन्द में लिखता है—

"...............उन के (हिन्दुओं के) जातीय जीवन की कुछ विशेषताएं, जो उनमें गहरी निहित हैं, प्रत्येक (विदेशी) के लिए स्पष्ट हैं,............हिन्दू विश्वास रखते हैं, उनके देश से बढ़कर कोई देश नहीं, उनकी जाति के समान कोई जाति नहीं, उनके राजाओं के समान कोई राजा नहीं, उनके धर्म के समान कोई धर्म नहीं, उनके ज्ञान के समान कोई ज्ञान नहीं"।[२] इति।

अलबेरूनी के काल में आर्यों का जो विश्वास था, वह सौ दो सौ वर्ष में नहीं बना था। उसका आधार वह इतिहास था जो सृष्टि के आदि से चला आ रहा था। उस काल के आर्य यद्यपि हीन दशा में आ चुके थे, परन्तु उनका आत्मगौरव का भाव अक्षुण्ण रूप से स्थिर था। यही आत्मगौरव था जो आर्य जाति की आशातीत रक्षा कर रहा था। विदेशी मुसलमान अलबेरूनी को यह बात अच्छी नहीं लगी। उसे बताया गया होगा कि आर्यों का, नहीं नहीं, मानवमात्र का सारा ज्ञान आदि सृष्टि से चला था। वह ज्ञान पूर्ण था। युग युग में उसमें ह्रास हुआ, उन्नति नहीं। अलबेरूनी के विचार में यह बात जची नहीं। उसके काल में भारत में ऐसे विद्वान् अधिक नहीं रहे थे, जो उसे इन बातों की सत्यता का पूर्ण दर्शन करा देते। जो होंगे, उन्होंने उससे वाद विवाद नहीं किया होगा। अन्यथा इस अकाट्य सत्य को कौन न अपनाता।

आर्य गौरव मुग़ल काल में—अलबेरूनी के सात सौ वर्ष पश्चात् इटली के वेनिस नगर का निवासी निकोलो मनूची भारत में आया। वह मुग़ल राजा जहांगीर की सभा में रहा। उसने भी आर्य गौरव के भावों को भारत में देखा। अलबेरूनी के समान उसे भी यह बात अच्छी नहीं लगी। उसके शब्द आगे लिखे जाते हैं—

"इन हिन्दुओं की प्रथम भूल इस विश्वास में है कि संसार में वे अपने को एकमात्र ऐसा समझते हैं, जिन में कोमल शिष्टाचार, स्वच्छता अथवा नियमित व्यापार है। वे दूसरी

---

1. The families of India are divided into castes, the Brahmanas particularly on account of their purity and nobility. Tradition has so hallowed the name of this tribe that there is no question of place, but the people generally speak of India as the country of the Brahmans. Seals tr. Vol. I. Book II. p. 69.

२. अंग्रेजी अनुवाद, भाग १, पृ० ३२।

सब जातियों को और सबसे बढ़कर योरुपवालों को म्लेच्छ, घृणित, मलिन और नियमहीन समझते हैं।"[1]

"इसके साथ हिन्दू अनुमान करते हैं कि जब कोई मनुष्य जाति की कुलीनता में दूसरों से ऊपर है, तो वह बुद्धि में भी उन से उत्कृष्ट हो जाता है। इस अयुक्त पक्षपात पर आश्रय करते हुए वे बल से कहते हैं कि जो ब्राह्मणों के समान उच्च जन्म के हैं केवल वे ही सत्य विज्ञान और धर्म को जान सकते हैं।"[2]

तत्पश्चात् सैकड़ों वर्ष तक विदेशियों से पादाक्रान्त होकर इसी भाव के कारण आर्य पुनः उठने लगा। ठीक उसी काल में अंग्रेज भारत भूमि पर उपस्थित हुआ। उस काल के आर्यों में राजनीति की उच्च शिक्षा न्यून हो चुकी थी। इसके अभाव में केवल आत्मगौरव की भावना अधिक काम नहीं आई। व्यक्तिगत स्वार्थ ने और भी अनिष्ट किया।

वृटिश राज्य के युग में—वृटिश शासन के प्रारंभिक दिनों में कर्नेल विल्फर्ड ने संवत् १८६६ में यही प्रवृत्ति हिन्दुओं में देखी। वह लिखता है—

प्रत्येक ज्ञान को अपने साथ जोड़ने का हिन्दुओं का झुकाव सुप्रसिद्ध है।[3]

जब फ्रैंच न्यायाधीश लुई जैकालियट (संवत् १९२६) ने भारत की प्रशंसा की तो मैक्समूलर ने तत्काल उसका खण्डन किया। मैक्समूलर वृटिश राज्य का एक महान् स्तम्भ था उस द्वारा जैकालियट का खण्डन स्वाभाविक था। अंग्रेज भारत पर राज्य नहीं कर सकता था, जब तक यहां के लोगों में आत्मगौरव और आर्यज्ञान की उत्कृष्टता का मान था। अतः अंग्रेज़ों ने इस भाव को यहां से नष्ट कर देने का सतत प्रयत्न किया। यह लिखना निर्विवाद है कि वे इस मनोरथ में अत्यधिक सफल हुए।

वृटिश शासकों का आर्यों के आत्मगौरव को नष्ट करने के ध्येय की पूर्ति का मार्ग—जर्मन राष्ट्र का भविष्य समाप्त करने के लिए दूसरे योरुपीय महासमर के पश्चात् सन् १९४६=संवत् २००३ में इङ्गलैण्ड से एक शिक्षा "कमिशन" जर्मनी भेजा गया। उस में इङ्गलैण्ड के मन्त्री मण्डल की एक कुमारी भी सम्मिलित थी। अंग्रेज चिरकाल से जानता है कि शिक्षा के विकृत करने से जातीय भाव नष्ट किया जा सकता है। सन् १८३५ अथवा संवत् १८९२ में लार्ड विलियम वैण्टिङ्क के समय विख्यात लार्ड थामस बैबिङ्गटन मैकाले ने भारत में शिक्षा का आदर्श निर्धारित कर दिया। उसने कहा—

---

1 The first error of these Hindus is to believe that they are the only people in the world who have any polite manners and the same is the case with cleanliness and orderliness in business. They think all other nations, and above all Europeans, are barbarous, despicable, filthy and void of order Storia Do Mogor of Niccolas Manucci, Vol III, p 37

2. In addition, the Hindus suppose that when a man is above others in nobility of race, he also surpasses them in understanding, They assert relying on this unsound prejudice, that only those who are as high born as Brahmanas can know religion and the science ibid. p, 74.

3. Asiatic Researches, Vol. IX.

भारत में एक ऐसी श्रेणी उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए, जो रक्त और रंग में भारतीय हो, परन्तु रुचियों, सम्मति, सदाचारों और बुद्धि में अंग्रेजी हो।[1] इति।

सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय बृटिश म्यूजियम (अद्‌भुतालय) के दो ग्रन्थों के तुल्य श्रेष्ठ नहीं है।[2]

भारत में पाश्चात्य शिक्षा का गौरव बढ़ाया गया—लार्ड बैंटिङ्क उन दिनों भारत का गवर्नर जैनरल था। उसने मैकाले के प्रस्ताव के साथ पूर्ण सहानुभूति प्रकट की। अन्ततः मैकाले की नीति के अनुसार भारत में शिक्षा का प्रकार चलने लगा। अंग्रेज और जर्मन अध्यापक और महोपाध्याय भारत में आने लगे। विद्यार्थी उनका मान और आदर करने पर विवश हुए। उन्हीं की बताई विद्या वास्तविक विद्या मानी जाने लगी। जो कोई सज्जन भारतीय ढंग की बात कहता था, उसे तर्कविरुद्ध[3], विद्याविरुद्ध[4], इतिहासविरुद्ध[5], बुद्धिविरुद्ध,[6] प्रमाणशून्य कहानी[7], अथवा मिथ्या-कथा[8] कहा जाने लगा। ये शब्द विदेशीय लेखकों और अध्यापकों ने अधिकाधिक प्रयुक्त किए। संस्कृताध्यापकों ने तो इन्हीं शब्दों के आश्रय पर सत्य भारतीय इतिहास का नाश किया। बृटिश शासन के वेतनभोगी भारतीय अध्यापकों ने भी भारतीयों को अभारतीय बनाने का भरसक यत्न किया। इसमें सन्देह नहीं, मैकाले ने भारतीयता को नष्ट करने की जो कूटनीति बर्ती थी, वह प्रभावशालिनी सिद्ध हुई। आज भारत में अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त लोगों की एक श्रेणी है, जो विचार और रुचि आदि में आमूलचूल अंग्रेजी है। उस श्रेणी में भारत के अनेक गण्य मान्य नेताओं की भी गणना हो सकती है।

पाश्चात्य प्रभाव परिवर्धन के लिए छात्रवृत्तियां—बृटिश शासकों ने एक और पग उठाया। भारत के अनेक यूनिवर्सिटी परीक्षोत्तीर्ण श्रेष्ठ विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां दी गईं कि वे विदेश जाकर संस्कृत, इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र और धर्मशास्त्र की शिक्षा ग्रहण करें। इन छात्रवृत्तियों पर पढ़ने वाले लोग पूरे विदेशी बन कर स्वदेश लौटे। उन्होंने बृटिश नीति को आगे चलाया। अंग्रेज और जर्मन आदि लोगों के समान ये भारतीय भी कहने लगे कि भारतीय इतिहास-लेखक वाल्मीकि और व्यास आदि ऐतिहासिक बुद्धि नहीं रखते थे। अंग्रेज शासकों की सहायता से ऐसा कहने वाले भारतीयों का बहुत आदर होने लगा. और पुरानी विद्याएं घृणा की दृष्टि से देखी जाने लगीं। अंग्रेज प्रिंसिपलों के नीचे रहने वाले पण्डित गण भी विदेशी प्रभाव से दबने लगे। बनारस के क्वीन्स कालेज में डाक्टर थीबो के नीचे पण्डित सुधाकर द्विवेदी आदि की ऐसी ही स्थिति थी।

वेतन-लोलुपता से लाभ उठाया गया—बृटिश नौकरियों के लिए अधिकांश युवक अपने धर्म को बेच रहे थे। पर सब से बढ़कर संस्कृत और इतिहास आदि के अनेक अध्यापकों ने अपने को बेचा। भारतवर्ष में परिभ्रमण करते हुए हमने अनेक ऐसे महोपाध्यायों को देखा

1. Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinion, in morals and in intellect. quoted in C. H. I. Vol. VI, p. 111.

२. ऐसे घृणित शब्दों पर केम्ब्रिज हिस्ट्री वालों को भी लिखना पड़ा—

In some passages he poured scorn on Oriental literature, of which he knew nothing. Vol. VI, p 111.

3. Uncritical, 4. Unscientific. 5. Unhistorical. 6. Irrational. 7. Legendry. 8. Mythology.

है। सन् १६१७ में कलकत्ता में कभी एक बड़े संस्कृतज्ञ ने हम से कहा था कि "आप अंग्रेजों के वादों का खण्डन निर्भीक होकर कैसे कर रहे हैं।" पाश्चात्य मिथ्या इतिहास पद्धति के बहु उपासक इन नौकरियों के लिए ही भारतीय परम्परा का बहुधा खण्डन करते रहे हैं।

आर्यों की जनसंख्या को न्यून करने का बृटिश यत्न—बृटिश शासकों ने भारत में यह यत्न किया कि हिन्दू संख्या न्यून हो जाए, हिन्दू निर्बल हो और हिन्दू अहिन्दू बन जाए, तथा इस्लाम बढ़े। इस विषय में एक अंग्रेज लिखता है—

बृटिश प्रभाव और शासन इस्लाम को असाधारण सीमा तक सहायता दे रहे हैं...।[1] इति।

............पुल बनाने वाले, रेलों पर काम करने वाले, सैनिक और अध्यापक, जिन्हें सरकार भेजती है, मुहम्मदी वृत्ति के होते हैं। रेलों, सड़कों, स्कूलों और श्रेष्ठ शासन द्वारा बृटिश ने अनेक सुविधाएं उत्पन्न की हैं, जिन से इस्लाम के प्रतिनिधि वेग से कोल, भील आदि लोगों में फैलें और उनके मनों को जीत लें।[2] इति।

कई स्थानों में बृटिश अधिकारी प्रोत्साहन देते रहे हैं कि पिछड़े हिन्दू खतना कराएं और मुसलमान बनें।[3] इति।

जो बृटिश शासक हिन्दू को सर्व प्रकार से नाश करने का संकल्प किए बैठा था, वह उसके इतिहास को न गिराता, तो बड़ा आश्चर्य होता। दुःख उन हिन्दुओं पर है, जो अपने आप को पठित कहते हैं, और इस सत्य से अनभिज्ञ हैं।[4] कृत्रिम जनगणनाओं के द्वारा पञ्जाब के बहुसंख्यक हिन्दुओं को अल्पसंख्यक बनाना तथा पाकिस्तान का बनना बृटिश नीतिज्ञों की हिन्दू नाशकारिणी नीति का अन्तिम फल है। कौन सजगनेत्र भारतीय है, जो इस तथ्य को नहीं समझा।

एक अन्य उपाय—आर्य परम्परा को असत्य घोषित करने का एक और उपाय बृटिश शासकों के परामर्श से बर्ता गया। हितोपदेश में एक कथा है। चार लोलुप चोरों ने एक ब्राह्मण को विश्वास दिला दिया कि उसका बकरा, बकरा नहीं, प्रत्युत कुत्ता है। इस कथा द्वारा आन्दोलन (propaganda) का बल दर्शाया गया है। इसी प्रकार जर्मन, फ्रैञ्च, अंग्रेज और अमरीकी लेखकों ने बृटिश राजनीतिज्ञों के अनुरोध से भारतीय सत्य परम्परा को भी असत्य किया। यहां के विद्वानों ने अनेक प्रकार की असमर्थता के कारण उसका उत्तर न दिया। बस विदेशियों की मिथ्या बातें ही सच मानी जाने लगीं।

---

1 British influence and Government are helping Islam to an extraordinary degree . ... The Faith of the Crescent, by John Takle, S.P.C.K Madras, 1913, p. 8,

2. . . .. .The bridge builders, railway workers, soldiers and teachers sent by the Government are of the Mohammadan persuasion And by the railways, roads, schools and good Government the British have brought in many a convenience to enable the representatives of Islam to push speedily into the pagan territory to win the pagan mind

3. In some places British authorities encourage Pagans to be circumcised and become Musalmans, ibid, p 166

४. गत कई वर्षों से लण्डन का रेडियो हिन्दू विरोधी आंदोलन कर रहा है, इस सत्य को पं० जवाहरलालजी को भी स्वीकार करना पड़ा है।

इस प्रकार के सतत प्रयत्नों से बृटिश शासकों ने भारत में अपना शासन चिरस्थायी करने के उपाय वर्ते। परन्तु बृटिश शासन अन्त को यहां से सं० २००४ में उठ गया। अब उनके मिथ्या प्रचार के प्रभावों से उत्पन्न संस्कार भी शीघ्र दूर हो जाएंगे।

अन्त में इतना कहना आवश्यक है कि कोई कोई पाश्चात्य लेखक थोड़ा थोड़ा निष्पक्ष हुआ है, पर वह दूसरों पर अपना यथेष्ट प्रभाव नहीं डाल सका।

पांचवां कारण

प्राचीन भारतीय विषयों पर लिखनेवाले पाश्चात्यों का मोह

भारतीय इतिहास की विकृति का पांचवां कारण पाश्चात्य लेखकों का मोह है। यह सत्य है कि अब सर्वज्ञानमय ब्रह्मा, स्वायंभुव मनु, सनत्कुमार और कपिल आदि का युग नहीं है। वर्तमान युग में सब मनुष्यों का ज्ञान अत्यन्त संकुचित है, तथापि इस परिस्थिति में योरुपियन लेखकों की ही ऐसी श्रेणी है, जिसे इस त्रुटि के रहने पर भी अपने ज्ञान का वृथा अभिमान है। भूलें अनेक मनुष्यों से होती हैं, पर शिष्ट अपनी भूलों को सदा मान लेते हैं। इसके विपरीत अधिकांश पाश्चात्य लेखकों में यह बात प्रायः दुर्लभ है। इसलिए आवश्यक प्रतीत होता है कि अपने को वैज्ञानिक (scientific)[1] और सूक्ष्मदर्शी तार्किक अथवा आलोचक (critical) कहनेवाले पाश्चात्य लेखकों के उस अधूरे संस्कृत ज्ञान का यहां दिग्दर्शन कराया जाए, जिस पर आश्रित होकर भारतीय सत्य परम्परा में उन्होंने सैकड़ों छिद्र उत्पन्न करने का यत्न किया है और भारतीय इतिहास की महती हानि की है।

आर्यों में बहु-शास्त्र-ज्ञान की महत्ता—जहां योरुप में अत्यन्त अधूरे ज्ञानवाले लोग पण्डित बने बैठे हैं, वहां आर्य वाङ्मय में अधूरे ज्ञान की कितनी निन्दा और बहुविध सत्य ज्ञान की प्राप्ति की कितनी प्रशंसा रही है, इस का जान लेना बड़ा उपादेय है। योगनिष्ठ मुनि देवल (कलि से ३०० वर्ष पूर्व) ने बारह पापदोष गिने हैं। उन में से सर्वपापों का मूल त्रिविध मोह अर्थात् अज्ञान, संशयज्ञान और मिथ्याज्ञान का त्रिक है—

तेषां च त्रिविधो मोहः संभवः सर्वपाप्मनाम्। अज्ञानं संशयज्ञानं मिथ्याज्ञानमिति त्रिकम्॥[2]

अर्थात्—तीन प्रकार का मोह, सारे पापों का उत्पत्ति-स्थान है। वे तीन प्रकार अज्ञान, संशयज्ञान और मिथ्याज्ञान हैं।

---

१. योरुपीय लेखकों के इस विकत्थन का एक अंग्रेज ने अच्छा चित्र खींचा है—

There is a far too general impression in certain circles that orthodox traditional intellectuality can not be seriously maintained, or cannot be maintained in its entirety, in the face of modern Western science; in the face of what passes for science in the West, we should perhaps say, since a large part of this so-called science is built upon pure hypothesis and cannot therefore be properly classed as knowledge of any kind. Maciver, Introduction on M. Rene Guenon, The Tantras: 'The Fifth Veda.' Indian Culture, Vol. II. Calcutta, pp. 85 ff.

२. अपरार्क टीका में उद्धृत, आचाराध्याय, स्नातक व्रत प्रकरण, पृ० ११२।

आंशिक पण्डित—ये तीनों दोष भारतीय संस्कृति तथा इतिहास पर लिखनेवाले अधिकांश पाश्चात्य लेखकों में पाए जाते हैं। पश्चिम के जितने भी संस्कृत विद्या के अध्यापक हुए, अथवा हैं, और जिन्हें आजकल बहुत विद्वान् और वैज्ञानिक ऐतिहासिक समझा जाता है, वे एकदेशीय और अल्पज्ञ ज्ञानवाले थे, और हैं, तथा उनका संस्कृत भाषा और भारतीय इतिहास का ज्ञान अत्यन्त दोषपूर्ण है, यह इस इतिहास के अगले पृष्ठों में स्पष्ट हो जाएगा। राथ, ह्विटलिङ्क, वेबर, बेनफी, मैक्समूलर, ह्विटने, विल्सन, कर्न, बूहलर, फ्लीट, आफ्रेक्ट, कीलहार्न, मोनियर विलियम्स, वार्थ, थीबो, ओल्डनबर्ग, एगलिङ्ग, ब्लूमफील्ड, मैकडानल, कीथ, पार्जिटर, लूडर्स, रैप्सन और हापकिन्स आदि सब लेखक एक एक, दो दो विषयों का अल्पसा बोध रखनेवाले व्यक्ति थे। उन्हें संस्कृत वाङ्मय का व्यापक ज्ञान न था। उन में से वेद पढ़नेवाले इतिहास, पुराण दर्शन, ज्योतिष तथा वैद्यक आदि से अनभिज्ञ थे। ब्राह्मण ग्रन्थ अध्येता हाग और एगलिङ्ग आदि ब्राह्मण ग्रन्थों को भी पूरा समझ नहीं सके। इतिहास, पुराण पढ़नेवाले पार्जिटर आदि को अन्य अनेक विषय अज्ञात थे, इत्यादि। अतः इन मिथ्या अथवा संशयात्मक ज्ञानवाले लोगों के निष्कर्ष बहुधा अशुद्ध हैं।

आर्य वाङ्मय में आंशिक ज्ञान की अवहेलना—आर्य वाङ्मय में बहुविध ज्ञान महिमा आयुर्वेद की सुश्रुत संहिता में भगवान् धन्वन्तरि द्वारा गाई गई है—

एकं शास्त्रमधीयानो न विद्यात् शास्त्रनिश्चयम्।[१]

अर्थात्—एक शास्त्र पढ़ा हुआ, एक शास्त्र के निर्णय को भी नहीं जान सकता।

धन्वन्तरि प्रोक्त सत्य की प्रतिध्वनि कात्यायन मुनि ने व्यवहार-विषय का प्रतिपादन करते समय अपनी स्मृति में की है—

एकं शास्त्रमधीते यो न विद्यात् कार्यनिश्चयम्। तस्माद् बह्वागमः कार्यो विवादेषूत्तमो नृपैः॥[२]

कात्यायन और सुश्रुत दोनों से बहुत पहले योगनिष्ठ देवल ने ज्ञान की महिमा गाते हुए सर्वविद्याओं का जानना आवश्यक बताया था—

विज्ञानं सर्वविद्यानामर्थानां स्वयमूहनम्। दोषैरदर्शनं चेति ज्ञानम् अज्ञानम् अन्यथा॥[३]

अर्थात् सारी विद्याओं का ज्ञान, शास्त्रों के अर्थों का अपनी ऊहा से जान लेना, और बुद्धि में दोष का न होना, ज्ञान होता है। इसके विपरीत अज्ञान है।

अब विचारणीय है कि जिस जाति में सर्वशास्त्रज्ञान की इतनी महत्ता रही, जिस जाति के ऋषि, मुनि सदा सदाचार और स्वाध्याय० प्रिय, तथा दीर्घ आयु और ऋतंभरा बुद्धि के कारण अनेक शास्त्रों के असाधारण ज्ञाता रहे, उस जाति को इतिहासशास्त्र-ज्ञानरहित

१. सुश्रुत, आरम्भ।

२. अपरार्क टीका में उद्धृत, आचाराध्याय, स्नातक व्रत प्रकरण, पृ० २२२।

३. अपरार्क टीका, पृ० २२२ पर उद्धृत। अपरार्क के उत्तरवर्ती भट्ट लक्ष्मीधर ने देवल के तद्विषयक अन्य श्लोकों के साथ, उनका यह श्लोक अपने कृत्यकल्पतरु के राजधर्मकाण्ड पृ० १८७ पर उद्धृत किया है। देखो, बड़ौदा संस्करण।

कहना वर्तमान पाश्चात्यों की धृष्टतामात्र है। हम अति प्राचीन काल की बात नहीं कहते। भारत-युद्ध के कुछ ही पश्चात् होनेवाले कुलपति शौनक मुनि सर्वशास्त्रविशारद थे।

इसके विपरीत पाश्चात्य लेखकों की विद्वत्ता की आधारशिला का परिचय अब नीचे कीजिए—

१. जर्मन देशोत्पन्न अभिमानी वैबर (जुलाई १८५२) अपने भारतीय वाङ्मय के इतिहास में लिखता है—

"and gāthās, abhiyajna-gāthās, a sort of memorial verses (Kārikās), are also frequently referred to and quoted"[१]

अर्थात्—ब्राह्मण ग्रन्थों में गाथाएं, अभियज्ञगाथाएं बहुधा उद्धृत हैं। इति।

आलोचना—वैबर को ज्ञान नहीं कि अभियज्ञगाथा कोई शब्द नहीं है। अभि उपसर्ग क्रिया के साथ जाता है। निम्नलिखित उदाहरण देखिए—

(क) तदेतद् गाथयाभिगीतम्। शतपथ १३।५।४।२॥

(ख) तदेषाभि यज्ञगाथा गीयते। ऐतरेय ब्रा० ८।२१॥

(ग) तदेते अभिश्लोकाः। शतपथ ११।५।५।१३॥

(घ) तदेष श्लोकोऽभ्युक्तः। शतपथ १२।३।२।७॥

(ङ) तदेतदृचाभ्युक्तम्। शतपथ १४।१।७।२८॥

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि अभि क्रिया के साथ जुड़ना चाहिए। जहां क्रिया लिखी नहीं गई, वहां भी अभिप्रेत अवश्य है। अतः इस साधारण बात को न जान कर वैबर ने भयङ्कर भूल की है।

२. अध्यापक राथ (सन् १८५२) ने निरुक्त की भूमिका में एक ब्राह्मण वचन का अत्यन्त अशुद्ध अनुवाद किया। उस की भूल गोल्डस्टकर ने दर्शाई।

३. मैक्समूलर (सन् १८५९)। कात्यायनकृत ऋक्सर्वानुक्रमणी की वृत्ति की भूमिका में षड्गुरुशिष्य का निम्नलिखित श्लोकार्ध मिलता है—

स्मृतेश्च कर्ता श्लोकानां भ्राजमानां च कारकः।

मैक्समूलर इसका अर्थ इस प्रकार करता है—"the slokas of the Smriti," और अपने टिप्पण में लिखता है—Bhrājamāna, is unintelligible; it may be Parshada.[२]

अर्थात्—भ्राजमान पद समझ में नहीं आता। यह पार्षद हो सकता है। इति।

मैक्समूलर, हां वृथाभिमानी ईसाई मैक्समूलर नहीं जानता कि वह षड्गुरुशिष्य के श्लोक का पाठ नहीं समझ सका। वह पाठ निम्नलिखित चाहिए—

स्मृतेश्च कर्ता श्लोकानां भ्राजनाम्नां च कारकः।

अर्थात्—कात्यायन, स्मृति का और भ्राज नामक श्लोकों का कर्ता था। भ्राज नामक श्लोकों का उल्लेख पातञ्जल व्याकरण महाभाष्य के आरम्भ में है।

सायणकृत ऋग्वेदभाष्य का संपादन करते हुए मैक्समूलर ने एक पाठ स्वीकार किया है—

१. अंग्रेजी अनुवाद, सन् १९१४, पृ० ४५।

२. A History of A. S. L. Second ed. 1860, p. 235, note 4.

ऋताय—सोमरसलक्षणस्योदकस्यादानार्थम्। वस्तुतः यह पाठ ऐसा चाहिये—ऋताय—सोमरसलक्षणस्योदकस्यादानार्थम्। सोमरसलक्षण उदक नहीं होता। मैक्समूलर की योग्यता की यहां परीक्षा हो गई है।[1]

४. षड्गुरुशिष्यकृत वेदार्थदीपिका का सम्पादन करता हुआ इङ्गलैण्ड देशोत्पन्न मैकडानल (सन् १८८६)—

यातयामो जीर्णो भुक्तोच्छिष्टेऽपि च, इति निघण्टौ। पृ० ५१। शङ्कावितर्कभययोः, इति निघण्टुः। पृ० ६६।

पर अपने टिप्पण में लिखता है—Not in Yāska's Nighantu, अर्थात् यास्कीय निघण्टु में ये प्रमाण नहीं मिलते।

अध्यापक महोदय का ज्ञान कितना अल्प है। यास्कीय निघण्टु ही निघण्टु नहीं, प्रत्युत प्रत्येक कोश निघण्टु कहलाता है। और षड्गुरुशिष्य द्वारा उद्धृत दोनों वचन यादवप्रकाशकृत वैजयन्ती कोश, पृ० २५४ और पृ० २२३ पर मिलते हैं।

५. जर्मन देशोत्पन्न अध्यापक जाली को 'समानतंत्र' शब्द का अर्थ ज्ञात नहीं था। अध्यापकजी के तत्संबंधी अशुद्ध लेख का खंडन पण्डित उदयवीरजी ने बड़ी योग्यता से किया है।[2]

६. अध्यापक कीथ ने ऐतरेय और कौषीतकि नामक दो ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों का अनुवाद अंग्रेजी में किया था। यह अनुवाद अशुद्धियों से भरा पड़ा है, और कीथ जी की सच्ची विद्वत्ता का परिचय देता है। हालेण्डदेशोत्पन्न अध्यापक कालेण्ड ने कीथ जी की स्थूल अशुद्धियों का दिग्दर्शन कराया है।[3] यदि कीथ जी के मन में कुछ भी लज्जा होती, तो इस आलोचना के पश्चात् वे संस्कृत सीखने अवश्य भारत आते।

इसी प्रकार संस्कृतज्ञ कहानेवाले अन्य पाश्चात्य लेखकों की अशुद्धियां भी दिखाई जा सकती हैं। यह विषय कई ग्रंथों में लिखा जा सकता है, पर स्थानाभाव से यहां इतना लिखना ही पर्याप्त है। निष्पक्ष विद्वान् स्वयं अधिक जान सकते हैं। इतने लेख से यह स्पष्ट हो जाएगा कि पाश्चात्य संस्कृत विद्या पढ़नेवालों ने अपनी विद्वत्ता की जो डिण्डिम पीटी थी, वह कृत्रिम थी। पश्चात्यों की संस्कृत विद्या की योग्यता अत्यल्प है। और उन्होंने भारतीय इतिहास के संबंध में अनेक भ्रांतियां उत्पन्न की हैं। हमारा यह बृहद् इतिहास उन भ्रांतियों को दूर करेगा।

अब इस विषय में अपने युग के महान् संस्कृतज्ञ मुनिवर दयानन्द सरस्वती की सम्मति भी देख लीजिए—

अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्या का आर्यावर्त देश में है उतना किसी अन्य देश में नहीं। जो लोग कहते हैं कि जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा, यह बात कहने मात्र है। इति।[4]

अतः भारतीय इतिहास के विषय में योरुपियन लेखकों ने जो विकार उत्पन्न कर दिए थे, उनका निराकरण करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है।

इति तृतीयोऽध्यायः।

---

१. देखो, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, वेदों के भाष्यकार, संवत् १९८८, पृ० २३।

२. देखो, प० उदयवीर शास्त्री सम्पादित अर्थशास्त्र की माधवयज्व कृत टीका का संस्करण, लाहौर, अध्यापक जाली की इस भूल की ओर मैंने शास्त्री जी का ध्यान आकृष्ट किया था।

३. Acta Orientalia, Vol X, Pars IV, 1932 pp 305-325

४. सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास, आरम्भ, संवत् १९४०।

चतुर्थ अध्याय

भारतीय इतिहास के स्रोत

भारत की अक्षुण्ण कीर्ति को स्थिर रखनेवाला, वेद की निर्मल पुनीत और स्वच्छ विचार-धारा से निकला हुआ, शताब्दियों के दुःखों को सहनेवाले हतोत्साह आर्यों को पुनः जीवन-प्रदान करके उन्नति के शिखर पर पहुंचानेवाला, तथा अतीत की सुवर्णमयी स्मृतियों को सजीव सम्मुख उपस्थित करनेवाला विशाल संस्कृत वाङ्मय भारतीय इतिहास के पुन-र्निर्माण में आशातीत सहायता देता है। अतः भारतीय इतिहास के साथ संस्कृत वाङ्मय के इतिहास का संकलन भी आवश्यक है। पक्षपाती पाश्चात्य लेखकों ने संस्कृत वाङ्मय के इतिहास का जो रूप बनाया है, वह प्रायः अशुद्ध है। तदनुसार भारतीय इतिहास के स्रोतों के विषय में आधुनिक ऐतिहासिकों के भिन्न भिन्न मत हैं, और प्रायः सारे निराधार हैं। यहां उन विभिन्न मतों की परीक्षा का अवसर नहीं है। अतः अनवच्छिन्न भारतीय परम्परा के सुदृढ़ आधार पर भारतीय वाङ्मय के इतिहास-ज्ञान के लिए उसके परम उपयोगी अंगों का हम यहां ऐसा कलेवर उपस्थित करते हैं, जिसे देखकर विद्वान् लोग भारतीय इतिहास की सत्य घटनाओं को अनायास समझते जाएं और इसके विपरीत जो विष फैलाया गया है, उसके दूर करने में पूर्ण समर्थ हो जाएं।

प्रथम स्रोत—वैदिक ग्रन्थ

वेद—चारों वेद सृष्टि के आदि से विद्यमान हैं। अवान्तर प्रलयों के पश्चात् ऋषियों द्वारा उनका पुनः पुनः आविर्भाव हो जाता है। इस जल-प्लावन के पश्चात् ब्रह्मा आदि ऋषियों ने वेदों का पुनः प्रचार किया। उन्होंने चारों वेद स्वायंभुव मनु, अग्नि, भृगु, वसिष्ठ आदि ऋषियों को पढ़ा दिए।

त्रेता के आरम्भ में—त्रेता के आरम्भ में वेदों की कुछ शाखाओं का प्रवचन आरम्भ हो गया। इस प्रवचन के कर्ता भगवान् अपान्तरतमा थे।[1] उस प्रवचन के द्वारा एक यज्ञाग्नि अनेक अग्नियों में विभक्त हो गया। यज्ञ की क्रियाएं भी बहुत प्रकार की हो गईं। इसी भाव को उपनिषद् में व्यक्त किया गया है—तानि त्रेतायां बहुधा संततानि।[2] यज्ञ क्रियाओं के भेद के कारण ही वेद शाखाओं का विस्तार होने लगा। मूल मन्त्रों में शाखागत पाठान्तरों का आरम्भ इसी युग से हुआ। उन पाठान्तरों में कभी कभी व्यक्तियों तथा स्थान-विशेषों के नाम भी जुड़े। इन पाठान्तररूप नामों के कारण मूल वेद जिसमें सामान्य नाम थे,

---

१. देखो वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ११।

२. तुलना करो, वायुपुराण ११। ४०—४१—त्रेतायां स महायशः। एकोऽग्निः पूर्वमासीद् वै त्रेतायां तान् कल्पयत् ॥

अपितु जिसमें अनित्य इतिहास का अंश मात्र न था, अल्प विद्यावाले लोगों की भूल से कलि के आरम्भ के पश्चात् यत्र तत्र इतिहास का स्रोत समझा जाने लगा। वर्तमान पाश्चात्य लोगों ने इससे लाभ उठाया और इतिहास ग्रन्थों में बिना समझे वेद से अनित्य इतिहास का संकलन किया। हमने वेद पद्य का ज्ञानशक्ति पर्यन्त मन्थन किया और पुरातन सत्य को पूर्ण समझ लिया। इसलिए हमने मूल मन्त्रों से खींचतान करके लौकिक अनित्य इतिहास का आकर्षण नहीं किया।

इससे आगे उन वैदिक ग्रन्थों का वर्णन किया जाता है, जिनसे इतिहास संकलन में महती सहायता मिली है। इस वाङ्मय के कराल-काल से बचे निम्नलिखित ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं—

(क) वेदों की वे शाखाएं जिनमें ब्राह्मण-पाठ सम्मिलित हैं, अथवा इन शाखाओं के वे मन्त्र जिनमें कुछ पाठान्तर किया गया है।

त्रेता के आरम्भ अथवा भगवान् अपान्तरतमा के काल से इन शाखाओं का प्रवचन आरम्भ हुआ, और अन्तिम प्रवचन कृष्ण द्वैपायन व्यास और उनके शिष्य-प्रशिष्यों ने किया। व्यास के चार प्रधान शिष्य सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन और पैल थे।

दो प्रकार का यजुर्वेद—वैशंपायन ने जिस यजुर्वेद का चरण तथा शाखा-विभाग किया, वह यजुर्वेद चरणों के पाठान्तरों के योग के कारण तथा कृष्ण द्वैपायन द्वारा प्रोक्त होने के कारण कृष्ण यजुर्वेद कहाया। यजुर्वेद का एक पुराना सम्प्रदाय आदित्यों का सम्प्रदाय था। उसमें पाठान्तर न के तुल्य थे और ब्राह्मण पाठ सम्मिलित नहीं था। उस आदित्य मार्ग के यजुर्वेद का प्रचार महर्षि याज्ञवल्क्य ने पुनः किया। यह मूल यजुर्वेद शुक्ल यजुर्वेद कहाया।

इतिहासोपयोगी शाखाएं—भारतीय इतिहास के लिये कृष्ण यजुर्वेद की शाखाएं अत्यधिक उपयोगी हैं। इनमें से काठक, मैत्रायणीय, कपिष्ठल और तैत्तिरीय संहिताएं सम्प्रति उपलब्ध हैं।

देवासुर संग्राम—इन संहिताओं में हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद आदि असुरों और आदित्य, इन्द्र, विष्णु आदि देवों के अनेक छोटे बड़े युद्धों का वर्णन है। मूल मन्त्रों में देवासुर-संग्राम से सूर्य, मेघ, प्राण आदि संग्रामों का वर्णन है, और इन काठक आदि संहिताओं में सूर्य मेघ आदि के संग्रामों के वर्णन के साथ साथ पूर्वोक्त देवों और असुरों के संग्रामों का भी वर्णन है। हमने दोनों पक्षों का पार्थक्य विचार कर ऐतिहासिक अंशों का प्रयोग इस इतिहास में किया है।

(ख) ब्राह्मण ग्रन्थ—इन ग्रन्थों में भी ऐतिहासिक देवासुर संग्रामों की अनेक घटनाएं वर्णित हैं। कालक्रम की दृष्टि से ब्राह्मणग्रन्थ निम्नलिखित क्रम से पढ़े जा सकते हैं—

१. पुरातन ताण्ड्य ब्राह्मण। यह अति प्राचीन ब्राह्मण है।

२. दिवाकीर्त्य आदि ब्राह्मण।[1] यह भी प्राचीन ब्राह्मण है।

३. ऐतरेय ब्राह्मण। इसमें महाराज नग्नजित् (७।३४) उल्लिखित है।

---

१. माध्यन्दिन शतपथ में एक विष्णय ब्राह्मण भी उद्धृत है। हम अभी निश्चय नहीं कर सके कि यह कोई प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ था, अथवा किसी उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थ का कोई भाग विशेष है।

४. ऋग्वेदीय शांखायन और कौषीतकि ब्राह्मण। कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय और काठक ब्राह्मण। सामवेदीय जैमिनि और ताण्ड्य आदि ब्राह्मण।

५. शुक्ल यजुर्वेदीय वाजसनेय ब्राह्मण। इस वाजसनेय ब्राह्मण के अवान्तर ब्राह्मण माध्यंदिन शतपथ, काण्व शतपथ, कात्यायन शतपथ आदि अब उपलब्ध हैं।

६. गोपथ ब्राह्मण।

संख्या ४ के अन्तर्गत ब्राह्मण लगभग एक काल में बने। उनके प्रवचन कर्ता व्यास के शिष्य थे। उनका प्रवचन-काल भारत-युद्ध से लगभग १०० वर्ष पूर्व था। ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचनकाल इन ब्राह्मणों से लगभग ५० वर्ष पूर्व का है। ऐतरेय ब्राह्मण में नग्नजित् आदि उन राजाओं का नामोल्लेख है, जो भारत-युद्ध से १५० वर्ष पूर्व के शासक थे। वाजसनेय ब्राह्मण भारत-युद्ध से ६० वर्ष पूर्व कहा जा चुका था। गोपथ ब्राह्मण इन सब की अपेक्षा नया है।[1]

क्या ब्राह्मण ग्रन्थों में मिथ्या-कल्पित-कथाएं हैं ?—प्राय: सारे पाश्चात्य लेखक और उनका अनुसरण करनेवाले अनेक एतद्देशीय लेखक अपने ग्रन्थों में लिखते हैं कि काठक आदि संहिताओं और तैत्तिरीय तथा शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में मिथ्या कल्पित कथाएं (mythology) हैं। इन लोगों को ये ग्रन्थ समझ नहीं आए। इसी कारण उन्होंने यह मिथ्या बात लिखी। भगवान् कृष्ण द्वैपायन ने स्पष्ट लिखा था कि जो चारों वेदों को पढ़ा है, पर इतिहास, पुराण नहीं जानता, वह विचक्षण नहीं है। मिथ्या कथाओं का अस्तित्व कहनेवाले लेखकों में से एक भी इतिहास का पण्डित नहीं था, न है। इस कारण विषय को स्वयं न समझकर इन लेखकों ने वर्तमान पाठकों में यह भ्रान्ति फैला दी कि आर्य ऋषियों द्वारा प्रोक्त इन ग्रन्थों में मिथ्या-कल्पित-कथाएं हैं। हमारे इतिहास के पाठ से यह भ्रान्ति दूर होगी।

(ग) आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थ—वर्तमान ब्राह्मण ग्रन्थों के साथ साथ वर्तमान आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थों का प्रवचन हुआ। इन ग्रन्थों में इतिहास की बड़ी सामग्री है।

(घ) कल्पसूत्र—जिन मुनियों ने ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रवचन किया, प्राय: उन्हीं मुनियों अथवा उनके शिष्य-प्रशिष्यों ने कल्पसूत्रों का भी प्रवचन किया। शांखायन और कौषीतक ने शांखायन और कौषीतकि नामक ब्राह्मणों और कल्पों का प्रवचन किया। कल्पित-भाषा-विज्ञान के द्वारा पाश्चात्यों ने इस परम सत्य को बलात् मिथ्या करने का वृथा परिश्रम किया है। हमने उनके इस मिथ्या-वाद का इस इतिहास में खण्डन किया है।

कल्पसूत्रकारों का काल-क्रम निम्नलिखित है—

१. शांखायन, कौषीतकि, चरक, काठक, मानव, वराह, जैमिनीय आदि।

२. शौनक आदि।

---

१. इस विषय का अधिक विस्तार हमारे वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग द्वितीय संस्करण, में देखिए। यह दूसरा संस्करण शीघ्र मुद्रित होगा।

३. आश्वलायन, आपस्तम्ब, कात्यायन आदि।

४. बौधायन आदि।

बौधायन श्रौत अष्टाध्यायी से ३०,४० वर्ष पीछे रचा गया है। उस से ५० वर्ष पूर्व शौनक ने शौनक कल्प रचा। शौनक से ६०,७० वर्ष पूर्व शांखायन आदि ने अपने अपने कल्प रचे। बौधायन भारत युद्ध के लगभग १००-१५० वर्ष पश्चात् हुआ था। लगभग पचास कल्पसूत्रों का विस्तृत इतिहास हमारे कल्पसूत्रों के इतिहास में प्रकाशित होगा।

जिन ऋषियों ने चरक, काठक आदि संहिताएं और ब्राह्मण तथा कल्पसूत्र प्रवचन किए, उन्हीं ऋषियों और मुनियों ने इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र और आयुर्वेदीय ग्रन्थों की लोकभाषा अर्थात् आर्य भाषा संस्कृत में रचना की। यही कारण है कि वर्तमान धर्मसूत्रों के अनेक वचन तथा याज्ञवल्क्य और महाभारत के अनेक पाठ ठीक ब्राह्मण-सदृश-भाषा में हैं।

इन ग्रन्थों में भारत-युद्ध काल से सहस्रों वर्ष पूर्व की अनेक ऐतिहासिक घटनाएं वर्णित हैं। उनका क्रम-बद्ध उपयोग आधुनिक काल में किसी ऐतिहासिक ने नहीं किया। हम ने इन ग्रन्थों के कतिपय ऐतिहासिक अंशों का संकेतमात्र अपने "वैदिक वाङ्मय का इतिहास" (ब्राह्मण भाग) में किया था। इस इतिहास में हम ने इन ग्रन्थों की प्रायः सब ही ऐतिहासिक बातों के यथास्थान रखने का प्रयत्न किया है।

भारतीय इतिहास में वैदिककाल, सूत्रकाल और कथात्मक महाकाव्यकाल का अभाव

पाश्चात्य मत—भारतीय इतिहास के प्रथम स्रोत अर्थात् वैदिक वाङ्मय का अति स्थूल वर्णन हो गया। मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषत् और सूत्रों का कालक्रम निर्दिष्ट हो चुका। इस क्रम के विपरीत वर्तमान पाश्चात्य लेखकों ने मिथ्या जर्मन-भाषा विज्ञान के आधार पर भारतीय इतिहास में वैदिक वाङ्मय के तीन काल, मन्त्रकाल, ब्राह्मणकाल और सूत्रकाल माने हैं। इनके पश्चात् उन्होंने कथात्मक-महाकाव्यकाल माना है। कालक्रम विषयक इस पाश्चात्य मत के भारतीय विश्व-विद्यालयों में बलात्कार से प्रचलित किये जाने के पश्चात् भारतवर्ष के अथवा भारतीय वाङ्मय के जितने भी इतिहास छपे, अथवा छप रहे हैं, इन सब में आँख मूदकर इस काल-विभाग को सत्य मान लिया गया है। किसी एक भारतीय ग्रन्थकार ने भी इस कल्पित और निराधार मत की परीक्षा का कष्ट नहीं उठाया। यह सत्य है, प्रायः लोक गतानुगतिक हैं।*

भारतीय वाङ्मय में इस बात का खण्डन—परन्तु आज तक किसी भी ऋषि, मुनि या पंडित ने ऐसी बात नहीं लिखी थी। अति सुन्दर, अनवच्छिन्न भारतीय परम्परा के अनुसार जो ऋषि मुनि इतिहास, पुराण, आयुर्वेद तथा धर्मशास्त्रादि के लेखक थे, वही ऋषि ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों तथा कल्पसूत्रों के प्रवचन-कर्त्ता थे। इस विषय में तर्कशास्त्र-निष्णात मुनि वात्स्यायन के लेख का प्रमाण देकर हमने वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, पृष्ठ ६२ (संवत् १९८४), शाखा भाग, पृष्ठ २४१, २४२ (संवत् १९९२) तथा भारतवर्ष का इतिहास,

द्वितीय संस्करण, (संवत् २००३) पृष्ठ १५ पर यह सिद्ध किया था कि ब्राह्मणों आदि के प्रवक्ता तथा इतिहास और पुराणादि के रचयिता समान थे। इससे अधिक भारतवर्ष का इतिहास पृष्ठ १५ पर छान्दोग्य उपनिषद् के प्रमाण से यह सिद्ध किया था कि अथर्वाङ्गिरस ऋषियों ने उपलब्ध ब्राह्मणों और उपनिषदों से पूर्व इतिहास और पुराणों का निर्माण किया था। पुराणों के विषय में पाठकों को इतना ध्यान रखना चाहिये कि वर्तमान अनेक पुराण अधिकांश में साम्प्रदायिक पुराण हैं। इनमें से वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य और विष्णु में पुरातन सामग्री अधिक सुरक्षित है।

इसके पश्चात् पं० ईश्वरचन्द्रजी ने "ब्राह्मण ग्रन्थों के द्रष्टा और इतिहास, पुराण तथा धर्मशास्त्र के रचयिता ऋषियों का अभेद" नामक एक बृहद् ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थ में उन्होंने सिद्ध किया है कि शतपथ ब्राह्मण की भाषा वैदिक प्रवचन शैली की भाषा होने तथा "ह वै" आदि प्रयोगों की बहुलता पर भी, याज्ञवल्क्य स्मृति की भाषा से पर्याप्त सदृशता रखती है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनेक पाठ पाणिनीय व्याकरण के प्रभाव से उत्तरोत्तर बदले गये हैं। पहले वे पाठ पुरातन लोकभाषा में थे। पं० ईश्वरचन्द्रजी का ग्रन्थ शीघ्र मुद्रित होगा और विद्वन्मण्डल को प्रमुदित करेगा। इसके मुद्रण की देरी का कारण पंजाब का गत-विप्लव है, जिसमें पण्डितजी ने भारी क्षति उठाई है।

इस प्रकार गम्भीर परीक्षा के अनन्तर हमने साक्षात् देख लिया है कि मन्त्रकाल, ब्राह्मणकाल आदि विषयक योरुपीय मत सर्वथा असत्य है। इस योरुपीय मत की असत्यता में निम्नलिखित आठ तर्क सामने रखने चाहियें—

१. वात्स्यायन का मत पूर्व उद्धृत किया जा चुका है। तदनुसार ब्राह्मण ग्रन्थों के द्रष्टा और प्रवक्ता आप्त ऋषि ही इतिहास पुराण, आयुर्वेद तथा धर्मशास्त्र आदि के रचयिता थे। मुनि वात्स्यायन का यह मत भारत में सर्वस्वीकृत सत्य इतिहास का एक अंग था। यदि यह मत आर्य-परम्परा के विरुद्ध होता तो बौद्ध और जैन विद्वान् इसका खण्डन अवश्य करते। पर ऐसा हुआ नहीं। अतः वात्स्यायन का मत पुरातन ऐतिह्य पर आश्रित है और योरुपियन भाषावाद को मिथ्या सिद्ध कर रहा है।

ब्राह्मणों और रामायण, पुराण तथा धर्मशास्त्र आदि की भाषा का थोड़ा सा अन्तर इन ग्रन्थों की शैली और विषय-भेद के कारण हुआ है।

२. कौटल्य का भी यही मत था। ब्राह्मण ग्रन्थों से पूर्व, पुरातन अर्थात् पाणिनि के प्रभाव से पूर्वकाल की, लोकभाषा में लिखे उशना, बृहस्पति, विशालाक्ष, इन्द्र और नारद आदि के अनेक अर्थशास्त्र विद्यमान थे। महा विद्वान् अप्रतिग्राहक-शिरोमणि, तपस्वी विष्णुगुप्त चाणक्य उन ग्रन्थों से परिचित था। उसके काल तक तेजस्वी ब्राह्मणों की कृपा से आर्य-परम्परा अनवच्छिन्न थी। अतः बहुशास्त्रवित् आचार्य कौटल्य के साक्ष्य के सामने जर्मन, फ्रेंच, इङ्गलिश और अमरीकी आदि एकदेशीय पण्डितों का कथन अणुमात्र मूल्य नहीं रखता।

३. पाणिनि मुनि, जो भारत युद्ध से लगभग २०० वर्ष पश्चात् और कौटल्य से लगभग १३०० वर्ष पूर्व हुआ, जो अति विस्तृत आर्य वाङ्मय का श्रेष्ठ पण्डित था, लिखता है कि जिस शौनक ने छन्दों का प्रवचन किया, उसी शौनक ने (पाणिनि के प्रभाव से पूर्वकाल की)

लोकभाषा में श्लोक आदि रचे तथा जिन ऋषियों ने ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रवचन किया, उन्हीं ऋषियों ने कल्पसूत्र रचे। पाणिनि के समस्त लैसन, मैक्समूलर, ह्विटने और वाकर्नागल आदि का कोई प्रमाण नहीं है।

४. छान्दोग्य उपनिषद् पाणिनि से ३०० वर्ष पूर्व का ग्रन्थ है। उसमें लिखा है कि अथर्वाङ्गिरस ऋषियों ने इतिहास और पुराण कहे। उन्हीं ऋषियों ने वर्तमान ब्राह्मण ग्रन्थों से पूर्वकाल के कई ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रवचन किया था। अर्थात् कृष्णद्वैपायन व्यास के शिष्य प्रशिष्यों द्वारा प्रोक्त ब्राह्मण ग्रन्थों से पूर्व अनेक इतिहास और पुराण ग्रन्थ विद्यमान थे।

५. ब्राह्मण ग्रन्थों में पुरातन लोकभाषा में लिखे गये अनेक श्लोक और गाथायें वर्तमान हैं। ये श्लोक और गाथायें ग्रन्थ रूप में थीं। वहां से लेकर ब्राह्मण प्रवक्ता ऋषियों ने इन्हें "इति" पद सहित ब्राह्मणों में उद्धृत किया है। अतः पुरातन लोकभाषा के ग्रन्थ इन ब्राह्मण ग्रन्थों से पहले रचे जा चुके थे। ऐसी परिस्थिति में ब्राह्मणकाल और तदनु कथात्मक महाकाव्यकाल का क्रम निर्धारित करना उपहासास्पद है।

६. ब्राह्मण ग्रन्थों से पहले अनेक इतिहास, पुराण और आख्यान विद्यमान थे। ब्राह्मणों में उन ग्रन्थों का उल्लेख है। उनकी भाषा पुरातन लोकभाषा थी। वह भाषा शैली आदि में ब्राह्मण-भाषा से भिन्न होती हुई भी, ब्राह्मण-भाषा से सदृशता रखती थी। इसलिये रामायण और वायुपुराण आदि में ब्राह्मण-भाषा से मिलती जुलती भाषा अब भी मिलती है। अतः ब्राह्मणकाल, उपनिषत्काल और तत्पश्चात् कथात्मक महाकाव्यकाल का अनुमान किसी भी हेतु और उदाहरण से सिद्ध नहीं होसकता। आश्चर्य उन लोगों पर है, जो अपने को विद्वान् समझते हैं और आंख मूंद कर इस बात को ब्रह्मवाक्य समझते हैं।

७. कणाद, अक्षपाद गौतम, उलूक, देवल और हारीत आदि मुनि ब्राह्मण काल के तथा भिक्षु पंचशिख, आसुरि और जातुकर्ण्य आदि मुनि इन ब्राह्मणों से पूर्वकाल के महापुरुष थे। उन्होंने पुरातन लोकभाषा में अपने ग्रन्थ रचे। उन ग्रन्थों में से अनेक ग्रन्थ सम्पूर्ण और कई एक का पर्याप्त भाग अब भी उपलब्ध है। उन्हीं के मित्र ऋषियों ने इतिहास और पुराण रचे थे। रामायण उन्हीं इतिहासों में से एक है। अतः पाश्चात्यों का कल्पित मत सर्वथा खण्डित ठहरता है।

८. पाणिनि से लगभग १५० वर्ष पहले काशकृत्स्न और आपिशलि नामक वैयाकरण हुए। उनसे पहले भरद्वाज आदि वैयाकरण थे। पाणिनि का ग्रन्थ रचा नहीं गया, प्रत्युत प्रोक्त ग्रन्थ है। अर्थात्—कुछ न्यूनाधिक होकर पुराने ग्रन्थों का रूपान्तर है। पुराने व्याकरण ग्रन्थ, इन वर्तमान ब्राह्मण ग्रन्थों से बहुत पहले के ग्रन्थ थे। उनमें स्वल्प अन्तर वाली लोकभाषा और वेदभाषा के वर्णन करने वाले नियम थे। अतः वर्तमान ब्राह्मणों से पहले पुरातन लोकभाषा में लिखे गए इतिहास, पुराण आदि अनेक ग्रन्थ थे।

पाश्चात्य वादों का खण्डन हम गत पचीस वर्षों से करते आरहे हैं। हमारे तर्कों का उत्तर एक भी पाश्चात्य मतानुयायी ने आज तक नहीं दिया। तो क्या पाश्चात्य लोक हठी हैं, अन्यथा वे सत्य को मानते क्यों नहीं? इस बात को वे ही जानें। हमारा वक्तव्य इतना ही है कि हमने उन्हें और उनके एतद्देशीय शिष्यों को खुले शास्त्रार्थों और वादों का निमन्त्रण

बहुधा दिया है। अपनी निर्बलता के कारण वे शास्त्रार्थों से परे भागते हैं। अतः उनके पक्ष की असत्यता स्वयं स्पष्ट है।

अब हम एक संक्षिप्त सूची देते हैं, जिस से पता लगेगा कि मन्त्रों के द्रष्टा और ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के प्रवक्ता ऋषियों ने ही लोकभाषा में अनेक ग्रन्थ रचे थे। यह सत्य है कि यह लोकभाषा पाणिनि के प्रभाव से पूर्वकाल की और ब्राह्मणभाषा से अधिक मिलती जुलती एक बड़ी विस्तृत भाषा थी।

१. भार्गव उशना कवि, आथर्वण मन्त्रों का द्रष्टा। ज़न्द अवेस्ता में इसके मन्त्र विकृत-रूप में मिलते हैं।	अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, धर्मशास्त्र आदि का रचयिता।
२. आंगिरस बृहस्पति, मन्त्रद्रष्टा।	व्याकरण, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्रआदि का रचयिता
३. बार्हस्पत्य भरद्वाज, मन्त्रद्रष्टा।	व्याकरण और आयुर्वेद का रचयिता।
४. जातुकर्ण्य, वेदसंहिता, ब्राह्मण और कल्पसूत्र का प्रवचनकर्ता।	आयुर्वेद की संहिता का रचयिता।
५. कृष्ण द्वैपायन व्यास, सब वेदसंहिताओं और ब्राह्मणों आदि का प्रवचनकर्ता।	महाभारत, पुराणसंहिता और धर्मशास्त्र आदि का लेखक।
६. सुमन्तु, आथर्वणसंहिता का प्रवक्ता।	धर्मसूत्र का रचयिता।
७. तित्तिरि, कृष्ण यजुर्वेदीय वेदसंहिता और ब्राह्मण आदि का प्रवचनकर्ता।	अनुक्रमणी और श्लोकों का कर्ता।
८. चरक वैशम्पायन, वेदसंहिता तथा ब्राह्मण आदि का प्रवक्ता।	आयुर्वेद तथा महाभारत का संस्कर्ता।
९. जैमिनि, सामसंहिता, ब्राह्मण और कल्प का प्रवचनकर्ता।	मीमांसा-सूत्रों का रचयिता।
१०. शौनक, छन्दों का प्रवक्ता।	बृहद्देवता, प्रातिशाख्य आदि का कर्ता।
११. बौधायन, कल्पसूत्र का कर्ता।	वेदांत-वृत्ति और श्लोकों आदि का रचयिता।

यह सूची दिग्दर्शनमात्र के लिये है। इस सूची से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि योरुपीय लेखकों ने इस सूक्ष्म मर्म को नहीं समझा कि ऋषि लोग ही इतिहास और पुराण के भी निर्माता थे। उन की भाषा उपलब्ध महाभारत आदि में पाणिनि के प्रभाव के कारण यद्यपि बहुधा बदल चुकी है, तथापि इन ग्रन्थों के सैकड़ों हस्तलिखित कोशों में उन पुरातन रूपों में अब भी सुरक्षित है कि जो रूप पाणिनि से पूर्वकाल के थे। महाभारत का पूना-संस्करण इस बात का एक ज्वलन्त उदाहरण है। उसमें स्वीकृत तथा पाठान्तरों में उपलब्ध अनेक पाठ ब्राह्मणभाषा से अधिक सादृश्य रखते हैं। अतः भारतीय परम्परा सत्य है और पाश्चात्यों की कल्पना अलीक है। जब जब ब्राह्मण ग्रन्थ रचे गये, तभी तभी उपनिषद्, कल्पसूत्र और इतिहास आदि रचे गये।

इस पर पक्षपाती पाश्चात्य पूछता है, क्या उसका बनाया भारतीय इतिहास का सारा कलेवर नष्ट हो जायगा। हमारा उत्तर है, जब तक उद्भट भारतीय पण्डित इस क्षेत्र में नहीं उतरे थे, तब तक बृटिश शासन की सहायता से यह पक्ष प्रचरित रहा। अब यह पक्ष प्रचरित नहीं रह सकता। इसका नाश दूर नहीं। जो भारतीय अल्पज्ञान के कारण अथवा पाश्चात्य मत के उच्छिष्टभोजी होने के कारण इसका समर्थन करेंगे, उनका विद्यादम्भ क्षयस्थायी होगा। प्रबुद्ध भारत देर तक अन्याय नहीं सहेगा। भारत ने जैसे पार्थिवी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है, वैसे ही वह सांस्कृतिक स्वतन्त्रता भी शीघ्र प्राप्त कर लेगा।

इससे आगे अब इतिहास के दूसरे स्रोत का वर्णन किया जाता है।

दूसरा स्रोत—वाल्मीकीय रामायण

रचनाकाल—भगवान् वाल्मीकि मुनि का रामायण महाराज दाशरथि राम के राज्य-काल में रचा गया। राम का काल त्रेता और द्वापर की संधि में था। यह घटना संवत्-प्रवर्तक विक्रम से लगभग ५२०० वर्ष पूर्व की है। इससे अधिक पुरानी चाहे हो, पर इस से न्यून पुरानी नहीं है। उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में से सब से पुराने ब्राह्मण ग्रन्थ विक्रम से लगभग ३४००—३५०० वर्ष पूर्व प्रवचन किये गये थे। उनसे लगभग १७०० वर्ष पहले भार्गव वाल्मीकि मुनि रामायण की रचना कर चुके थे।

एतद्विषयक प्रथम पाश्चात्यमत—(क) केम्ब्रिज हिस्टरी आफ़ इण्डिया में अमेरिका वासी वाशबर्न हाप्किन्स ने लिखा है—

ग्रन्थरूपी रामायण महाभारत से उत्तरकालीन है। इति।[1]

(ख) इस मत की प्रतिध्वनि पाश्चात्य मतानुयायी राखालदास बन्दोपाध्याय ने की।[2]

(ग) इन दोनों के चरणचिह्नों पर अध्यापक प्रबोधचन्द्र सेन गुप्त चला। वह लिखता है—वर्तमान रामायण ग्रन्थ ४५० ईसा से पूर्वकाल का सिद्ध नहीं हो सकता। इति।[3]

दूसरा पाश्चात्य मत—जर्मन अध्यापक याकोबी और विण्टर्निट्ज़ का मत है कि महाभारत के वर्तमान रूप में आने से पूर्व रामायण का ग्रन्थ अपना वर्तमान रूप धारण कर चुका था।[4] इस मत के अनुसार हाप्किन्स और राखालदास का मत खण्डित ठहरता है। विण्टर्निट्ज़ पुनः लिखता है कि महाभारत का रामोपाख्यान रामायण-कथा का एक संक्षिप्त

---

१. भाग प्रथम पृ० २५१।

2. The Rāmāyana is, therefore, regarded as a much later poem than the Mahābhārata, Prehistoric, Ancient and Hindu India, p. 47.

3. The modern work Rāmāyana can not be dated earlier than about 450 A. D. Ancient Indian Chronology, Calcutta, 1947, Introduction p. ix.

4. the Rāmāyana must already "have been generally familiar as an ancient work, before the Mahābhārata had reached its final form." Winternitz, H. I. L., p. 503.

Jacobi is so sure about the Rāmāyana being the older poem, that he even takes for granted that the Mahābhārata only became an epic under the influence of the poetic art of Valmiki. Ibid, p. 506

रूप है।[1] इतना मान कर ये दोनों व्यक्ति भी समझते हैं कि महाभारत और रामायण शनैः शनैः बढ़ते गये हैं और एक ग्रन्थकार की कृति नहीं हैं।

पाश्चात्य मत-परीक्षा—काश्मीरिक आनन्दवर्धन,[2] सुप्रसिद्ध कवि भवभूति, सुबन्धु,[3] भाणकार कवि श्यामिलक,[4] बौद्धमत-विध्वंसक भट्ट कुमारिल,[5] निरुक्त व्याख्याकार दुर्ग, शकारि चन्द्रगुप्त का समकालिक महाकवि कालिदास, भदन्त अश्वघोष और सुप्रथित-यशा भास आदि प्राचीन कविगण रामायण के प्रसंगों से अपने ग्रन्थों की सामग्री लेते और उसके आख्यानों को लिखते आये हैं। इनमें से कलि संवत् ३७३० में शतपथ भाष्य रचने वाले हरिस्वामी के गुरु ऋग्वेद भाष्यकार स्कन्दस्वामी का पूर्ववर्ती आचार्य दुर्ग वाल्मीकि के श्लोक भी उद्धृत करता है।[6]

भदन्त अश्वघोष (विक्रम से कई शताब्दी पूर्व)[7] बुद्धचरित १।४३ में रामायण को महर्षि च्यवन के पुत्र की कृति मानता है। महाभारत, विराटपर्व २०।७ के अनुसार च्यवन वल्मीकभूत था, अतः उसका पुत्र वाल्मीकि नाम वाला हुआ। तथा आरण्यकपर्व, सुकन्या आख्यान १२२। ३ में—स वल्मीकोऽभवदृषिः, पाठ उपलब्ध है। अर्थात्—च्यवन वल्मीक था। अतएव अश्वघोष के कथन में कोई सन्देह नहीं कि रामायण च्यवन के पुत्र की कृति है।

रामायण का अनुकरणकर्ता, व्यास—रामायण के अनेक श्लोक, श्लोकार्द्ध अथवा श्लोकों के चतुर्थांश. पूर्वोक्त सब ग्रन्थकारों से कई सहस्र वर्ष पहले, व्यास ने बहुधा जैसे के तैसे ले लिए हैं।

महाभारत के नलोपाख्यान में ऐसे अनेक श्लोक मिलते हैं। संवत् १९९९ के अन्त में परलोक सिधारने वाले महाभारत के सम्पादक श्री विष्णु सीताराम-सुकथङ्कर ने बहुत परिश्रम से दो लेख लिखे थे। दुःख से कहना पड़ता है कि वे आंगल भाषा में हैं। पहला लेख नलोपाख्यान और रामायण के विषय में है।[8] उसमें बताया गया है कि महाभारत अन्तर्गत आरण्यक पर्वस्थ नलोपाख्यान के अनेक श्लोक वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड के श्लोकों की प्रतिलिपि मात्र हैं।

दूसरा लेख आरण्यक पर्वान्तर्गत रामोपाख्यान का मूल रामायण को बतलाता है।[9] लेखक ने ऐसे ८६ वचन दिए हैं जो महाभारत में रामायण से लिए गए हैं। इन लेखों से

---

1. the Rāmopākhyāna of the Mahābharata is in all probability only a free abridged rendering of the Rāmāyana, and we may add, of the Rāmāyana in very late form. ibid, p. 501.
२. रामायणे हि करुणो रसः·········स्वयमादिकविना सूत्रितः शोकः श्लोकत्वमागतः—इत्येवं वादिना। निर्व्यूढश्च स एव सीतात्यन्तवियोगपर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता। चतुर्थ उद्योत।
३. रामायणेनेव सुन्दरकाण्डचारुणा—, वासवदत्ता, कृष्णमाचार्य का संस्करण, पृ० ३०१, ३१५।
४. पादताडितक भाण। ५. तन्त्र वार्तिक, पूना संस्करण, पृ० ११६।
६. शिरीषकुसुमप्रख्याः केचित्पिङ्गलकप्रभाः। वानरा················॥ इति श्रूयन्ते रामायणे। निरुक्त-वृत्ति ४। ११॥
७. पाश्चात्य मतानुसार वह विक्रम की दूसरी शताब्दी में था।
8. A Volume of Eastern and Indian Studies in honour of Prof. F. W. Thomas, p 294-303
9. A Volume of Studies in Indology, presented to Prof. P. V. Kane, Poona, 1941—Epic Studies, The Rama Episode and the Rāmāyana, pages 472—487.

सर्वथा स्पष्ट है कि कृष्णद्वैपायन व्यास जो निश्चय ही आरण्यकपर्व का कर्ता था, वाल्मीकि का ऋणी है।

प्रसिद्ध कवि राजशेखर इस परम्परागत सत्य को जानता था कि व्यास ने वाल्मीकि का अध्ययन किया है।[1]

वाल्मीकि और उसकी कृति का स्मर्ता, व्यास—महाभारत वनपर्व १४६ । ११ में रामायण नाम स्पष्ट रूप से मिलता है।[2] रामायण युद्धकाण्ड ८१ । २८ श्लोक महाभारत द्रोणपर्व अध्याय १४३ में मिलता है—

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि । न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवंगम ॥८५॥

पाराशर्य व्यास के लिए राम रावण युद्ध पुराकाल का एक दृष्टान्त हो चुका था—

यादृशं हि पुरावृत्तं रामरावणयोर्मृधे । द्रोणपर्व ६६ । २८ ॥

व्यास और उसके शिष्य, प्रशिष्यों ने वर्तमान ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रवचन किया। व्यास वाल्मीकि और उसकी कृति से परिचित था। अतः रामायण ग्रन्थ वर्तमान ब्राह्मणग्रन्थों से पूर्व रचा जा चुका था। पाश्चात्यों ने इन अकाट्य युक्तियों का अनुभव करके यह मिथ्यावाद प्रचरित किया कि महाभारत का रचयिता व्यास कोई ऐतिहासिक पुरुष नहीं था।

रामायण की शाखायें—इस समय रामायण ग्रन्थ तीन मुख्य पाठों में उपलब्ध है। एक पाठ दाक्षिणात्य और दूसरा वंगीय है। तीसरा पाठ पहले अप्रकाशित था। पं० रामलभाया जी ने मेरा ध्यान तीसरे पाठ की ओर आकर्षित किया। वे इस पाठ का एक कोश हमारे मित्र ला० रामकृष्ण वकील, कैथल से ले आए। तत्पश्चात् इस पाठ के लगभग चालीस हस्तलिखित ग्रन्थ काश्मीर से पूना तक की यात्रायें कर के हमने अनेक ब्राह्मण घरों से प्राप्त किये। उनके आधार पर पं० रामलभायाजी ने अयोध्या काण्ड, और मैंने बालकाण्ड और आरण्यक काण्ड का एक बड़ा भाग, सम्पादित किया। इन तीनों पाठों के सम्वाद से रामायण की अनेक बातें स्पष्ट की जा सकती हैं।

सूर्यवंश की वंशावली—इन तीनों पाठों में सूर्यवंश की प्राचीन वंशावली का कुछ भाग थोड़ा सा विकृत होगया है। यह विकार लगभग दो सहस्र वर्ष पहले आ चुका था।

उत्तरकाण्ड—रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा का मूल भी बहुत पुराना है। मैथिली-निर्वासन और रामपुत्रों का वाल्मीकि द्वारा पालन अश्वघोष को ज्ञात था।[3]

भारतीय इतिहास में रामायण की उपयोगिता—रामायण में समुद्र मन्थन, देवासुरों के युद्ध, वानर, राक्षस आदि मनुष्य-जातियों का उल्लेख, संसार का पुरातन भूवृत्त और राम का दिव्यचरित वर्णित हैं। रामायण आर्य-गौरव का एक ज्वलन्त प्रमाण है। संसार धर्म पर आश्रित है, और प्रजा-रञ्जन राजा का प्रथम कर्तव्य है, यह बात रामायण से ही जानी जा सकती है। भ्राता, भ्राता से द्वेष न करे, इस वेद वचन का रामायण सजीव उदाहरण है।

---

१. बालरामायण अंक १, दिग्दंगय।

२. रामलक्ष्मीविस्पाः श्रीमान्वानरपुङ्गवः । पूना संस्करण १४७ । ११ में—हरो वानरपुङ्गवः पाठ है।

३. सौन्दरनन्द १ । २६ ॥

संसार के ऐतिहासिक साहित्य में रामायण एक अनुपम ग्रन्थ है। यही वह ग्रन्थ है, जो सब से पहला एक साथ इतिहास और काव्य है।

तीसरा स्रोत—महाभारत

महामुनि कृष्णद्वैपायन व्यास की यह रचना भारतीय इतिहास का एक अनुपम ग्रन्थ है। इसका साहित्यिक मूल्य कुछ थोड़ा नहीं। इसकी सुन्दर पदावली, इसकी बहुविध ज्ञानगरिमा, इसमें वर्णित घटनाओं की सरसता, और इसकी ऐतिहासिक तथ्यों से परिपूर्णता आदि ऐसी बातें हैं जो इस ग्रन्थ को हमारी असीम श्रद्धा का पात्र बना देती हैं। कभी इस देश में महाभारत सदृश अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ थे। व्यास और उनके शिष्यों को उन इतिहासों का पूर्ण ज्ञान था। भगवान् व्यास के शिष्य सूत ने इस बात का उल्लेख करके भारतीय इतिहास का महान् उपकार किया है।

महाभारत आदिपर्व के प्रथमाध्याय में पहले चौबीस पुरातन राजाओं का नाम-कीर्तन है। व्यास-शिष्य इतने कथन-मात्र से संतुष्ट नहीं हुआ, उसके विशाल इतिहास परिचय की इतिश्री यहीं नहीं हो गई। वह पुनः पचास से कुछ अधिक अन्य प्रतापी राजाओं का स्मरण करके कहता है—

इन राजाओं के दिव्यकर्म तथा त्याग आदि का कथन पुराने विद्वान् कविसत्तमों ने किया है।[1]

भगवान् व्यास और उनके शिष्यों को उन पुराने कविसत्तमों के ग्रन्थरत्न पढ़ने अथवा सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्हीं ग्रन्थों के श्लोक और गाथाएं वर्तमान ब्राह्मण ग्रन्थों में पाई जाती हैं। ये सब ग्रन्थ अब कहां चले गए? गत ११०० वर्ष की हमारी इतिहास-अरुचि के कारण लुप्त हो गए। उनके अभाव में कतिपय संशयारूढ लोगों को हमारे पुराने इतिहास में सन्देह ही सन्देह उत्पन्न हो रहे हैं।

महाभारत ग्रन्थ की स्थिति—महाभारत या भारत ग्रन्थ कृष्णद्वैपायन वेदव्यास की कृति है, और इसका वर्तमान आकार प्रकार गत पांच सहस्र वर्ष में कुछ अधिक विकृत नहीं हुआ। हां, कहीं कहीं श्लोकों या अध्यायों में किंचित् न्यूनाधिक्य या पाठान्तर तो हुए हैं, परन्तु मूल कथा तथा प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री परिवर्तन का पात्र नहीं बनी। यह हमारी प्रतिज्ञा है और इसके साधक प्रमाण नीचे लिखे जाते हैं—

१. संवत् १०८७ के समीप का संस्कृत-विद्या का अध्ययन करने वाला मुसलमान ऐतिहासिक अलबेरूनी लिखता है—महाभारत के १८ पर्वों में १००,००० श्लोक हैं।[2] इससे ज्ञात होता है कि अलबेरूनी के काल में महाभारत ग्रन्थ की स्थिति लगभग वर्तमान काल के समान ही थी।

---

१. येषां दिव्यानि कर्माणि विक्रमस्त्याग एव च।
माहात्म्यमपि चास्तिक्यं सत्यता शौचमार्जवम्॥ १९१॥
विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणैः कविसत्तमैः। १९२॥

२. अलबेरूनी का भारत, अध्याय १२।

अलबेरूनी के पास मत्स्य और वायु पुराण की हस्तलिखित प्रतियां थीं। उसने यह बात मत्स्य पुराण की प्रति में पढ़ी होगी। उसने महाभारत की हस्तलिखित प्रतियां भी देखी होंगी। ये प्रतियां दो, तीन सौ वर्ष पूर्व लिखी गई होंगी। हमारे अपने संग्रहीत कोशों में अनेक ग्रन्थों की तीन, चार सौ वर्ष पुरानी अनेक प्रतियां विद्यमान हैं। अतः अलबेरूनी का साक्ष्य उससे कई सौ वर्ष पहले के तथ्य को कहता है।

२. संवत् १०५७ के लगभग होने वाला शैव शास्त्र का अद्वितीय विद्वान्, तथा भरत-मुनि के नाट्यवेद का व्याख्याकार आचार्य अभिनवगुप्त लिखता है कि महाभारत शास्त्र में शतसहस्र श्लोक थे।[१]

३. संवत् ६७७ के समीप[२] माघप्रणीत शिशुपालवध महाकाव्य पर टीका लिखने वाला वल्लभदेव महाभारत का श्लोक परिमाण सपादलक्ष—१२५,००० मानता है।[३]

४. संवत् ६५७ के समीप का राजशेखर अपनी काव्य-मीमांसा में भारतसंहिता को शतसाहस्री कहता है।[४]

५. ध्वन्यालोक वृत्ति ३। १५ में आनन्दवर्धनाचार्य (८वीं शती) महाभारतस्थ गृध्र-गोमायुसंवाद[५] का उल्लेख करता है। वह अनुक्रमणी और हरिवंश को महाभारत का भाग मानता है।[६] वह महर्षि व्यास के नाम से आदि पर्व का श्लोक उद्धृत करता है।[७]

६. चतुर्मुख ने अपभ्रंश भाषा में महाभारत रचा।[८] यह चतुर्मुख वीरसंवत् १२०३ में वर्तमान रविषेण से स्मरण किया गया है।

७. वेणी संहार नाटक १।४ में भारत और कृष्णद्वैपायन स्मरण किए गए हैं। वेणी संहार का स्मरण आनन्दवर्धन ने अपने ध्वन्यालोक में किया है।

८. बौद्ध ग्रन्थकार शान्तरक्षित अपने तत्वसंग्रह में महाभारत, आरण्यकपर्व ७०।८ को उद्धृत करता है।[९] बौद्ध ग्रन्थकार को महाभारत के पुरातन ऐतिहासिक ग्रन्थ होने में कोई सन्देह नहीं हुआ। यह निश्चय है कि शान्तरक्षित को वैबर, हाप्किन्स तथा कीथ आदि की अपेक्षा भारतीय परम्परा का अधिक ज्ञान था।

---

१. द्वैपायनेन मुनिना यदिदं व्यधायि शास्त्रं शतसहस्रमितमत्र मोक्षः।
भगवद्गीता-भाष्य, भूमिका श्लोक २।

२. वल्लभदेव का पुत्र चन्द्रादित्य और पौत्र कय्यट था। कय्यट ने देवीशतक की विवृति में अपना काल कलिसंवत् ४०७८ अर्थात् संवत् १०३३ लिखा है।

३. सपादलक्षं मे महाभारतम्। १। १८॥ इसमें हरिवंश का पाठ भी सम्मिलित होगा।

४. पृ० ७।

५. शान्तिपर्व अध्याय १५३। टीकोपेत, पृ० २४३।

६. ननु महाभारते यावान् विषयाविषयः सोऽनुक्रमण्यां सर्व एवानुक्रान्तः।.........महाभारतावसाने हरिवंश-वर्णनेन समाप्ति विदधता तेनैव कविवेधसा कृष्णद्वैपायनेन सम्यक् स्फुटीकृतः। चतुर्थ उद्योत का अन्त। पृ० ५३३, ५३४।

७. काशी संस्करण, पृ० २५०। तथा देखो, पृ० २८८, ३००, ३३०।

८. देखो, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, संवत् २००३, भाग १, ४, पृ० ३३३।

९. तत्त्वसंग्रह, पृ० ८१७, श्लोक ३२०१।

९. कलिसंवत् ३७४० से पूर्व का अथवा संवत् ६८७ के समीप का वलभीविनिवासी ऋग्वेदभाष्यकार आचार्य स्कन्दस्वामी अपने भाष्य में भारतान्तर्गत अनेक आख्यानों का निर्देश करता है।[1]

१०. स्थाण्वीश्वर महाराज श्रीहर्षवर्धन की राजसभा को सुशोभित करने वाले गद्य-कवि भट्टबाण ने कादम्बरी और हर्षचरित दो ग्रन्थ-रत्न लिखे थे। ये दोनों ग्रन्थ महाभारतान्तर्गत अनेक सरस कथाओं और घटनाओं से भरे पड़े हैं।[2] हर्षचरित के आरम्भ में भट्ट बाण ने स्पष्ट लिखा है कि भारत का रचयिता व्यास था।[3] हर्षचरित में शान्तिपर्व २७।३८ उद्धृत है।[4] कादम्बरी में लिखा है कि उस समय महाभारत की कथा सुनाई जाती थी।[5] हर्षचरित और कादम्बरी ग्रन्थ संवत् ६८० के पश्चात् के नहीं हैं।

११. लगभग इसी काल का व्याकरण काशिकाकार जयादित्य अपनी काशिका वृत्ति १।१।११, तथा ५।४।१२२ में महाभारत शान्तिपर्व के दो श्लोक १७६।१२, तथा १०।१ क्रमशः उद्धृत करता है। काशिकाकार जयादित्य महाभारत नाम से भी परिचित था।[6]

१२. ब्रह्मसूत्र १।३।२५ पर स्मृतेश्च लिखकर, शङ्कराचार्य, आरण्यकपर्व से—अथ सत्यवतः कायात्—श्लोक उद्धृत करता है। ब्रह्मसूत्र १।३।२८ पर शङ्कर ने शान्तिपर्व २३८।६३ उद्धृत किया है। शङ्कर वेदव्यास को महाभारत का कर्ता मानता था। ब्रह्मसूत्र १।३।२९ पर वेदव्यासश्चैवमेव स्मरति—लिखकर, शङ्कर, शान्तिपर्व २१२।३१—युगान्ते……… श्लोक उद्धृत करता है।

शङ्कर वेदव्यास से अच्छे प्रकार परिचित था। भारत का वह प्रकाण्ड पण्डित अणुमात्र सन्देह नहीं करता कि महाभारत ग्रन्थ वेदव्यास रचित नहीं है। शङ्कर के सम्मुख पक्षपाती ईसाई लेखकों के कथनों का कोई मूल्य नहीं है।

---

१. भारते तु श्रूयते: शापात्सरस्वतीं मोचयामासुरित्याख्यानम्।

ऋग्वेदभाष्य १।११२।६ ॥ तुलना करो महाभारत शल्यपर्व, अ० ४४।

२. पार्थरथपताकेव वानराकान्ता, पृ० ६७। विराटनगरीव कीचकशतावृता, पृ० ६७। भीष्ममिव शिखण्डिशत्रुम्, पृ० १०७। पराशरमिव योजनगन्धानुसारिणम्, पृ० १०७, १०८। महाभारते शकुनि-वधः, पृ० १४२। महाभारत-पुराण-रामायणानुरागिणा, पृ० १७१। भारतीकतनुरिव मानन्दितभुजङ्गलोकाः, पृ० १८२। महाभारते दुःशासनापराधकर्णनम्, पृ० १९६। महाभारतपुराणेतिहासरामायणेषु, पृ० २६३। महाभारतमिवानन्तगीताकर्णनानन्दितनरम्, पृ० ३१४। इत्यादि, कादम्बरी, पूर्वभाग, हरिदासकृत कलिकत्ता संस्करण, शक १८५७।

विविधवीररसरामणीयकेन महाभारतमपि लंघयन्, षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ६३६। पाण्डवः सव्यसाची चीनविषयमतिक्रम्य राजसूयसम्पदे कुप्यद् गन्धर्वधनुष्कोटिटङ्कारकूजितकुञ्जं हेमकूटपर्वतं पराजैष्ट। सप्तम उच्छ्वास पृ० ७५८। हर्षचरित जीवानन्द संस्करण, कलिकाता, सन् १९१८।

३. नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे। चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ॥ ४ ॥

४. जीवानन्द संस्करण, पृ० ४७०।

५. कादम्बरी, निर्णयसागर संस्करण, पृष्ठ १२४।

६. नैवात्र महाभारतद्रोणो गृह्यते ४।१।१०३ ॥

१३. संवत् ६४७ के समीप अथवा उसके कुछ पहले मीमांसा-वार्तिकों का लिखने वाला,[1] बौद्धमत-विध्वंसक भट्ट कुमारिल भी महाभारत के अनेक श्लोक उद्धृत करता है, और महाभारत का एक श्लोक उद्धृत करते हुए वह इसे पाराशर्य की कृति मानता है।[2]

१४. दिग्गज बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति भी भारत की रचना में अपने काल के लोगों की अशक्ति मानता है। यथा—भारतादिष्वपि इदानीन्तनानां अशक्तावपि कस्यचित् शक्तिसिद्धेः।[3]

कस्यचित् के एकवचन प्रयोग से धर्मकीर्ति स्पष्ट करता है, कि महाभारत का कर्ता एक व्यक्ति था। वह अनेक लोगों को इसका कर्ता नहीं मानता, और पाश्चात्य लोगों के सिर पर खड़ा ललकारता है, कि हे पाश्चात्य "पण्डितो," तुम इतना अनृत क्यों फैला रहे हो।

१५. इस से कुछ पूर्वकाल का काव्यालंकारसूत्र-प्रणेता भामह महाभारत-वर्णित अनेक कथाओं का उल्लेख अपने ग्रन्थ में करता है।[4] भामह के श्लोक स्कन्द के निरुक्त-भाष्य में उद्धृत हैं।

१६. संवत् ६२७ से पूर्ववर्ती शब्दब्रह्मवादी वाक्यपदीय का कर्ता महावैयाकरण भर्तृहरि[5] भी महाभारत के कई श्लोक उद्धृत करता है। एक स्थान पर उसने आश्वमेधिकपर्व के कई श्लोक उद्धृत किए हैं।[6] इससे ज्ञात होता है कि भर्तृहरि के काल में आश्वमेधिक-पर्व के वे स्थल विद्यमान थे।

१७. पल्लवराज महेन्द्रवर्मा के मत्तविलास में लिखा है—

अथवा खरपटादपि अस्मिन्नधिकारे बुद्ध एवाधिकः। कुतः, वेदान्तेभ्यो गृहीतार्थान् यो महाभारतादपि।

---

१. प्रतापशील अर्थात् प्रभाकरवर्धन संवत् ६६२ में परलोक सिधारा। उसका समकालीन विश्वरूप अपनी बालक्रीडा में कुमारिल के श्लोक उद्धृत करता है। संवत् ६८७ के समीप के ऋग्वेदभाष्य रचयिता स्कन्दस्वामी ने अपने निरुक्तभाष्य में कुमारिल को उद्धृत किया है। तिब्बत के ग्रन्थों के अनुसार कुमारिल और धर्मकीर्ति, गुप्त राजाओं के समकालीन थे।

२. प्रसिद्धो हि तथा चाह पाराशर्योऽत्र वस्तुनि ॥ २ ॥
इदं पुण्यमिदं पापम्। श्लोकवार्तिक औत्पत्तिक सूत्र।

३. प्रमाणवार्तिक, पृ० ४४७, ४४८।

४. ३।५॥ ३।७॥ ५।३६॥ ५।४२॥ इत्यादि। भामह स्कन्दस्वामी से उद्धृत किया गया है।

५. नालन्दा के आचार्य धर्मपाल ने भर्तृहरि-रचित "पेइ-न" प्रकीर्णक (?) पर एक टीका लिखी थी। (इत्सिङ्, भाषा-संस्करण, पृ० १७६) धर्मपाल का जीवनकाल संवत् ५६६-६२७ था। वह ३२ वर्ष की आयु में मरा। (Introduction to Vaisheshika Philosophy according to the Dashapadarthi Shastra by H. Ui, 1917, p. 10) अतः धर्मपाल ने संवत् ६२७ से पूर्व वाक्य-पदीय पर टीका लिख दी होगी।

धर्मपाल और शीलभद्र ने किसी विरोधी से एक शास्त्रार्थ किया। उस समय शीलभद्र ठीक ३० वर्ष की आयु का था। (देखो, बील का अनुवाद, पृ० १११)। शीलभद्र का निधन १०६ वर्ष की आयु में हुआ। तब ह्वेनसांग को पढ़ाए उसे कुछ वर्ष हो चुके थे।

६. वाक्यपदीय प्रथमकाण्ड ४०, ४१।

इस वचन से ज्ञात होता है कि महेन्द्र वर्मा के समकालीन विद्वानों के अनुसार महाभारत ग्रन्थ के शान्तिपर्व का सांख्य-प्रकरण बुद्ध से पहले विद्यमान था।

१८. इन से कुछ पूर्व की अथवा गुप्तकाल के मध्य को प्रतिपदश्लेष को कहने वाली वररुचि के भागिनेय सुबन्धु की वासवदत्ता का भी यही वृत्त है। इस ग्रन्थ में महाभारतस्थ घटनाओं का उल्लेख उदार मन से किया गया है।[1]

१९. वासवदत्ता में उद्धृत न्यायवार्तिककार शैव आचार्य उद्योतकर सूत्र ४।१।२१ पर अपने वार्तिक में महाभारत वनपर्व का एक श्लोक ३०।२८ उद्धृत करता है।

२०. उद्योतकर के न्यायवार्तिक में व्यास के योगभाष्यस्थ एक वचन का उद्धरण मिलता है। योगभाष्य उस काल से पहले का ग्रन्थ है। योगभाष्य १।४७[2] और २।४२ में महाभारत के दो श्लोक उद्धृत हैं।[3]

२१. वाग्भट का शिष्य जज्जट चरक, चिकित्सा स्थान २।४ की व्याख्या में लिखता है—आह च व्यासभट्टारकः—पुत्रजन्मवियोगाभ्यां न परं सुखदुःखयोः इति। अतः जज्जट व्यास और उसके महाभारत से परिचित था।

२२. मध्यभारत के उच्चकल्प कुल के महाराज सर्वनाथ के ताम्रपत्र में महाभारत के एक लाख श्लोक माने गए हैं।[4] महाराज सर्वनाथ के शिलालेख संवत् १९१–२१४ तक के मिल चुके हैं।[5]

पाश्चात्य लेखक यहां पर आकर ठहर जाते हैं। उनमें से विएटर्निट्ज़ और हाप्किन्स आदि का कथन है (विनट० का भारतीय साहित्य का इतिहास, अंग्रेजी अनुवाद, पृ० ४६५), कि महाभारत का वर्तमान रूप ४०० ईसा पूर्व से पहले का और ४०० ईसा संवत् के पश्चात्

---

१. इस सुबन्धु का निश्चित काल गुप्तों का मध्यकाल है। वह बाण से अवश्य पहले हुआ था। बृहन्नलानुभावोऽपि, पृ० २१। दुरासनदर्शनं महाभारते, पृ० २८। कौरवव्यूह इव सुशर्माधिष्ठितः, पृ० ४७। भीमोऽपि न बकद्वेषी, पृ० ८२। भारतसमरमूर्ध्येव, पृ० ११३। उत्तरगोग्रहणसमरमूर्ध्येव वर्धमान-बृहन्नलया, पृ० ११८। विराटलक्ष्म्येव आनन्दितकीचकशतया, पृ० १२०। कुरुसेनामिव उलूकद्रोण-शकुनिसनाथाम्, पृ० ३१६।

कृष्णमाचार्य संस्करण। उपर्युक्त उद्धरण सम्पादक की भूमिका पृ० २३, २४ से लिए गए हैं।

२. महाभारत, शान्तिपर्व, १७।२०॥१५१।११॥

३. महाभारत, शान्तिपर्व, १७४।४६॥ १७७।५१॥७७।७॥

४. उक्तं च महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां परमर्षिणा पराशरसुतेन वेदव्यासेन। गुप्त शिला-लेख, भाग ३, पृ० ११४। तथा, उक्तं च महाभारते भगवता वेदव्यासेन व्यासेन। संवत् १९१ का ताम्रपत्र। ऐ० इ० भाग १९, पृ० १२९।

अनुशासनपर्व अध्याय ६७ में भूमिदान विषयक अनेक श्लोक मिलते हैं। इन श्लोकों का भाव और विस्तार व्यास स्मृति में है।

५. पाश्चात्य पद्धति के कई लेखक इस संवत् को कलचुरी संवत् मानते हैं। उसी पद्धति के दूसरे लेखक इसे फ्लीट-कल्पित गुप्तसंवत् मानते हैं। हमारे विचारानुसार ये दोनों मत असङ्गत हैं। गुप्त संवत् के आरम्भ के सम्बन्ध में फ्लीटमत निराधार है।

का नहीं है। सर्वनाथ का ताम्रपत्र उनके अनुसार लगभग ५०० ईसा संवत् का है। हमारे अगले प्रमाण बताएंगे कि महाभारत का वर्तमान स्वरूप विक्रम से २१०० वर्ष पहले का है। और प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थकार महाभारत को व्यास की रचना मानते आए हैं।

२३. इन से पूर्वकाल का मीमांसाभाष्यकार शबर अपने भाष्य ८। १। २ में महाभारत आदिपर्व १। ४६ को उद्घृत करता है—विस्तीर्यैतन्महज्ज्ञानमृषिः संक्षेपमब्रवीत्।

अर्थात्—महाभारत के इस महान् ज्ञान का विस्तारपूर्वक वर्णन करके ऋषि (व्यास) ने इसकी संक्षिप्त अनुक्रमणी बनाई।

इस प्रमाण को उद्घृत करने से शबर मानता है कि ऋषि व्यास ने ही महाभारत का अनुक्रमणीपर्व बनाया। अनुक्रमणी के अनुसार महाभारत की श्लोक-गणना लगभग वर्तमान काल की श्लोक-गणना के सदृश थी। अतः शबर से कई सौ वर्ष पहले भी महाभारत ग्रन्थ लगभग एक लाख श्लोकात्मक था।

शबर स्वामी का काल विक्रम की तीसरी शताब्दी से पूर्व का है। संभवतः वह प्रथम शताब्दी विक्रम का ग्रन्थकार था।

अब विचारने का स्थान है कि शबरस्वामी, जो आर्य वाङ्मय की सर्वसम्मत परम्परा से परिचित था, अपने काल में अनुक्रमणी सहित सारे महाभारत को ऋषि व्यास की कृति मानता है। यह परम्परा उसके काल तक अनवच्छिन्न थी। इस बात के सामने ईसाई और यहूदी पाश्चात्य लेखकों की पक्षपातपूर्ण कल्पनाओं को कौन विद्वान् युक्त मानेगा। ईश्वर कृपा है, जो इस दीन, हीन दशा में भी हमारा इतना वाङ्मय बचा रहा, और जिस की सहायता से पाश्चात्यों के बहु मिथ्यावादों का खण्डन करने में हम समर्थ हुए।

२४. कामसूत्रकार वात्स्यायनमुनि १।४ में इसी श्लोक का उत्तरार्ध उद्घृत करते हैं।

२५. लगभग इसी काल अथवा इससे कुछ पूर्व काल का निरुक्तवृत्तिकार दुर्ग महाभारत के अनेक श्लोक उद्घृत करता है।[1] यह अनुक्रमणीपर्व विषयक वही श्लोक है, जो संख्या २३ में शबर द्वारा उद्घृत बताया गया है। शबर मीमांसक था, और दुर्ग नैरुक्त। दोनों विक्रम की प्रथम शताब्दी के समीप के ग्रन्थकार हैं। उन दोनों को भारतीय परम्परा ठीक ज्ञात थी। अब पाश्चात्यों को कोई नई युक्ति देनी पड़ेगी, जिस से वे सिद्ध कर सकें, कि दुर्ग को भारतीय परम्परा अज्ञात थी। अन्यथा हठ त्याग कर उन्हें मानना पड़ेगा कि महाभारत का कर्ता ऋषि व्यास था। आचार्य दुर्ग संवत् ६८७ से वर्तमान ऋग्भाष्यकार स्कन्दस्वामी से पहले का ग्रन्थकार है। उसका महाभारत से उद्घृत किया हुआ एक श्लोक बताता है कि युद्ध काण्डों की अवस्था में कोई अन्तर-विशेष नहीं हुआ।[2]

१. निरुक्तभाष्य ४। १ में महाभारत आदिपर्व १। ४६ उद्धृत है। निरुक्तभाष्य २। ४ में सुभद्राहरण सम्बन्धी भगवान् वासुदेव का कहा हुआ एक वाक्य पढ़ा गया है। यह वचन टूटे फूटे पाठ में अब भी महाभारत में मिलता है। देखो, आदिपर्व २१३।४॥ फिर दुर्ग निरुक्तभाष्य ६।३० में लिखता है—इति भारते श्रूयते। निरुक्तभाष्य ७। ३ में भगवद्गीता ३। १२ उद्धृत है।

२. तथा करोति सैन्यानि यथा कुर्याद् धनञ्जयः।
निरुक्तवृत्ति ३। १२॥ भीष्मपर्व ५५। १७॥ देखो निरुक्तवृत्ति ७। १४॥

यही नहीं, दुर्ग का मत है कि निरुक्तकार यास्क आख्यान सहित भारतसंहिता को जानता था।[1] यदि दुर्ग का यह मत सत्य सिद्ध हो जाए तो मानना पड़ेगा कि महाभारत का वर्तमान आकार प्रकार भारत-युद्ध के १०० वर्ष के अन्दर अन्दर बन चुका था। यास्क का काल भारत-युद्ध से १०० वर्ष के पश्चात् का नहीं है। वस्तुतः यास्क और व्यास एक काल में थे।

२६. भट्टार हरिचन्द्र चरकन्यास में, व्यासाभिहितः श्लोकः (पृ० ६५), लिख कर शान्ति पर्व २३८। ५८ उद्धृत करता है।

२७. महायानिक सगाथक लंकावतारसूत्र में व्यास और भारत का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[2]

२८. वररुच निरुक्तसमुच्चय नाम का एक ग्रन्थ मिलता है। उसमें वेद-मन्त्रों का विवरण है। वररुचि की कृति होने से यह ग्रन्थ प्रथम शताब्दी विक्रम की रचना है। यह वररुचि सुप्रसिद्ध विक्रमादित्य का पुरोहित था। उसके ग्रन्थ में महाभारत के कई श्लोक उद्धृत हैं।[3] वह निरुक्तसमुच्चय के उपोद्घात में महाभारत का श्लोकार्द्ध उद्धृत कर के उसे व्यास वचन मानता है—

विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रचलिष्यति। इति व्यासवचनम्।

अर्थात्—आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व के भारत के वररुचि सदृश विद्वान् (कृष्ण द्वैपायन) व्यास को महाभारत का कर्ता मानते थे। उनके काल तक भारतीय परम्परा अटूट थी, अतः उनका मत कल्पित न था। कल्पित तो पाश्चात्यों का मत है। वररुचि और शबरादि विद्वान् जानते थे कि महाभारत का कर्ता वही व्यास है, जिसने वेद-शाखाओं का विभाग किया।

२९. विक्रम की प्रथम शताब्दी की गुप्त-मुद्राओं पर अनेक वचन लिखे मिलते हैं। भारत राष्ट्र के लिपि-विशेषज्ञ श्री बहादुर चन्द जी छाबड़ा, शास्त्री ने बड़ी योग्यता से सिद्ध किया है कि ये वचन विष्णुसहस्रनामान्तर्गत अनेक वचनों की छाया पर लिखे गये हैं। गुप्त-राजा विष्णु के उपासक थे, अतः सिद्ध होता है कि गुप्तकाल में विष्णु सहस्रनाम प्रामाणिक दृष्टि से देखा जाता था। भारतीय अनवच्छिन्न परम्परा की दृष्टि से यह बात पांच, सात सौ वर्ष में भी घड़ी न जा सकती थी। और विष्णु सहस्रनाम महाभारत का एक अंग है, अतः महाभारत ईसा की चौथी शताब्दी से बहुत पहले वर्तमान रूप में था।

---

१. एष चाख्यानसमयः। ७। ७ पर दुर्ग लिखता है—भारते चाख्यानसमयः। इसके आगे वह महाभारत के कई आख्यानों का निर्देश करता है।

२. व्यासः कणाद ऋषभः कपिलशाक्यनायकः। निर्वृते मम पश्चात्तु भविष्यन्त्येवमादयः ॥७८४॥ मयि निर्वृते वर्षशते व्यासो वै भारतस्तथा। पाण्डवाः कौरवा राम पश्चान्मौरी भविष्यति ॥७८५॥ मौर्या नन्दाश्च गुप्ताश्च ततो म्लेच्छा नृपाधमाः। म्लेच्छान्ते शस्त्रसंक्षोभः शस्त्रान्ते च कलिर्युगः ॥७८६॥ इन गाथाओं का चीनी अनुवाद संवत् ५७० में हो गया था। देखो, प्रोफेसर, दि लङ्कावतार सूत्र, बुन्यिउ नञ्जियो का संस्करण, क्योटो, १९२३, पृ० ८, ९।

३. २। ३६॥ २। ४२॥

महाभाष्य में—भीमसेनो नाम कुरुः । ४ । १ । ११४ ॥ नाकुलः साहदेवः ।
केचित् कंसभक्ता भवन्ति, केचिद् वासुदेवभक्ताः । चिरहते कंसे । ३ । २ । २६ ॥
जघान कंसं किल वासुदेवः । ३ । २ । १११ ॥ वैयासकिः शुकः ४ । १ । ६७ ॥
संकर्षणद्वितीयस्य बलं कृष्णस्य वर्धताम् । उग्रसेन अन्धक ४ । १ । ११४ ॥

ऐसे वचन मिलते हैं । इनसे पता लगता है कि पतञ्जलि तक भारतीय परम्परा पूर्ण स्वच्छ रूप में थी, और महाभारत और व्यास की ऐतिहासिकता बता रही थी ।

३५. पतंजलि का एक नाम शेष कहा जाता है । शेष-रचित एक कोष ग्रन्थ कभी बड़ा प्रसिद्ध था । संभवतः यह कोशग्रंथ इसी पतंजलि का था । शेष के कोष में अर्जुन आदि के नाम पर्याय पढ़े गये हैं । जैनाचार्य हेमचन्द्र-रचित अभिधानचिन्तामणि पृ० २८४ पर ये नाम पर्याय उद्धृत हैं । इन पर्यायों में महाभारत में प्रयुक्त अनेक नाम पर्याय मिल जाते हैं । अतः महाभारत पतंजलि से बहुत काल पूर्व वर्तमान आकार का था । स्मरण रहे, पतंजलि का काल विक्रम से ११००–१२०० वर्ष पूर्व तक का है ।

३६. आयुर्वेद की चरकसंहिता का तीसरा अध्याय दृढबल की पूर्ति से पूर्वकाल का है । यह अध्याय पतञ्जलि से भी पहले का है । उसमें लिखा है—

विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम् । स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वानपोहति ॥[1] ३१२ ॥

इस पर चक्रपाणि आदि टीकाकारों ने लिखा है कि ये नामसहस्र महाभारत में हैं । इसकी दूसरी व्याख्या हो नहीं सकती । जब चरक के प्रतिसंस्कार के समय महाभारत ग्रन्थ में विष्णुसहस्रनाम विद्यमान था तो उस समय महाभारत का कलेवर वर्तमान काल जैसा ही था ।

३७. मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त का महामन्त्री आचार्य विष्णुगुप्त अपने अर्थशास्त्र में महाभारत के अनेक श्लोकों की छाया का प्रदर्शन करता है । निम्नलिखित स्थान देखने योग्य हैं—

एकं हन्याद्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता । बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सराजकम् ॥ उद्योगपर्व ३३ । ४२ ॥
एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुः क्षिप्तो धनुष्मता । प्राज्ञेन तु मतिः क्षिप्ता हन्याद्गर्भगतानपि ॥
अर्थशास्त्र, आदि से १३४ अध्याय ॥

विष्णुगुप्त कौटल्य अपने अर्थशास्त्र में दम्भोद्भव की कथा का संकेत करता है । यह कथा, उसने, महाभारत, उद्योगपर्व ६४ । ५ से ली है ।

अर्थशास्त्र का माता भस्त्रा, पाठ[2] महाभारतस्य श्लोक[3] की छाया पर लिखा गया है ।

अर्थशास्त्र १।६ में दुर्योधनो राज्यादंशं च [अप्रयच्छन्] तथा वृष्णिसंघश्च द्वैपायनं का भाव महाभारत से लिया गया है ।

जिस कौटल्य के पास उशना, बृहस्पति, नारद, इन्द्र, द्रोण और भीष्मपितामह आदि के अर्थशास्त्र अविकल रूप में थे, वह द्वैपायन और उसके ग्रन्थ से भी परिचित था । वह मैकडानल और हाप्किन्स की अपेक्षा आर्य परम्परा का अधिक पण्डित था । उसके काल तक द्वैपायन एक ऐतिहासिक पुरुष था । ईसाई हाप्किन्स आदि ने द्वैपायन को कल्पित व्यक्ति बना कर अपने पक्षपात का पूर्ण परिचय दिया है ।

१. तुलना करो—अनुशासनपर्व २५४ । ४ —स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥
२. आदि से अध्याय ६४।
३. आदिपर्व ६६।१६॥

३८. महाकवि भास के अनेक नाटक[1] महाभारत की कई घटनाओं के आधार पर लिखे गये हैं। उन सब नाटकों के उपलब्ध पाठों से यह बात प्रतीत होती है कि भास ने भी लगभग इसी प्रकार के महाभारत का अध्ययन किया था।

३९. महाराज अधिसीम कृष्ण के समय में, तथा दीर्घसत्र के पांचवें वर्ष में मूल मत्स्य पुराण सुना गया। मत्स्य पुराण की भविष्य की वंशावलियां, समय समय पर मत्स्य में जोड़ी गई हैं, पर पुराण का असाम्प्रदायिक भाग अधिसीम कृष्ण के अथवा उससे पूर्वकाल का है। उसमें, महाभारत के एक लाख श्लोकों का स्पष्ट वर्णन है—

भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्। लक्षेणैकेन यत्प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम् ॥ ५३ । ७० ॥

महाभारत का ययातिचरित पहले शौनक ने शतानीक को सुनाया। पुनः वही ययाति-चरित मत्स्य पुराण के श्रावण समय सूत ने नैमिषारण्य के दीर्घ सत्र में ऋषियों को सुनाया।[2]

४०. वायु पुराण भी उसी काल में सुनाया गया। वायु के प्रथमाध्याय श्लोक ४२ तथा ४५ में लोमहर्षणजी व्यास को—भृगुवाक्यप्रवर्तिने, तथा महाभारतकार कहते हैं। प्रकाशं जनितो लोके महाभारत-चन्द्रमा। यही श्लोक मत्स्य अध्याय २०१ में इस प्रकार है—प्रकाशो जनितो येन लोके भारत-चन्द्रमाः। ३२ ॥

अध्यापक सुकथङ्कर जी ने यह खोज की थी कि महाभारत में भृगुओं का बहुत अधिक वर्णन है। इसका कारण लोमहर्षणजी जानते थे।

४१. मत्स्य पुराण के श्रावण अथवा कौरव-राज अधिसीम कृष्ण के राज्य काल से कई वर्ष पूर्व आचार्य बौधायन अपने गृह्यसूत्र में लिखता है—

अथोचरत निवीतिन कृष्णद्वैपायनाय, जातुकर्ण्याय, तरक्षाय, तृणबिन्दवे............अथर्वाङ्गिरोभ्य इतिहासपुराणेभ्य ....कल्पयामि। ३। ६। ८। ६ ॥

पुनः यही आचार्य बौधायन अपने धर्मसूत्र में लिखता है—

अथाप्युशनसश्च वृषपर्वणश्च दुहित्रोस्संवादे गाथामुदाहरन्ति—
स्तुवतो दुहिता त्वं वै याचतः प्रतिगृह्णतः। अथाहं स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः ॥ इति। २। २। २७ ॥

बौधायन द्वारा उद्धृत यह गाथा देवयानी और शर्मिष्ठा के संवाद में महाभारत, आदिपर्व ७३।१०,७३।३२ तथा ७४।२१ में व्यास जी द्वारा उदाहृत की गई है।

प्रथम उद्धरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि बौधायन मुनि भगवान् कृष्ण द्वैपायन के नाम से परिचित थे। वे इस नाम से क्यों परिचित न होते। वे कृष्ण द्वैपायन व्यास के शिष्यों की प्रवचन की हुई याजुष शाखा के सूत्रकार हैं। यही नहीं, बौधायन मुनि स्पष्ट लिखते हैं कि उशना की दुहिता और वृषपर्वा की दुहिता के संवाद में [पुरातन मुनि] गाथा उद्धृत करते हैं। वे पुरातन मुनि व्यास कृष्ण द्वैपायन हैं, और उन्होंने यह गाथा महाभारत आदिपर्व में उद्धृत की है। बौधायन के सम्मुख महाभारत ग्रन्थ विद्यमान था। उसके काल में और उसके सहस्रों वर्ष पश्चात् भी भारतीय इतिहास की परम्परा अटूट थी।

---

१ पञ्चरात्र, दूतवाक्य, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार और ऊरुभंग।
२. मत्स्य २५। १ ॥

वह महाभारतस्थ आदिपर्व को उसके आख्यानों सहित जानता था। अतः विक्रम से २७५०-२८०० वर्ष पहले महाभारत लगभग अपने वर्तमान रूप में विद्यमान था।

४२. बौधायन मुनि से लगभग ३०-४० वर्ष पूर्व शौनक शिष्य आश्वलायन[1] ने लिखा—

प्राचीनावीती सुमन्तु-जैमिनि-वैशम्पायन-पैल-सूत्र-भाष्य-महाभारत धर्माचार्याः……………तृप्यन्तु। ३। ४। ४॥ हरदत्तमिश्रकृता अनाविला सहित, त्रिवन्द्रम संस्करण, पृ॰ १४५।

आश्वलायन गृह्य के अन्य अनेक कोशों में भारत-महाभारत पाठ पढ़ा गया है।

अर्थात्—सुमन्तु आदि चारों व्यास शिष्यों का तर्पण करना चाहिए। ये मुनि सूत्र, भाष्य, भारत, महाभारत और धर्मशास्त्रों के आचार्य थे। महाभारत के पाठ से हम जानते हैं कि व्यास ने अपने चार शिष्यों और पुत्र शुक को भारत-संहिता पढ़ा दी थी। उस भारत-संहिता में वैशम्पायन चरक के चारक श्लोक और लोमहर्षण के उपोद्घात जब जुड़ गए तो वह महाभारत संहिता हुई। यह महाभारत-संहिता आश्वलायन के काल में अपने वर्तमान रूप में उपलब्ध थी। वह काल परीक्षित-पुत्र जनमेजय के काल के कुछ पश्चात्, और अधिसीम के कुछ पहले था।

अध्यापक राय चौधरी का मत—आश्वलायन मुनि के काल के विषय में कलकत्ता के अध्यापक हेमचन्द्र राय चौधरी ने बड़ी असंगत कल्पना की है। वह इस आश्वलायन को बौद्ध-काल का व्यक्ति कहता है। वस्तुतः कल्पसूत्रकार आश्वलायन बौद्ध-काल का ग्रन्थकार नहीं था। वह शौनक का शिष्य और कात्यायन तथा पाणिनि आदि का समकालीन था। वह भारतयुद्ध से २००-३०० वर्ष पश्चात् हुआ था।

४३. आश्वलायन का समकालीन और सहाध्यायी मुनि कात्यायन अपने चरण-व्यूह परिशिष्ट में लिखता है—लक्षं भारतमेव च। ५। १॥

अर्थात्—भारत लक्ष श्लोकात्मक है। इससे सिद्ध होता है कि आश्वलायन और कात्यायन के काल में महाभारत में एक लाख श्लोक थे।

४४. आश्वलायन और कात्यायन का समकालीन शब्दशास्त्र-निष्णात मुनि पाणिनि अपने एक सूत्र से महाभारत शब्द की सिद्धि बताता है।[2] अष्टाध्यायी ५। २। ११० द्वारा गाण्डीव शब्द की सिद्धि की गयी है। पाणिनि महाभारत से परिचित था। उसका गण-पाठ थोड़ा सा विकृत तो हुआ है, पर अधिकांश पुरातन सामग्री रखता है। उसके निम्नलिखित पद देखने योग्य हैं—

---

१. अध्यापक विण्टर्निट्ज़ आश्वलायन और शौनक के विषय में लिखता है—Saunaka, who is supposed to have been a teacher of Asvalayan. (*Indian Literature*, Eng. tr. p. 284). अर्थात्—शौनक आश्वलायन का गुरु अनुमान किया जाता है। कैसा अत्याचार है। एक सत्य इतिहास को अनुमान कहा जाता है। विंटर्निट्ज़ (पृ॰ ४७१) आश्वलायन को ईसा-पूर्व ४र्थ शताब्दी के पश्चात् का नहीं मानता। ईसा-पूर्व चतुर्थ शताब्दी क्या, आश्वलायन ईसा से २८०० वर्ष पूर्व हुआ था।

२. महान् व्रीहि-अपराह्ण-गृष्टि-इष्वास-जाबाल-भार-भारत-हैलिहिल-रौरव-प्रवृद्धेषु। ६।२।३८॥

विश्वक्सेनार्जुनौ[1] २।२।३१॥ गाण्डीव २।४।३१॥

सात्यकि २।४।५१॥ श्वाफल्कि[2] २।४।६१॥

भीमः । भीष्मः ३।३।७४॥ क्षेमवृद्धिन् ४।१।६६॥

कृष्ण । सलक । युधिष्ठिर । अर्जुन । साम्ब । गद । प्रद्युम्न । राम ४।१।६६॥

जरत्कारु ४।१।११२॥ रुक्मिणि ४।१।१२३॥

कुरु ४।१।१५१॥ कितव[3] ४।१।१५४॥

कौरव्य ४।१।१५४॥ आशोकेय[4] ४।१।१७३॥

जनमेजय को महाभारत सुनाने वाला वैशम्पायन पाणिनि ४ । ३ । १०४ में स्मरण किया गया है । यह याजुष-संहिताओं का प्रवक्ता था ।

४५. उन दिनों मैत्र्युपनिषद् रची गई । उसके ६ । २२ में महाभारत का शब्द-ब्रह्मणि निष्णातः श्लोक मिलता है ।

४६. आश्वलायन, कात्यायन और पाणिनि के पूर्ववर्ती सर्वशास्त्रविशारद, भगवान् शौनक अपने गृह्यसूत्र के ऋषितर्पण प्रकरण में उन्हीं ऋषियों का उल्लेख करते हैं, जिनका उल्लेख आश्वलायन ने किया है—

सुमन्तु–जैमिनि–वैशम्पायन–पैल–सूत्र–भाष्य–भारत–महाभारत-धर्माचार्याः.........।[5]

आश्वलायन का पाठ उसके गुरु के पाठ के अनुकरण पर लिखा गया है । अतः भारत और महाभारत-संहिता को शौनक जानता था । शौनक के आश्रम में लोमहर्षण ने महाभारत का पाठ सुनाया था ।

शौनक ने बृहद्देवता ग्रन्थ रचा । उसके पांचवें अध्याय के १४३—१४८ श्लोक महाभारतस्थ श्लोकों का अनुकरण अथवा उद्धरण हैं । श्लोक १४७ और १४८ का पूर्वार्ध शान्तिपर्व २०७।१७,१८ हैं ।

जर्मन अध्यापक डाक्टर सीग ने सन् १९०२ में भारतीय इतिहास-परम्परा पर एक ग्रन्थ लिखा । उसमें सीग का मत है कि बृहद्देवता ने महाभारत से श्लोक लिए हैं । इस बात से भयभीत होकर इङ्गलैण्ड के अध्यापक मैकडानल ने बृहद्देवता की भूमिका पृ० २६ पर लिखा—

---

१. कृष्णार्जुन ।

२. अक्रूर। स्वाफलकः ४।१।११४ का पाठ है । यह नाम यवन नाम Sophocles से बहुत समानता रखता है।

३. शकुनि ।

४. प्रो० राय चौधरी ने महाभारत आदिपर्व ६१ । १४ में उल्लिखित एक प्राचीन असुर अशोक को अशोक मौर्य समझने की भूल की है । देखो, चौधरी रचित—प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, सन् १९३८, पृ० ४ ।

५. स्मृतिचन्द्रिका, आह्निककांड तर्पण प्रकरण, पृ० ५१६ तथा चतुर्वर्गचिन्तामणि, श्राद्धकल्प पृ० ११४ पर उद्धृत ।

I cannot, however, in the present state of our knowledge, agree with him in supposing that the Brhaddevata has borrowed from the Mahabhārata.....................It is, besides, impossible on general grounds that a Vedic work which is undoubtedly earlier than the Sarvanukramni, and not much later than Yāska, should have borrowed from the Mahābhārata, which must have assumed the from known to us so many centuries later.

अर्थात्—बृहद्देवता सदृश वैदिक ग्रन्थ में, महाभारत के श्लोक हो ही नहीं सकते। महाभारत उससे बहुत काल पश्चात् वर्तमान रूप में आया।

ईसाई पक्षपात की यह पराकाष्ठा है। सत्य को असत्य बनाने का यह सजीव उदाहरण है।

४७. कौषीतकि गृह्यसूत्र २।५।३ में लिखा है—

सुमन्तु–जैमिनि–वैशम्पायन–पैल–सूत्र–भाष्य–महाभारत–धर्माचार्याः।

आचार्य कौषीतक मुनि शौनक का समकालीन था। वह भी महाभारत से परिचित था।

इस प्रकार पूर्वोक्त प्रमाणों से हम देख सकते हैं कि अलबेरूनी से महाराज विक्रम तक और विक्रम से लेकर उससे २८०० वर्ष पूर्व तक अर्थात् शौनक के काल तक भारतवर्ष के धुरन्धर आचार्य महाभारत के भिन्न भिन्न पर्वों के श्लोक अपने ग्रंथों में उद्धृत कर रहे थे। वे कृष्ण द्वैपायन और महाभारत से परिचित थे। महाभारत के आदिपर्व के श्लोकों का प्रमाण दुर्ग, शबर और योगसूत्रभाष्यकार व्यास ने दिया है। वस्तुतः व्यास का भारत ग्रन्थ कौरव-पाण्डव युद्ध के १५० वर्ष पश्चात् महाभारत नाम से प्रख्यात हो चुका था, और उसका रूप महाभारत के वर्तमान रूप ऐसा ही था।

अतः केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग प्रथम, पृ० २५८–२६१ तक का हाप्किन्स का मत कि ईसा की चतुर्थ शताब्दी से पूर्व महाभारत ग्रन्थ विद्यमान न था, सर्वथा असत्य है।

ऐसी परिस्थिति में महाभारत ऐसे अनुपम ऐतिहासिक ग्रन्थ को भारतीय इतिहास लिखने में पर्याप्त प्रमाण न मानना एक भारी भूल है। माना कि महाभारत के कुछ आख्यान या वर्णन समझ में नहीं आते[1] पर इतने मात्र से ऐतिहासिक ग्रन्थों में महाभारत की प्रतिष्ठा न्यून नहीं हो जाती। हमें स्मरण रखना चाहिए कि मेगस्थनीज़ के वृत्तान्त और ह्यूनसांग के विवरण में भी ऐसी कई बातें हैं, जो हमारी समझ में नहीं आतीं।

जिस व्यक्ति ने महाभारत के युद्ध-प्रकरण ध्यान से पढ़े हैं, उसे निश्चय हो जायगा कि यह इतिहास कितना सत्य है। कृष्ण द्वैपायन ने एक एक व्यक्ति की कुल-परम्परा को स्पष्ट करने के लिए उसके नाम के साथ बहुधा ऐसे विशेषण जोड़े हैं कि उसका वास्तविक इतिहास तत्क्षण सामने आता है। काल्पनिक इतिहास में यह बात न हो सकती थी।

---

१. द्रौपदी तथा धृष्टद्युम्न की उत्पत्ति आदि।

आन्ध्र और गुप्तकाल के शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों में महाभारत काल के अनेक व्यक्ति स्मरण किए गए हैं। तब तक भारतीय वाङ्मय सर्वथा सुरक्षित था। यदि इतने बड़े सम्राटों के राजपण्डित इस इतिहास में विश्वास रखते रहे हैं, तो इसके ऐतिहासिक तथ्यों का कल्पित होना दुष्कर क्या, असम्भव है।

महाभारत में ब्रह्मा[1], प्राचेतस मनु[2], प्रजापति[3], उशना[4], अथवा भार्गव[5], बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र[6], विश्वावसु[7], इन्द्र[8], नारद[9], मार्कण्डेय[10], प्रह्लाद[11], असुरेंद्र सुधन्वा[12], जामदग्न्य[13], और मरुत्त[14], आदि के श्लोक उद्धृत हैं। तथा रसातल निवासियों की एक गाथा[15], भी उद्धृत है। भगवान् व्यास की महती कृपा से यह सामग्री अब भी सुरक्षित है और वर्तमान योरुपीय मिथ्या भाषाविज्ञान का खण्डन कर रही है। इस सामग्री से ज्ञात होता है कि महाभारत युद्ध से सहस्रों वर्ष पूर्व संस्कृतभाषा का पाणिनि से थोड़ा से भिन्न, पर लगभग वर्तमान काल सदृश रूप ही था। इस संस्कृत भाषा से संसार की समस्त भाषाएं निकली हैं। ऐसी अनुपम सामग्री रखने वाले महाभारत का जितना आदर हो, थोड़ा है।

महाभारत की पुरातनता में एक और साक्ष्य—महाभारत सभापर्व ४८।२—४ तक के अनुसार कुणिन्द जनपद मध्य एशिया में था। कुणिन्द योधा. महाभारत के युद्ध में लड़े थे। विक्रम से पूर्व दूसरी तीसरी शताब्दी में कुणिन्द लोग भारत के उत्तर में रहने लग पड़े थे, अतः महाभारत, जिसके समय में ये मध्य एशिया में रहते थे, बहुत पुराना ग्रन्थ है।

महाभारत की शैली एक ग्रन्थकार की—महाभारत के भिन्न भिन्न पर्वों के शतशः वचन परस्पर मिलते हैं। वे सब एक ग्रन्थकार की लेखनी से निकले हैं। महाभारत के सूक्ष्म अध्ययन करने वाले पर यह बात आश्चर्यरूप से अंकित हो जाती है, और वह समझता है कि महाभारत एक ग्रन्थकार का रचा हुआ है।

यह मत हमारा ही नहीं है। अभी दस वर्ष पहले सन् १९३९ में महाभारत के पूना-संस्करण के आधार पर लिखने वाले विट्टोरि पिसनि (Vittore Pisani) ने "दि राईज़ आफ दि महाभारत" शीर्षक लेख में, जो एफ० डबल्यू० थामस स्मारक ग्रन्थ में छपा है, यही मत प्रकट किया है।

महाभारत की भाषा—मूल महाभारत की भाषा पाणिनि के प्रभाव से पूर्व की प्राचीन लोकभाषा है। उसके अनेक प्रयोग ब्राह्मणप्रयोगों के अधिक समीप हैं। अतः भारत ग्रन्थ उसी कृष्ण द्वैपायन की रचना है जिसने अनेक शिष्यों को ब्राह्मण ग्रन्थ आदि पढ़ाए।

---

१. उद्योगपर्व १३।१८—२१॥
२. शान्तिपर्व ५५।४३॥
३. आरण्यकपर्व ८७।१५॥
४. शान्तिपर्व ५५।२८—॥ हरिवंश ३।९०।१६—॥
५. शान्तिपर्व ५५।४०॥६४।६॥
६. शान्तिपर्व ५५।३८॥
७. वनपर्व ८८।१७॥
८. वनपर्व ८८।६॥
९. नारद से मनुकीर्तित पुरातन श्लोक आरण्यकपर्व ८६।१६॥
१०. वनपर्व ८८।५॥ महाराज नृग के यज्ञ में मनुवंश्या गाथा।
११. उद्योगपर्व ३९०।११॥ पूना संस्करण, परिशिष्ट।
१२. उद्योगपर्व ३३।८४॥
१३. मनुवंश श्लोक, आरण्यकपर्व ८५।११॥
१४. उद्योगपर्व १७८।२३॥
१५. उद्योगपर्व १००।१४॥

महाभारत और यवन शब्द—वैबर आदि जर्मन लेखक और उनका अनुकरण करने वाले राय चौधरी[1] आदि ऐतिहासिक महाभारत में भारत के पश्चिम में रहने वाले कुछ लोगों के लिए यवन शब्द का प्रयोग देखकर तत्काल कह उठते हैं कि महाभारत के ये प्रकरण सिकन्दर के पश्चात् लिखे गए होंगे। इसको हम भ्रान्ति के अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं। यवन लोगों का इतिहास यूनान में बसने के बहुत काल पहले से आरम्भ होता है। उनकी भाषा बताती है कि वे कभी विशुद्ध आर्य थे।[2] तब वे भारत के उत्तर-पश्चिम में बसते थे। सहस्रों वर्ष यहां रह कर उनका एक भाग वर्तमान योरोप की ओर गया। देवकीपुत्र कृष्ण का कशेरुमान् यवन को मारना कोई कल्पना नहीं है।[3] जब भारत का यथार्थ प्राचीन इतिहास सुप्रमाणित हो जायगा, तो ये सब बातें स्वयं स्पष्ट हो जायेंगी।

इसी प्रकार अनेक पाश्चात्य लेखकों ने यवन शब्द के प्रयोग के कारण अष्टाध्यायी और मनुस्मृति आदि का काल भी बहुत नया मान लिया है। यह भी उन लेखकों की कल्पना है। वस्तुतः ये ग्रन्थ महाराज नन्द के काल से बहुत पूर्व के हैं। उस समय सिकन्दर का कोई अस्तित्व न था।

महाभारत के हस्तलिखित ग्रन्थों का साक्ष्य—महाभारत ग्रन्थ में अधिक हेर फेर न होने का एक और प्रमाण है। जो विद्वान् पुरातन ग्रन्थों के कुशल-सम्पादक हैं, वे किसी ग्रन्थ के दस बीस लिखित कोशों को तुलनात्मक रीति से देख कर बता देते हैं कि उस ग्रन्थ में कितना अन्तर हुआ है। अब विचारने का स्थान है कि महाभारत के तीन संस्करण[4] इस समय तक निकल चुके हैं। महाभारत की अनेक पुरानी टीकाएं भी मिल गई हैं। इन्हीं दिनों पूना की भाण्डारकर अनुसन्धान संस्था का महाभारत का संस्करण भी निकल रहा है। उसके लिए शतशः पुरातन कोश एकत्र किए गए हैं। वे कोश हैं भी विभिन्न प्रान्तों के। उनमें से लगभग ६० अत्युपयोगी कोशों के आधार पर यह संस्करण निकाला जा रहा है। परन्तु उस संस्करण का क्या परिणाम निकला? यही कि आदि और विराट पर्वों को छोड़ कर शेष पर्वों में अधिक भेद नहीं हुआ। हमने इस संस्करण के उद्योगपर्व के पूर्वार्ध का अध्ययन किया है। यह स्पष्ट *बताता है कि यह उद्योगपर्व कुम्भघोण संस्करण* के उद्योगपर्व से कुछ अधिक भिन्न नहीं। इस पर्व में न्यूनाधिकता भी न के तुल्य है।

इस से ज्ञात होता है कि महाभारत के अनेक पर्व अब भी लगभग वैसे ही हैं, जैसे आज से सहस्रों वर्ष पूर्व थे। और विक्रम से पूर्व जब आर्य-परम्परा सुरक्षित थी, तब इन ग्रन्थों में हेर फेर करने का कोई साहस नहीं कर सकता था। फलतः हम कह सकते हैं कि कृष्ण द्वैपायन व्यास का रचा महाभारत आर्य इतिहास का एक प्रामाणिक ग्रन्थ है।

---

१. प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, सन् १९३८, पृ० ४।

२. मनुस्मृति १०।४३, ४४ ॥ अनुशासनपर्व ३८।२१—२२॥७०।१९,२०॥

३. सभापर्व ५१।६ ॥ वनपर्व १२।३२ ॥

४. कलकत्ता, मुम्बई और कुम्भघोण संस्करण।

चौथा स्रोत—पुराण

पुराण साहित्य की प्राचीनता—१. नवम शताब्दी का मनुस्मृति भाष्यकार भट्ट मेधातिथि लिखता है—पुराणानि व्यासादिप्रणीतानि।[1]

२. संवत् ६८७ के समीप ऋग्भाष्य करने वाला आचार्य स्कन्दस्वामी पुराणों के कई श्लोक प्रमाण रूप से लिखता है।[2] ये श्लोक वर्तमान पुराणों में स्वल्प पाठान्तरों से मिलते हैं।[3]

३. ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिका २३ के भाष्य में आचार्य गौडपाद—पुराणानि पद का प्रयोग करता है।

४. आचार्य दुर्ग वसिष्ठोत्पत्ति सम्बन्धी एक कथा का भाव देकर लिखता है—इति पुराणे श्रूयते[4]। यह कथा मत्स्य पुराण २०। २३-२९ में मिलती है।

५.[5] विक्रम की पहली शताब्दी में होने वाला आचार्य वररुचि अपने निरुक्तसमुच्चय में लिखता है—तथा चाहुः पौराणिकाः।[5]

६. ब्राह्मण सम्राट् शूद्रक अपने पद्मप्राभृतक भाण में लिखता है—

"भो अयं पुराणकाव्यपदच्छेद—[6]

७. न्यायभाष्यकार वात्स्यायन किसी पुरातन ब्राह्मण ग्रन्थ का यह वाक्य लिखता है—

प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते—ते वा खल्वेत अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यवदन्।[7] इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेद इति।[8] ४। ६२॥

अर्थात्—वे अथर्वाङ्गिरस ऋषि ही थे, जिन्होंने इतिहास और पुराण का प्रवचन किया। यहां इतिहास पुराण विद्या का वर्णन नहीं, प्रत्युत इतिहास, पुराण ग्रन्थों का उल्लेख है।

---

१. मनुभाष्य ३।२३२॥

२. (क) इति पुराणे श्रुतत्वात्। १।२०।७॥ (ख) एवं हि पौराणिकाः स्मरन्ति। १।२४।१॥
(ग) इति पुराणेषु प्रसिद्धम्। १।१२५।१३॥ (घ) पौराणिकाः हि कक्षीवन्तमाङ्गिरसं स्मरन्ति। एवं ह्याहुः—इनके साथ वाले श्लोक ऋग्भाष्य १।११६।७ में देखें।

३. (ख) मत्स्य १४३।६१,६४॥ ब्रह्माण्ड २।३१।६८,६९॥ वायु ५९।६१,६२॥ (घ) वायु ५९।१०९॥

४. निरुक्तवृत्ति ५।१४॥ ५. द्वितीय कल्प का आरम्भ।

६. चतुर्भाणी पृ० ५।

७. तुलना करो—ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपन्। छा० उप० ३।४।२॥ वैदिक इण्डैक्स के पक्षपाती लेखक (भाग १, पृष्ठ १८), अथर्वाङ्गिरस शब्द लिख कर उस पर इतिहास, पुराण का उल्लेख ही नहीं करते।

८. छा० उ० ७।१।१॥

विएटर्निट्ज़ का भय—अपने कल्पित वादों की निःसारता का अनुभव करते हुए विएटर्निट्ज़ ने लिखा—

There is no proof, however, that such collections (of Itihāsas and Purānas) actually existed in the form of "books" in Vedic times. (Indian Lit. p. 313.) the "Itihāsas and Purānas," or "Itihasapurāna" so often mentioned in olden times, do not mean actual books, still less, than epics or Puranas which have come down to us. (p. 518)

पूर्वपक्ष—अर्थात्—ब्राह्मण ग्रन्थ के काल में इतिहास, पुराण ग्रन्थ विद्यमान थे, इसका कोई प्रमाण नहीं है। तथा ब्राह्मणों में जो इतिहास पुराण बहुधा उल्लिखित हैं, उनसे वास्तविक पुस्तकों का अभिप्राय नहीं। और वर्तमान पुराणों अथवा इतिहासों का तो अभिप्राय लिया ही नहीं जा सकता।

उत्तरपक्ष—जब ब्राह्मण ग्रन्थ स्वयं पुस्तक रूप में है, तो उनमें स्मृत इतिहास, पुराण क्यों पुस्तक रूप में न थे। यदि ये पुस्तक रूप में न थे, तो कण्ठस्थ रूप में थे। थे ये अवश्य। फिर आपत्ति किस बात की। विचारना चाहिए कि जो ऋषि, मुनि सांख्य के विपुल शास्त्रों को, तन्त्र शास्त्रों को, वाणिज्य शास्त्रों को वर्तमान ब्राह्मणों से पहले लिख सकते थे, क्या वे इतिहास, पुराण ही न लिख सकते थे। आश्चर्य है पाश्चात्यों के पक्षपात पर। पुनश्च, जिस प्रकार अनेक ब्राह्मणग्रन्थ, व्याकरण ग्रन्थ और धर्मशास्त्र आदि प्रोक्त हैं, वसी प्रकार अनेक इतिहास पुराण ग्रन्थ भी प्रोक्त हैं। यद्यपि वर्तमान वायु आदि पुराण, उपनिषदों और ब्राह्मणों से पूर्वकाल के नहीं हैं, तथापि इनका मूल और रामायण-इतिहास वर्तमान ब्राह्मणों से पहले के हैं। ये मूल पुराण प्रोक्त थे, और उनसे पहले अति प्राचीनकाल में भी इतिहास, पुराण थे।

जो कहो कि भाषा-विज्ञान इस बात को नहीं मान सकता, तो हमारा उत्तर है कि तुम्हारा भाषा-विज्ञान कल्पित है। इसकी सत्यता साध्य है। फिर इसका प्रमाण देना साध्यसम हेत्वाभास है। इस कल्पित भाषा-विज्ञान का खण्डन हम पूर्व तृतीय अध्याय के दूसरा कारण शीर्षक के नीचे कर चुके हैं। अतः विएटर्निट्ज़ का लेख प्रतिज्ञा-मात्र होने से त्याज्य है। जब पाश्चात्य लेखक अपने कथन की पुष्टि में इस मिथ्या-भाषा-विज्ञान के अतिरिक्त कोई अन्य हेतु उपस्थित करेंगे, तो उस पर विचार होगा।

वात्स्यायन के अनुसार इतिहास और पुराण के लेखक ही मन्त्र ब्राह्मण के द्रष्टा थे—

य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च [प्रवक्तारः] ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति।[1]

ब्राह्मणग्रन्थ वर्णित इतिहास और पुराण के प्रवक्ता वे अथर्वाङ्गिरस कौन थे—(क) काव्य ग्रन्थों का प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ किरातार्जुनीय १०।१० की टीका करता हुआ लिखता है—अथर्वणा वसिष्ठेन कृता रचिता पदानां पंक्तिरानुपूर्वी यस्य स वेदः चतुर्थवेद इत्यर्थः। अथर्वणस्तु मन्त्रोद्धारो वसिष्ठस्य इत्यागमः। इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि वसिष्ठ और उसका कुल अथर्वा कुल भी कहा जा सकता है।

१. न्यायभाष्य ४।१।६२॥

(ख) अथर्वा और भृगु लोग एक थे। मत्स्यपुराण ५१।१० में लिखा है—भृगोः प्रजायताथर्वा ह्याङ्गिरोऽथर्वणः स्मृतः। पुराणों में १६ भृगु ऋषि कहे गए हैं। उनमें काव्य उशना और सारस्वत ध्यान देने योग्य हैं।[1] शतपथ ब्राह्मण ४।१।५।१ के अनुसार च्यवन भार्गव है और आङ्गिरस भी।

(ग) पुराणों में ३३ अङ्गिरा ऋषि गिने गए हैं। उनमें शरद्वान् और वाजश्रवा नाम विचार योग्य हैं।

(घ) अथर्वा अथवा वासिष्ठ कुल में वसिष्ठ, शक्ति, पराशर और द्वैपायन नाम ध्यान देने योग्य हैं।

(ङ) रामायण का कर्त्ता ऋक्ष अथवा वाल्मीकि एक भार्गव था। वह अथर्वाओं के अन्तर्गत है। वह आङ्गिरस भी है।

इस प्रकार (१) काव्य उशना (२) सारस्वत (३) शरद्वान् (४) वाजश्रवा (५) वसिष्ठ (६) शक्ति (७) पराशर (८) द्वैपायन और (९) ऋक्ष या वाल्मीकि ये ९ ऋषि नाम ध्यान देने योग्य हैं।

(च) अथर्वाङ्गिरा ऋषियों में पूर्वोक्त नौ नाम ऐसे ऋषियों के हैं जो वायुपुराणस्थ अगली सूची के अनुसार इतिहास पुराण के प्रवक्ता थे। वायुपुराण २३। ११४—२२६ तक सब व्यासों की एक परम्परा पढ़ी गई है। पुनः इस पुराण के अन्त में पुराण के कहने वाले ऋषियों की इस परम्परा से लगभग मिलती हुई निम्नलिखित परम्परा दी गई है—

१. ब्रह्मा	२. मातरिश्वा=वायु	३. उशना=शुक्र*
४. बृहस्पति	५. सविता=विवस्वान्	६. मृत्यु=यम, विवस्वान्-पुत्र
७. इन्द्र	८. वसिष्ठ*	९. सारस्वत*
१०. त्रिधामा	११. शरद्वान्*	१२. त्रिविष्ट
१३. अन्तरिक्ष	१४. वर्षि	१५. त्रय्यारुण
१६. धनञ्जय	१७. कृतञ्जय	१८. तृणञ्जय
१९. भरद्वाज	२०. गौतम	२१. निर्यन्तर
२२. वाजश्रवा*	२३. सोमशुष्म	२४. तृणबिन्दु
२५. ऋक्ष=वाल्मीकि[2]*	२६. शक्ति*	२७. पराशर*
२८. जातुकर्ण	२९. द्वैपायन*	

इन २९ नामों में से ९ नाम ऊपर आ गए हैं। इन्हीं ऋषियों ने वे दिव्य इतिहास और पुराण लिखे जिनका उल्लेख कृष्ण द्वैपायन ने पुराणैः कविसत्तमैः[3] पदों से किया है। उपनिषद्

---

१. देखो, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २४२।

२. चौबीसवें परिवर्त में ऋक्ष एक व्यास था। वायु २३। २०६॥

३. देखो, पूर्व पृष्ठ ७१ का टिप्पण १।

और ब्राह्मण ग्रंथों के लिखनेवाले ऋषि अपनी इस परम्परा को यथार्थ रूप से जानते थे। उन्होंने एक वाल्मीकि अथवा एक व्यास का नाम न लेकर अथर्वाङ्गिरस कहने से इतिहास पुराण के प्रवक्ता अनेक ऋषियों का स्मरण किया है। वे निश्चय भार्गव वाल्मीकि अथवा ऋक्ष की रामायण अथवा वायु के मूल पुराण से परिचित थे।

इसी कारण महाभारत, आरण्यकपर्व अध्याय २०७ से एक पर्व आरम्भ होता है, जिसे आङ्गिरसपर्व नाम दिया गया है। आरण्यकपर्व २०७।५ तथा १८८।५ में मार्कण्डेय को भृगुनन्दन लिखा है। अतः वह भार्गव अथवा आङ्गिरस था।

८. पतञ्जलि अपने व्याकरण महाभाष्य में पुरातन वाङ्मय का परिगणन करता हुआ पुराण का स्मरण करता है—वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमिति।[1]

९. कौटल्य भी किन्हीं पुराणों को जानता था—इतिहासपुराणाभ्यां बोधयेदर्थशास्त्रवित्।[2]

पुनः कौटल्य अपने सुप्रसिद्ध वाक्य में पौराणिक सूत और सारथी सूत का भेद बताता है—पौराणिकस्त्वन्यः सूतः।[3]

१०. स्कन्द, शूद्रक, वात्स्यायन, पतञ्जलि और कौटल्य के काल से बहुत पहले याज्ञवल्क्य स्मृति के कर्ता को पुराण साहित्य का ज्ञान था।[4]

११. पाणिनि मुनि के काल से पहले कभी एक काश्यपीय पुराणसंहिता भी थी। यह नाम चान्द्रव्याकरण ३।३।७१ तथा भोजराजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण ४।३।२२१ की नारायण दण्डनाथ विरचित टीका में मिलता है।

कृष्ण द्वैपायन व्यासजी ने एक पुराण-संहिता बनाई। उसे उन्होंने छः शिष्यों को पढ़ाया। इन छः में से एक अकृतव्रण काश्यप था। उस की संहिता काश्यपीय संहिता थी।[5]

१२. गौतम धर्मसूत्र-भाष्यकार मस्करी सूत्र १।२६ के भाष्य में कण्वधर्मसूत्र का एक वचन लिखता है। अथर्ववेदेतिहासपुराणानि ध्यायन्........। इति। इससे ज्ञात होता है कि कण्वधर्मसूत्रकार को कई पुराणों का ज्ञान था।

अथर्ववेद का इतिहास, पुराण से गहरा सम्बन्ध है। ब्राह्मण ग्रन्थ, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्रों में इतिहास, पुराण के साथ अथर्ववेद का उल्लेख प्रायः मिलता है।

१३. गौतमधर्म सूत्र ८।६ में—वाकोवाक्य-इतिहास-पुराण-कुशलः, और ११।२१ में पुराण शब्द का प्रयोग मिलता है।

आपस्तम्बधर्मसूत्र और वायुपुराण—१४. आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।६।१९।१३,१४ में किसी पुराण से दो श्लोक उद्धृत किए गए हैं। आप० २।९।२३।३,४ में किसी पुराण के दो अन्य श्लोक उद्धृत हैं। ये श्लोक वायुपुराण ५०।२१३,२१५, २१८,२२०, तथा ६१।९९-१०१,

---

१. कीलहार्न का संस्करण भाग १, पृ० ६। २. अध्याय ६२, अन्त।
३. आरम्भ से अध्याय ६४। ४. या० स्मृ० १। ३ ॥ १। १८० ॥
५. वायुपुराण ६१। ५६ ॥

१२२, १२३ से तथा मत्स्य १२४।९९-११२ से बहुत अधिक समता रखते हैं।[1] वर्तमान वायु-पुराण का पाठ थोड़ा सा विकृत प्रतीत होता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।१०।२९।७ में किसी पुराण का एक गद्य वचन और २।९।२४।६ में भविष्यपुराण का एक वचन उद्धृत है—

पुनः सर्गे बीजार्था भवन्ति, इति भविष्यत्पुराणे।[2]

यह वचन वायुपुराण ८।२४ तथा ब्रह्माण्डपुराण पूर्वभाग ७।२४ में मिलता है—

प्रवर्तन्ते पुनः सर्गे बीजार्थं ता भवन्ति हि।

इस तुलना से निश्चय होता है कि आपस्तम्बधर्मसूत्रकार ने या तो ये वचन वायु-पुराण से लिए हैं अथवा आ० धर्मसूत्र और वायुपुराण ने किसी पुरातन पुराण से याथा-तथ्य के साथ ले लिए हैं। उत्तर पक्ष में यह कहना पड़ेगा कि वर्तमान वायुपुराण का बहुत सा भाग नया नहीं है।

आपस्तम्बधर्मसूत्र में पुराण-वचन क्यों उद्धृत हैं—आपस्तम्ब भार्गव और आङ्गिरस हैं।[3] अथर्वाङ्गिरस ऋषि इतिहास और पुराण के प्रवक्ता थे, ऐसा पूर्व दर्शा आए हैं। अतः आपस्तम्ब का पुराण वचन उद्धृत करना स्वाभाविक था।

१५. भगवान् बुद्ध से बहुत पहले की चरकसंहिता के सूत्रस्थान १।५।७ तथा शरीर स्थान, अध्याय ४।४४ में लिखा है—श्लोकाख्यायिकेतिहासपुराणेषु कुशलम्। ये श्लोक ब्राह्मण ग्रन्थों में भी उद्धृत हैं। इनके पृथक् ग्रन्थ थे।

इस वाक्य से प्रतीत होता है कि उस अत्यन्त प्राचीन काल में भी अनेक पुराण थे।

१६. नारद स्मृति के भाष्यकार भवस्वामी के अनुसार नारदस्मृति के २०४,२०५ श्लोक पुराणप्रोक्त हैं।

१७. महाभारत, भीष्मपर्व ६१।३६ में—पुराणगीतं पाठ है।

१८. कुछ धर्मशास्त्रों के पूर्ववर्ती आरण्यकों और ब्राह्मणों में भी पुराणों या पुराण का उल्लेख है—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीः। तै० आ० २। ९॥

तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति किञ्चित्पुराणमाचक्षीत। शतपथ १३। ४। ३। १३॥

यदनुशासनानि...............इतिहासपुराणं गाथा......। शतपथ ११। ५। ६। ८॥

१९. भगवान् पराशर अपनी ज्योतिष संहिता में लिखते हैं—

वेदवेदांगेतिहास- पुराण-धर्मशास्त्रावदातम्।[4]

२०. वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड अध्याय ८ में ग्रन्थवाची पुराण शब्द पढ़ा गया है—

---

१. ये श्लोक मूल पुराणसंहिता के प्रतीत होते हैं। इनके आधार पर याज्ञवल्क्यस्मृति ३। १८६ श्लोक लिखा गया है।

२. वायु और मत्स्य में पुरातन भविष्य की बहुत सामग्री है।

३. मत्स्यपुराण, पृ० ४३१, ४३३।

४. बृहत् संहिता, भट्ट उत्पल की टीका, पृ० ८९।

एवमुक्तो नृपतिना सुमन्त्रो वाक्यमब्रवीत्। नरेन्द्र श्रूयतां तावत् पुराणे यन्मया श्रुतम् ॥ ५ ॥

सनत्कुमारो भगवान् पुरा कथितवान् कथाम्। भविष्यं विदुषां मध्ये तव पुत्रसमुद्भवम् ॥ ६ ॥

किष्किन्धा काण्ड ६२।३ में भी पुराण स्मरण किया गया है।

२१. छान्दोग्य उपनिषद् ७।१।१ के अनुसार भगवान् सनत्कुमार उपनाम स्कन्द के पास आने वाला नारद मुनि इतिहास पुराण को जानता था। इसीलिए उसकी स्मृति में पुराण प्रोक्त श्लोक है।

२२. अथर्ववेद १५।३०।११ में अनेक विद्याओं के साथ पुराण शब्द भी पढ़ा है—

तमितिहासं च पुराणं च।

स्मरण रखना चाहिए कि अथर्ववेद से अथर्वाङ्गिरा अथवा भृग्वङ्गिरा ऋषियों का ही अधिक सम्बन्ध था। उन्होंने अथर्ववेद से ही इतिहास तथा पुराण विद्याओं के निर्माण की शिक्षा ली थी।

यवन मेगास्थनेस पुराणों से परिचित—मेगास्थेनेस के उद्धरणों का जो संस्करण कलकत्ता में छपा है, उस के पृष्ठ ३४ और ३५ पर मे० का जो पाठ है, वह पुराणों के तत्सम्बन्धी पाठों का अनुवादमात्र है। इस ओर किसी विद्वान् का ध्यान नहीं गया। अतः सिद्ध है कि विक्रम से कई सौ वर्ष पूर्व पुराणों के अनेक सिद्धान्त सर्व साधारण में बहुत मान्यता रखते थे।

अठारह पुराण

इनमें से कुछ एक के प्राचीन वाङ्मय में नाम—१. अब रही इन अठारह पुराणों की बात। प्रसिद्ध ऐतिहासिक अलबेरूनी (सम्वत् १०८७) १८ पुराणों की स्वल्प भेद वाली दो सूचियां देता है।

२. राजशेखर (सम्वत् ६५७) काव्यमीमांसा के द्वितीय अध्याय में अष्टादश पुराणों का कथन करता है—तत्र वेदाख्यानोपनिबन्धनप्रायं पुराणमष्टादशधा।

पुनः बालभारत में राजशेखर लिखता है—अष्टादशपुराणसारसंग्रहकारिन्। पृ० ४।

३. तैत्तिरीय आरण्यक २।६ के भाष्य में भट्ट भास्कर इतिहासान्, पुराणानि के अर्थ में—इतिहासाः महाभारतादयः, पुराणानि ब्रह्माण्डादीनि, लिखता है।

४. मनुस्मृति-भाष्यकार मेधातिथि मनु ३।२३२ के भाष्य में पुराणानि व्यासादिप्रणीतानि लिखता है। व्यासादि लिखने से यह भासता है कि व्यास के अतिरिक्त भी कोई पुराण रचयिता थे।

५. गौतमधर्मसूत्र ८।६ के भाष्य में मस्करी लिखता है—पुराणं ब्रह्माण्डादि।

६. वाचस्पतिमिश्र (वि० संवत् ८९८) योगभाष्य की व्याख्या में प्रायः विष्णुपुराण का नाम लेकर उसके प्रमाण देता है।[1] वह वायुपुराण का भी नाम स्मरण करता है।[2] वाचस्पति द्वारा उद्धृत इन पुराणों के श्लोक मुद्रित संस्करणों में अब भी मिलते हैं।

१. १।१९, २२, ५४ इत्यादि। २. १।११, १५ ॥ ७।११ ॥

७. वाचस्पति के पूर्ववर्ती आचार्य शंकर कई पुराणों के नाम लेकर उनसे प्रमाण देते हैं। यथा—भविष्योत्तर पुराण[1], विष्णुपुराण[2], ब्रह्म[3], और पद्मपुराण[4]। शङ्कर ने विष्णु पुराण को पराशर की कृति माना है।[5]

८. सम्वत् ६७७ के समीप हर्षचरित में भट्टबाण ने लिखा है—पवनप्रोक्तं पुराणं पपाठ।[6] यही ग्रन्थकार अपनी कादम्बरी में लिखता है—पुराणे वायुप्रलपितम्।[7]

९. बाण से पहले होने वाला आचार्य भट्ट कुमारिल पुराणों के भविष्य कथनों को प्रामाणिक मानता था। उसके काल में पुराणों में भविष्यकथन ऐसा ही था जैसा सम्प्रति मिलता है। तन्त्रवार्तिक १।३।१ के पुराण प्रामाण्य से यह स्पष्ट है।[8]

१०. सांख्यकारिका की माठरवृत्ति (संभवतः प्रथम शताब्दी विक्रम) में पुराण-वर्णित भविष्य के कल्की का उल्लेख है।

११. योगसूत्र पर जो व्यासभाष्य है, उसका एक वचन न्यायवार्तिक और न्यायभाष्य में मिलता है।[9] अतः योगभाष्य न्यून से न्यून विक्रम की पहली या दूसरी शताब्दी में विद्यमान होगा। व्यास भाष्य संभवतः महाभाष्य से भी पुराना है। व्यासभाष्य ४।३३ में लिखा है—यस्मिन् परिणम्यमाने तत्त्वं न विहन्यते तन्नित्यम्। व्याकरण महाभाष्य में पतञ्जलि ने नित्य का अपना लक्षण लिखा। वह नित्य के इस एक लक्षण से ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने आगे लिखा—तदपि नित्यं यस्मिंस्तत्त्वं न विहन्यते।[10] इस पंक्ति को लिखते हुए व्यासभाष्यान्तर्गत पूर्वोक्त लक्षण का ध्यान पतञ्जलि के मन में होगा। अब व्यासभाष्य में लिखा है—

तथा चोक्तम्—स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमासते।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते॥

वाचस्पतिमिश्र इस पर लिखता है—अत्रैव वैयासिकी गाथामुदाहरति।

यह वचन विष्णुपुराण ६।६।२ में मिलता है। अतः प्रतीत होता है कि वाचस्पतिमिश्र के अनुसार योगभाष्यकार को यहां विष्णुपुराण का श्लोक अभिमत था। वाचस्पति उसे व्यास-प्रोक्त मानता है। ध्यान रहे कि पराशर एक व्यास था।[11] तथा विष्णु पुराण पराशर प्रोक्त है।

---

१. विष्णुसहस्रनाम टीका, श्लोक १०।
२. विष्णुसहस्रनाम टीका, श्लोक १०।
३. ” ” १०।
४. ” ” ५१।
५. ” ” १४।
६. उच्छ्वास तीसरा, आरम्भ। ब्रह्माण्ड को भी वायुप्रोक्त कहते हैं।
७. पृ० ८१।
८. पूना संस्करण, पृ० १६७।
९. योग २।१३॥ न्यायभाष्य १।१॥ तदेतत् त्रैलोक्यं……। जैन ग्रन्थों के अनुसार यह वार्षगण्य का वचन है।
१०. कीलहार्न का संस्करण, भाग १, पृ० ७, पं० २२।
११. वायुपुराण २३।२१२॥

१२. बाण अपने हर्षचरित में पुरूरवा के मरने की एक कथा लिखता है।[1] सुबन्धु अपनी वासवदत्ता में यही बात लिखता है।[2] अश्वघोष ने भी अपने एक श्लोक में इसका कथन किया है।[3] अर्थशास्त्रकार कौटल्य भी इस घटना का संकेत करता है।[4] पुरूरवा संबन्धी यह कथा वायुपुराण में मिलती है।[5] अन्यत्र हमारे देखने में नहीं आई। इससे ज्ञात होता है कि कौटल्य को वायु-पुराण का अथवा वायुपुराणस्थ इन श्लोकों का ज्ञान था।

वायु पुराण की प्राचीनता—(क) पूर्व संख्या ८ में वायुपुराण के विषय में भट्ट बाण का लेख उद्धृत किया गया है। पुनः संख्या १२ में वायुपुराण की प्राचीनता में एक और प्रमाण दिया गया है। तत्पश्चात् महाभारत के निम्नलिखित प्रमाण देखने योग्य हैं।

(ख) महाभारत वनपर्व १८६। १४ में वायुप्रोक्त पुराण का उल्लेख है। महाभारत दाक्षिणात्य पाठ में पुराणविदों की दाशरथि राम विषयक कतिपय गाथाएं उद्धृत हैं। ये सब गाथाएं वायुपुराण ८८। १६१ में हैं। दोनों ग्रन्थों में ये गाथाएं किसी प्राचीन पुराण से ली गई हैं। पूर्वोक्त संख्या १४ के साथ इन बातों के मिलाने से निश्चय होता है कि वायुपुराण में प्राचीन पुराण सामग्री बहुत सुरक्षित है।

महाभारत के इस लेख पर पूना संस्करण के आरण्यक पर्व के सम्पादक का कथन है कि यह पाठ वायु में अनुपलब्ध है।[6] ध्यान करना चाहिये, व्यास लिखता है—वायुप्रोक्तमनुस्मृत्य। अर्थात् व्यास का अगला लेख वायुपुराण की अनुस्मृति पर उसके अनुकूल है। हरिवंश १। ७। २५ में वायुपुराण स्मरण किया गया है।

(ग) वर्तमान मनुस्मृति में—अत्र गाथा वायुगीताः। ९।४२ लिखा है। इस से पता लगता है कि भृगु-संहिता वालों को वायुगीत गाथाएं ज्ञात थीं। वायु का अस्तित्व निश्चित है।

वायु के पाठ पुरातन लोकभाषा के—वायु पुराण लोमहर्षण द्वारा सुनाया गया। उस समय भारत युद्ध भूतकाल की बात थी। वायु ६८।२७ में लिखा है—निहताः सव्यसाचिना। अर्थात् अर्जुन के संहार की बात हो चुकी थी। इस पर भी वायु के पाठ पुरातन लोकभाषा में हैं।[7] वायु स्वयं शब्दशास्त्र का पण्डित था। उसने व्याकरण-निर्माण में इन्द्र को सहायता दी थी।[8] वायुपुराण की अनेक शब्दों की व्युत्पत्तियां पाणिनि से विभिन्न हैं।[9]

सुप्रसिद्ध कवि कालिदास मत्स्यपुराण से परिचित—विक्रमोर्वशीय नाटक के तीसरे अङ्क के आरम्भ में भरत द्वारा अभिनीत लक्ष्मीस्वयंवर नामक नाटक का उल्लेख है। देवभूमि में किए गए उस अभिनय में उर्वशी एक पात्र थी। उसने पुरूरवा में अत्यन्त आसक्ति होने

---

१. पुरूरवा ब्राह्मणधनतृष्णया दर्पितेन आयुषा व्ययुज्यत। शंकरानन्द संस्करण, पृ० २४१।
२. पुरूरवा ब्राह्मणधनतृष्णया विननाश। दाक्षिणात्य सं० पृ० ११०।
३. बुद्धचरित ११। १५॥ ४. १। ६॥ ५. ९। २०—२१॥
६. भूमिका, पृष्ठ १५। ७. तुलना करो, रामचन्द्र दीक्षितार का मत्स्यपुराण, मद्रास, पृ० १८।
८. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पं० युधिष्ठिर मीमांसक, पृ० ६४। ९. १। १०३॥ ५५॥१४१॥

के कारण वारुणीवेषधारिणी मेनका के प्रश्न के उत्तर में उपदिष्ट पुरुषोत्तम के स्थान में पुरूरवसि कह दिया। इति। कालिदास का यह वर्णन मत्स्यपुराण अध्याय २४ के निम्न-लिखित श्लोकों पर आश्रित है। अन्य किसी पुरातन ग्रन्थ में हमारे देखने में नहीं आया—

सा पुरूरवसा प्रीत्या गायन्ती चरितं महत् ॥ २७ ॥
लक्ष्मी स्वयंवरं नाम भरतेन प्रवर्तितम्। मेनकामुर्वशीं रम्भां नृत्येति तदादिशत् ॥ २८ ॥
ननर्त सलयं तत्र लक्ष्मीरूपेण चोर्वशी। सा पुरूरवसं दृष्ट्वा नृत्यन्ती कामपीडिता ॥ २९ ॥
विस्मृताऽभिनयं सर्वं यत्पुरा भरतोदितम्।

इस २४वें अध्याय के विषय में अध्यापक हज़रा का मत है—not yet been traced anywhere else.[1]

अर्थात्—२४वें अध्याय की सामग्री अभी तक अन्यत्र नहीं मिली है। हमारा विश्वास है कि कालिदास ने अपना वर्णन मत्स्यपुराण से अक्षरशः ले लिया है। अतः मत्स्य की बहुत सी सामग्री पर्याप्त पुरानी है।

इस प्रकार विज्ञ पाठक समझ सकते हैं कि पुराण-साहित्य चिर-काल से प्रचलित रहा है। आधुनिक पुराणों में से भी कई एक बहुत पुराने हैं। इन की सामग्री के एक विशेष अंश का कृष्णद्वैपायन वेद-व्यास से भी सम्बन्ध है। वाचस्पतिमिश्र के अनुसार व्यासभाष्य में उद्धृत वचन एक वेद-व्यास का है। वायु[2] तथा ब्रह्माण्ड आदि पुराणों में लिखा है कि कृष्णद्वैपायन ने पहले एक पुराण संहिता बनाई। यही एक पुराणसंहिता उस के शिष्य प्रशिष्यों द्वारा अनेक भागों में विभक्त हुई।

महाभारत के बनने से पहले भी कोई पुराण था।[3] उस पुराण से महाभारत के पूर्वकाल की कई वंशावलियां महाभारत में ली गई हैं। महाभारत आदिपर्व अध्याय ११२ में किसी पुरातन पुराण में गायी पुरुवंश के महाराज व्युषिताश्व की एक गाथा उद्धृत है—

अप्यत्र गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः। ११।

यह सारी गाथा वर्तमान पुराणों में नहीं मिलती। इससे पता चलता है कि व्यास से पहले भी पुराण ग्रन्थ विद्यमान थे।

मत्स्यपुराण का काल और अध्यापक रामचन्द्र दीक्षित—अध्यापक दीक्षित का मत है कि मत्स्य पुराण का काल तीसरी शती ईसा से पश्चात् का नहीं है—

As the lowest limit of the Purāna can not be later than 300 A. D. the epic in its present form existed in the early centuries of the Christian era at the least, and it was not tampered with afterwards.[4]

---

१. पृ० २६. २. ६० । १२—२१ ॥
३. आदिपर्व ५६ । १७ तथा ५० ॥ वायु १ । ३१ । ३२ ॥
4. The Matsya Purāna, by V. R. Ramachandra Dikshitar, M. A., University of Madras, 1935, p. 51.

The date of the Matsya Purāna is to be spread over a number of centuries commencing probably with the third or fourth century B. C. and ending with the third century A. D.

इस पर हमारा कथन है कि मत्स्य और वायु का अन्तिम संकलन जो साम्प्रदायिक प्रक्षेपों से रहित था, भारतयुद्ध से २६० वर्ष के पश्चात् पौरव अधिसीम कृष्ण के राज्यकाल में हुआ। वायुपुराण की, संकलन से पूर्व की, मूल सामग्री भारतयुद्ध से बहुत पुरानी थी।

सभापर्व अध्याय ३८ के अन्त में पुराणविदों की हलमुखी छन्दोबद्ध एक और गाथा उद्धृत है—

गाथामप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः—

अन्तरात्मनि विनिहिते रौषि पत्रस्य वितयम्। अण्डभक्षणमशुचि ते कर्म वाचमतिशयते ॥ ४० ॥

महाभारत भीष्मपर्व ६१।२६ में—पुराणगीतं धर्मज्ञ। तथा शान्तिपर्व १६४।८५ में पुराण में असि अर्थात् खड्ग का वर्णन ध्यान देने योग्य है।

इतने लेख से ज्ञात हो जाता है कि पुराणों के कर्त्ताओं में व्यास, पराशर वायु अथवा पवन और कई अथर्वांगिरस ऋषियों के नाम चिरकाल से स्मरण में आ रहे हैं, परन्तु वर्तमान पुराणों के साम्प्रदायिक भाग बहुत पुराने नहीं हैं। हां महाभारत काल से पूर्वकाल की ऐतिहासिक सामग्री हेर फेर से रहित है। महाभारतोत्तर काल की ऐतिहासिक सामग्री भी जितनी पुराणों में सुरक्षित है, उतनी अन्य किसी ग्रन्थ में सुरक्षित नहीं रही। पुराणों और महाभारत की ऐतिहासिक सामग्री शिलालेखों की अपेक्षा अल्प प्रामाणिक नहीं है। हमारे इतिहास के अगले पृष्ठों से यह बात सुविदित हो जावेगी।

भारत का इतिहास लिखनेवालों को पुराणों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। यद्यपि इङ्गलैण्ड देशोत्पन्न पार्जिटर महाशय ने पुराणों पर परिश्रम किया था, तथापि उनका लेख पक्षपात के कारण अधिक प्रामाणिक नहीं, पुराणों की कलिकाल की वंशावलियों के प्रामाणिक संस्करण अभी निकलने हैं। पुराणों में मगध, कोसल और हस्तिनापुर के राजवंशों के अतिरिक्त अन्य राजवंशों का भी इतिहास था।[1] यह ग्रन्थों के पाठ-भ्रष्ट होने के कारण अब नष्ट सा हो रहा है। यत्न विशेष से उसके मिलने की संभावना हो सकती है।

पुराणों में महाभारत से पूर्व के राजाओं के राज्य की काल गणना में जो सहस्र वर्ष पद बहुधा प्रयुक्त हुआ है, उसका अर्थ पुरुरवा के वर्णन में स्पष्ट हो जावेगा।

अध्यापक बागची और पुराणों का भूवृत्त—पुराणों के भूवृत्त के विषय में कलकत्ता के अध्यापक प्रबोधचन्द्र बागची ने लिखा है—

Brahmanical casmology which is sensibly of a later period (than the Buddhist texts) gives us a more elaborate scheme (of geography) ....But as some of their (Puranas) correspond to actuality it is not-fair to reject the cosmology presented by them as fanciful.[2]

---

१. मत्स्य ५०।७४–७६ ॥ वायु ६६।२६८, २६६ ॥

2. Indian History Congress, volume 1943, P. 27.

अर्थात्—बौद्धग्रन्थों की अपेक्षा, ब्राह्मणों के रचे हुए ग्रन्थों में जो भूवृत्त मिलता है, वह उत्तरकालीन है। परन्तु पुराण के कुछ विचार वास्तविक हैं, अतः काल्पनिक कहकर उन्हें परे नहीं फेंकना चाहिए। इति।

अध्यापक की निर्मूल कल्पना—पुराणों का भुवनकोश वर्णन उन से पूर्व के महाभारत में, और महाभारत का वर्णन उससे पूर्व की कश्यप और पराशर की ज्योतिष-संहिताओं में तथा ब्राह्मणग्रन्थों में और यही वर्णन इनसे पुरातन वाल्मीकीय रामायण में पाया जाता है। बौद्धग्रन्थ तो अभी कल के ग्रन्थ हैं और उनका यथार्थ भूवृत्तांश इन पुराने ग्रन्थों के अनुकरण पर रचा गया है। ऐसी स्थिति में बागची जी की कल्पना पाश्चात्य यहूदी और ईसाई पक्षपात युक्त असत्य मत का फल है। ईश्वर दया करे, हमारे देशवासियों में स्वतन्त्र सोच की बुद्धि उत्पन्न हो।

अध्यापक बागची जी का इतना मत ठीक है कि पुराण आदि का भूवृत्त गंभीर अध्ययन चाहता है।

मूल पुराण और वाल्मीकीय रामायण ब्राह्मण ग्रन्थों से बहुत पूर्वकालीन हैं

वर्तमान ब्राह्मणग्रन्थ भारत युद्धकाल से लगभग सौ वर्ष पूर्व से कृष्ण द्वैपायन व्यास और उनके शिष्यों द्वारा संकलित होने आरम्भ हुए। उनमें पुराण वाङ्मय का स्मरण है, तथा पाणिनि से पूर्वकालीन लोकभाषा में गाथाएं और श्लोक पाए जाते हैं। इससे निश्चित होता है कि कई पुरातन पुराण ग्रन्थ जो पुरानी लोक भाषा में थे इन ब्राह्मण ग्रन्थों से पहले विद्यमान थे। ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रधान प्रवचनकर्त्ता व्यासजी वाल्मीकीय रामायण को बहुत पढ़ते थे, अतः रामायण ग्रन्थ भी ब्राह्मण ग्रन्थों से पूर्वकाल का है।

भारतीय इतिहास का पांचवां स्रोत—विशाल संस्कृत वाङ्मय।

आर्य विद्वान् अपने देश का तथा अपने ऋषियों और प्रतापी राजाओं का इतिहास सदा लिखते रहते थे। महाभारत के एक वचन से पहले दिखाया गया है कि भगवान् व्यास से भी पहले आर्य कविसत्तम पुरातन राजर्षियों के चरितों को लिखते थे।[1] हमारे पास वैसा एक चरित अब रह गया है। वह है वाल्मीकि-रचित रामायण।

(क) रघुवंश—प्रतीत होता है महाराज रघु का कोई चरित-रचा गया था। महाभारत आदिपर्व १।१७२ में उसको दृष्टि में रख कर—विक्रमी रघुः प्रयोग किया गया है। कालिदास ने उसकी सहायता से रघुवंश की रचना की होगी। पाश्चात्य-विचार प्राप्त कुछ लेखकों का कहना है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त की विजयों का वर्णन कालिदास ने रघु के नाम से कर दिया है। यह बात सत्य नहीं है। क्या रघु की विजय-यात्रा कुछ अल्प महत्त्वपूर्ण थी? भारत के पुराने इतिहास से अनभिज्ञ लोग ऐसा समझें तो समझें, पर विद्वान् लोग रघु के पराक्रम और उसकी दिग्विजय-यात्रा को एक सत्य बात मानते हैं। गद्य कवि बाण ने बड़े गौरव युक्त शब्दों में रघु की इस विजय का उल्लेख किया है।[2]

---

१. पूर्व पृ० ७६। टिप्पण १.

२. अप्रतिहतरथरहसा रघुणा लघुना एव कालेन अकारि ककुभां प्रसादनम्। हर्षचरित पृ० ७५८।

अश्मकवंश—भामह ने अपने अलंकार शास्त्र १।३३ में वैदर्भी रीति पर लिखे गए अश्मक-वंश नामक किसी इतिहास ग्रन्थ का परिचय दिया है—ननु चाश्मकवंशादि वैदर्भमिति कथ्यते।

(ख) नाटक ग्रन्थ—महाराज पृथु के राज्य में नाट्यवेद-पारग वररुचि था।[1] इसके पश्चात् त्रिपुरदाहडिम[2], अमृतमन्थन समवकार[3] और भरत-प्रवर्त्तित लक्ष्मी-स्वयंवर[4] का उल्लेख मिलता है। इनमें देवासुर संग्रामों की ऐतिहासिक घटनाएं प्रयुक्त हुई थीं। इन नाटकों का उल्लेख महाभारत से पूर्ववर्ती भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र में मिलता है।[5] भारत-काल में कृशाश्व और शिलालिन के नटसूत्र उपलब्ध थे। विक्रम से २८०० वर्ष पूर्व का पाणिनि उनसे परिचित था। इसके बहुत काल पश्चात् उदयन सम्बन्धी स्वप्न, वीणावासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण तथा तापसवत्सराज, किसी मागध राजा का वर्णन करने वाला कौमुदी-महोत्सव, शुंगकाल का प्रदर्शक मालविकाग्निमित्र तथा गुप्तकाल में रचे गये मुद्राराक्षस और देवी चन्द्रगुप्त आदि नाटक सुप्रसिद्ध हैं। इनमें से केवल देवीचन्द्रगुप्त अभीतक संपूर्ण नहीं मिला। मायानदालस[6] तथा महाकवि भीम का प्रतिज्ञाचाणक्य[7] अथवा प्रतिभाचाणक्य ऐसे नाटक थे जो ऐतिहासिक घटनाओं से पूर्ण थे। इनका आधार सत्य घटनाएं थीं, जिनपर विख्यात कवियों ने नाटकों की सृष्टि की। इस प्रकार के और ऐतिहासिक नाटक अभी अन्वेषण योग्य हैं। उनसे इतिहास की प्रभूत सामग्री मिलेगी। अभिनवगुप्त ने बिन्दुसार सम्बन्धी किसी नाटक का पता दिया है।[8]

(ग) कथा ग्रन्थ—इसी प्रकार बन्धुमती कथा[9], सैमरथी कथा, सुमनोत्तरा कथा, बृहत्कथा, शूद्रक कथा, जैन आचार्य पादलिप्त की प्राकृत में तरङ्गवती कथा, रुद्र की त्रैलोक्य-सुंदरी[10] कथा, वररुचि की चारुमती[11], धवल की मनोवती[12], विलासवती[13], नर्मदासुंदरी[13] बिन्दुमती[14] तथा अवंति सुंदरी आदि कथा ग्रंथ थे। वे अब लुप्तप्राय हैं। बृहत्कथा का थोड़ा सा

१. मत्स्य पुराण १०।२५॥ पूर्वेषां काश्यपवररुचिप्रभृतीनामाचार्याणां लक्षणशास्त्राणि संहृत्य......, काव्यादर्श की हृदयङ्गमा टीका, मद्रास संस्करण, पृ० ३।

२. भरत नाट्यशास्त्र ४।१०॥

३. भरत नाट्यशास्त्र ४।२॥ ४. मत्स्य पुराण २४।२८॥

५. इस आर्ष ग्रन्थ को अनेक वर्तमान लेखक विक्रम की दूसरी शती अथवा उससे पश्चात् की रचना मानते हैं। विक्रम से कई शताब्दी पूर्व इस ग्रन्थ पर मातृगुप्त और राहुलक आदि के भाष्य और वार्त्तिक रचे जा चुके थे। अतः वर्तमान लेखकों का मत अल्पज्ञान का द्योतक है।

६. सागरनन्दिकृत नाटकलक्षण रत्नकोश में उद्धृत। पृ० १२,१४ आदि।

७. अभिनवगुप्तकृत भरत नाट्यशास्त्र व्याख्या। पृ० १६१ तथा ४१५।

८. भरत नाट्यशास्त्र व्याख्या। पृ० ४१४।

९. चान्द्रव्याकरण, ३।१।५७॥ तथा कौमुदी महोत्सव—शौनकमित्र बन्धुमतीं। नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वैशाख—आषाढ़, संवत् २००४, पृ० ६ पर श्री अगरचन्द नाहटा के लेख में किसी जैन ग्रन्थकार की बन्धुमती कथा का वर्णन है। जैन कथा में पुरानी कथा की छाया अवश्य होगी।

१०. गणरत्न महोदधि, पृ० ५४। ११. भोजकृत शृङ्गार-प्रकाश में उल्लिखित।

१२. दण्डिकृत की अवन्तिसुन्दरी कथा की भूमिका। १३. गणरत्न महोदधि, पृ० १८५।

१४. कामसूत्र, जयमङ्गला टीका, ४।४।१॥

सार कथासरित्सागर में मिल सकता है। उज्जयन के एक राजवंश का इतिहास लिखने में कथासरित्सागर ने अच्छी सहायता की है।

वर्तमान काल में कादम्बरी कथा आदि मिलती हैं। कादम्बरी में बाण भट्ट ने अनेक ऐतिहासिक बातों का समावेश किया है।

अवधि भाषा में तुलसीदास जी के पूर्ववर्ती मलिक मुहम्मद जायसी ने पदुमावत नाम की एक कथा लिखी थी। उसका मूल कल्की पुराण की कथा है। यह गवेषणा श्री-स्वाध्याय पत्र में हम ने तीन वर्ष पहले प्रकाशित की थी। इसी प्रकार अन्य अनेक जैन आदि कथाएं पुराने संस्कृत ग्रन्थों का अनुवादमात्र हैं। सूक्ष्म विवेचना से इन में इतिहास की थोड़ी थोड़ी सामग्री मिल जाती है।

(घ) चरित ग्रन्थ—प्राचीनकाल में पुरूरवा चरित[1], ययाति-चरित[2] अथवा नहुष-चरित[3] विद्यमान थे।

तत्पश्चात् भारतयुद्ध से कुछ पूर्व गर्ग मुनि ने देवर्षिचरित लिखे।[4]

चन्द्रचूड चरित—यह चरित चन्द्रगुप्त मौर्य का चरित था और उसी के काल में रचा गया। निम्नलिखित श्लोक इसमें प्रमाण है—

निष्पन्ने सति चन्द्रचूडचरिते तत्तन्नृपप्रक्रियाजातैः सार्द्धमरातिराजकशिरोरत्नावलीनां त्रयम्।
तप्तस्वर्णशतानि विंशतिशनी रूप्यस्य लक्षत्रयं ग्रामाणां शतमन्तरङ्गकवये चाणक्यचन्द्रो ददौ ॥ उमापतेः[5]।

अर्थात्—चन्द्रचूडचरित लिखनेवाले अन्तरङ्ग कवि को चाणक्य ने बहुत दान दिया।

शूद्रक चरित कभी बड़ा प्रसिद्ध था। उसके आधार पर द्रमिड भाषा में एक शूद्रक चरित लिखा गया। कवि दण्डी रचित अवन्ति-सुन्दरी कथा में लिखा है—

अमुना किल द्रमिडभाषया शूद्रकचरितमुपनिबद्धम्।

अर्थात्—ललितालय शिल्पी ने द्रमिड भाषा में शूद्रक चरित रचा।

अश्वघोष का बुद्धचरित एक उपादेय ग्रन्थ है। साहसाङ्क चरित भी बहुत उपादेय होगा। परन्तु अब यह लुप्तप्राय है। इस समय हर्षचरित उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में पुरातन इतिहास की बड़ी राशि है। प्रभावक चरित आदि जैन ग्रन्थ भी कई दृष्टियों से बड़े उपयोगी हैं।

इनके अतिरिक्त सन्ध्याकर नन्दी का रामचरित, पद्मगुप्त का नवसाहसाङ्क-चरित, बिल्हण का विक्रमाङ्कदेव चरित और जयानक का पृथ्वीराज चरित भी उपलब्ध हैं। जगद्देकवीर-चरित भी कभी प्रसिद्ध था।

---

१. मत्स्यपुराण, २४।१८॥ २. महाभारत, आदिपर्व।
३. मत्स्यपुराण, ४२।१६॥ ४. शान्तिपर्व, २१२।३३॥
५. श्रीधरदास कृत सदुक्तिकर्णामृत, लाहौर संस्करण, पृ० २९७।

(ङ) व्याकरण ग्रन्थ—भारतीय इतिहास के निर्माण में आधुनिक ऐतिहासिकों ने व्याकरण ग्रन्थों का अत्यल्प प्रयोग किया है। हमने इन ग्रन्थों से भी इस इतिहास में पर्याप्त सहायता ली है। भारतीय वृत्त की कई बातों के जानने में व्याकरण ग्रन्थ बड़े काम के हैं।[1]

(च) ज्योतिष ग्रन्थ—ज्योतिष ग्रन्थों से भारत में प्रचलित कई संवतों का ज्ञान हो सकता है। उन ग्रन्थों की ओर ऐतिहासिकों ने ध्यान नहीं दिया। भट्टोत्पल ने[2] यवन स्फुजिध्वज और उससे पहले के जिस यवन संवत् का परिचय दिया है, उस पर अभी तक विचार नहीं किया गया। केवल गार्गी संहिता के युगवृत्तान्त प्रकरण से थोड़ी सी सहायता ली गई है।[3]

अलबेरूनी-निर्दिष्ट श्रुद्धव ग्रन्थ की खोज होनी चाहिए। इस ग्रन्थ से विक्रमादित्य संवत विषयक समस्या की पूर्त्ति में सहायता मिल सकती है।

पाश्चात्य लेखकों ने व्यर्थ का एक वितण्डा खड़ा किया है। उनका कहना है कि विक्रमशती दूसरी, तीसरी से पहले भारत में चन्द्रवार आदि वारों का प्रयोग नहीं होता था। गर्ग संहिता में वारों का प्रयोग[4] स्पष्टरूप से बताता है कि विक्रम से तीन सहस्र वर्ष पहले भी यहां वार प्रयोग में आते थे, यद्यपि थोड़े।

यल्लयार्य के ज्योतिषदर्पण में निम्नलिखित संवत् देखने योग्य हैं—

बाणवेदनवचन्द्रवर्जिता १९४५ स्तेपि शूद्रकसमाः प्रकीर्तिताः।
तेभ्यः विक्रमसमा भवन्ति वै नागनन्दवियदिन्दुवर्जिताः १०९८ ॥ ६४ ॥
भारताब्दा वसुजिनैर्युक्ताः स्युः कलिवत्सराः २४८ ॥७०॥
कल्यब्दा रूपरहिताः पाण्डवाब्दाः प्रकीर्तिताः।
बाणाब्धिगुणदस्रोना २३४५ शूद्रकाब्दाः कलेर्गताः ॥७१॥
गुणाब्धिव्योमरामोना ३०४३ विक्रमाब्दाः कलेर्गताः।
खाद्ययुक्शकवर्षेषु ५० भोजराजस्य वत्सराः ॥७२॥
प्रतापाब्दाः कृताब्ध्यर्के १२४४ रूनिता शकवत्सराः।[5]
जिनविश्वोनितं शाकं १३२४ श्रीहरिहरवत्सराः ॥७३॥

---

१. व्याकरण ग्रन्थों का अपूर्व इतिहास—श्री पण्डित युधिष्ठिरजी मीमांसक कृत "संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास" में देखिए।

२. बृहज्जातक टीका, ७।६॥

३. पूर्व संस्करणों से इसका कुछ अधिक अच्छा संस्करण संयुक्त प्रान्त की ऐतिहासिक समिति के षाण्मासिक पत्र भाग २० जुलाई, दिसम्बर १९४७, अंश १,२, पृष्ठ ४९–६२ पर अध्यापक डि० आर० मांकड द्वारा प्रकाशित हुआ है।

४. बृहत् संहिता की भट्टोत्पल टीका पृ० १२५४—नक्षत्रे चन्द्रवारे तु। स्मरण रहे वृद्धगर्ग का प्रधान शिष्य गार्गी भारत युद्धकाल का व्यक्ति था। बृहत् संहिता पृष्ठ ५८१।

५. यह गांग राजा था। तुलना करो—शकवर्षेषु १२६१—प्रताप श्री वीर नर नारसिंहदेव—राज्यवर्षे १८। उत्तर भारत के लेख, भण्डारकर की सूची, संख्या १०१७।

(छ) तीर्थ माहात्म्य—इस विषय के जो अति पुरातन ग्रन्थ हैं, उनसे इतिहास पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। ऐसे माहात्म्य महाभारत के आरण्यकपर्व में बहुत पाये जाते हैं। इनसे इतिहास की अनेक बातों का पता लगता है—यथा, शूर्पारक से जमदग्नि का सम्बन्ध। यह बात जैमिनी ब्राह्मण से प्रमाणित हो गई है।

(ज) महेश्वर-गौरी सम्वाद नामक एक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ अभी अभी मिला है।[1]

(झ) संस्कृत के अन्य सामान्य ग्रन्थ भी कभी कभी पुरातन इतिहास के लिए बड़ी सहायता देते हैं।

भारतीय इतिहास का छठा स्रोत—अर्थशास्त्र

हमारा सौभाग्य है कि महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ५८ में अर्थशास्त्र के अवतार का इतिहास वर्णित है। तदनुसार आदि में भगवान् ब्रह्मा ने त्रिवर्ग-विषयक एक लाख अध्यायात्मक शास्त्र कहा। उसमें धर्म और काम के अतिरिक्त अर्थशास्त्र भी था। उसके अर्थशास्त्र विभाग का विशालाक्ष ने दससहस्र अध्याय में संक्षेप किया। पुरंदर अथवा इन्द्र ने उसका संक्षेप पांच सहस्र अध्यायों में किया। इन्द्र के ग्रन्थ का नाम बाहुदन्तक था। स्मरण रहे कि विष्णुगुप्त के अर्थशास्त्र में इन्द्र को बाहुदन्तीपुत्र लिखा है। इन्द्र के ग्रन्थ का संक्षेप तीन सहस्र अध्याय में बृहस्पति ने किया। यह शास्त्र बार्हस्पत्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। काव्य उशना ने इसका संक्षेप एक सहस्र अध्याय में किया।

तत्पश्चात् अति प्रसिद्ध महाराज पुरूरवा के पिता बुध सर्व अर्थशास्त्रवित् थे।[2] उनके काल के समीप अर्थशास्त्रविशारद् सुधन्वा थे।[3] महाभारत सभापर्व ६१।५८ में आङ्गिरस सुधन्वा और विरोचन का उल्लेख है। बृहद्देवता ३।८७ में आङ्गिरस सुधन्वा वर्णित है। यह सुधन्वा आङ्गिरस बृहस्पति आङ्गिरस का भ्राता था। सुधन्वा ने अपने भ्राता से अर्थशास्त्र सीखा।

ब्रह्मा, विशालाक्ष, इन्द्र, बृहस्पति, उशना, नारद, बुध और सुधन्वा कल्पित व्यक्ति न थे। वे कौटल्य से कई सहस्र वर्ष पहले हो चुके थे। इनके पश्चात् भीष्म, द्रोण और उद्धव के काल में शाम्बव्य नामक ऋग्वेद का कल्पसूत्रकार, आयुर्वेद-ग्रन्थ का रचयिता; अर्थशास्त्र विशारद था।[4] इस इतिहास की तथ्यता को न जानकर और पाश्चात्य लेखकों के भय से कि उनका कल्पित भाषा-विज्ञान मिथ्या कैसे कहा जाए, हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस के अध्यापक सदाशिव अल्तेकर जी लिखते हैं—

The earliest works of this school (of politics), which unfortunately have all been lost, were probably composed in the 6th century B. C.[5]

---

१. इण्डियन हिस्टारिकल क्वा० सितम्बर १९५२.　　२. मत्स्यपुराण २४।२॥

३ रामायण, उत्तरपाठ, अयोध्याकाण्ड ११४।९॥

४. देखो हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग प्रथम, पृ० ११५।

5. State and Government in Ancient India, 1949, p. 2.

अर्थात्—राजशास्त्र के सर्व प्राचीन ग्रन्थ, जो दुर्भाग्य से नष्ट हो गए हैं, संभवतः ईसा से पूर्व छठी शती में रचे गए थे। पुनश्च—

The names of well known works like the *Manu smriti*, the *Yājnavalkya smriti*, *Parāsara smriti* and *Sukraniti* show that in ancient India authors often preferred to remain incognito and attributed their works to divine or semi-divine persons We need not, therefore, suppose that works on polity attributed to Brahmadeva, Manu, Siva or Indra existed only in the imagination of a Kautilya or the author of the Mahābhārata.[1]

In the beginning very probably handbooks for the use of the beginners were composed, which were later developed into comprehensive works. It is these books, written by human scholars but ascribed to super-human authors, which are referred to by the Mahābhārata and the Arthashāstra.[2]

अर्थात्—मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, पराशरस्मृति और शुक्रनीति आदि सुप्रसिद्ध ग्रन्थों के नाम स्पष्ट करते हैं कि प्राचीन भारत में ग्रन्थकार अपने को अज्ञात रखना प्रायः अधिक रुचिकर मानते थे, और अपनी कृतियों को दैवी अथवा अर्द्धदैवी पुरुषों के नामों पर प्रसिद्ध करते थे। इसलिए हमें यह अनुमान नहीं करना चाहिए कि ब्रह्मा, मनु, शिव अथवा इन्द्र के नामों पर प्रकट किये गये राजशास्त्र के ग्रन्थ केवल कौटल्य अथवा महाभारत के कर्त्ता की कल्पना में अस्तित्व रखते थे।

अर्थात्—आरम्भ में प्रारंभिक छात्रों के लिए संभवतः पुस्तिकाएं रची गईं, जो उत्तरकाल में बृहदाकार में परिवर्द्धित हुईं। ये ग्रन्थ जो मानव विद्वानों ने लिखे, परन्तु जो पुरुषेतर ग्रन्थकारों के नामों के साथ जोड़े गये, महाभारत और अर्थशास्त्र में उद्धृत हैं।

पूर्वोक्त उद्धरणों में अल्तेकर जी ने निम्नलिखित प्रतिज्ञाएं की हैं।

---

1. State and Government in Ancient India, 1949, p. 2.
2. State and Government in Ancient India, p 3.
परलोकगत श्री काशीप्रसाद जायसवालजी का भी लगभग यही मत है। प्राचीन भारतीय इतिहास को यहूदी पाश्चात्यों की दृष्टि से देखने के कारण जायसवालजी ने भयानक भूलें की हैं। उनका निदर्शन उनके अगले शब्दों में है—

   If we allow an interval of even twenty years for each of these known authorities, we shall have to date the literature of Hindu Politics as far back as *circa* 650 B. C. (Hindu Polity, p 4; Bangalore 1943).
   The Book on Politics in the Mahabharata: 400 B. C.—500 A C (ibid, p. 5)

अपूर्ण ज्ञान का फल इन पंक्तियों से स्पष्ट है। यदि जायसवालजी को महाभारत के पाठ के पर्याप्त सुरक्षित रहने का ज्ञान होता तो वे ऐसी असंगत बात न लिखते। उनके चरणचिह्नों पर चल कर ही अल्तेकर जी भी अंधकारावृत्त हैं। सहस्रों वर्ष पुराने ग्रंथकारों को कौटल्य से बीस बीस वर्ष पूर्व रखते जाना अविद्या की पराकाष्ठा है।

१. अर्थशास्त्र के सब से पुराने [अर्थात् विशालाक्ष और इन्द्र आदि के] ग्रन्थ विक्रम से लगभग ४५० वर्ष पूर्व अथवा कौटल्य से २०० वर्ष पूर्व बने।

२. मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति आदि ग्रन्थ जिन्होंने लिखे, उन्होंने अपना नाम गुप्त रखा और अपने ग्रन्थों को इन्हीं दैवी अथवा अर्द्धदैवी पुरुषों के नाम से प्रसिद्ध किया।

३. ब्रह्मा, मनु, इन्द्र आदि दैवी या अर्द्धदैवी पुरुषों के नाम से अर्थशास्त्र रचे गये। इन दैवीपुरुषों का अस्तित्व कौटल्य की कल्पना मात्र में नहीं था। यद्यपि इन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा।

४. पहले राजनीति की स्वल्पाकार पुस्तकें रची गईं।

५. उत्तरकाल में विद्वान् मनुष्यों ने उन्हें बृहदाकार बना दिया।

६. कौटल्य और महाभारतकार ने इन ग्रन्थों को उन विशालाक्ष, इन्द्र आदि दैवी पुरुषों का बना हुआ मान लिया।

पूर्वोक्त ६ बातें प्रतिज्ञामात्र हैं। इनमें हेतु और उदाहरण नहीं है। ये अशुद्ध अनुमान हैं जो किसी व्याप्ति से सिद्ध नहीं हो सकते। पाश्चात्य लेखकों और उनके एतद्देशीय अनुयायिओं ने असिद्ध अनुमान को किस प्रकार से इतिहास का रूप दिया है, उसका ये ज्वलन्त दृष्टान्त हैं। अधिक न लिखकर हम इन प्रतिज्ञाओं की सत्यता की परीक्षा करते हैं।

परीक्षा—१. पहली प्रतिज्ञा का अल्तेकर जी के पास क्या हेतु है। अल्तेकर जी कहेंगे कि "जर्मन देशवालों के भाषा-विज्ञान के परिणाम"। जर्मन देश के लेखकों ने पहले वेद-काल विक्रम से लगभग २४०० वर्ष पूर्व ठहराया, फिर अन्य सब तिथियां उसके अन्दर अन्दर कल्पित कीं। प्रायः भारतीय लेखक भय से इन कल्पित तिथियों को ठीक मान लेते हैं। वह भय यह है कि यदि कोई लेखक पाश्चात्य लेखकों द्वारा निर्धारित अधिकांश तिथियों को ठीक न माने, तो वह विद्वान् न समझा जायगा। इस पर हमारा कहना है कि जर्मन देशवालों का भाषाशास्त्र अधिकांश अशुद्ध और बाल लीलामात्र है। हमने इसकी अशुद्धता का दिग्दर्शन पूर्व पृ० ६२-५५ तक में कराया है। जर्मनों का भाषाशास्त्र असिद्ध अनुमानों का समूह है। उससे कोई बात निश्चित नहीं की जा सकती। यदि अल्तेकरजी अथवा उनके साथी हमारे इस कथन को भ्रान्त समझते हैं, तो वे हमारे साथ मौखिक अथवा लिखित वाद करें। संसार को सत्य का शीघ्र पता लग जायगा।

कौटल्य से लगभग १२०० वर्ष पूर्व के वायुपुराण अध्याय ७९ में लिखा है—

त्रिणाचिकेतस्त्रीवर्णो यश्च धर्मान् पठेद् द्विजः ॥१८॥
बार्हस्पत्ये तथा शास्त्रे पारं यश्च द्विजो गतः।
सर्वे ते पावना विप्राः पङ्क्तीनां समुदाहृताः ॥४४॥

अर्थात्—बार्हस्पत्य शास्त्र का जानने वाला पंक्तिपावन ब्राह्मण माना जाता है।

कहां बार्हस्पत्य शास्त्र जाननेवाले की इतने प्राचीनकाल में इतनी महिमा और कहां अल्तेकर जी का लेख कि यह शास्त्र कौटल्य से २०० वर्ष पूर्व रचा गया।

इसी काल का लिखा पुराने अर्थशास्त्रों का संक्षेप मत्स्य पुराण अध्याय २१५—२२७ में पाया जाता है।

आचार्य कौटल्य दुर्योधन नाश के इतिहास को तथा कृष्ण द्वैपायन से वृष्णिसंघ के शापित होने को जानता था। ये घटनाएं उसने महाभारत में पढ़ी थीं। वह जानता था कि महाभारत ग्रन्थ उससे १५०० वर्ष पूर्व और वर्तमान वायुपुराण से लगभग ३०० वर्ष पूर्व कृष्ण द्वैपायन द्वारा रचा गया। कृष्ण द्वैपायन के समकालीन भीष्म कौणपदन्त, द्रोण भारद्वाज तथा उद्धव वातव्याधि ने तीन महान् अर्थशास्त्र रचे, यह भी कौटल्य के ज्ञान में था। इन तीनों से सहस्रों वर्ष पहले बृहस्पति आदि के अर्थशास्त्र रचे जा चुके थे। कौटल्य महाभारत सभापर्व अध्याय ८६ द्वारा जानता था कि—

देवर्षिर्वासवगुरुर्देवराजाय धीमते । यत् प्राह शास्त्रं भगवान् बृहस्पतिरुदारधीः ॥ ६ ॥[1]
तद् वेद विदुरः सर्वं सरहस्यं महाकविः । स्थितश्च वचने तस्य सदाहमपि पुत्रक ॥१०॥
विदुरो वापि मेधावी कुरूणां प्रवरो मतः । उद्धवो वा महाबुद्धिर्वृष्णीनामर्चितो नृप ॥११॥

जिस बृहस्पति ने अर्थशास्त्र रचा, वह देवर्षि था और इन्द्र का गुरु था। वह उदार बुद्धि था। इस साक्ष्य के सम्मुख अल्तेकरजी का लेख त्याज्य है। अल्तेकरजी अपने पाश्चात्य गुरुओं के समान कह सकते हैं कि भारत ग्रन्थ कौटल्य से १५०० वर्ष पूर्व का और कृष्ण द्वैपायन का बनाया हुआ नहीं है। इस पाश्चात्य अनुमान का खण्डन हम पूर्व पृ० ७९-९४ पर कर चुके हैं। अतः भारत में विशालाक्ष और बृहस्पति आदि के अर्थशास्त्र कौटल्य से ३०० वर्ष पूर्व नहीं, प्रत्युत सहस्रों वर्ष पूर्व रचे गए थे।

२. अब अल्तेकरजी की दूसरी प्रतिज्ञा की परीक्षा की जाती है। अल्तेकरजी का मत है कि मनुस्मृति स्वायंभुव मनु ने नहीं बनाई प्रत्युत किसी और ने कौटल्य से ३०० वर्ष पहले बनाई और स्वायंभुव मनु के नाम के साथ जोड़ दी।

अल्तेकरजी का मत कपोलकल्पित है। आर्य परम्परा में सुप्रसिद्ध है कि ब्रह्माजी के त्रिवर्ग के साधनरूप महान् शास्त्र में से स्वायंभुव मनु ने धर्माधिकार, बृहस्पति ने अर्थाधिकार तथा नन्दी ने कामाधिकार पृथक् किया। इस विषय में कामसूत्र के प्रथमाधिकरण के निम्नलिखित उद्धरण दर्शनीय हैं—

प्रजापतिर्हि प्रजाः सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्धनं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच ॥५॥ तस्यैकदेशं स्वायंभुवो मनुर्धर्माधिकारिकं पृथक् चकार ॥६॥ बृहस्पतिरर्थाधिकारिकम् ॥७॥ महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक् कामसूत्रं प्रोवाच ॥ ८ ॥ तदेव तु पञ्चभिरध्यायशतैरौद्दालकिः श्वेतकेतुः संचिक्षेप ॥९॥

प्रश्न होता है कि शास्त्रावतार की यह कथा क्या वात्स्यायन ने स्वयं कल्पित कर ली। नहीं, कदापि नहीं। वात्स्यायन ने यह बात दत्तक आदि पूर्वजों से ली। उन्होंने श्वेतकेतु के ग्रन्थ से और श्वेतकेतु ने साक्षात् नन्दी के ग्रन्थ से। इस परम्परा के सत्य होने में कोई

---

१. वर्धमानं नृपं नित्यं नीचः परिभवेज्जनः। हस्तियन्ता गजस्यैव शिर एवारुरुक्षति॥ महा० शान्तिपर्व अ० ५८।२४॥ तात्पर्य है कि बार्हस्पत्य शास्त्र की वर्तमान अनुपलब्धि होने पर भी उस ग्रन्थ के मूल श्लोक महाभारत में मिलते हैं।

सन्देह नहीं। जो इसमें सन्देह करता है, वह भारतीय इतिहास से अपरिचित है। श्वेतकेतु का काल भारत-युद्ध से बहुत पूर्व था। अतः स्वायंभुव मनु बहुत प्राचीन काल में अपना शास्त्र बोल चुका था। स्वायंभुव मनु का शास्त्र भारत के विद्वानों में चिरकाल से प्रामाणिक दृष्टि से देखा जाता था। इसके कतिपय प्रमाण आगे दिए जाते हैं—

(क) विक्रम से २७०० वर्ष पूर्व के मत्स्य पुराण अध्याय २२७ में लिखा है—

अथैनामपि यो दद्यात्सविदं वाऽधिगच्छति। उत्तमं साहसं दण्ड्य इति स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥१२॥

इस श्लोक मे इतिशब्द पूर्वक मनुप्रोक्त धर्म का उल्लेख है। यह श्लोक मनु के मूल ग्रन्थ का भाग था।

(ख) विक्रम से ३००० वर्ष पूर्व के महाभारतकार व्यास ने अनेक स्थानों में स्वायंभुव मनु के श्लोक उद्धृत किए हैं। यथा—

तैरेवमुक्तो भगवान् मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्। शुश्रूष्वध्वं यथावृत्तं धर्मं व्यासमानतः ॥ शान्तिपर्व अ० ५१। ५ ॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्। तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥[1] शांतिपर्व, अ० ५५। १४॥

(ग) महाभारत की रचना से ४० अथवा ५० वर्ष पहले यास्कमुनि ने अपने निरुक्त में लिखा—

मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायंभुवेऽब्रवीत्।

इससे स्पष्ट है कि यास्क भी स्वायंभुव मनु के ग्रन्थ से परिचित था। विद्या के प्रकाण्ड ज्ञाता व्यास और यास्क को कभी सन्देह नहीं हुआ कि स्वायंभुव मनु का ग्रन्थ नहीं था।

कौटल्य से लगभग १५०० वर्ष पहले होने वाले ये महानुभाव स्वायंभुव मनु के अस्तित्व को मानते थे। उन्होंने मनु के नाम के साथ स्वायंभुव का विशेषण कारण-विशेष से जोड़ा है, इसलिए कि वे प्राचेतसमनु आदि के ग्रन्थों को भी जानते थे। भगवान् व्यास महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ५६ में कहते हैं—

प्राचेतसेन मनुना श्लोकौ चेमावुदाहृतौ। राजधर्मेषु राजेन्द्र ताविहैकमनाः शृणु ॥ ४३ ॥
षडेतान् पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवार्णवे। अप्रवक्तारमाचार्यम् अनधीयानमृत्विजम् ॥ ४४ ॥
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्। ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम् ॥ ४५ ॥

अर्थात्—प्राचेतस मनु ने अपने अर्थशास्त्र में दो श्लोक उदाहृत किए हैं।

सौभाग्य से नीतिवाक्यामृत में सोमदेवसूरी ने वैवस्वत मनु का एक वचन उद्धृत किया है—

यदाह वैवस्वतो मनुः—उञ्छषड्भागप्रदानेन वनस्था अपि तपस्विनो राजानं संभावयन्ति। तस्यैव तद् भूयात् यस्तान् गोपायति। इति।

अल्तेकरजी कहेंगे कि स्वायंभुव, प्राचेतस और वैवस्वत मनु, इन सब के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ दूसरों के रचित हैं। यदि ऐसी बात मान ली जाए तो स्वीकार करना पड़ेगा कि कपिल, आसुरि और पञ्चशिख के सांख्य ग्रन्थ, हिरण्यगर्भ का एक लाख श्लोक का योगशास्त्र, इन्द्र और भरद्वाज के व्याकरणशास्त्र, अपान्तरतमा और सनत्कुमार के भक्ति

1. महाभारत का यह श्लोक वर्तमान मनुस्मृति का ९।३२१ श्लोक है।

के विस्तृत शास्त्र आदि सब ग्रन्थ कौटल्य से ३०० वर्ष पहले के लोगों ने रचकर पूर्वजों के नाम से प्रसिद्ध किए थे। कैसा प्रमत्त-गीत है? महाभारत काल से पहले होनेवाला देवल अपने धर्मसूत्र में लिखता है—

एतौ सांख्ययोगौ चाधिकृत्य यैर्युक्तितः समयतश्च पूर्वप्रणीतानि विशालानि गम्भीराणि तन्त्राणीह संक्षिप्योद्देशतो वक्ष्यन्ते।[1]

अर्थात्—देवल से पहले पञ्चशिख, आसुरि और कपिल के विशाल और गम्भीर तन्त्र विद्यमान थे। उनका संक्षेप देवल आदि ने किया।

अतः अल्तेकर जी और उनके साथियों का यह कथन है कि नवीन लोगों ने पुरातन लोगों के नाम पर ग्रन्थ रचे, सर्वथा असत्य है।

याज्ञवल्क्य स्मृति कौटल्य से लगभग १५०० वर्ष पहले की है। यह स्मृति उस याज्ञवल्क्य ने लिखी, जिसने वाजसनेयिब्राह्मण का प्रवचन किया, तथा जिसके माध्यन्दिन और काण्व आदि शिष्यों ने अपने अपने ब्राह्मण कहे।

याज्ञवल्क्य स्मृति में अनेक ऐसे श्लोक हैं जो शतपथ के वचनों का पुरातन लोक-भाषा में रूपान्तर हैं, तथा अनेक ऐसे प्रयोग हैं जो पाणिनि से पूर्वकालीन भाषा के हैं।

अतः अल्तेकरजी का मत कि स्वायंभुव मनु और याज्ञवल्क्य ने अपने ग्रन्थ नहीं रचे, किन्तु किसीने उनका नाम लिख दिया, कपोलकल्पित है।

हां, यदि अल्तेकरजी की बात, भारतीय इतिहास के मुसलमानी अथवा अंग्रेजी शासन-काल की होती, तो हम उस पर किञ्चित् विचार करते। परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल में अथवा उससे पहले जब शिक्षा का बड़ा विस्तार था, जब राज्याश्रय-प्राप्त सहस्रों ब्राह्मण विद्याभ्यास में तत्पर रहते थे, जब भारत में सरस्वती-भण्डारों की न्यूनता न थी, जब यहां की इतिहास-परम्परा अटूट थी, तब कूट ग्रन्थ चल पड़े और समस्त भारत उन्हें अन्धाधुन्ध ऋषियों और देवों के ग्रन्थ समझने लग पड़ा, यह लिखना अपने को उपहासपात्र बनाना है। आचार्य कौटल्य के पास विशालाक्ष आदि के ग्रन्थों के ३००,४०० वर्ष पुराने अनेक हस्तलेख होंगे। उसके गुरुओं ने उसे अपने अपने ग्रन्थ-संग्रह भी दिखाए होंगे, फिर कौटल्य सदृश अति सूक्ष्म बुद्धि रखनेवाला महान् पण्डित अपने से ३०० वर्ष पूर्व के ग्रन्थों की कूटता को न पहचाने, यह कहना दुःसाहस मात्र है।

३. अब अल्तेकरजी की तीसरी प्रतिज्ञा की परीक्षा की जाती है। इनका डिवाइन और सेमी डिवाइन (दैवी और अर्द्धदैवी) शब्द अत्यन्त भ्रमजनक है। प्रतीत होता है कि अध्यापक महाशय ने देव अथवा अर्द्धदेव शब्द से मनुष्य-भिन्न किसी दूसरी योनि की कल्पना की है। वस्तुतः यदि वे पुरातन इतिहास के यथार्थ ज्ञाता होते तो वे ब्रह्मादि ऋषियों को पुरुषेतर प्राणी न समझते।

४. अध्यापकजी की चौथी प्रतिज्ञा भी निर्मूल है। उनकी ऐसी विचारधारा पाश्चात्य मिथ्या विकासवाद पर आश्रित है। वस्तुतः धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, आयुर्वेद, नाट्यशास्त्र,

---

१. याज्ञ० स्मृति मराठी टीका, १।१०८॥ पृ० ११७।

ज्योतिषशास्त्र, सांख्य-योगशास्त्र आदि पहले बृहदाकार थे, पश्चात् मनुष्यों की स्मृति और बुद्धि के ह्रास के अनुसार संक्षिप्त होते गये। अल्तेकरजी की प्रतिज्ञा के खण्डन के कतिपय प्रमाण उनकी दूसरी प्रतिज्ञा के खण्डन में आ चुके हैं।

५. पाञ्चवीं प्रतिज्ञा के विषय में हमारा कथन है कि उत्तरकाल के मनुष्यों की मेधाशक्ति प्रथमकाल के पुरुषों की मेधाशक्ति से कहीं न्यून रही है। इसका अधिक स्पष्टीकरण पूर्व पृष्ठ ५७–५९ पर देखें।

६. इनकी अन्तिम प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में हमारा वक्तव्य है कि कौटल्य और महाभारतकार अपनी परम्परा से परिचित थे। वे भारतीय इतिहास के धुरन्धर पण्डित थे। अतः उनके नाम पर अपनी मिथ्या-कल्पना मढ़ना सत्य का अपलापमात्र है। पश्चिम के अनृतवाद का मोह छोड़ने से ही इतिहास का सत्यस्वरूप प्रकाशित होगा।

बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र की तथ्यता में एक और प्रमाण

कौटल्य के अर्थशास्त्र के अन्त में कुछ विषहर प्रयोग उल्लिखित हैं। इनका वर्णन वाग्भटसदृश विद्वान् ने अपने ग्रन्थ में किया है। ऐसे विषहर प्रयोग बृहस्पति और उशना के अर्थशास्त्र में भी थे। प्रतीत होता है राज्य-शासन में इनकी बड़ी आवश्यकता पड़ती थी। तुलना करो, शान्ति पर्व ५९। ४२॥

सुश्रुतटीकाकार डल्हण कल्पस्थान, अध्याय प्रथम की टीका में लिखता है—

अजरुहालक्षणम् उशनसा प्रोक्तम्—

"कन्दः श्वेतः सपिण्डको भेदे चाञ्जनसन्निभः। गन्धलेपनपानैस्तु विषं जरयते नृणाम्॥
दष्टानां विषपीतानां ये चान्ये विषमोहिताः। विषं जरयते तेषां तस्मादजरुहा स्मृताः॥
मूषिका लोमशा कृष्णा भवेत्साऽपि च तद्गुणाः। इति ॥ ७८ ॥

डल्हण से कई सौ वर्ष पहले अष्टांग संग्रह के उत्तरस्थान में लिखा गया—

सुरला पावकी सोमा भोगवत्यमृतानतम्। आढकी किणिही सोमराजी चौशनसोऽगदः॥[1]

इसी प्रकार अष्टांग हृदय की हेमाद्री टीका में लिखा है—

अथ योगाः प्रवक्ष्यन्ते बृहस्पतिकृताः शिवाः॥[2]

इन सबका तात्पर्य है कि आयुर्वेद का ग्रन्थकार बौद्ध विद्वान् वाग्भट तथा उसके टीकाकार डल्हण और हेमाद्री आदि ने अपनी अनवच्छिन्न परम्परा में सुरक्षित उशना और बृहस्पति के अर्थशास्त्रों के श्लोक अपने ग्रन्थों में उद्धृत किये।

अर्थशास्त्र का टीकाकार भट्टस्वामी अपनी टीका में बार्हस्पत्य श्लोक उद्धृत करता है।[3] तथा देखो, शान्ति पर्व ५६। ३८॥

---

१. अध्याय ४०, पृ० १२०।
२. पृ० १११।
३. आदि से १५ वें अध्याय का अन्त। गणपति शास्त्रीजी ने भी ये श्लोक अपनी टीका में उद्धृत किए हैं।

अन्य पुरातन अर्थशास्त्रकार

बृहस्पति का पुत्र भरद्वाज था। तद्रचित अर्थशास्त्र के दो श्लोक यशस्तिलकचम्पू के पृष्ठ १०० पर उद्धृत हैं। इनमें से पहले का श्लोकार्द्ध कौटल्य अर्थशास्त्र ७।५ में उपलब्ध है। शेष डेढ़ श्लोक का भावमात्र उसमें दिया गया है।

आचार्य द्रोण भारद्वाज था। वह एक अर्थशास्त्र का रचयिता था, जिसके श्लोक अद्यापि नीतिवाक्यामृत में मिलते हैं। इस प्रकार हम इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि देवगुरु बृहस्पति, उनका भाई सुधन्वा, पुत्र भरद्वाज और उसके वंशज द्रोण भारद्वाज अर्थशास्त्र के परम पण्डित और रचयिता हुए। गौरशिरा मुनि का एक राजशास्त्र था। शान्तिपर्व ५८।३॥

इस समय कौटल्य का अर्थशास्त्र ही उपलब्ध है। कौटल्य से पूर्व के विशालाक्ष, उशना, बृहस्पति, नारद, इन्द्र, भीष्म, द्रोण और उद्धव आदि के अनेक अर्थशास्त्र अब नामावशेष हैं। विशालाक्ष और बृहस्पति के अर्थशास्त्रों के कुछ उद्धरण यत्र तत्र मिलते हैं।[1]

विष्णुगुप्त, चाणक्य अथवा कौटल्य एक प्रकाण्ड पण्डित था।[2] वह एक महा साम्राज्य का महामन्त्री था। उसमें और महाभारत युद्ध में केवल १६०० वर्ष का अन्तर था। तब तक भारतीय वाङ्मय सुलभ और अत्यन्त सुरक्षित था। इसलिए कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र के आरम्भ में सगर्व लिखा कि पृथिवी के लाभ और पालन करने में यावंति अर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यों ने लिखे, उन सब का संग्रह उसने किया है। विष्णुगुप्त की इस प्रतिज्ञा के उदाहरण उसके ग्रन्थ में मिलते हैं।

विष्णुगुप्त ने अपने अर्थशास्त्र में चार स्थानों पर प्राचीन आर्य इतिहास की बहुत उपयोगी बातें लिखी हैं।[3] उन सबका प्रयोग हमने यथास्थान किया है।

कौटल्य-अर्थशास्त्र के विषय में जालि प्रभृति कई लेखकों का मत है कि यह ग्रन्थ ईसा की तीसरी शताब्दी में रचा गया।[4] जर्मन अध्यापक जालि और उनके साथी पाश्चात्य लेखक भयभीत रहते हैं कि यदि भारतीय इतिहास, संस्कृति और साहित्य पुराना सिद्ध हो गया तो उनका बनाया भारतीय संस्कृति के इतिहास का कलेवर सर्वथा निर्मूल हो जायगा। अतः वे भारतीय ग्रन्थों के निर्माण-काल के विषय में ऐसी सारहीन कल्पनाएं करते रहते हैं। भारतीय विद्वान् जानते हैं कि मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामन्त्री ने ही यह अर्थशास्त्र रचा था—

---

१. बृहस्पति के उद्धरणों के लिए याज्ञवल्क्य स्मृति पर बालक्रीडा टीका का व्यवहारकाण्ड देखना चाहिए। इस ग्रन्थ की ओर मैंने ही पहले पहल जर्मन अध्यापक जालि का ध्यान आकृष्ट किया था। इसके पश्चात् उन्होंने जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री मद्रास में बृहस्पति-विषयक एक लेख लिखा।

२. वराहमिहिर बृहज्जातक ७।७ और २१।३ में विष्णुगुप्त के किसी ज्योतिष-विषयक मत का उल्लेख करता है। भट्टोत्पल ने अपनी टीका में यहां पर विष्णुगुप्त के मूल श्लोक लिखे हैं। रुद्र अपनी टीका में लिखता है— विष्णुगुप्तः चाणक्यः। बृहत् संहिता ९।४ श्लोक भट्टोत्पल के अनुसार विष्णुगुप्त का श्लोक है।

३. अध्याय ६, १२, २० और ६५॥

१. दण्डी अपने दशकुमार चरित में स्पष्ट लिखता है कि आचार्य विष्णुगुप्त ने ६००० श्लोकों के परिमाण में अर्थशास्त्र रचा।[1] दण्डी ऐसा आचार्य अपनी परम्परा को जानता था।

२. दण्डी का पूर्ववर्ती भट्टबाण कादम्बरी में लिखता है—अतिनृशंसप्रायोपदेश निर्घृणं कौटिल्यशास्त्रम्

३. अर्थशास्त्र चाणक्य-निर्मित है। और चाणक्य कोई कल्पित व्यक्ति नहीं था, इस विषय में अष्टांग-संग्रह-कर्ता वाग्भट प्रमाण है। यह वाग्भट संवत् ७०० से कुछ पहले हो चुका था। अपने उत्तर तन्त्र के विष-प्रकरण में वाग्भट लिखता है—

श्वेतपुष्करतुल्यांशैर्जीवन्त्याः कुसुमैः कृतः। रुक्मपिष्टो मणिर्धार्यश्चाणक्येष्टो विषापहः॥

इसकी टीका में इन्दु लिखता है—चाणक्यस्य कौटिल्यस्य॥

इसकी तुलना अर्थशास्त्र अध्याय १४१ के निम्नलिखित वाक्यों से कीजिए—

रुक्मगर्भश्चैषां मणिः सर्वविषहरः।

जीवन्ती-श्वेतामुष्ककपुष्प-वन्दाकानामक्षीवे[2] जातस्य अश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः।

वाग्भट ठीक अर्थशास्त्र के शब्दों की प्रतिलिपि करता है। यह तत्काल स्पष्ट हो रहा है कि अर्थशास्त्र का वर्तमान पाठ भ्रष्ट है। यह पाठ ऐसा चाहिए—

जीवन्ती-श्वेतपुष्करपुष्प……।[3]

४. जैन अनुयोगद्वारसूत्र में—कोडिलियं स्मृत है। यह सूत्र विक्रम से पूर्व की रचना है।

५. वात्स्यायन अपने न्याय-भाष्य में अर्थशास्त्र के एक वचन को उद्धृत करता है। अर्थशास्त्र अध्याय ३१ में लिखा है—पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्तौ।

वात्स्यायन के न्यायभाष्य २।१।५४ में शब्दार्थ का विचार करते हुए लिखा है—

पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्ताविति।

यहां इति पद केवल यह दर्शाने के लिए है कि वात्स्यायन यह वचन किसी और स्थान से उद्धृत कर रहा है। वह स्थान है कौटल्य अर्थशास्त्र का पूर्व-प्रदर्शित प्रकरण।

इससे बढ़ कर न्यायभाष्य १।१।१ में लिखा है—

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्। आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्तिता॥

और आश्चर्य है कि यह श्लोक चतुर्थ पाद के भेद से अर्थशास्त्र के विद्यासमुद्देश प्रकरण में मिलता है। चतुर्थ पाद का यह भेद स्थाननिर्देश के कारण आवश्यक था। न्याय-

---

१. इयमिदानीमाचार्यविष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे षड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता। अष्टम उच्छ्वास।

२ यह पाठ गणपति शास्त्री के संस्करण का है। जालि के पाठ में—॰नामक्षिपे है। इस पाठ की शुद्धि हम नहीं कर सके। इस पाठ की तुलना करो कौ॰ अर्थशास्त्र अध्याय १०—जीवन्ती श्वेतामुष्कक…।

३. मुष्कक एक क्षार पदार्थ है। डल्हण सूत्रस्थान ३८।२० में लिखता है—मुष्ककः क्षारवृक्षः। चक्र-स्वामी २।४।३६ पर श्वेतमुष्कक पाठ पढ़ता है। कौटल्य का एक और अगद अष्टांगसंग्रह, उत्तरस्थान, अध्याय ४० में पढ़ा गया है। वाग्भट ने अ॰ सं॰ सूत्र॰ अध्याय ८ में इसका उल्लेख किया है। इस पर इन्दु टीका में लिखा है—कौटिल्य-प्रसिद्धाः।

भाष्य बहुत पुराना ग्रन्थ है।[1] प्रथम शताब्दी विक्रम के पश्चात् का नहीं है। उसमें उद्धृत होने से अर्थशास्त्र तीसरी शताब्दी से पहले का है।

६. महाकवि शूद्रक भी चाणक्य को स्मरण करता है—चाणक्केणेव्व दोवदी।[2]

चाणक्के वा धुन्धुमाले तिशङ्कू॥[3]

अब विचारने का स्थान है कि जिस के ग्रन्थ को वाग्भट और दण्डी, उद्योतकर और वात्स्यायन तथा जिसके नाम को वराहमिहिर या शूद्रक आदि विद्वान् जानते थे, क्या वह भारतीय इतिहास का एक वास्तविक व्यक्ति नहीं था। नहीं, वह एक ऐतिहासिक व्यक्ति था और उसका अर्थशास्त्र वस्तुतः मौर्यराज्य के आरम्भ में लिखा गया था।

कौटल्य सदृश महान् विद्वान् तालजङ्घ, ऐल, रावण, दुर्योधन, हैहय अर्जुन, अगस्त्य, वृष्णिसंघ, जामदग्न्य राम और अम्बरीष नाभाग आदि को भारतीय इतिहास के सत्य व्यक्ति मानता है। अतः पाश्चात्यों और उनके अनुयायी एतद्देशीय ऐतिहासिकों ने अपने इतिहासों में इन का वर्णन न करके भारतीय इतिहास का महान् अनिष्ट किया है।

भारतीय इतिहास का सातवां स्रोत—बौद्ध और जैन ग्रन्थ

कुछ बौद्ध और जैन ग्रन्थों ने भी यत्र तत्र ऐतिहासिक सामग्री सुरक्षित रखी है। परन्तु ये ग्रन्थ अधिकतर भिक्षु-सम्प्रदाय की रचना हैं। और हैं ये रचनाएं विक्रम से कोई पांच सौ वर्ष पश्चात् की। श्री बुद्ध और श्री महावीर जी के पश्चात् उत्तर भारत में कई बार भयंकर दुर्भिक्ष पड़े। उन दुर्भिक्षों में सहस्रों भिक्षु मर गए। कई दक्षिण को चले गये। इस कारण बौद्ध परम्परा और बहुत सा जैनशास्त्र छिन्न भिन्न हुआ।

जैन परम्परा—अन्ततः विक्रम की चौथी और पांचवीं शताब्दियों में जैन मतवालों ने पुनः अपनी सम्प्रदाय-परम्परा एकत्र की और अपना शास्त्रसंग्रह किया।

जैनों का यह संग्रहकृत्य माथुरी और वालभी वाचना के नाम से प्रसिद्ध है। इस संग्रह के काम में कई भूलें अनायास हो गईं। इस कारण जैन परम्परा में कहीं-कहीं बहुत भेद दिखाई देता है। एक कल्की की काल-गणना के विषय में जैनाचार्यों के निम्नलिखित मत हैं—

१. श्वेताम्बर ग्रन्थ तित्थोगाली के अनुसार वीरनिर्वाण के १९२८ वर्ष बीतने पर कल्की हुआ।

२. कालसप्ततिका प्रकरण के अनुसार वीरनिर्वाण से १९१२ वर्ष और ५ मास बीतने पर कल्की हुआ।

---

१. न्यायवार्तिक का काल द्वितीय शताब्दी विक्रम से परचात् का नहीं है। उसमें १।१।१४ पर लिखा है— इदम् [illegible] सम्भिविप्रहयो [illegible] इति। यह वचन अर्थशास्त्र अध्याय ११ के आरम्भ में है।

२. मृच्छकटिक १।३१॥ ३. मृच्छकटिक ८।२४॥

३. जिनसुन्दर सूरि के दीपमालाकल्प में यह काल १९१४ वर्ष का माना है।[1]

४. क्षमाकल्याण के दीपमालाकल्प में निर्वाण सम्वत् ५९९ में कल्की का होना लिखा है।

५. नेमिचन्द्र अपने तिलोयसार ग्रन्थ में निर्वाण सम्वत् १००० में कल्की को मानता है।

जैन ग्रन्थों का पूर्वोक्त विवरण नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० अंक ४ में मिलता है। यह विवरण श्री मुनि कल्याणविजय जी का किया है।[2]

६. यति वृषभकृत तिलोय पण्णत्ति में कल्की का अस्तित्व वीर-निर्वाण ९५८ अथवा १००० में माना है।

इस भेद का कारण परम्परा-विच्छेद है। महावीर जी का निर्वाण बहुत पुराने काल की बात थी। जब जैन भिक्षु उस पुरातन काल को भूल गए, तो उन्होंने विक्रम से लगभग ४७० वर्ष पहले वीर-निर्वाण मान लिया। बस इस भूल से उनकी काल-गणना में एक भारी भेद पड़ गया।

ऐसी परिस्थिति में भी अनेक जैन ग्रन्थ भारतीय इतिहास के लिए अत्यन्त उपादेय हैं। पर उनका उपयोग बड़ी सावधानी से होना चाहिए।

जैन साहित्य में महत्त्व के ऐतिहासिक तथ्य

शककाल एक विक्रमकाल का अवान्तर नाम—जैनशास्त्र में धवला और जयधवला नाम के दो प्रसिद्ध टीका ग्रन्थ हैं। धवलाटीका के अन्त में टीकाकार वीरसेन स्वामी लिखते हैं—

> भट्टारएण टीका लिहिएसा वीरसेणेण ॥५॥
> अट्ठतीसम्हि सतसए विक्कमरायं किएसु सगणामे। वासे सुतेरसीए भाणुविलग्गे धवलपक्खे ॥ ६ ॥
> जगतुंगदेवरज्जे रियम्हि कुंभम्हि राहुणा कोणे। सूरे तुलाए संते गुरुम्हि कुलविल्लए होंते ॥ ७ ॥
> चावम्हि तरणिवुत्ते सिंघे सुक्कमि मीणे चंदम्मि। कत्तियमासे एसा टीका हु समाणिआ धवला ॥ ८ ॥
> बोद्दणरायणरिंदे णरिंदचूडामणिम्हि भुजंते। सिद्धंतगंथमात्थिय गुरुप्पसाएण विगत्ता सा ॥ ९ ॥

जयधवला की टीका में वीरसेन समकालक जिनसेन लिखते हैं—

> इति श्री वीरसेनीया टीका सूत्रार्थदर्शिनी। वाटग्रामपुरे श्रीमद्गूर्जरार्यानुपालिते ॥ ६ ॥
> फाल्गुणे मासि पूर्वाह्णे दशम्यां शुक्लपक्षके। प्रवर्द्धमानपूजोरु-नन्दीश्वरमहोत्सवे ॥ ७ ॥
> अमोघवर्षराजेन्द्र राज्यप्राज्यगुणोदया। निष्ठिता प्रचयं यायादाकल्पान्तमनल्पिका ॥ ९ ॥
> एकोनषष्ठिसमधिकसप्तशताब्देषु शकनरेन्द्रस्य। समतीतेषु समाप्ता जयधवला प्राभृतव्याख्या ॥११॥
> गूर्जरनरेन्द्रकीर्तेरन्तःपतिता शशांकशुभ्रायाः। गुप्तैव गुप्तनृपतेः शकस्य मशकायते कीर्तिः ॥१२॥

---

१. धनेश्वर सूरि के शत्रुंजय माहात्म्य १४।१३ में यही तिथि दी गई है। यह ग्रन्थ विक्रम संवत् ४७७ में रचा गया। अनेक लोगों को इस रचना तिथि में सन्देह है। हम इस विषय में अभी अन्तिम सम्मति नहीं दे सके।

२. काशी, माघ संवत् १९८९, पृ० ६११।

गूर्जरयशःपयोब्धौ निमज्जतीन्दौ विलक्षणं लक्ष्मम्। कृतमलिमविलनं मन्ये धात्रा हरिणापदेशेन ॥१३॥
भरतसगरादिनरपतियशांसि ताराभिमेन संहृत्य। गूर्जरयशसो महतः कृते ऽवकाशो जगत्त्रयामूत्रम् ॥१४॥
इत्यादिसकलनृपतीन तिशय्य पयःपयोधिफेनाच्छा गूर्जरनरेन्द्रकीर्त्तिः स्थेयादाचन्द्रतारमिह भुवने ॥१५॥

पूर्वोक्त श्लोकों में से जयधवला के श्लोक ६ में विक्रमराज को शकाणाम अर्थात् शक नाम वाला कहा है। श्लोक ६ और ६ के अनुसार धवला ग्रन्थ विक्रमराज के ७३८ वर्ष में, जब बोद्दरायण उपनाम अमोघवर्ष राज्य करता था, रचा गया।

जयधवला शकनरेन्द्र के संवत् ७५६ में रची गई। इन दोनों संवतों के मेल से पता लगता है, कि शकनरेन्द्रकाल को विक्रमराजकाल भी कहते थे। अमोघवर्ष तथा उसके पूर्वज राष्ट्रकूट राजाओं के अनेक ताम्रपत्रों पर शकनृपकालातीत संवत्सर लिखा मिलता है। यह संवत्सर इस विक्रम का संवत्सर है, और उसकी मृत्यु से चला है। अलबेरूनी ने इसी कारण शककाल का सम्बन्ध एक विक्रम से बताया है।[1]

आचार्य हरिभद्र सूरी का काल—जैन ग्रन्थों में आचार्य हरिभद्र के काल के विषय में निम्नलिखित लेख मिलते हैं।

वीराओ वयरो वासाण पणसए दससरय हरिभद्दो। तेरसहि बप्पभट्टी अट्ठहिं पणयाल 'वलहि' खओ ॥[2]

अर्थात्—वीरसंवत् १०५५ में हरिभद्र, १३०० में बप्पभट्टी तथा ८४५ में वलभी क्षय हुआ। यह गाथा बहुत पुरानी नहीं है और सम्भव है, अगली गाथाओं के आधार पर लिखी गई हो। बप्पभट्टी से निश्चित पश्चात् की है, यह स्पष्ट है। प्रद्युम्नसूरि लिखता है—

पंचसए पणसीए विक्कमभूपाउ भत्ति अत्थमिओ। हरिभद्दसूरी सूरो धम्मरओ देउ मुक्खपहं ॥ ५१२ ॥
पणपन्नदस सएहिं हरिसूरी आसि तत्थऽपुव्वकवी। तेरसवरिस सएहिं अइएहिं वि बप्पहट्टिपहू ॥ ५१३ ॥[3]

अर्थात्—विक्रमभूपाल के ५८५ वर्ष में हरिभद्र का देहान्त हुआ।

लघुक्षेत्र समासवृत्ति के एक ताड़पत्रीय हस्तलेख पर लिखा है—

लघुक्षेत्रसमासस्य वृत्तिरेषा समासतः। रचिताऽबुधबोधार्थं श्रीहरिभद्रसूरिभिः ॥
पञ्चाशीतिक (५८०) वर्षे विक्रमतो व्रजति शुक्लपंचम्याम्।
शुक्ल(क्र)स्य शुक्रवारे पुष्ये शस्येमनक्षत्रे ॥[3]

अर्थात्—श्री हरिभद्रसूरी ने यह लघुक्षेत्र समासवृत्ति विक्रम के ५८० वर्ष में लिखी। पूर्वोक्त गाथाओं में विक्रम शब्द का प्रयोग विचारणीय है। यदि यह विक्रम धवला वाला शक विक्रम है, तो हरिभद्र की मृत्यु तिथि शकनृप का ५८५ वर्ष है। यदि यह विक्रम संवत्-प्रवर्त्तक है, तब भी यह तिथि शीघ्रता से परे नहीं फेंकी जा सकती।[4] हमारा विचार है कि संभवतः पहला अनुमान सत्य निकले। सारांश यह है कि जैन तिथियों का गंभीर विचार कभी इतिहास की अनेक ग्रन्थियों को खोल देगा। शोक है कि जैन विद्वानों

---

1. Sakas in India, p. 41.
२. अनेकान्त जयपताका, बड़ोदा संस्करण, १६४०, अंग्रेजी भूमिका, पृ० १८।
३. तत्रैव पृ० १३।
४. कई जैन विद्वानों ने इसको न समझकर अनेक सारहीन कल्पनाएं की हैं।

ने इस ओर अभी स्वतन्त्र ध्यान नहीं दिया। जैन ग्रन्थों में दी गई समस्त तिथियां तत् तत् संवतों के अनुसार एक स्थान में क्रम से छपनी चाहिएं।

बौद्ध-परम्परा—अब रही बौद्ध-परम्परा की बात। वह ह्यूनसांग जो नालन्दा विश्वविद्यालय में वर्षों पढ़ता रहा और जिसने भारत के अनेक बौद्ध आचार्यों का साक्षात्कार किया, भगवान् बुद्ध के निर्वाण-काल के विषय में कहता है कि उसके काल से १२००, १३००, १५०२ और ९०० से १००० वर्ष पूर्व तक का काल भिन्न भिन्न विद्वान् मानते हैं।[1]

अब बुद्ध-निर्वाण-काल के विषय में सन् ४०१ (?) से लेकर कई वर्ष तक भारत में भ्रमण करने वाले फाहियान के कथन को देखिए—

१. मूर्ति की स्थापना बुद्धदेव के परिनिर्वाण काल से तीन सौ वर्ष पीछे हुई। उस समय हान देश में चाव वंशी महाराज पिंग का राज्य था।[2]

अर्थात् बुद्ध का निर्वाण ईसा से पूर्व ग्यारहवीं शताब्दी (अधिक से अधिक ईसा-पूर्व १०५०) में हुआ।

२. परिनिर्वाण को १४९७ वर्ष हुए। अर्थात् ईसा से कोई १०९० वर्ष पूर्व।

सिंहलदेश की उपलब्ध परम्परा के अनुसार बुद्ध-निर्वाण की और ही तिथि है।[3] पाश्चात्य लेखकों ने अन्य सब मतों का तिरस्कार करके उसे प्रधानता दी है। जब बौद्ध सम्प्रदाय में अपने धर्मप्रवर्तक के काल-विषय में इतने मत हैं, तो अन्य ऐतिहासिक विषयों में उनका कितना प्रामाण्य हो सकता है? ये बौद्ध ग्रन्थ हैं जिनमें सीता को राम की भगिनी लिखा है[4] और वासवदत्ता को चण्ड महासेन की।[5]

ऐसी स्थिति में बौद्ध ग्रन्थों का प्रामाणिक रूप से उपयोग नहीं होना चाहिए। पाश्चात्य-पद्धति वाले लेखकों ने इन्हें बहुत प्रामाणिक माना है। अतः उनके ग्रन्थों में भयंकर भूलें हुई हैं।

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार बौद्धधर्म का सातवां प्रधान पुरुष वसुमित्र था। चीनी ग्रन्थों के अनुसार उसका मृत्युकाल विक्रम से ५३३ वर्ष पूर्व था।[6] बारहवां प्रधान पुरुष अश्वघोष था। अश्वघोष से अगली परम्परा निम्नलिखित है—

---

१. हिन्दी अनुवाद, पृ० ३०४। तथा रामन ही ली कृत ह्यूनसांग का जीवनचरित, एस. बील का अंग्रेजी अनुवाद, सन् १९११, पृ० ९८।

२. हिन्दी अनुवाद, पृ० १९। इस स्थान पर अनुवादक की टिप्पणी इस प्रकार है—
पिंग का शासनकाल ७५०—७१९ तक ईसा के पूर्व में था।

३. ईसा से पूर्व पांचवीं शताब्दी।　४. दशरथ जातक।　५. धम्मपद टीका।

६. तत्त्वसंग्रह भूमिका पृ० ४५।

१. अश्वघोष	२. कपिमल	३. नागार्जुन	४. काणदेव	५. राहुलक
६. संघनन्दी	७. संघयशा	८. कुमारात[1]	९. जयट	१०. वसुबन्धु

यह परम्परा अनेक तिथियों के शुद्ध करने में बड़ी उपयोगिनी है। अतः यहां दी गई है। ध्यान रहे कि इस परम्परा में भी नागार्जुन के विषय में कुछ गड़बड़ है।

राहुलक ने अलंकारशास्त्र और भरत नाट्यशास्त्र पर कोई ग्रन्थ लिखे थे। इन दोनों ग्रन्थों के उद्धरण आदि निम्नलिखित स्थानों में देखने योग्य हैं—

१. अलंकार शेखर। यह ग्रन्थ राहुलक का प्रतीत होता है। इस पर केशवमिश्र की टीका निर्णयसागर यन्त्रालय. मुम्बई में छपी है। केशवमिश्र राहुलक को शौद्धोदनि विशेषण से स्मरण करता है। प्रतीत होता है, इस विषय में उसे भूल हुई है।

२. जैनाचार्य हेमचन्द्र काव्यानुशासन, पृ० ३१६ पर राहुलक को स्मरण करता है।

३. अमरकृत नामलिङ्गानुशासन के टीकासर्वस्व में लिखा है—तथा च राहुलः—पृ० १५८। राहुलकः—पृ० १५६।

४. सागरनन्दी नाटक-लक्षण-रत्नकोश में लिखता है—राहुलस्त्वाह, यत्र दैवात्।

५. अभिनवगुप्त भरत नाट्यशास्त्र की टीका में राहुलक को स्मरण करता है, पृ० ११५, १७२, १६७।

६. बृहत्संहिता की भट्टोत्पली टीका अध्याय ७७।१२ पर राहुलक का नाम मिलता है। यह पाठ दशरूपक २।३२–३३ में है।

७. भरत नाट्यशास्त्र का पुरातन टीकाकार उद्भट चिरन्तन राहुलक को स्मरण करता है। बड़ोदा संस्करण का दूसरा भाग, पृ० २०८।

८. पद्मश्री के नागरसर्वस्व के १३वें अध्याय में हाव आदि के लक्षण हैं। उनके उदाहरणों में—तद् यथा—लिखकर कतिपय श्लोक उद्धृत हैं। इनमें से कई श्लोक सागरनन्दी के नाटक-लक्षण-रत्नकोश में भी—तद् यथा—लिखकर उद्धृत हैं। इनमें से एक श्लोक टीका-सर्वस्व के पृ० १५८, १५६ पर राहुलक के नाम से उद्धृत हुआ है। इससे निश्चित होता है कि पद्मश्री और सागरनन्दी ने ये श्लोक राहुलक के ग्रन्थ से लिए हैं। पद्मश्री बौद्ध था और उसने बौद्ध राहुलक से श्लोक लिए हैं।

एक राहुलक था तथाकथित बुद्ध का पुत्र। पूर्वोक्त राहुलक उससे भिन्न दूसरा राहुलक था। इसका काल विक्रम से कई सौ वर्ष पहले का है। इससे व्याख्यात भरत नाट्यशास्त्र बहुत प्राचीन ग्रन्थ है। ध्यान रहे संख्या ७ में बताया गया काश्मीरक विद्वान् उद्भट इस राहुलक को चिरन्तन राहुलक कहता है।

---

१. ह्यूनत्सांग कौ-मो-लो-लो-तो पाठ पढ़ता है। बील का अनुवाद, भाग १, पृ० ११६। तथा वाटर्स, भाग १, पृ० २४५। ह्यूनत्सांग की जीवनी का पाठ है—कु-मो-लो-तो। बील और वाटर्स—दोनों कुमारलब्ध अनुवाद करते हैं। हमारा विचार है, कुमाररात अथवा कुमारात ठीक अनुवाद होगा। जीवनी का पाठ इस अनुवाद का उत्पादक है।

एक तीसरा राहुलक बौद्ध आचार्य धर्मकीर्त्ति के पश्चात् हुआ । जैन-विद्वान् वादि-देवसूरी स्याद्वाद-रत्नाकर १।१६ में लिखता है—

तथा च धर्मकीर्तिः—प्रतिबन्धकारणाभावात् इति । राहुल एतद् व्याख्याति—प्रतिबन्ध एव कारणं तस्याभावात् ।

बौद्ध परम्पराओं का गंभीर अध्ययन होना चाहिए ।

मंजुश्रीमूलकल्प—ट्रावनकोर राज्यान्तर्गत त्रिवन्दरम राजधानी से परलोकगत सुहृद्वर पं० गणपति शास्त्री ने मंजुश्रीमूलकल्प नाम का एक लुप्त बौद्ध ग्रन्थ सन् १६२५ में प्रकाशित किया था। उसमें ऐतिहासिक सामग्री का पर्याप्त अंश है, पर यह ऐतिहासिक सामग्री काल-गणना के विषय में कुछ अधिक प्रकाश नहीं डालती। मंजुश्रीमूलकल्प का चीनी भाषानुवाद ईसा के ६८०—१००० वर्ष में हुआ ।[1]

भारतीय इतिहास का आठवां स्रोत—नीलमतपुराण और राजतरंगिणी

हमने इनका पृथक् उल्लेख इसलिए आवश्यक समझा है कि नीलमतपुराण शुद्ध भूगोल का और राजतरंगिणी शुद्ध इतिहास का ग्रन्थ है।

राजतरंगिणीकार कल्हण पंडित अपने पूर्वज ऐतिहासिकों के लेखों का बड़ी सावधानता से उपयोग करता है। यद्यपि उसके ग्रन्थ में एक राजा का राज्य-काल ३०० वर्ष दिया गया है, तथापि यह भूल सकारण है। निश्चय ही यह उस राजा के वंश का काल है और उस एक राजा का नहीं। कल्हण ने काल-रक्षा की दृष्टि से बहुत अच्छा किया कि वह काल बिना बिगाड़े याथातथ्य रूप से दे दिया । कल्हण के ग्रन्थ में अनेक भूलें रही हैं। उनमें से एक दो यथा-स्थान निर्दिष्ट की गई हैं।

नीलमतपुराण में भूगोल सम्बन्धी अत्यन्त उपयोगी बातें हैं। विद्वानों ने अभी इस का यथार्थ उपयोग नहीं किया।

भारतीय इतिहास का नवमस्रोत—
विदेशी ग्रन्थ तथा विदेशी यात्रियों के ग्रन्थ

१. पारसी ग्रन्थ—सिकन्दर ने पुरातन पारसी वाङ्मय का बड़ा नाश किया, तथापि जो कुछ पारसी वाङ्मय मिलता है, उसमें भारतीय इतिहास की अनेक बातें मिलती हैं। यथा—पारसी ग्रन्थों में यम वैवस्वत को यिम खिशओस्त आदि नामों से स्मरण किया है।

२. यूनानी यात्री—ज्ञात विदेशी यात्रियों में सब से पहला स्थान मेगास्थनेस का है। उसका लेख है बड़े महत्त्व का, पर कई स्थानों पर कल्पित बातों ने उसका गौरव कुछ अल्प कर दिया है। मेगास्थनेस का मूल ग्रन्थ नष्ट हो चुका है। प्लायनि, सोलिन और अरायन

१. Indian Literature in China and Far East, p. 308.

नाम के तीन यूनानी ग्रन्थकारों ने मेगास्थनेस के उस नष्ट यात्रा-वृत्तान्त के बहुत से उद्धरण अपने ग्रन्थों में दिए हैं। उन्हें एक जर्मन विद्वान् ने एकत्र कर दिया है। उस संग्रह का अंग्रेज़ी अनुवाद अब उपलब्ध है।

३. चीनी यात्री—प्रथम शताब्दी विक्रम से लेकर आठवीं शताब्दी विक्रम तक लगभग १०० प्रसिद्ध चीनी यात्री भारतवर्ष में आए थे। इन में से तीन बहुत प्रसिद्ध हैं, अर्थात् फाह्यान, युवनच्वङ्ग या ह्यू नसांग और इत्सिंग। इन तीनों के ग्रन्थों का भाषानुवाद इस समय मिलता है। चीनी तिथियां कितनी अशुद्ध हैं, इस पर इण्डियन कलचर का एक लेख द्रष्टव्य है।[1]

इत्सिंग की भूल—इन यात्रियों की लिखी हुई सब बातें सच्ची नहीं हैं। इत्सिंग के अनुसार वाक्यपदीय और महाभाष्य-दीपिका का कर्ता भर्तृहरि बौद्ध था। यह कोरी गप्प है। यह भर्तृहरि वैदिक था। संवत् ११९७ में गणरत्नमहोदधि नामक प्रशस्त ग्रन्थ लिखने वाला जैन लेखक वर्धमान विवरणकार भर्तृहरि के विषय में लिखता है—

यस्त्वयं वेदविदामलंकारभूतः वेदाङ्गत्वात् प्रमाणितशब्दशास्त्रः।[2]

इत्सिंग ने भर्तृहरि को बौद्ध लिख कर भारी भूल की है। इत्सिंग ने दो भर्तृहरियों को एक कर दिया, अतः उसका भर्तृहरि का काल अशुद्ध है। वैयाकरण भर्तृहरि विक्रम संवत् के आसपास का ग्रन्थकार है।

४. मुसलमान यात्री—सब से पुराने मुसलमान यात्री सुलेमान सौदागर का ग्रन्थ अब हिन्दी में मिलता है।[3] उसके पश्चात् अबूरिहां अलबेरूनी का बृहद् ग्रन्थ भारतीय इतिहास का एक रत्न है। इस अरबी ग्रन्थ का भाषानुवाद भी अब सुलभ है।[4] इनके अतिरिक्त अरब (=ताजिक) लेखकों ने भारत-सम्बन्धी और भी कई ग्रन्थ लिखे थे। वे अब अरबी भाषा में प्राप्त होने लगे हैं। उनका वर्णन मौलाना सुलेमान नदवी ने "अरब और भारत के सम्बन्ध" नामक ग्रन्थ में किया है।[5]

नदवी का पक्षपात—इस ग्रन्थ के आरम्भ में नदवी जी ने बड़े पक्षपात से काम लिया है। वे लिखते हैं कि पुराने काल में हमारे समस्त देश का कोई एक नाम नहीं था। न जाने एकेडेमी के संचालकों ने ऐसी मिथ्या बात कैसे छपने दी।

५. तिब्बती ग्रन्थकार—गत तेरह सौ वर्ष से तिब्बत देश का भारत से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। तिब्बत के विद्वान् बौद्धधर्म की शिक्षा के लिए पञ्जाब और बङ्ग देश में प्रायः आने जाने लगे थे। उन्होंने समय समय पर भारत-विषयक अनेक ग्रन्थ लिखे। उन में से लामा तारानाथ का ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हो चुका है।

---

१. भाग १४, संख्या १, पृ० १८।

२. कारिका १८१।

३. साधु मोरारबभाइ का भाषा अनुवाद।

४. इण्डियन प्रेस प्रयाग द्वारा प्रकाशित।

५. हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९३०।

तिब्बत के ग्रन्थों से पता चला है कि तिब्बत के लेखकों के पास मागध पण्डित इन्द्रभद्र तथा इन्द्रदत्त और मालव पण्डित भद्रभद्र के भारतीय-इतिहास-सम्बन्धी ग्रन्थ विद्यमान थे। ये ग्रन्थ तिब्बत में १८वीं शती विक्रम में उपलब्ध थे। संभव है तिब्बत के किसी विहार में अब भी पड़े मिल जाएं।[1]

आज से ३०० वर्ष पहले के तिब्बत के ग्रन्थों से निश्चित होता है कि पूर्वकाल के भारतीय विद्वान् अपने अपने देश का इतिहास सदा सुरक्षित रखते थे। तिब्बत के ग्रन्थों का आर्यभाषा में शीघ्र अनुवाद होना चाहिए।

भारतीय इतिहास का दसवां स्रोत—शिलालेख, ताम्रपत्र और मुद्राएं

भारतीय इतिहास का यह स्रोत अत्यन्त आवश्यक और उपादेय है। इसके विना हमारे इतिहास की सुदृढ़ आधार-शिला रखी न जा सकती थी। संवत् १९६१ में लार्ड कर्जन ने भारत के पुरातत्त्व विभाग का आरम्भ किया। तब से अब तक इस विभाग के कर्मचारियों ने पुरातन इतिहास की बड़ी महत्त्वपूर्ण सामग्री खोज ली है। परन्तु एक बात कहे विना हम नहीं रह सकते। जितना धन इस विभाग पर व्यय किया गया है, उतना काम इसने नहीं किया। कारण एक ही है, इस विभाग में उन व्यक्तियों की भारी न्यूनता है जिन्हें पुरातन इतिहास की खोज से अगाध प्रेम हो। बहुत से कर्मचारी वेतनभोगी सैनिकों के समान अपना काम करते हैं, अस्तु।

शिलालेख—इनमें से अशोक के शिलालेख कई संस्करणों में मिलते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा का संस्करण बहुत अच्छा है। गुप्त-लेखों का संग्रह डा० फ्लीट के संस्करण में है। इन दोनों के अतिरिक्त विभिन्न वंशों के शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों के संग्रह अभी प्रस्तुत नहीं किए गए। उनके विना इतिहास-निर्माण में बड़ी कठिनाई होती है। ऐसा काम भारतीय विश्वविद्यालयों को शीघ्र हाथ में लेना चाहिए।

अत्यन्त पुराने शिलालेख—विक्रमखोल का शिलालेख सुप्रसिद्ध है। इस का मुद्रण श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने सन् १९३३ के इण्डियन अण्टीक्वेरी, मार्च मास के अंक में किया था। अभी अभी मकसूदनपुर जिला गया से भी एक बहुत पुराना शिलालेख मिला है।[2]

पाश्चात्य-पद्धति के लेखक और शिलालेख—इन शिलालेखों से पाश्चात्य-पद्धति के लेखकों ने काम लिया है, पर उन्होंने कई बातों के विषय में अकारण मौन धारण कर रखा है। अनेक ऐतिहासिकों के अनुसार महाराज अशोक मौर्य और शुङ्ग पुष्यमित्र के काल में ६० वर्ष से अधिक का अन्तर नहीं है। पुष्यमित्र के काल का अथवा उससे कुछ उत्तरवर्ती काल का एक छोटा सा शिलालेख अयोध्या से मिला था। उसकी लिपि और अशोक के लेखों की ब्राह्मी लिपि में भूतलाकाश का अन्तर है। इतने स्वल्प समय में लिपि का यह महदन्तर

---

१. बिहार और ओडीसा रिसर्च सोसायटी का जर्नल, भाग २७, अंक १, सन् १९४०, पृ० २४१।

२. बिहार और ओडीसा रिसर्च सोसायटी का जर्नल, भाग २६, अंक १, सन् १९४०, पृ० १६१–१६७। सम्पादक प० बैनर्जी शास्त्री।

असम्भव था। पाश्चात्य पद्धति के ऐतिहासिक इस विषय में चुप हैं। हम इसके कारणों पर यथास्थान विचार करेंगे।

शिलालेख और संस्कृत साहित्य—शिलालेखों का अन्वेषण करने वाले और केवल उनही पर आश्रित होकर ऐतिहासिक-परिणाम निकालने वाले अनेक लेखक विशाल संस्कृत-वाङ्मय से बहुधा पराङ्मुख हो जाते हैं। इसी प्रकार अनेक साहित्य-पाठी लोग शिलालेखों के महत्त्व को नहीं समझते हैं। हमारा मत है कि ये दोनों श्रेणियां भूल करती हैं। शिलालेखों का स्पष्टीकरण वाङ्मय पर आश्रित है और वाङ्मय का स्पष्टीकरण शिलालेख करते हैं। यदि संस्कृत वाङ्मय साहसाङ्क शकार और चन्द्रगुप्त गुप्त को एक मानता है और उसे ही संवत् प्रवर्तक कहता है, तो शिलालेखों के चन्द्रगुप्त की संगति इस चन्द्रगुप्त से आवश्यक होगी। जो ऐतिहासिक इस तथ्य से पराङ्मुख होगा वह पक्षपाती कहा जायगा।

लिपि-समता से निकाले परिणाम कई बार भ्रान्ति-जनक होते हैं—भारतीय इतिहास लेखकों में एक पक्षपात कुछ घर कर गया है। कुछ लेखक पहले बहुत से पुरातन लेखों की लिपि-समता कल्पित कर लेते हैं। पुनः उससे कुछ परिणाम निकालते हैं। वे बहुधा भूल कर बैठते हैं। उनका ध्यान हम बहुत शिलालेखों की ओर दिलाते हैं। श्री बेनीमाधव बरुआ और कुमार गङ्गानन्दसिंह ने इस विषय पर एक उत्कृष्ट लेख लिखा है।[1] उन्होंने लिपि की दृष्टि से बूहर और चन्द महाशय का खण्डन किया है। बूहर एक प्रकाण्ड लिपि-विशेषज्ञ माना जाता है, पर वह भूल कर सकता है।

इस विषय में प्रसिद्ध अध्यापक डुब्रेउइल का मत देखने योग्य है—

The alphabets differ much according to the scribes who have engraved the plates; and the documents of the same reign do not sometimes resemble one another.[2]

That palaeography was generally a bad auxiliary to the chronology of dynasties. Very often two documents dated in the same reign differ much from each other.[3]

अर्थात् वंशों का कालक्रम निश्चित करने में लिपि-विद्या प्रायः एक बुरी सहायता है।...डुब्रेउइल महाशय पाश्चात्य पद्धति के ही पण्डित हैं, परन्तु उन्होंने यह निन्दा अकारण नहीं की। वस्तुतः लिपि-विद्या से ऐतिहासिक परिणाम निकालने में हमें बहुत सावधान होना चाहिए।

शिलालेखों में दिए गए संवत्—अनेक वर्तमान लेखक अपने ग्रन्थों में शिलालेखस्थ मूल संवत् उद्धृत नहीं करते और फ्लीट आदि लोगों के कथन को बाबा-वाक्य मान कर

---

१. बड़ौदा शिलालेख, अंग्रेजी में, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, सन् १९२९, पृ० १०८—११२।

२. Ancient History of the Deccan, 1920, Pondicherry, pages 65, 66.

३. वही—पृ० ६७।

उन संवतों के ईसा सन् के साथ कल्पित संतोलित वर्षों को ही लिखते हैं। इस से भारतीय इतिहास अत्यन्त विकृत हो गया है।[1] सत्यप्रिय ऐतिहासिकों को यह प्रणाली त्याग देनी चाहिए। भारतीय संवतों पर गवेषणात्मक ग्रन्थों की अभी न्यूनता है। संवतों के निश्चय में मलमासों की तिथियां बड़ी सहायक हैं। आश्चर्य है कि फ्लीट आदि की कल्पित तिथियां जब मलमास गणना से विरुद्ध पड़ती हैं, तो अनेक वर्तमान अध्यापक उन्हें कैसे स्वीकार करते जा रहे हैं।

मसजिदें और ऐतिहासिक सामग्री—जब भारत के अनेक भागों में मुसलमान विदेशियों का राज्य हुआ, तो उन्होंने अनेक मन्दिरों को तोड़ कर उन की प्रस्तर आदि की सामग्री से मसजिदें बनवाईं। उन मसजिदों में वे शिलाएं वर्ती गईं, जिन पर प्राचीन लेख थे। अजमेर के महोपाध्याय रामेश्वर ओझाजी का एतद्विषयक एक महत्त्वपूर्ण लेख 'हिन्दुस्तानी' (प्रयाग) जुलाई १९३३ में छपा है। इस सामग्री की बड़ी सावधानी से खोज होनी चाहिए।

ताम्रशासन—ताम्रशासनों के विषय में याज्ञवल्क्यस्मृति के आचाराध्याय के निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य हैं—

दत्त्वा भूमिं निबन्धं वा कृत्वा लेख्यं तु कारयेत्। आगामिभद्रनृपतिपरिज्ञानाय पार्थिवः ॥३१४॥
पटे वा ताम्रपट्टे वा स्वमुद्रापरिचिह्नितम्। अभिलेख्यात्मनो वंश्यानात्मानं च महीपतिः ॥३१५॥
प्रतिग्रहपरीमाणं दानच्छेदोपवर्णनम्। स्वहस्तकालसंपन्नं शासनं कारयेत् स्थिरम् ॥३१६॥

इनकी टीका करने वाला संभवतः सम्राट् श्रीहर्ष का समकालिक आचार्य विश्वरूप किन सुन्दर शब्दों में लिखता है—

परिशब्दात् प्रशाद्‌लकस्वहस्तमुद्रास्कन्धावारसमावासनामदेशादेचिह्नितम्। आदावेवाभिलेखनीयाः पूर्व-पुरुषास्त्रयः। वंश्यत्ववचनाच्च स्त्रियोऽपि। अनन्तरमात्मानम्। ततः प्रतिग्रहपरीमाणम्। अस्मिन् देशेऽमुकनाम-धेयान् ग्राम इत्यादि। ततो दानाच्छेदमुपवर्ण्य—एतद् दानफलम्, एतदाच्छेदनफले—

"षष्टिं वर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः। आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत्॥"[2] इत्यादि लेखकनामाङ्कितं स्वहस्तसंयुक्तम्।

विश्वरूप का उपर्युक्त व्याख्यान आज तक मिले शतशः ताम्रपत्रों में दृष्टिगोचर हो रहा है।

---

१. अल्तेकर जी ने पीपल्स हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग ३, सन् १९४७ में अनेक स्थानों पर ऐसा किया है।

२. शतशः ताम्रशासनों के अनुसार यह श्लोक व्यासरचित है। यह सत्य है। स्मृतिचन्द्रिका व्यवहार-काण्ड, भाग १, पृ० २२७ पर यह श्लोक व्यासस्मृति के नाम से लिखा गया है। भारतकृत व्यास ही व्यासस्मृति का कर्ता था। आचार्य विश्वरूप (सातवीं शती विक्रम) व्यासस्मृति से परिचित था। देखो बालक्रीडा भाग १, पृ० ६६। ताम्रशासनों के लेखक परम्परा से व्यासस्मृति को जानते थे। स्मृति-चन्द्रिका के लेख्य प्रकरण के पाठ से ज्ञात होता है कि ताम्रशासनों में बहुधा-पठित—याचते रामभद्रः—वाला श्लोक व्यासस्मृति में विद्यमान था। व्यासजी ने अपने पूर्वज राम की परम्परा को सुरक्षित रखा। महाभारत के भूमिदान-प्रकरण में लगभग ऐसे श्लोक मिलते हैं।

इस प्रकार के श्लोक बृहस्पति स्मृति में, जो कृष्णद्वैपायन व्यास से बहुत पहले अर्थात् विक्रम से ३५०० वर्ष पूर्व विद्यमान थी, मिलते थे। यथा—

> दत्त्वा भूम्यादिकं राजा ताम्रपट्टेऽथ वा पटे। शासनं कारयेद् धर्म्यं स्थानवंश्यादिसंयुतम्॥
> अनाच्छेद्यमनाहार्यं सर्वभाव्यविवर्जितम्। चन्द्रार्कसमकालीनं पुत्रपौत्रान्वयागतम्॥
> दातुः पालयितुः स्वर्गं हर्तुर्नरकमेव च। षष्टिं वर्षसहस्राणि दानच्छेदफलं लिखेत्॥
> स्वमुद्रावर्षमासार्धदिनाध्यक्षाक्षरान्वितम्। एवंविधं राजकृतं शासनं समुदाहृतम्॥

व्यासजी ने बृहस्पति के आदेश का अपनी स्मृति में अनुकरण किया। तदनुसार उत्तरोत्तर के भारतीय सम्राट् ताम्रशासन प्रचलित करते रहे। भारत में ताम्रशासनों का प्रचलन चिरकाल से आ रहा था। इससे जाना जा सकता है कि इस देश में आदि में कितनी अधिक सभ्यता थी। गुप्तकाल से पूर्व के ताम्रशासन ऐतिहासिकों को अभी तक उपलब्ध नहीं हुए, पर खोजने पर अधिक पुराने ताम्रशासन यहां अवश्य मिलेंगे।

मुद्राएं—अब तक पुरातन मुद्राएं पर्याप्त संख्या में मिल चुकी हैं। जैनरल कनिंघम के काल से लेकर अब तक मुद्राओं के विषय में अनेक ग्रन्थ निकल चुके हैं। उन में से इङ्गलैण्ड देश-वास्तव्य एलन महाशय के ग्रन्थ बहुत विचार-पूर्ण हैं और परिश्रम से लिखे गये हैं। विचार-धारा उन की यद्यपि स्वभावतः पाश्चात्य-रीति की है।

आहत-मुद्राएं—भारत की सबसे पुरानी मुद्राएं आहत मुद्राएं हैं। इनकी ग्रन्थियां सुलझाने का महान् यत्न हो रहा है। उन पर पाए गए चिह्न अब समझ में आने लगे हैं। कभी ये चिह्न पूर्णतया समझे जाते थे। याज्ञवल्क्यस्मृति के व्यवहाराध्याय के निम्नलिखित दो श्लोक ध्यान देने योग्य हैं—

> देशान्तरस्थे दुर्लेख्ये नष्टोन्मृष्टे हृते तथा। छिन्ने भिन्ने तथा दग्धे लेख्यमन्यत्तु कारयेत्॥९४॥
> सन्दिग्धार्थविशुद्ध्यर्थं स्वहस्तलिखितं तु यत्। युक्तिप्राप्तिक्रिया-चिह्न-सम्बन्धागमहेतुभिः॥९५॥

पहले श्लोक से एक बात स्पष्ट है कि कई बार ताम्रशासन दोबारा लिखे गए हैं। अतः उन्हें सहसा बनावटी कह देना अयुक्त है।

दूसरी बात विश्वरूप की टीका से ज्ञात होती है। वह चिह्न शब्द पर लिखता है—चिह्नं मुद्रालिपिविशेषादिकम्। हमारा निश्चय है कि यह मुद्रालिपिविशेष जो शतशः पुरातन मुद्राओं पर है, अब भी जाना जा सकता है। अपरार्क का अर्थ है—चिह्नं मुद्रा।[1]

प्राचीन मुद्राओं का वर्णन मनुस्मृति अध्याय ८, मत्स्यपुराण अध्याय २२७, अष्टाध्यायी और अर्थशास्त्र आदि में मिलता है। दीनार के रूपों पर नारदस्मृति का भयसामीप्य देखने योग्य है।[2] अत्यन्त प्राचीनकाल की केवल "आहत"[3] मुद्राएं अभी तक मिली हैं,

---

१. अपरार्क में यह ११ श्लोक है और पाठ में बहुत भिन्न है।

२. त्रिवन्द्रम संस्करण, पृ० २०६, १६.२। तुलना करो—रूप्यरत्नपरीक्षेति। रूप्यमाहतद्रम्मं दीनारादि। आमपाद, अमरकोषटीका, २।९।९९, पृष्ठ ३७।

३. निपातिक्रियाहननादिना दीनारादिषु कृतं रूपमाहतं तदस्यास्तीत्याहतरूप्यम्। व्याकरणकाशिकावृत्ति ५।२।१२०।

परन्तु शुङ्ग-काल तक की कई राज-नामांकित मुद्राएं भी मिल गई हैं। उनसे इतिहास-निर्माण में बड़ी सहायता मिल रही है।

देवकुल—पुराने काल में राजा लोग देवकुल बनवाते थे। महाकवि भास ने प्रतिमा नाटक में एक देवकुल का वर्णन किया है। ऐसे देवकुल पुरातत्त्व विभाग ने खोज निकाले हैं। व्योमवती टीका पृष्ठ ३९२ पर श्रीहर्ष के देवकुल का उल्लेख है। यथा—श्रीहर्ष देवकुलमिति ज्ञाने। यह कौनसा देवकुल था, इसका निर्णय अभी हम नहीं कर पाए।

भारतीय इतिहास-निर्माण में भारतीय वाङ्मय हमारा एकमात्र मूलाधार है। विदेशीय यात्रियों के लेख स्वतन्त्र मूल्य नहीं रखते, प्रत्युत भारतीय लेखों के पोषकरूप हैं। भारतीय मुद्राएं और ताम्रशासन तथा अनेक उत्कीर्ण-लेख भारतीय वाङ्मय का भागमात्र हैं।

पूर्वपक्ष—विशाल भारतीय-वाङ्मय की अमूल्य शुद्ध ऐतिहासिक सामग्री के विरुद्ध अध्यापक रैपसन, केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग १, पृ० ५८ पर लिखते हैं—

Literatures controlled by Brāhmanas, or by Jain and Buddhist monks, must naturally represent systems of faith rather than nationalities...............as records of political progress they are deficient. By their aid alone it would be impossible to sketch the outline of the political history of any of the nations of India before the Muhammadan conquest.

अर्थात्—ब्राह्मण, जैन और बौद्ध भिक्षुओं के वाङ्मय-मात्र से भारत की अनेक जातियों के राजनीतिक इतिहास की मुसलमान-विजय से पूर्व की रूपरेखा बनानी असम्भव है।

उत्तरपक्ष—भारत में अनेक जातियां थीं और हैं, यह अङ्गरेज़ों का मिथ्या आन्दोलन है। इस विषय पर लिखने का यहां स्थान नहीं। यदि भारत की सुदूर सीमाओं पर भारतीयेतर जातियां रहती थीं, तो इसका यह अभिप्राय नहीं कि भारत में अनेक जातियां रहती थीं। अंग्रेजों के इस सतत आन्दोलन का फल उनका मनोनीत भारत-विभाजन है, अस्तु। भारत में केवल एक जाति थी, और है।

दूसरी बात है, भारतीय वाङ्मय-विषयक। हमारा यह बृहद् इतिहास अत्यन्त स्पष्ट रूप से सिद्ध करेगा कि भारतीय वाङ्मय के पूर्ण सन्तोलित एकमात्र आधार पर ही भारत का राजनीतिक इतिहास लिखा जा सकता है। जो लेखक यह बात नहीं समझ सके, वे भारतीय ग्रन्थों के आंशिक अध्येता रहे हैं और उन्होंने अति-विशाल भारतीय वाङ्मय का आमूलचूल अध्ययन नहीं किया।

स्रोतों का संक्षिप्त वर्णन यहां समाप्त किया जाता है। विदेशी यात्रियों के अनेक ग्रन्थ विदेशी भाषाओं में हैं। भारतीय इतिहास के प्रेमियों को इन्हें आर्यभाषा में कर लेना चाहिये। भारतीय दृष्टि से उन की पुनः परीक्षा बड़ी आवश्यक है।

पञ्चम अध्याय

प्राचीन वंशावलियां

आर्य इतिहास की अनवच्छिन्न परम्परा सिद्ध हो गई। उस परम्परा को सुरक्षित रखने वाले स्रोतों का दिग्दर्शन कराया गया। इन स्रोतों में से कई एक में प्राचीन वंशावलियां मिलती हैं। अब इन वंशावलियों के तथ्यातथ्य पर विचार किया जाता है।

वंशविद्या का महत्त्व—आर्यलोग प्राचीनतम काल से वंशविद्या के महत्त्व को समझते रहे हैं। इतिहास के साथ-साथ उन्होंने पुराण और वंशशास्त्रों का लिखना आरम्भ कर दिया था। वर्तमान काल में राज-वंशों की परम्परा का ज्ञान सुरक्षित रखा जाता है, पर विशिष्ट विद्वानों की वंशावलियां तथा विद्या-वंशावलियां सुरक्षित नहीं हैं। आधुनिक विद्वानों की विद्या कुलपरम्परा में नहीं आई। न ही इस बात का पश्चिम के अभिमानी देशों में कोई प्रबन्ध है। यह गुण वर्णाश्रम-प्रधान भारत देश में ही था। यहां अधिकांश लोग सदा विद्वान् रहे, और असाधारण विद्वत्ता तथा त्रिकालज्ञता विशेष कुलों में सुरक्षित रही। वे ऋषि कुल-विशेष संसार-मात्र के पूज्य कुल हैं। उनकी विद्या-परम्परा और वंश-परम्पराएं प्रायः भिन्न थीं। *अतः उनके वंशों का ज्ञान परमावश्यक था। उन वंशों की स्मृति से विद्या की अटूट परम्परा का ज्ञान होता था।*

वंशशास्त्र तथा पुराण संहिता—इस बात को ध्यान में रखकर आर्य ऋषियों ने आदि सृष्टि से वंशशास्त्र निर्माण करने आरम्भ कर दिये थे। ये वंशशास्त्र समय समय पर परिवर्धित होते रहे। उनके ज्ञाताओं के सम्बन्ध में कहा गया है—

(क) तस्माद् भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशवित्तमैः। वायु पुराण ८८। १६६॥

(ख) एवं वंशपुराणज्ञाः गायन्तीति परिश्रुतम्। वायु० ८८। १७१॥

(ग) वंशविशारदाः।

वंशशास्त्रस्थ अनेक वंशों का अन्तिम संकलन कृष्णद्वैपायन श्री वेदव्यास ने एक पुराण में कर दिया। वह पुराणसंहिता उनके छः शिष्यों द्वारा छः पुराणों में विभक्त हुई। उन छः पुराण संहिता-कर्त्ताओं में अकृतव्रण, काश्यप आदि मुनि थे। वे पुराणसंहिताएं अभिप्राय में एक और पाठमात्र में भिन्न थीं—

पाठान्तरे पृथग्भूताः वेदशाखा यथा तथा।

उनमें प्राचीन वायुपुराण की संहिता अन्तर्गत की गई। इन पुराण संहिताओं के अतिरिक्त वैदिक ग्रन्थों और अन्य अनेक शास्त्रों में भी वंशक्रम सुरक्षित रखे गये हैं। संसार की मिश्री, यहूदी आदि अनेक प्राचीन जातियों ने वंशक्रम सुरक्षित रखने की विद्या आर्यों से सीखी।

वंशक्रम सुरक्षित रखने वाले ग्रन्थ—वाल्मीकीय रामायण, शतपथ ब्राह्मण, वंश ब्राह्मण छान्दोग्य उपनिषद्, शांखायन आरण्यक, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, वेदों की आर्षानुक्रमणियां, आयुर्वेद ग्रन्थान्तर्गत वंशावलियां, महाभारत, वायुपुराण आदि पुराण तथा अनेक व्याकरणादि ग्रन्थ हैं, जिनमें वंशक्रम सुरक्षित हैं।

वंशावलियों का मतैक्य—पूर्वोक्त सब ग्रन्थों के यत्न-संशोधित श्रेष्ठ संस्करण अभी तक नहीं निकले। उनमें यत्र तत्र भ्रष्ट पाठ विद्यमान हैं। तथापि वंशावलियों की तुलना बताती है कि इन सब ग्रन्थों का मत समान है। उदाहरणार्थ—
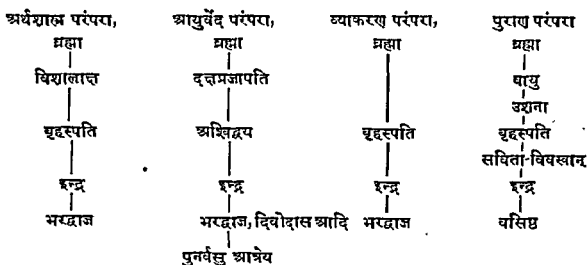
ये चारों वंशावलियां राज अथवा कुल-वंशावलियां नहीं हैं। ये विद्या-वंशावलियां हैं। इनमें ब्रह्मा और इन्द्र नाम सामान्य हैं। तीन में बृहस्पति और भरद्वाज का नाम सामान्य है। इनमें से पहली वंशावलि महाभारत में, दूसरी चरकसंहिता (कलिसंवत् का प्रारंभ) में, तीसरी ऋक्तन्त्र (कलिसंवत् का आरंभ) में और चौथी वायुपुराण (लगभग कलिसंवत् २२०) में है।

ये सब ग्रन्थ ब्रह्मा, बृहस्पति, इन्द्र और भरद्वाज आदि को ऐतिहासिक व्यक्ति मानते हैं। इनके अतिरिक्त उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थ इस सत्य का समर्थन करते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।११ में इन्द्र और भरद्वाज का संवाद उल्लिखित है। भिन्न भिन्न विद्याओं के ये ग्रन्थ एक ही बात कहते हैं। अतः उसकी सत्यता असंदिग्ध है। हमारे बृहद् इतिहास के अगले पृष्ठ इस सत्य को सुप्रमाणित करेंगे।

एक विद्यावंशावलि कहती है—कपिल—आसुरी—पञ्चशिख—देवल, हारीत, पतंजलि आदि। इन आचार्यों में से कपिल के विषय में पाल डाइसन सदृश योग्य ईसाई जर्मन लेखक लिखता है—सांख्याचार्य कपिल सर्वथा कल्पित व्यक्ति है, इति।[1] कितना अज्ञान है। इतिहास न जानने के कारण यूरोप के अच्छे से अच्छे लेखकों ने भी अगणित भूलें की हैं।

1. The rise of the Sankhya system, the authorship of which is attributed to the entirely mythical Kapila, The Philosophy of the Upnishads. By P. Deussen, Eng. tr. p. 239. third reprint, 1919.

इनके अतिरिक्त पौराणिक वंशावलियां हैं। वर्त्तमान काल में पौराणिक वंशावलियों पर परिश्रम करनेवाले दो व्यक्ति हुए हैं, पार्जिटर और सीतानाथ प्रधान। वे वैदिक ग्रन्थ, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि के पण्डित नहीं थे। उन्होंने केवल सूचियों से काम लिया। परिश्रम इन दोनों का महान् है, पर एकदेशीय पाण्डित्य के कारण परिणाम प्रायः अशुद्ध हैं।

राजवंशावलियां—अब आई राजवंशावलियों की बात। केम्ब्रिज हिस्ट्री में इनके विषय में लिखा है—

दूसरी जातियों के अति पुरातन इतिवृत्तों के समान अति प्राचीन पौराणिक वंशावलियां कहानीमात्र हैं। वे इस संसार के शासकों का जन्म सूर्य और चांद से बतलाती हैं, और उनसे पहले ब्रह्मा से। ऐसे वंशवृक्ष धार्मिक दन्तकथाओं अथवा अनुमानित शब्द-व्युत्पत्तियों से एकत्र किए गए, जिनके ऊपर पुराने संसार की परंपराएं और अनुमानित विचार अधिरोपित हैं। इला का अर्थ है आहुति। पर वह चान्द्र वंश की धात्री, मनु की कन्या बना दी गई। ऐसे कहानीमात्र व्यक्ति संसार की उत्पत्ति के विषय में मनुष्य की आरंभिक कल्पनाओं का फल हैं। इन कल्पित व्यक्तियों पर जातियों के नाम डाले जाते हैं। ये वंशावलियों की एक प्रकार की रूपरेखा दे देते हैं, और लिपिबद्ध होने के काल तक इनमें नए नाम जोड़े जाते हैं। एक बार इस प्रकार बनाए जाने पर ऐसी वंशावलियां बिना प्रश्न के स्वीकार की जाती हैं। फिर एक काल आता है जब सूक्ष्म विद्वत्ता उत्पन्न हो जाती है, और अपना पहला कर्त्तव्य समझती है कि पुरातन युगों की कथा के विषय में कल्पित कहानी और तथ्यों को पृथक् पृथक् किया जाय। यह असम्भव दिखाई देता है कि पौराणिक वंशावलियों का वैदिक वाङ्मय के साथ अथवा परस्पर में कोई सन्तोषजनक सम्बन्ध जोड़ा जा सके।[1]

पूर्वोक्त पूर्वपक्ष-परीक्षा

१.—मानव बुद्धि का इससे अधिक दुरुपयोग नहीं हो सकता। पक्षपात की यह पराकाष्ठा है, और कल्पित विकास सिद्धान्त को सर्वत्र व्याप्त देखने का भयावक परिणाम। रैपसनजी! आप मिश्र, सुमेरिया, काल्डिया, बाबल, सीरिया और यूनान आदि की पुरानी वंशावलियों को नहीं समझे, तो भारत की पुरानी राजवंशावलियों को क्या समझेंगे? भारत की वंशावलियों की परम्परा सुरक्षित रखने वाले—

1 The earliest of these geneologies, like the most ancient chronicles of other p oples, are legendry They trace the descent of the rulers of this world from the Sun and Moon and through them from the creator........... Such pedigrees hava been pieced together from fragments of religious lore or from fancied etymologies on to which old-world traditions and speculations have been engrafted. Ila, a daughter of Manu, from whom the Lunar family is derived, personifies, as her name denotes, the sacrificial offering..... ..... Such legendry characters are every where the result of man's early speculations on the origan of the world..... ..... On these supposed individuals the names of the tribes are conferred; and they supply a sort of genealogical frame work which continues to be filled in by tradition until the age of records Once fashioned in this way such cenealogies are accepted without question until the period when critical scholarship (?) arises and undertakes its first duty, which is to discriminate between legend and fact in the story of past ages. Cambridge History of India, Vol. I. p. 304, 305.

१. विद्वान्, २. स्मृतिमान्, ३. दीर्घजीवी, ४. बहुशास्त्रवित्, ५. सत्यनिष्ठ, ६. समस्त राजकीय नीलपटों के देखने में समर्थ, ७. ऋषियों को वंशावलियां और इतिहास सुनाने वाले, ८. निस्पृह, ९. आचारवान् ब्राह्मण थे। अतः उनकी दी हुई प्राचीनतम वंशावलियों को कहानीमात्र कहना अपने को उपहास-पात्र बनाना है। रैपसन की धारणा हेतु और उदाहरण-रहित प्रतिज्ञा-मात्र है। ऐसी प्रतिज्ञाएं अशिक्षित बालक किया करते हैं। पुराणों की प्रायः वंशावलियां और विशेषकर प्राचीनतम वंशावलियां अथवा उनके अंश महाभारत, रामायण, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, आयुर्वेद ग्रन्थ और पारसियों के ग्रन्थों से प्रमाणित होते हैं। इन बहुविध ग्रन्थों के रचयिता कहानीमात्र को अथवा असत्य को सत्य सिद्ध करने का संकल्प नहीं कर चुके थे। उन परम सत्यनिष्ठ ऋषियों पर ऐसा आरोप करना इन ईसाई और यहूदियों का ही कर्म है। जिस देश के अनेक राजा उच्च स्वर से घोषित कर सकते थे कि उनके राज्य में कोई अविद्वान् नहीं, और जिस देश में शतशः शास्त्रकार ऋषि मुनि अपने ग्रन्थ लिखते रहते थे, तथा वंशावलियों के अति प्राचीन भागों को सत्य मानते थे, उस देश में राजाओं की वंशावलियां कल्पित की गईं और समस्त विद्वान् प्रजागण ने उन्हें सत्य मान लिया, यह कहना सूर्य पर थूकना है।

पौराणिक वंशावलियों में लेखक-प्रमाद से कतिपय भूलों अथवा पाठों का ऊपर नीचे होना सम्भव है, पर प्राचीनतम वंशावलियां कल्पित की गईं, इसका स्वप्न कोई पाश्चात्य "सूक्ष्म तार्किक विद्वान्" "Critical Scholar" ही ले सकता है। कवि उशना (कैकौस), वैवस्वत मनु, वैवस्वत यम (Yima Khshaeta), दानवासुर (Dionysios), शण्ड, मर्क (Avesta-Mahrka), विष्णु (Herculese), आदि व्यक्ति जो पौराणिक वंशावलियों के अति प्राचीन पुरुष हैं, यूनानी और ईरानी साहित्य में स्मरण किये गये हैं। इनको स्मरण करने वाला ईरानी साहित्य विक्रम से सहस्र वर्ष से कहीं पहले का है। क्या आर्य लोग ईरानी विद्वानों को कहने गए थे कि हमारी कल्पित बातों को सत्य मान लो और ईरानी विद्वानों ने वे बात सत्य मान लीं। आश्चर्य है रैपसन की बुद्धि पर।

२. आगे चलकर रैपसनजी लिखते हैं कि अति प्राचीन वंशावलियों में पृथ्वी के शासकों के मूल सूर्य और चन्द्र माने गए हैं, और उनसे पूर्व के कर्त्ता ब्रह्माजी। यह बात ईसाई अध्यापक रैपसन को जंची नहीं।

रैपसनजी सूर्य और चन्द्र को द्युलोकस्थ पदार्थ समझते हैं। अन्यथा जैसे युधिष्ठिर ऐतिहासिक पुरुष था वैसे सूर्य अथवा विवस्वान् और चन्द्र अथवा सोम ऐतिहासिक पुरुष क्यों नहीं? विवस्वान् और सोम की ऐतिहासिकता में निम्नलिखित तर्क ध्यान देने योग्य हैं—

१. काठक संहिता में लिखा है—आदित्या इमाः प्रजाः।[1]

२. मैत्रायणी संहिता में लिखा है—आदित्या वा इमाः प्रजाः।[2]

३. तथा ताण्ड्य ब्राह्मण में लिखा है—आदित्या (अदितेरपत्यानि) वा इमाः प्रजाः।
११।१।५४।८।८।१।२॥

१. औंध संस्करण, पृ० १०११।

२. औंध संस्करण, पृ० १६१।

४. शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—द्वय्यो ह वा ऽ इदमग्रे प्रजा आसुः । आदित्याश्चैवाङ्गिरसश्च । ३ । ५ । १ । १३ ॥ शतपथ में पुनः लिखा है—देवा आदित्याः । विवस्वानादित्यस्तस्येमाः प्रजाः ॥ ३ । १ । ३ । ५ ॥

अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है, इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि विवस्वान् अथवा आदित्य की ये प्रजाएं हैं। विवस्वान् अदिति के पुत्र देवों में से एक था। पूर्वोक्त संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थ विक्रम से ३१०० वर्ष से ३३०० वर्ष पूर्व प्रवचन किए गए। इन ग्रन्थों का एक-एक शब्द आज तक कण्ठस्थ रहा है। इन ब्राह्मणों आदि से पूर्व पुरातन ब्राह्मण ग्रन्थ थे। उनका भी एक एक शब्द कण्ठस्थ रखा गया था। उन्हीं पुरातन ब्राह्मण ग्रन्थों से शतपथ आदि के प्रोक्ताओं ने ये बातें लीं। ऐसी अनवच्छिन्न परम्परा की बातों को सत्य न मानना इतिहास से अनभिज्ञता प्रकट करना है। ऐसी अनभिज्ञता पर रैपसन और उसके साथियों को ही बधाई है !

इसी प्रकार निरुक्तकार यास्कमुनि (विक्रम से ३१०० वर्ष पूर्व) विवस्वान् आदित्य का पुरातन इतिहास लिखता है। तदनुसार—

दक्ष[1]
|
सरण्यू + विवस्वान्[2] + सवर्णा
|
यम, यमी,[1] अश्विनौ[1] — मनु[1] [कनिष्ठ पुत्र]
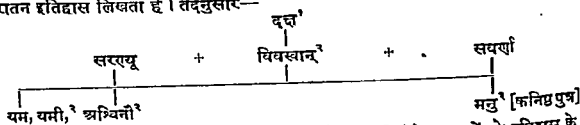
वेद मन्त्रों में इन पदों के यद्यपि अन्य अर्थ हैं, तथापि वेदेतर ग्रन्थों के इतिहास के प्रकरणों में ये शुद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति हैं।

आयुर्वेदीय काश्यप संहिता (विक्रम पूर्व ३३०० से पुरातन) के रेवतिकल्प के ब्राह्मण-सदृश वचन में लिखा है—

इन्द्रो भगः पूषा—ऽर्यमा मित्रावरुणौ धाता विवस्वान् अंशो भास्करस्त्वष्टा विष्णुरिति द्वादश पुरा आदित्या आसन् ।

इस उच्च वैज्ञानिक ग्रन्थ में कल्पित बात का स्थान नहीं था। फिर हम क्यों न मानें कि विवस्वान् एक ऐतिहासिक व्यक्ति था। अहो ! इन पाश्चात्यों की अन्धकारावृत्त बुद्धि !

भारत-युद्ध-काल के भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अर्जुन को कहते हैं और उनके परम मित्र महामुनि व्यास ने यह सत्य गीता चतुर्थ अध्याय में उपनिबद्ध किया—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहमव्ययम् । विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवे ऽब्रवीत् ॥ १ ॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः । स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥

अर्थात्—भगवान् कृष्ण ने यह योग विवस्वान् को दिया। विवस्वान् ने (अपने पुत्र) मनु को और मनु ने (अपने पुत्र) इक्ष्वाकु को। एक अति लंबे काल के जाने पर यह योग नष्ट हो गया।

१. अदितिर्दाक्षायणी। निरुक्त ११ । २३ ॥
२. निरुक्त १२ । १० ॥ विवस्वान् अथवा आदित्य को निरुक्त ८ । १४ के अनुसार भरत कहते हैं।

इन पंक्तियों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारत युद्ध और विवस्वान् के काल में महान् अन्तर था। भारत-युद्ध आज से पांच सहस्र वर्ष पूर्व, और उससे कई सहस्र वर्ष पहले विवस्वान् का काल। इस सत्य को भला कौन मिटा सकता है? इसी से डर कर पाश्चात्यों ने अनेक मिथ्या-कल्पनाएं कीं और इतिहास के मूल ग्रन्थ महाभारत की प्रामाणिकता नष्ट करने का पूरा यत्न किया।

विवस्वान् अथवा आदित्य से मिश्रदेश के पुराने राजवंश चले। अतः रैपसन ने उस सत्य पर भी हाथ साफ किया। मिश्र आदि देशों की पुरातन वंशावलियों को भी कल्पित कह दिया। सत्य है कोई पूछने वाला जो न था। मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी।

३. विवस्वान् आदि से बहुत पूर्व और पृथ्वी की एकार्णव अवस्था के पश्चात् श्री ब्रह्मा जी से वर्तमान सृष्टि का आरम्भ हुआ, इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं। हमारे इस बृहद् इतिहास के दूसरे भाग में योगज शरीरधारी इन ब्रह्माजी का विस्तृत इतिहास रहेगा। आदिदेव या आत्मभू ब्रह्मा का अपभ्रंश (Adam) के रूप में यहूदी लोगों ने सुरक्षित रखा है।

४. ये वंशावलियां धार्मिक दन्तकथाओं अथवा अनुमानित शब्द-व्युत्पत्तियों से एकत्र नहीं की गईं, प्रत्युत अनवच्छिन्न इतिहास के ज्ञाता महापण्डितों और वंशविशारदों द्वारा सुरक्षित रखी गई हैं।

५. वैदिक मन्त्रों में इला का और अर्थ है, पर इतिहास में इला वैवस्वत मनु की कन्या है। इसीलिए मैत्रायणीसंहिता (विक्रम पूर्व ३२०० वर्ष, अथवा कलि संवत् से १५० वर्ष पूर्व) में लिखा है—

ऐडीर्वा इमाः प्रजाः। १।५।१०॥ एडीर्हि प्रजाः। काठक संहिता॥

६. इन व्यक्तियों को कल्पित कहना उपहासास्पद बनना है। यदि रैपसन को संस्कृत व्याकरणशास्त्र की परंपरा का यत्किञ्चित् ज्ञान होता, तो वह यह न लिखता कि जातियों के नाम कल्पित व्यक्तियों पर डाले गए हैं। बृहस्पति, इन्द्र, भरद्वाज आदि महा वैयाकरण तद्धित का प्रयोग जानते थे। उन के परंपरागत नियम आज भी बता रहे हैं कि विवस्वान्, आदित्य, मनु, कश्यप, इडा आदि नाम ऐतिहासिक व्यक्तियों के हैं।

७. अब आई रैपसन की सूक्ष्म विद्वत्ता की बात। इस सूक्ष्म विद्वत्ता का उद्घाटन हम पूर्व कर चुके हैं। सूक्ष्म विद्वत्ता (critical scholarship) तो क्या योरप के संस्कृत पढ़ने वालों में साधारण ज्ञान भी नहीं है। अभी कुछ मास हुए जब हम फ्रांस के संस्कृताध्यापक लुई रेनोजी से देहली में तीन चार मिले थे। वे हमारे साथ किसी बात करने से घबराते थे। कहते थे अङ्गरेजी में अपना पक्ष लिखो। भला, जिनको दूसरे पक्ष का ज्ञान नहीं, वे क्या बात करेंगे। क्या हम इन पाश्चात्यों से कहते हैं कि हमें तुम्हारे पक्ष का ज्ञान नहीं। अस्तु।

८. जिन को रैपसन जी तथ्य (fact) कहते हैं, वे तथ्य नहीं मिथ्या-कथन हैं। योरप और अमेरिका के कथित-संस्कृतज्ञों ने गत सौ वर्ष में पुरातन भारतीय इतिहास को प्रकाशित तो नहीं, पर अन्धकारावृत्त अवश्य कर दिया है।

अध्यापक रैपसन पुनः लिखता है—

पूर्वपक्ष—(अधिसीमकृष्ण के पूर्ववर्त्ती काल के) पौराणिक वंशों का वैदिक वाङ्मय के साथ कोई सन्तोषजनक सम्बन्ध स्थापित करना असम्भव दिखाई देता है।[1]

उत्तरपक्ष—रैपसन जी! अधिसीमकृष्ण के काल के पश्चात् वैदिक वाङ्मय अर्थात् ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् अथवा कल्पसूत्र आदि का प्रवचन नहीं हुआ। अतः आपकी एक धारणा नितान्त निर्मूल है। वैदिक ग्रन्थों में अधिसीमकृष्ण के पश्चात् का कोई ऐतिहासिक वृत्त ढूंढना शशशृङ्ग ढूंढना है।

दूसरी धारणा के विषय में, यदि आप जीवित होते, तो हम आप से प्रार्थना करते कि आप हमारा भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण पढ़ें। आपको पता लगता कि अधिसीमकृष्ण से पुरातन काल के इतिहास के विषय में काठक आदि संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों, और कल्पसूत्रों के ऐतिहासिक उल्लेखों का पौराणिक वंशावलियों से घनिष्ठतम सामञ्जस्य है।

हां, वेदमन्त्रगत अनेक शब्दों से, जिन्हें ईसाई, यहूदी लेखक भूल से नामविशेष समझते हैं, बहुधा ऐसा सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। इसका कारण स्पष्ट है। मूल-मन्त्रों में ऐतिहासिक नाम नहीं हैं। मन्त्रों से शब्द लेकर लोगों ने नाम रखे। नाम रखते समय मन्त्रगत सब बातों का मिलान आवश्यक नहीं समझा गया। यह अटल प्रमाण है कि मन्त्रों में इतिहास नहीं था। मन्त्र, श्रीब्रह्माजी ने ऐतिहासिक घटनाओं से पूर्व, आदि में दे दिए थे।

ब्राह्मण-प्रवक्ता ऋषियों के पास पौराणिक वंशावलियां—ब्राह्मण ग्रन्थों के ऐतिहासिक लेख पौराणिक वंशावलियों के साथ पूर्ण सामञ्जस्य रखते हैं, इसका कारण है—पौराणिक वंशावलियों के रचयिता और विशेषज्ञ स्वयं ऋषि थे। बहुधा उन्होंने स्वयं ब्राह्मणों का प्रवचन किया। यथा पराशर, जातुकर्ण्य और कृष्णद्वैपायन वेद-व्यास आदि ने। कई बार ब्राह्मण प्रवक्ता अपने पूर्वज ऋषियों की रची वंशावलियों की गाथाएं अपने ब्राह्मणों में उद्धृत करते थे। यथा ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मणों में दुष्यन्त-पुत्र भरत-विषयक गाथाएं।[2] ये गाथाएं अथर्वाङ्गिरस ऋषियों के रचे पुराने इतिहास ग्रन्थों में विद्यमान थीं।[3] ये गाथाएं अनृत अर्थात् लोक भाषा में थीं।

1. It Seems impossible to bring the Pauranic genealogies into any satisfactory relation with the Vedic literature or with one another until we approach the period at which they profess to have been recited, that is to say, the reign of Parikshit in the case of the Vishnu Pur. and the reign of Adhisima Krishna in the case of most of the others. C. H. I. vol. I p. 306.

२. देखो वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग पृ० ६६, ६७।

३. यद्यपि पाश्चात्य लेखक लोकभाषा में लिखी गाथाओं की ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्धि की जटिल समस्या की पूर्ति नहीं कर सके, तथापि उन्हें विवश होकर मानना पड़ा है कि गाथाएं ब्राह्मणों से पूर्व विद्यमान थीं। अध्यापक वि० लैसनी लिखता है—

Genealogical slokas as the oldest elements of epic poetry, Archiv Orientalni, X. p. 273—80. quoted in, Annual Bibliography of Indian Archeology, Vol. XIII, for 1938, published 1940.

राय चौधरी की वंशावलि-विषयक भ्रान्तियां—अपने पाश्चात्य गुरुओं के चरणचिह्नों पर चलते हुए कलकत्ता विश्वविद्यालय के इतिहासाध्यापक राय चौधरीजी ने भारतीय इतिहास लिखने में जहां और अनेक भूलें की हैं, वहां अर्जुन-पौत्र जनमेजय-विषयक एक भारी भूल की है। इस भूल का खण्डन यथास्थान अनायास हो चुका है।[1] ये भूलें वंशों को न समझने का फल हैं। इनके विषय में कलकत्ता के वनमाली, वेदान्ततीर्थ, एम० ए० जी ने अच्छा संकेत किया है—

Thus it will be found that Dr. Roy Choudhury's error about the chronological relation between Janamejaya and Janaka has plainly been due to his wrong assumption of the identity of Āssalāyana of Sāvatthi with Kausalya Āsvalāyana; of Kabandhin Kātyāyana with Pakudha Kāccāyana. Consequent on these wrong assumptions, Dr. Roy Choudhury has made the more grevious assertion that Hiranyanābha Kausalya was contemporaroy with Gautama Buddha.[2]

अर्थात्—इस प्रकार यह ज्ञात हो जायगा कि सावत्थी (श्रावस्ती) के आस्सलायन को कौसल्य आश्वलायन और पकुध काचायन को कबन्धी कात्यायन मान लेने का असत्य अनुमान डा० राय चौधरी की जनमेजय और जनक की काल-विषयक भूल का कारण है। इन अशुद्ध अनुमानों के फलस्वरूप डा० चौधरी ने हिरण्यनाभ कौसल्य और गौतमबुद्ध की समकालिकता की स्थापना करके अधिक भयङ्कर भूल की है।

श्री वनमालीजी ने राय चौधरीजी की आलोचना में कई बातें कहीं हैं। उनसे हम पूरे सहमत नहीं हैं, पर उनका पूर्वोद्धृत परिणाम ठीक है। डा० राय चौधरी ने वस्तुतः एक ऐसी भूल की है, जो अक्षम्य है। हिरण्यनाभ कौसल्य और उसका पुत्र पर काठकसंहिता, शतपथ तथा ताण्ड्य ब्राह्मणों में स्मृत हैं।[3] ये ग्रन्थ गौतमबुद्ध से १३०० वर्ष पूर्व मोक्त हो चुके थे। उनमें स्मृत व्यक्ति गौतमबुद्ध से बहुत पूर्वकाल के थे।

प्राचीन वंशावलियों के युक्तियुक्त विचार का न होना ऐसी भूलों का कारण है।

---

१. देखो, हमारा भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण पृ० १२६, १३१।

2. A. B. O. R. I. Vol. XIII, parts III—IV. p. 325.

३. देखो, हमारा भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण पृ० ११८, १२०—१२२।

षष्ठ अध्याय

दीर्घजीवी पुरुष

भारतीय प्राचीन वंशावलियों की तथ्यता प्रमाणित हो चुकी। इन वंशावलियों में से राज-वंशावलियों में कई राजाओं का राज्य-काल सौ अथवा डेढ़सौ वर्ष का लिखा है। ऋषिवंशावलियों में आयु का परिमाण कहीं कहीं एक अथवा दो सहस्र वर्ष तक पहुंचता है।

इन लेखों से पाश्चात्य विद्वानों[1] और उनके एतद्देशीय शिष्यों को संदेह हुआ कि इन ग्रंथों की आयु-विषयक बातें अशुद्ध और असत्य हैं, तथा अधिकांश भारतीय इतिहास श्रद्धेय नहीं।

पूर्वपक्ष—वर्तमान शरीर-शास्त्रज्ञ वैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य की आयु १००, १२५, १४० अथवा १५० वर्ष तक हो सकती है, इससे अधिक नहीं।

उत्तरपक्ष—आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों का मत हो गया है कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति उन्हीं के बनाए आदर्शों और नियमों के अनुसार नई और पुरानी बातों को तोले। किन्तु पाश्चात्यों की बुद्धि बहुत सीमित, ज्ञान अल्पल्प और एकदेशीय, तथा पर-जातियों के ग्रन्थों का अध्ययन सूचियों पर आश्रित और स्थूल है। अतः उनके कल्पित नियम और आदर्श पूर्ण सत्य नहीं हैं। इन लोगों ने अपनी कल्पित-प्रायः बातों का इतना प्रभाव बिठा दिया है कि अनेक विद्वान् उनकी बातों को अशुद्ध समझ कर भी उनके विरुद्ध अपनी लेखनी नहीं उठाते।

इन लोगों के ऐसे विचार का एक और कारण है। वर्तमान संसार में ब्रह्मचर्य, योग-विद्या और यज्ञ का अभाव है। सत्य भाषण भी निचली कोटि में है। भोजन छादन और आचार की यथार्थता का विचार जाता रहा है। युग-प्रभाव और आचार-न्यूनता से लोगों की आयु आज ७०, ८० वर्ष की रह गई है। ऐसे हीन युग के लोगों के लिए यह स्वाभाविक आश्चर्य की बात है कि मनुष्य कभी २००, ३०० या ४०० वर्ष तक जीवित रहा। इसलिए वे इसे असंभव कह कर हंसते हैं।

प्रतिज्ञा—भारतीय इतिहास के अनुसार मनुष्यों की आयु ४०० वर्ष तक तथा देव और ऋषियों आदि की आयु इससे भी कहीं अधिक रही है। अतः इस विषय का अधिक सूक्ष्म विवेचन किया जाता है।

आयु के दैर्घ्य के साक्ष्य

(क) भारतीयेतर जातियों के ग्रन्थों में—आयु की दीर्घता के साक्ष्य भारतीय पुरातन वाङ्मय में ही नहीं, अपितु संसार की अन्य जातियों के अनेक पुराने ग्रन्थों में मिलते हैं। बाईबिल

---

1. That it (The fourth Book of Vishnu Purana) is discredited by palpable absurdities in regard to the longevity of the princes of the earlier dynasties, must be granted; Vishnu Puran, Eng. translation, by H. H. Wilson, Introduction.

की पुरानी पुस्तक में कुछ आचार्यों की आयु ७००, ८०० और ६०० वर्ष की लिखी मिलती है। मिश्र देश के पुराने ग्रन्थों में भी किसी किसी की आयु बहुत अधिक लिखी गई है।

(ख) वैदिक ग्रन्थों से विशद प्रमाण—

१—अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः। कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः॥ मनु० १।८३॥

२—ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुवन्। प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च॥ मनु० ४।६४॥

३—प्रजापतिं वै प्रजाः सृजमानं पाप्मा मृत्युरभिजघान, स तपोऽतप्यत सहस्रसंवत्सरान् पाप्मानं विजिहासन् इति।

४—प्रजापतिस्सहस्रसंवत्सरमास्त। स सप्त शतानि वर्षाणां समाप्येमामेव जितिमजयद्यास्येयं जितिं ताम्। स स्वर्गं लोकमारोहन्देवानब्रवीदेतानि यूयं त्रीणि शतानि वर्षाणां समापयथेति। तथेति। ते त्रीणि शतानि वर्षाणां समाप्य ताम् एव जितिमजयन् यां प्रजापतिरजयत्। स एते सर्व एव प्रजापतिमात्रा अयामयाम् ? इति।

तेऽब्रुवन् देवशरीरैर्वा इदममृतशरीरैस्समापयाम न वा इदं मनुष्यास्समाप्स्यन्ति। एतेमं यशं संभरामेति। तं संवत्सरमभिसमभरन्। तेऽब्रुवन् महद्वा इदं समेव भरामेति। तं द्वादशाहमभिसमभरन्। तेऽब्रुवन् महद्वा इदं समेव भरामेति। तं पृष्ठ्यं षडहमभिसमभरन्। तेऽब्रुवन् महद्वा इदं समेव भरामेति। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३॥

५—शतायुर्वै पुरुषः।

६—अपि हि भूयांसि शतात् वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति।

७—देवा वै सर्वे समेत्य प्रजापतिमपृच्छन् कुतस्त्रेताग्निर्भविष्यतीति स ऊर्ध्वपादोऽधस्ताद्भूम्यां शिरः कृत्वा दिव्यं वर्षसहस्रं तपोऽतप्यत। काठक ब्राह्मणान्तर्गत अग्न्याधेय ब्राह्मण।

८—द्राघीयो हि देवायुषम्, ह्रसीयो मनुष्यायुषम्। शतपथ ७।३।१।१०॥

९—तत उ ह दीर्घतमा दश पुरुषायुषाणि जिजीव।[1] शांखायन आरण्यक २।१७॥

जैमिनि कृत मीमांसा दर्शन में लिखा है—

१०—सहस्रसंवत्सरं तदायुषामसंभवान्मनुष्येषु। अ० ६।७।१३।३१॥

११—सहस्रसंवत्सरममनुष्याणामसंभवात्। कात्यायन श्रौतसूत्र १।६।७॥

अब इन प्रमाणों की संक्षिप्त व्याख्या की जाती है।

पहला प्रमाण मानव धर्मशास्त्र का है। इस धर्मशास्त्र का वर्तमान रूप उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों से कई सौ वर्ष पहले का है। मनु के अनुसार कृतयुग में चार सौ वर्ष, त्रेता में तीन सौ वर्ष, द्वापर में दो सौ वर्ष और कलि में एक सौ वर्ष तक मनुष्यायु का परिमाण है। श्लोक ८१ से मनुष्य शब्द की अनुवृत्ति आरही है। अतः मनु इस श्लोक में मनुष्य की आयु बतला रहा है, देव और ऋषियों की नहीं।

मनु के अगले प्रमाण में ऋषियों की आयु का निर्देश है। ऋषियों की दीर्घ आयु का उल्लेख स्पष्ट करता है कि उनकी आयु मनुष्यों की आयु से अधिक है।

---

१. मूल तथ्य ऋग्वेद १।१५८।६ से लिया गया है—दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे। ऋषि ने वेद से अपना नाम लिया।

तीसरा प्रमाण शबर के मीमांसा भाष्य में सूत्र ६।७।१३।३१ में उद्धृत है। यह किसी ब्राह्मण का वचन है। इसमें प्रजापति का एक सहस्र वर्ष तक तप करना लिखा है। यहां मनुष्य की आयु का परिमाण नहीं कहा।

चौथा प्रमाण जैमिनि ब्राह्मण का है। तदनुसार प्रजापति ने सहस्र संवत्सर का यज्ञ किया। उसे सात सौ वर्ष में फल की प्राप्ति होगई। वह स्वर्गलोक को गया। वह देवों से बोला तुम इसे ३०० वर्ष में समाप्त करो। देवों ने 'तथास्तु' कहकर वैसा ही किया। देव बोले हमने तो देव शरीरों अथवा अमृत पीए हुए शरीरों से यह यज्ञ किया। किन्तु मनुष्य इसे समाप्त नहीं कर सकते। अतः उन्होंने इसे एक संवत्सर का संक्षिप्त रूप दिया। फिर उन्होंने १२ दिन का संक्षिप्त रूप देकर पश्चात् ६ दिन का दिया।

इन वचनों से स्पष्ट है कि देवों और मनुष्यों की आयु में महदन्तर था। देवता और प्रजापति सैंकड़ों वर्ष का यज्ञ कर सकते थे, मनुष्य नहीं। यहां एक और बात भी ध्यान देने योग्य है। इस प्रकरण में संवत्सर शब्द का अर्थ दिन नहीं हो सकता। दिन के लिए ब्राह्मण की इस कण्डिका में अहन् शब्द पढ़ा है। अतः सीधा अर्थ बताता है कि मनुष्यों से देवों की आयु बहुत अधिक होती थी।

पांचवां प्रमाण मनुष्य की आयु का द्योतक है। यह आयु कलि में मनुष्य की सामान्य आयु है। इसके और वेद के अनेक मन्त्रों के अनुसार सौ वर्ष से न्यून मनुष्य को नहीं जीना चाहिए।[1]

संख्या ६ का वचन बहुत स्पष्ट है। मनुष्य सौ से भी अधिक अर्थात् ४०० वर्ष तक जीवित रह सकता है।

सातवां प्रमाण काठक ब्राह्मण का है। तदनुसार प्रजापति ने दिव्य सहस्र वर्ष तक तप किया। यहां दिव्य वर्ष का अर्थ सौर वर्ष प्रतीत होता है। देवों के नगर में सौरवर्ष प्रचलित था। पारसियों के ग्रन्थों के अनुसार यिम=वैवस्वत यम ने सौरवर्ष प्रचलित किया।

आठवें प्रमाण के अनुसार मनुष्यायु की तुलना में देवों की आयु बहुत अधिक है।

नवां प्रमाण शांखायन आरण्यक का है। तदनुसार दीर्घतमा एक सहस्र वर्ष तक जीता रहा। यह बात इतिहास से प्रमाणित है।[2]

दशवां प्रमाण उसी जैमिनि आचार्य का है जिसके प्रोक्त ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रमाण पूर्व संख्या ४ में दिया जा चुका है। इस मीमांसा सूत्र में जैमिनि कहता है कि सहस्र वर्ष का विश्वसृजों[3] का अयन होता है। यह मनुष्यों के लिए असंभव है। क्योंकि उनकी आयु इतनी नहीं होती। इस पक्ष के विकल्प अगले सूत्रों में कहे हैं।[4]

---

१. कीथ की विचित्र सूझ देखिए—But life can hardly have been long—so much stress is laid on long vityasa great boon that it must have been rare. C. H. I. Vol. I. p. 90.

२. देखो हमारा भारतवर्ष का इतिहास। द्वितीय संस्करण। पृ० ७१।

३. विश्वसृज=आदि प्रजापति।

४. देव, ऋषि और मनुष्य का भेद न समझकर पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ ने अपने उपनिषद् भाष्य के उपोद्घात में इस सूत्र का अधूरा अर्थ किया है और ऋषियों की आयु भी मनुष्यवत् सीमित करने की भूल की है।

ग्यारहवां प्रमाण कात्यायन का है। वह जैमिनि का उत्तरवर्ती है और जैमिनि के सूत्र को देखकर लिख रहा है। उसका निर्णय है कि यदि मनुष्यों ने यह यज्ञ करना है तो यहां संवत्सर का अर्थ एक दिन लेना चाहिए।

इन प्रमाणों से सुस्पष्ट है कि देव और ऋषियों की लम्बी आयु एक ऐतिहासिक तथ्य था, कोरी कल्पना नहीं थी। इस कारण वैदिक ऋषि और मुनि मनुष्य की आयु की अपेक्षा देवों और ऋषियों की आयु बहुत अधिक समझते रहे हैं। महाभारत आदि ग्रन्थों में लिखा है कि युधिष्ठिरजी की राजसभा में उपस्थित होने वाला नारद वही नारद था जो देवासुर संग्राम के समय जीता था। वही नारद स्वर्णष्ठीवी की अति पुरातन कथा श्रीकृष्ण के कहने से युधिष्ठिर को उसके सभा प्रवेश के समय सुनाता है। श्रीकृष्ण ने कहा—

प्रत्यक्षकर्मा सर्वस्य नारदोऽयं महामुनिः। एष वक्ष्यति वै पृष्टो यथा वृत्तं नरोत्तम ॥[1]

अर्थात्—हे युधिष्ठिर! यह वही नारद है जिसके साथ स्वर्णष्ठीवी की घटना घटी थी। इसलिए यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि नारद नाम के अनेक ऋषि समय समय पर हो चुके हैं।

पूर्वोक्त लेख में मनुष्य की सामान्य संज्ञा के अन्तर्गत होते हुए भी ऋषि और देवगण मनुष्य से पृथक् माने गए हैं। इसका कारण है। ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में इनको पृथक् पृथक् माना है। इस विषय के कतिपय विचारणीय वचन आगे लिखे जाते हैं—

१. इमं नो दृष्ट्वा मनुष्याश्च ऋषयश्चानु प्रज्ञास्यन्तीति। ऐ० ब्रा० ६।१॥

२. ततो वै मनुष्याश्च ऋषयश्च देवानां यज्ञवास्त्वभ्यायन्। ऐ० ब्रा० ६।१॥

३. ततो वै मनुष्याश्च ऋषयश्च देवानां यज्ञवास्त्वभ्यायन्। ऐ० ब्रा० ७।१॥

४. सर्पेदिति हैक आहुरुभयेषां वा एष देवमनुष्याणां भक्षो यद्बहिष्पवमानः। ऐ० ब्रा० ८।१॥

५. सर्वेषां वा एतत् पंचजनानामुक्थं देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणां च पितॄणां च। ऐ० ब्रा० १३।७॥

६. त्रयः प्राजापत्या देवा मनुष्याः असुराः। बृ० उ० ५।२॥

इन प्रमाणों में देव, ऋषि और मनुष्य का पृथक् २ उल्लेख मिलता है। अतः अनेक शास्त्रों में जहां देव और ऋषियों की आयु अधिक लिखी है, इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मनुष्य भी उतनी अधिक आयु जीवित रहे हैं। मनुष्य की अधिकतम आयु ४०० वर्ष है।

ऋषियों और देवों की दीर्घ आयु का रहस्य—ऋषि लोग तप, योग, ब्रह्मचर्य और रसायन सेवन से दीर्घ आयु को प्राप्त हुए तथा देव लोग अमृत सेवन से। पूर्वोद्धृत जैमिनीय ब्राह्मण १।३ के प्रमाण में स्पष्ट लिखा है—

तेऽब्रुवन् देवशरीरैर्वा इदममृतशरीरैस्समापयाम।

अर्थात्—देव बोले, हम इस यज्ञ को देव शरीर अथवा अमृत-शरीर के कारण तीन सौ वर्ष में समाप्त कर पाए हैं। अमृत की कथा कल्पना नहीं है। विद्या का यह सूक्ष्मतम रहस्य है। अन्यत्र काठक ब्राह्मण में लिखा है—

---

१. महाभारत शान्तिपर्व अ० ३०।४२॥

देवाश्च वा असुराश्चापां रसममन्थंस्तस्मान्मथ्यमानादमृतमुदतिष्ठत् ।[1]

अर्थात्—देव और असुरों ने मिलकर जलों के रस का मन्थन किया, और उसमें से अमृत प्राप्त किया।

वाल्मीकीय रामायण में अमृत मन्थन प्रकरण का सुन्दर वर्णन है—

तान्यौषधान्यानयितुं क्षीरोदं यान्तु सागरम् । जवेन वानराः शीघ्रं संपातिपनसादयः ॥
हरयस्तु विजानन्ति पार्वतीस्ता महौषधीः । संजीवकरणीं दिव्यां विशल्यां देवनिर्मिताम् ॥
चन्द्रश्च नाम द्रोणश्च क्षीरोदे सागरोत्तमे । अमृतं यत्र मथितं तत्र ते परमौषधीः ॥
ते तत्र निहिते देवैः पर्वते परमौषधी ।[2]

अर्थात्—क्षीरसागर अथवा वर्तमान कास्पीयन सागर के पास चन्द्र और द्रोण नामक पर्वत हैं। उनके समीप अमृत मन्थन हुआ।[3] अमृत मन्थन के इतिहास का पूर्ण स्पष्टीकरण हम इस इतिहास के द्वितीय भाग में करेंगे।

(ग) चीनी यात्री का साक्ष्य—अब चीनी यात्री ह्यून् सांग के शिष्य का लेख पढ़िये—अगले दिन वह (ह्यून् सांग) तेहेक (टक्क=पञ्जाब) राज्य की पूर्वी सीमा पर पहुंचा और एक बड़े नगर में प्रविष्ट हुआ। नगर के पश्चिम की ओर, राजपथ की उत्तर दिशा में एक बड़ा अन्—लो (आम्र) वृक्षों का वन है। इस वन में सातसौ वर्ष का एक ब्राह्मण रहता था। वह आकृति में लगभग तीस वर्ष का दिखता था। उसका रूप-रंग पूर्ण था। उसकी बुद्धि देव-प्रकृति की थी। उसकी तर्क शक्ति अपार थी।............, वह वेद और शास्त्रों के अध्ययन में विख्यात था। उसके दो शिष्य थे। जिनमें से प्रत्येक एकसौ अथवा अधिक आयु का था।[4] इति।

चीनी यात्री ने इस विषय में अत्युक्ति नहीं की। वह पुरुष अवश्य योगी और रसायन-सेवी था।

(घ) वैज्ञानिक ग्रन्थों में—आजकल रूस के वैज्ञानिक इस विषय का अधिक अध्ययन कर रहे हैं। उनका कथन है कि मनुष्य तीनसौ वर्ष तक जीवित रह सकता है। वर्तमान काल में आयुर्विज्ञान का प्रायः अभाव है। प्रसिद्ध फ्रेंच डाक्टर अलेक्सिस करेल लिखता है—

परन्तु हम (वर्तमान डाक्टर) अपने अस्तित्व के काल को लम्बा करने में सफल नहीं हुए।[5] इति।

---

१. काठक ब्राह्मण-संकलने ममा ब्राह्मण ।

२. दाक्षिणात्य पाठ, युद्धकाण्ड ५० । २९—३२ ॥

३. अमृत नाम का एक स्थान विशेष था—
क्षीरोदस्योत्तरे कूले उदीच्यां दिशि देवताः । अमृतं नाम परमं स्थानमाहुर्मनीषिणः ॥ हरिवंश, भविष्य पर्व ६० । ६ ॥ अमृतान्तर्यभवः । वायुपु० ६६ । ७६ ॥

४. हामन-हुई-ली कृत ह्यूनसांग की जीवनी, बील का अंग्रेजी अनुवाद, सन् १८८८, भा० २, पृ० ७४-७५ ।

५. But we have not succeeded in increasing the duration of our existence. Man, the Unknown, 1948, p. 163. (Pelican books)

जो डाक्टर अपने जीवन को लम्बा नहीं कर सके, वे लम्बी आयु के विषय में कुछ कहने में असमर्थ हैं। उनके परिमित ज्ञान के कारण हम पुरातन दिव्य ज्ञान को छोड़ नहीं सकते। आयुर्विज्ञान के अप्रतिम द्रष्टा महर्षि अग्निवेश और चरक लिखते हैं—

> यथाऽमराणाममृतं यथा भोगवतां सुधा। तथाऽभवन्महर्षीणां रसायनविधिः पुरा ॥७७॥
> न जरां न च दौर्बल्यं नातुर्यं निधनं न च। जग्मुर्वर्षसहस्राणि रसायनपराः पुरा ॥७८॥[1]
> इदं रसायनं चक्रे ब्रह्मा वार्षसहस्रिकम्।[1]

अर्थात्—जिस प्रकार देव अमृत से, नाग (और पितर) सुधा से, दीर्घ आयु तक जीवित रहे, वैसे महर्षि लोग पुराने दिनों में (महाभारत युद्ध से पूर्व) रसायन-सेवन से दीर्घ-जीवी हुए। वे वृद्धावस्था, निर्बलता, आतुरता और मृत्यु को कई सहस्र वर्ष तक पुरातन कालों में रसायन-सेवी होने के कारण प्राप्त न हुए।

ब्रह्मा ने यह बहुत लम्बी आयु देने वाली रसायन बनाई।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में अन्यत्र भी ऐसे लेख पाये जाते हैं। वहीं यह भी लिखा है कि शतायुर्वै पुरुषः। इसका तात्पर्य है कि कलि के आरम्भ में जब आयुर्वेद के वर्तमान ग्रन्थों का अन्तिम संकलन हुआ, उस समय मनुष्य की सामान्य आयु सौ वर्ष रह गई थी। वेद की प्रार्थना के अनुसार सौ वर्ष से न्यून आयु होना अच्छा नहीं। चरक संहिता के पूर्वोक्त प्रमाण में यह स्पष्ट किया गया है कि अमृत के प्रयोग से देवों की आयु और सुधा के प्रयोग से नाग अथवा पाताल देश के विशिष्ट व्यक्तियों की आयु बहुत लम्बी हो गई थी। सोराब और रुस्तम की सुप्रसिद्ध कथा के अन्त में इस सुधा का संकेत मिलता है। यह बात मूल में सत्य थी।

आगे भारतीय इतिहास के उन कतिपय ऋषियों, देवों और प्रतापी राजाओं की आयु लिखी जाती है जो अपरिमित अर्थात् परिमाण से अधिक आयु भोगने वाले हुए—

१. मार्कण्डेय—भगवान् वाल्मीकि रामायण में लिखते हैं—मार्कण्डेयः सुदीर्घायुः।[2] अर्थात्—मार्कण्डेय न केवल दीर्घायु प्रत्युत अति दीर्घायु थे। वही मार्कण्डेय वनवास के दिनों में युधिष्ठिर आदि पाण्डवों से मिले। महाभारत में लिखा है—बहुवत्सरजीवी च मार्कण्डेयो महातपाः।[3] अर्थात्—मार्कण्डेय बहुत वत्सर जीने वाले थे। पुनः लिखा है—दीर्घमायुश्च कौन्तेय स्वच्छन्दमरणं तथा।[4] अर्थात्—हे युधिष्ठिर, मार्कण्डेय दीर्घायु और स्वच्छन्द मरण वर वाले हैं।

२. लोमश—महाभारत आरण्यक पर्व ६२।५ में लोमश महाराज युधिष्ठिर से कहता है कि मैंने दैत्य, दानव देखे।

३. असुर मय—शिल्पी मय ने ययाति के समकालिक वृषपर्वा की सभा बनाई थी। वह युधिष्ठिर काल में जीवित था।

४. इन्द्र—अदिति का पुत्र देवराज इन्द्र एक ऐतिहासिक पुरुष था। यह वेद मन्त्रों वाला इन्द्र नहीं था। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार इन्द्र और विरोचन प्रजापति के पास

---

१. चरक संहिता, चिकित्सास्थान, अध्याय १। २. दाक्षिणात्य पाठ, बालकाण्ड ७१।४॥
३. आरण्यकपर्व १८०।५, ३६, ४०॥ ४. आरण्यकपर्व १८७।५१॥

अध्ययनार्थ गए। इन्द्र ने १०१ वर्ष का ब्रह्मचर्य किया—तद् यदाहुर् एकशतं ह वै वर्षाणि मघवान् प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास।[1]

जिसने १०१ वर्ष ब्रह्मचर्य किया, उसकी आयु साधारण रूप से भी अधिक होनी चाहिए। इस पर इन्द्र ने तो अमृत पान किया था।

५. नारद—नारद इन्द्र का समवयस्क था। छांदोग्य उपनिषद् में नारद और सनत्कुमार का संवाद लिखा है। तदनन्तर वह दाशरथि राम के काल में जीवित था। उसके परामर्श से वाल्मीकि ने रामचरित की रचना की। हमारे भारतवर्ष का इतिहास में अजमीढ कुल की एक वंशावलि दी गई है।[2] उसका कुछ भाग नीचे उद्धृत किया जाता है—

- भृम्यश्व
  - कांपिल्य
  - यवीनर
  - सृञ्जय
    - पिजवन
      - सुदास
        - सहदेव
          - सोमक
  - मुद्गल[3]
    - वध्र्यश्व-मेनका अप्सरा
      - दिवोदास[4]
        - मित्रयु
          - मैत्रायण सोम
      - अहल्या = मिथुन
        - शतानन्द
          - सत्यधृति
            - कृप-कृपी
  - बृहदिषु
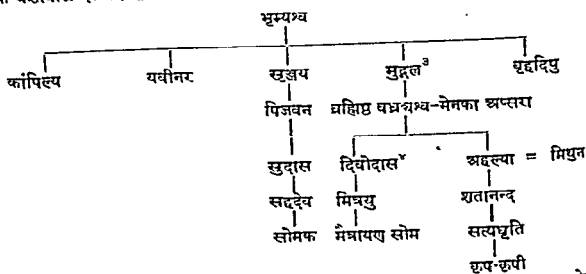
इस वंशावलि में पढ़े गए सुदास, दिवोदास, अहल्या और शतानन्द आदि राम के काल में थे। अहल्या मेनका अप्सरा की कन्या थी। सहदेव और उसके पुत्र सोमक ने पर्वत तथा नारद से उपदेश लिया। इस विषय में ऐतरेय ब्राह्मण का अकाट्य साक्ष्य है—

एतमु हैव प्रोचतुः पर्वतनारदौ सोमकाय साहदेव्याय। सहदेवाय सार्ञ्जयाय।

सामविधान ब्राह्मण के वंश के अनुसार तीन नाम निम्नलिखित हैं—

- नारद
  - विष्वक्सेन = कृष्ण देवकीपुत्र
    - व्यास पाराशर्य

इस विद्या-वृक्ष से ज्ञात होता है कि नारद से साम-विद्या श्रीकृष्ण ने सीखी और उनसे व्यास पाराशर्य ने। ये तीनों परम मित्र थे।

---

१. छां० उप० ८।११।३॥ २. पृ० १११। ३. मुद्गलो भार्म्यश्व ऋषिः। निरुक्त ९।२४।

४. तुलना करो—दिवोदासो वै वाध्र्यश्वः [illegible] ....[illegible] उपनिषत्। मैत्रायणि ब्राह्मण [illegible]॥

भारतीय इतिहास में नारद एक ही है। यह दक्ष प्रजापति के काल से भारत युद्ध काल तक जीवित रहा। अनेक नारदों की कल्पना प्रमाण-रहित है। भारतीय इतिहास सत्य है और उसमें वर्णित नारद ऋषि वस्तुतः दीर्घजीवी था।

६. पर्वत—नारद का भागिनेय पर्वत था।[1]

७. च्यवन—हमारे भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण पृ० ५६ पर भार्गवों की वंशावलि दी गई है। तदनुसार महर्षि भृगु का पुत्र च्यवन था। उसकी माता पुलोम-दुहिता पौलोमी थी। वह कवि उशना का भ्राता था। वह रसायन बल से दीर्घजीवी हुआ। चरक संहिता चिकित्सा स्थान में लिखा है—

> प्राणकामाः पुरा जीर्णाश्च्यवनाद्याः महर्षयः। रसायनैः शिवैरेतैर्बभूवुरमितायुषः ॥१।२।२०॥
> भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन् विकृतिं गतः। वीतवर्णस्वरोपेतः कृतस्ताभ्यां पुनर्युवा ॥१।४।४४॥

पूर्वोद्धृत प्रथम श्लोक में अमित आयु का अर्थ अपरिमित आयु है। कात्यायन कहता है—

> अपरिमितं प्रमाणाद् भूय इति।[2]

च्यवन की कितनी आयु थी, यह हम अभी तक पूर्ण निर्णय नहीं कर पाए।

८. दुर्वासा—दुर्वासा का कुल-परिचय निम्नलिखित है—
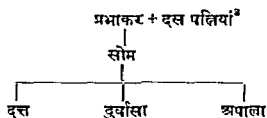
प्रभाकर चक्रवर्ती महाराज मान्धाता से कुछ वर्ष पूर्व विद्यमान था। दत्त आर्य इतिहास का प्रसिद्ध दत्तात्रेय था। दत्त और दुर्वासा की कनिष्ठा भगिनी अप्सरा-कन्या ब्रह्मवादिनी अपाला थी। दुर्वासा युधिष्ठिर के काल में जीवित था।

९. बक दाल्भ्य—महायोगी बक दाल्भ्य छान्दोग्य उपनिषद् २।१२ के अनुसार नैमिषीयों का उद्गाता था। महाभारत आरण्यकपर्व २७।४ के अनुसार बक दाल्भ्य युधिष्ठिर के समय विद्यमान था।

१०. जामदग्न्य राम—सुप्रसिद्ध परशुराम हैहय अर्जुन के काल में जीवित था। दाशरथि राम के साथ उसका संवाद हुआ। महाभारत के अति प्रसिद्ध महासेनापति आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म और धनुर्धर कर्ण ने इन्हीं से अस्त्रविद्या सीखी थी। महाभारत संहिता की रचना तक परशुराम जीवित था। एक परशुराम की इतनी लम्बी आयु वर्तमान वैज्ञानिकयुवों के लिये आश्चर्य का कारण बन रही है।

---

१. नारदो मातुलश्चैव भागिनेयश्च पर्वतः ॥६॥ शान्तिपर्व, अध्याय ३०।
२. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र रुद्रदत्तवृत्ति, २।१।१ में उद्धृत।
३. भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० ६६।

११. भरद्वाज—बृहस्पति पुत्र ऋषि भरद्वाज चक्रवर्ती भरत के काल में जीवित था। भरद्वाज का विस्तृत वर्णन भारतवर्ष का इतिहास पृ० ८५ तथा पं० युधिष्ठिर मीमांसकजी कृत संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास पृ० ६६–६८ तक देखिए। भरद्वाज की मृत्यु का उल्लेख महाभारत, आदिपर्व, अध्याय १३० के निम्नलिखित शब्दों में है—

ततो व्यतीते पृषते स राजा द्रुपदोऽभवत्।
पञ्चालेषु महाबाहुरुत्तरेषु नरेश्वरः।
भरद्वाजोऽपि भगवानारुरोह दिवं तदा॥

अर्थात्—यज्ञसेन द्रुपद के पिता राजा पृषत् के दिवंगत होने के समय भरद्वाज भी परलोक सिधारा। इसलिए ऐतरेय आरण्यक में लिखा है—

भरद्वाजो ह वा ऋषीणामनूचानतमो दीर्घजीवितमस्तपस्वितम आस। ऐ० प्रथम आरण्यक, द्वितीय अध्याय, द्वितीय खण्ड।

अर्थात्—महीदास ऐतरेय के काल में भरद्वाज जीवित न था। यह आस क्रिया से सिद्ध है।

१२. दीर्घतमा मामतेय—शांखायन आरण्यक २।१७ के अनुसार दीर्घतमा एक सहस्र वर्ष जीता रहा।[1]

दो अन्य वंश

ब्रह्मा → वसिष्ठ → शक्ति → पराशर → कृष्ण द्वैपायन

कपिल → आसुरि → पञ्चशिख → देवल, हारीत

पहला वंश कुल-परंपरा का है। इसके वसिष्ठ और शक्ति दाशरथि राम के काल में जीवित थे। इस कुल में राम के काल से महाभारत काल तक केवल तीन नाम हैं। पराशर की आयु २ सहस्र वर्ष से कुछ अधिक थी।

दूसरा वंश विद्या-परंपरा का है। कपिल बहुत दीर्घजीवी था। पंचशिख के विषय में लिखा है—

आसुरेः प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिरजीविनम्।

पञ्चशिख भारत युद्ध काल तक जीवित था।[2] देवल और हारीत भारत-युद्ध काल में वर्तमान थे।

पाण्डुरङ्ग वामन काणे ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में देवल का काल ईसा सन् के आरंभ के समीप का माना है। इतिहास को न जानने और विकृत करने के कारण उन्होंने ऐसी भूल की है।

---

१. हमारा भारतवर्ष का इतिहास, संस्करण द्वितीय, पृ० ७१, टिप्पण ३।

२. भारतवर्ष का इतिहास, द्वि० सं०, पृ० २१२, २११।

भारत युद्ध काल के कतिपय दीर्घजीवी पुरुष

१. वसुदेव—श्रीकृष्ण ने १२५ वर्ष की आयु में देह त्यागा। उस समय उनके पिता वसुदेव जीवित थे।

२. द्रोण—महाभारत द्रोणपर्व में लिखा है—

आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः। संख्ये पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥

अर्थात्—भारत युद्ध में ४०० वर्ष का द्रोणाचार्य १६ वर्ष के युवा के समान युद्ध कर रहा था। द्रोणाचार्य युद्ध से लगभग ५० वर्ष पहले हस्तिनापुर में आया। यदि पूर्वोक्त श्लोक में अशीति पञ्चक का अर्थ ८५ वर्ष किया जाए तो हस्तिनापुर आने के समय द्रोण ३५ वर्ष का होगा। पर आदिपर्व में लिखा है—

तेऽपश्यन्ब्राह्मणं श्याममापन्नपलितं कृशम्।[1]

पुनः कुरुपाण्डव कुमारों की विद्याप्राप्ति की परीक्षा के समय परीक्षार्थ बनाए गए रंगमंच का वर्णन करते हुए लिखा है—

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान्। शुक्लकेशः सितश्मश्रुः शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥[2]

अर्थात्—हस्तिनापुर में आने के समय और कुमारों की परीक्षा के समय द्रोण पलित केशों वाला था। अतः अशीतिपंचक का अर्थ ८५ ठीक नहीं बैठता। ३५ वर्ष की आयु में महाभारत के काल में द्रोण सदृश तपस्वी ब्राह्मण पलित केशों वाला नहीं हो सकता।

३. द्रुपद—उद्योगपर्व के आरम्भ में महाराज द्रुपद को सम्बोधन करते हुए श्रीकृष्णजी कहते हैं—

भवान्वृद्धतमो राज्ञां वयसा च श्रुतेन च। शिष्यवत्ते वयं सर्वे भवामेह न संशयः ॥[3]

अर्थात्—उस काल के भारतीय राजाओं में द्रुपद वृद्धतम था। फिर इस वृद्धावस्था में उसके धृष्टद्युम्न और द्रौपदी सन्तान कैसे हुई। धृष्टद्युम्न और द्रौपदी की उत्पत्ति के पाठ महाभारत के भिन्न २ कोशों में कुछ विकृत होगए हैं। परन्तु उनसे यह परिणाम स्पष्ट निकलता है कि ये दोनों नियोगज थे।

४. कृप—आचार्य कृप बहुत वृद्ध था।

५. भीष्म—भारत युद्ध के समय भीष्म लगभग १६० वर्ष का था। इसमें अणुमात्र संशय नहीं।

६. बह्लिक—यह शंतनु का भ्राता था। युद्ध के समय यह लगभग १८५ वर्ष का था। उसका पुत्र सोमदत्त, सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा और भूरिश्रवा के सब पुत्र भारतयुद्ध में लड़ रहे थे। व्यसनग्रस्त वर्तमान संसार को इसके समझने के लिए कुछ तप करना पड़ेगा।

आयु विषय में संक्षेप में सब लिख दिया। विद्वान् लोग इस में अधिक खोज करें।

एक पूर्वपक्षी कहता है—

---

१. म० १४१।१२ ॥ २. महाभारत, आदिपर्व, म० १४४।२१॥ ३. अध्याय ५।६॥

पूर्वपक्ष—यदि सब राजाओं की आयु लम्बी थी, तो फिर सारे दीर्घ काल तक राज्य नहीं कर सकते। उत्तर का व्यक्ति तो पहले ही वृद्धावस्था में राजा होगा, पुनः उसका राज्यकाल लम्बा नहीं हो सकता।

उत्तरपक्ष—यह बात सर्वथा ठीक है। जहां जहां आयु अधिक लम्बी हुई है, वहां उत्तराधिकारी देर तक राज्य नहीं कर पाया। जहां उसने देर तक राज्य किया है, वहां वह पिता की वृद्धावस्था की सन्तान अथवा नियोगज सन्तान है। अनेक बार युद्धों में ज्येष्ठ पुत्रों के मरने पर कनिष्ठतम पुत्रों को राज्य मिला है। पूर्वपक्षी ने निश्चित इतिहास से कोई स्पष्ट दृष्टान्त नहीं खोजा, अतः यह भ्रम हुआ है। कई बार पुत्र सिंहासन पर नहीं बैठे, प्रत्युत पौत्र बैठे हैं।[1] ये सब बातें भावी खोज अधिक स्पष्ट कर देगी। गुप्तों के काल में राज्यकाल का अनुपात २५ वर्ष था और महाभारत काल में ५० वर्ष तथा राम के काल में ६० वर्ष और मान्धाता के काल में ७० अथवा ७५ वर्ष।

भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यासजी की आयु ३०० वर्ष से अधिक थी। वे भीष्म के लगभग समवयस्क थे। भीष्म के लगभग १६० वर्ष की आयु में निधन के पश्चात् युधिष्ठिर ने ३६½ वर्ष राज्य किया। तत्पश्चात् परीक्षित का राज्य रहा। फिर जनमेजय के राज्य में महाभारत की कथा सुनाई गई। व्यास उससे कुछ पश्चात् तक जीवित रहे। यह एक ऐसा सत्य है, जिसमें किसी यथार्थ ऐतिहासिक को अविश्वास नहीं हो सकता। अतः व्यास से बहुत-पूर्व-काल के ऋषियों का आयु निस्सन्देह अधिक लम्बा था।

प्राचीन काल में दीर्घ आयु की प्राप्ति धर्म का मार्ग समझी जाती थी। महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय १६१ में दीर्घायु का अध्याय द्रष्टव्य है।

---

१. वंशावलियों में सुत, पुत्र और दायाद शब्द प्रायः प्रयुक्त हुए हैं। दायाद का अर्थ यद्यपि कभी कभी कनिष्ठ पुत्र भी है, तथापि यह शब्द बहुधा दायाद [illegible] के लिए नहीं बर्ता गया। अतः इस विषय में अन्वेषण की भारी आवश्यकता है।

सप्तम अध्याय

कालमान

भारत के ऐतिहासिक ग्रन्थों में कैसा कालमान प्रयुक्त हुआ है तथा तिथिक्रम के समझने का सरल उपाय क्या है, इसका जानना अत्यन्त आवश्यक है। कालमान का यद्यपि एक पृथक् शास्त्र है, तथापि उसका अति संक्षिप्त रूप यहां लिखा जाता है।

निमेष से दिनमान तक—निमेष के अवान्तर विभाग से दिनमान तक तीन प्रकार का मान पुरातन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। एक प्रकार का है कौटल्य अर्थशास्त्र का, दूसरा सुश्रुत का और तीसरा विष्णुधर्मोत्तर का। ये तीनों प्रकार निम्नलिखित हैं—

कौटल्य[1]		सुश्रुत[2]		विष्णुधर्मोत्तर[3]	
¼ निमेष	= तुट				
२ तुट	= लव				
२ लव	= निमेष	१ लघु अक्षर उच्चारण	=निमेष	१ लघु अक्षर उच्चारण	=निमेष
५ निमेष	= काष्ठा	१५ निमेष[4]	=काष्ठा	२ निमेष	=त्रुटि
३० काष्ठा	= कला	३० काष्ठा	=कला	१० त्रुटि	=प्राण
४० कला	= नाडिका	२० कला	=मुहूर्त्त	६ प्राण	=विनाडिका
२ नाडिका	= मुहूर्त्त			६० विनाडिका	=नाडिका
				६० नाडिका	=अहोरात्र[6]
१५[5] मुहूर्त्त	= अहोरात्र	३० मुहूर्त्त	=अहोरात्र	३० मुहूर्त्त	=अहोरात्र
१५ अहोरात्र	= पक्ष	१५ अहोरात्र	=पक्ष		
२ पक्ष	= मास	२ पक्ष	=मास		
२ मास	= ऋतु				

१. आदि से अध्याय ४१। २. सूत्र स्थान ६।५—॥ ३. हेमाद्रि कृत चतुर्वर्ग चिन्तामणि, कालखण्ड।

४. तुलना करो—काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलान्ताम्।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन्मुहूर्त्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ॥ वायु० ५०। १६६॥

५. यहां पन्द्रह मुहूर्त का एक अहोरात्र चिन्त्य है।

६. Babylonian sixtyfold division of the day and night. Vedic Index, Vol. I. p. 5.
बेबिलोनिया वालों ने काल का ६० की दृष्टि का विभाजन आर्यों से लिया। उसका प्रमाण निम्नलिखित है—

६० त्रुटि = १ विनाडिका
६० विनाडिका = १ नाडिका
६० नाडिका = १ अहोरात्र
६० अहोरात्र = १ ऋतु

आधुनिक यूरोप में १ घण्टे का ६० मिनट में और १ मिनट का ६० सेकण्ड में विभाजन इनके अनुकरण पर है॥

वर्तमान पाश्चात्य काल में सबसे सूक्ष्म काल विभाग सैकण्ड है। विष्णुधर्मोत्तर की विधि में २$\frac{1}{2}$ नाडिका का १ घण्टा, तथा १ नाडिका के २४ मिनिट और विनाडिकाएं ६० बनेंगी। अर्थात् २$\frac{1}{2}$ विनाडिका का १ मिनट और १ विनाड़िका के २४ सैकण्ड होंगे। इस प्रकार क्योंकि १ विनाडिका के ६ प्राण होते हैं, अतः १ प्राण के ४ सैकण्ड अथवा १५ प्राण का १ मिनिट होता है।

शतपथ ब्राह्मण १०।३।२।८ में प्राणापान के विषय में एक श्लोक कहा है—

> शतꣳ शतानि पुरुषः समेनाष्टौ शता यन्मितं तद्वदन्ति।
> अहोरात्राभ्यां पुरुषः समेन तावत्कृत्वः प्राणिति चाप चानिति॥ इति।

अर्थात्—१०० × १०० + ८०० = १०८०० इतने परिमाण वाला पुरुष है। इसलिए कहते हैं दिन और रात में पुरुष इतनी बार ही प्राण लेता है (और इतनी बार ही) अपान लेता है। अर्थात् १०८०० + १०८०० = २१६०० बार प्राण और अपान लेता है।

हम शरीर-शास्त्र सम्बन्धी समस्त आधुनिक ग्रन्थों से जानते हैं कि एक मिनिट में पुरुष १५ बार श्वास लेता है। इस प्रकार १ घण्टे में ६० × १५ = ९०० श्वास हुए और २४ घण्टे में ९०० × २४ = २१६०० श्वास बनते हैं।[1]

जब आधुनिक काल की घड़ियां न बनी थीं, तब किस दैवी-प्रकार से आर्य ऋषि इस सत्य को जान गए, यह महानाश्चर्य है।

शतपथ ब्राह्मण में इस कण्डिका से पूर्व ४-५ कण्डिकाओं[2] में एक और विचित्र तथ्य वर्णित है। उसकी ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए। तदनुसार—

वर्ष के ३६० दिन में = १०८०० मुहूर्त्त
= १६२००० क्षिप्र
= २४३०००० एतर्हि
= ३६४५०००० इदानि
और = ५४६७५०००० प्राण, होते हैं।

इससे आगे अन, निमेष और लोमगर्तों की गणना है। इसका रहस्य जानना चाहिए। पन्द्रह, पन्द्रह गुणा करके प्राण तक और उससे आगे की गणना किस अभिप्राय से है, यह विचारणीय है। जब भारत में सैकण्ड का $\frac{1}{4}$ काल-भाग प्रयुक्त होता था, तब इसका वैज्ञानिक महत्त्व अवश्य बड़ा होगा। इस देश के उस प्राचीन-काल को असभ्यता का युग कहना कितना भ्रमोत्पादक है।

तीस मुहूर्तों के रौद्र आदि तीस नाम वायुपुराण ६६।४०-४४ में मिलते हैं।

वार-नाम

जर्मन देशोत्पन्न वेबर और उसके समकालिक अनेक पाश्चात्य संस्कृत अध्यापकों ने इस बात का प्रचार किया कि पुरातन आर्य सप्ताह के भाव और उसके सात वारों को नहीं

१. देखो, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, संवत् १९८४, पृ० २१०।
२. गोरख मङ्कड, पूर्व भाग, प्रथम प्रपाठक, कण्डिका ५ से तुलना करो।

जानते थे। वारों आदि का व्यवहार कालडिया वालों से चला और भारतीय आर्यों तक पहुँचा। यह जर्मन लेखकों की अविद्या का फल है। इतना ठीक है कि भारत में यज्ञ आदि कर्मों में तिथि-नक्षत्र का प्रयोग अधिक होता था, पर वार प्राचीन भारत में अज्ञात थे, यह असत्य है। कालडिया वालों ने प्राचीन आर्यों से ये नाम सीखे थे। जब कालडिया वालों में वैदिक यज्ञों का प्रचार लुप्त हुआ, तो उन्होंने तिथि-नक्षत्र का प्रयोग छोड़ दिया और वारों आदि का आश्रय लिया। आर्यों में वार आदि का प्रयोग निम्नलिखित प्रमाणों से स्पष्ट है।

१. विष्णुस्मृति (२७०० विक्रम-पूर्व) में लिखा है—

सततमादित्येऽह्नि श्राद्धं कुर्वन्नारोग्यमाप्नोति। सौभाग्यं चान्द्रे। समरविजयं कौजे। सर्वान् कामान् बौधे। विद्यामभीष्टां जैवे। धनं शौक्रे। जीवितं शनैश्चरे।

इस वचन में - आदित्य, चान्द्र, कौज, बौध, जैव, शौक्र और शनैश्चर नाम स्मृत हैं।

२. इसी काल की ज्योतिष-शास्त्र-विषयक गर्ग संहिता में लिखा है—नक्षत्रे चन्द्रवारे तु।[1]

मास-नाम

तिथियों तथा दिनों का समूह मास होता है। १२ मास एक वर्ष बनाते हैं। इन मासों के दो प्रकार के नाम प्राचीनतम काल से प्रचलित रहे हैं। ये आगे लिखे जाते हैं—

१. चैत्र = मधु
२. वैशाख = माधव
३. ज्येष्ठ = शुक्र
४. आषाढ़ = शुचि
५. श्रावण = नभ
६. भाद्र = नभस्य
७. आश्वयुज = इष
८. कार्तिक = ऊर्ज
९. मार्गशिर = सह
१०. पौष = सहस्य
११. माघ = तप
१२. फाल्गुन = तपस्य[2]

महाभारत में कार्तिक के लिए कौमुद मास नाम का प्रयोग हुआ है।[3] भाद्र अथवा भाद्रपद को कहीं कहीं प्रोष्ठपद भी कहा है।

दाक्षिणात्य मासारम्भ—दक्षिण के लोग शुक्ल प्रतिपदा से मास का आरम्भ करते हैं। पौर्णमासी मध्य में होती है और अमावास्या के अन्त तक चान्द्रमास होता है।[4]

उत्तर में मासारम्भ—औत्तर लोग कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ करके पौर्णमासी के अन्त तक मास मानते हैं।[4]

---

१. बृहत्संहिता, पृ० १२५४।

२. तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्रः शुचिश्चायनमुत्तरं स्यात्।
नभो नभस्योऽथ इषुः सहोर्जः सहः सहस्याविति दक्षिणं स्यात्॥ वायु ५०।२०१॥

३. कौमुदे मासि रेवत्याम्।

४. तथा हि इह खलु शुक्लप्रतिपदि उपक्रम्य मासनामप्रवर्तिकां पौर्णमासीं मध्यावयवीकृत्य अमावास्यान्तं चान्द्रमासं दाक्षिणात्याः परिकल्पयन्ति। औत्तरास्तु कृष्णपक्षप्रतिपदि उपक्रम्य मासनाम-प्रवर्तक-पौर्णमास्यन्तम्। एवञ्च सति दाक्षिणात्यव्यवहारेण प्रोष्ठपदयुक्तायां पौर्णमास्यां प्रोष्ठपदमासस्य भाद्रपक्ष-समाप्तौ तदुत्तरः पक्षः अश्वयुङ्मासमध्ये भवति। हेमाद्रिकृत चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेष खण्ड, भाग २, पृ० ४६१॥

दो प्रकार का मासारम्भ अति प्राचीन है। तैत्तिरीय श्रुति में लिखा है—

अमावास्यया मासान् सम्पाद्य अहर् उत्सृजन्ति अमावास्यया हि मासान् सम्पश्यन्ति। पौर्णमास्या मासान् सम्पाद्य अहर् उत्सृजन्ति पौर्णमास्यया हि मासान् सम्पश्यन्ति। इति।

इस भेद का कारण अभी अज्ञात है।

ऋतुएं

प्रति दो दो मास की एक ऋतु होती है। अनेक ग्रन्थों में वर्ष-मान ऋतुओं के अनुसार दिया गया है। अतः ऋतुक्रम आगे लिखा जाता है—

तप + तपस्य = शैशिर। नभ + नभस्य = वार्षिक।
मधु + माधव = वासन्तिक। इषु + ऊर्ज = शारद।
शुक्र + शुचि = ग्रैष्म। सह + सहस्य = हैमन्तिक।

इनमें से शैशिर से ग्रैष्म तक उत्तरायण और वार्षिक से हैमन्तिक तक दक्षिणायन रहता है।

सुश्रुत-संहिता सूत्रस्थान, ६।१० में निम्नलिखित वर्णन है—

भाद्र + आश्वयुज = वर्षा। फाल्गुन + चैत्र = वसन्त।
कार्तिक + मार्ग = शरत। वैशाख + ज्येष्ठ = ग्रीष्म।
पौष + माघ = हेमन्त। आषाढ़ + श्रावण = प्रावृट्।

अद्भुत सागर पृ० १४ पर पराशर के काल का ऋतुक्रम द्रष्टव्य है।

वर्ष-प्रजापति

ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्ष को प्रजापति कहा है। वह प्रजाओं का पालन करता है।[1] यह वर्ष चार प्रकार का है—सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन।

भारत के भिन्न २ प्रान्तों में वर्ष के भिन्न २ आरंभ अलबेरूनी ने लिखे हैं।[2]

पञ्चवर्षीय युग

इस युग का उल्लेख वैदिक लौकिक दोनों वाङ्मयों में है। यथा—

तैत्तिरीय संहिता	वाजसनेय सं०	तैत्तिरीय ब्रा०	काठक सं०	गर्ग ज्यो०	वायु[3]
संवत्सर	=	=	=	=	=
परिवत्सर	=	इदावत्सर	परिवत्सर	=	=
इदावत्सर	=	इदुवत्सर	इदावत्सर	=	इद्वत्सर
इदुवत्सर	इदवत्सर	इद्वत्सर	अनुवत्सर	=	=
वत्सर	=	=	उद्वत्सर	इद्वत्सर	वत्सर

१. जैमिनीय ब्राह्मण १।१६७ में इस प्रजापालन की सुन्दर कथा दी है। वह आगे लिखी जाती है—. स प्रजापतिर्ह वाव स एष यत्संवत्सरः। स ह वसन्तमेवान्यतरमन्यतरं पादम् उद्गृह्य तिष्ठति। स यदोष्णम् उद्गृह्णाति—अथ हेमन्तर्तुरुष्णो भवत्यथ उ ह तदा शीतो भवति। तस्मादु ग्रीष्मे शीताः कूप्या अप उदाहरन्ति। अथ यदा शीतमुद्गृह्णात्यथ हेमन्तुपरि शीतो भवत्यथ उ ह तदोष्णो भवति। तस्माद्धेमन्तुपरि शीतोऽप उदाहरन्ति ... तस्माद् हेमन्तुष्णाः कूप्या अप उदाहरन्ति। एवं ह वा एष प्रजापतिः संवत्सरः प्रजा बिभर्ति॥ जै०।१६७॥

२. हिन्दी अनुवाद, तीसरा भाग, पृ० १०, ११।

३. वायुपुराण ३१।२७, २८॥

यह युग-विभाग वेदाङ्ग-ज्योतिष को स्वीकृत है। इसके विषय में श्रीगोविन्द सदाशिव आपटे एम० ए० ने लिखा है—

इस वेदाङ्ग-ज्योतिष काल में वर्षमान ३६६ दिन का मानते थे। तथा ५ वर्षों के अनन्तर तिथि-नक्षत्र जैसे के तैसे ही आते थे। ऐसा उनका गणित था। ५ वर्षों में दो अधिक मास मानते थे।[1] इति।

प्रत्येक पांच वर्ष के पश्चात् तिथि-नक्षत्र आदि का पूर्ववत् लौट आना एक आश्चर्यकर ऊहा है। इस गणना को सोचने वाला अगाध-बुद्धि था। वायु पुराण ५०।१८७ के अनुसार यह मान चित्रभानु का कहा गया है। तथा वायु ५३।११६ के अनुसार—श्रवणान्तं श्रविष्ठादि युगं स्यात् पञ्चवार्षिकम् युग है।

कौटल्य में पञ्चवर्षीय युग—विष्णुगुप्त उपनाम कौटल्य के अर्थशास्त्र में वेदाङ्ग-ज्योतिष वाला पञ्चवर्षीय युग ही युग माना गया है। इसका अनुकरण जैन शास्त्र सूर्य-प्रज्ञप्ति में है।

लगध-प्रोक्त युग—लगध के अनुसार लघुयुग ५ वर्ष का, १२ लघुयुगों अथवा ६० वर्षों का दूसरा युग, ७२० वर्षों का तीसरा युग तथा तीसरे युग को ६०० से गुणा करके कलि के ४३२००० वर्ष बनते हैं।[2]

जिन व्यक्तियों की ऊहा इतनी असाधारण थी, उन्होंने अपने इतिहास में तिथियां नहीं दीं, यह कहना वृथा साहस करना है।

षष्टि-संवत्सर

पूर्व-लिखित संवत्सर आदि वर्षों का एकपञ्चक बनता है। ऐसे बारह पञ्चकों का षष्टिसंवत्सर युग माना गया है। बारह पञ्चकों के नाम भी पृथक् पृथक् गिने गए हैं। वायु पुराण के अनुसार वे निम्नलिखित हैं—

१. वैष्णव	२. बार्हस्पत्य	३. ऐन्द्र	४. आग्नेय
५. अहिर्बुध्न	६. पैतृक	७. वैश्वदेव	८. सौम्य
९. प्राजापत्य	१०. मारुत	११. आश्विन	१२. भाग्य[3]

इन वैष्णवादि बारह पञ्चकों के संवत्सर को बार्हस्पत्य अथवा षष्टि-संवत्सर कहते हैं।

तैत्तिरीय आरण्यक के आरंभ में इस षष्टि-संवत्सर का उल्लेख मिलता है।

बार्हस्पत्य-संवत्सर के प्रत्येक वर्ष के पृथक् पृथक् नाम हैं। उन में से प्रथम वर्ष का नाम प्रभव और अन्तिम का अक्षय है।

युग विभाग

पूर्वोक्त युगों में से भारतीय ऐतिहासिक ग्रन्थों में कौन से युग प्रयुक्त हुए हैं, इसका जानना परमावश्यक है। वर्तमान लेखकों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया, अतः वे इतिहास की

१. भारतीय अनुशीलन, "हमारा वैदिक तथा आधुनिक प्रचलित पञ्चाङ्ग," पृ० २। त्रयोदश मासाः संवत्सरः। शत० ६।१।१।१६॥

२. देखो, हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास, शाखा भाग, संवत् १९९१, पृ० ११।

३. चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेष खण्ड, श्राद्धकल्प, पृ० ११५२।

शृङ्खला जोड़ने में अशक्त रहे हैं। अतः इस विषय का संक्षिप्त वर्णन आगे किया जाता है।

आयुर्वेदीय काश्यपसंहिता शारीरस्थान में युगों के उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दो भेद लिखे हैं। उन में से पहले भेद के तीन अवान्तर विभाग कहे हैं—आदियुग, देवयुग और कृतयुग। ऐसा सम्पूर्ण युग विभाग अन्य पुरातन ग्रन्थों में अभी तक हमारे देखने में नहीं आया।

आदिकाल—आदियुग तो नहीं, पर आदिकाल का प्रयोग आयुर्वेदीय चरकसंहिता में मिलता है—

(क) प्रागपि चाधर्मादृते नाशुभोत्पत्तिरन्यतोऽभूत्। आदिकाले हि अदितिसुतसमौजसोऽतिविमल-विपुलप्रभावाः प्रत्यक्षदेवदेवर्षिधर्मयज्ञविधिविधानाः शैलसारसंहतस्थिरशरीरा: प्रसन्नवर्णेन्द्रियाः............ पुरुषा बभूवुरमितायुषः। तेषां............अचिन्त्यरसवीर्यविपाकप्रभावगुणसमुदितानि प्रादुर्बभूवुः शस्यानि सर्व-गुणसमुदितत्वात् पृथिव्यादीनां कृतयुगस्यादौ। भ्रश्यति तु कृतयुगे............। ततस्त्रेतायां लोभादभि-द्रोहः............। ततस्त्रेतायां धर्मपादोऽन्तर्धानमगमत्।

संवत्सरशते पूर्णे याति संवत्सरः क्षयम्। देहिनामायुषः काले यत्र यन्मानमिष्यते ॥२१॥ वि०. स्थान अ० ३।

(ख) अथ भगवान् पुनर्वसुः आत्रेयः............उवाच। श्रूयताम् अग्निवेश............। आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालभनीया बभूवुर्नालम्भाय प्रक्रियन्ते स्म। ततो दक्षयज्ञप्रत्यवरकाले............। अतश्च प्रत्यवरकालं पृषध्रेण दीर्घसत्रेण यजता............। चि० स्थान १६।४॥

(ग) द्वितीये हि युगे शर्वमक्रोधव्रतमास्थितम्। दिव्यं सहस्रं वर्षाणामसुरा अभिदुद्रुवुः ॥१५॥
तपोविघ्नं शमीकर्तुं तपोविघ्नं महात्मनः। पश्यन् समर्थश्चोपेक्षां चक्रे दक्षः प्रजापतिः ॥१६॥
चि० स्थान, अ० ३॥

(घ) वर्षशतं खल्वायुषः प्रमाणमस्मिन् काले। २६। शारीरस्थान अ० २६।

चरकसंहिता के इन चार प्रमाणों में आदिकाल, द्वितीययुग, कृतयुग, त्रेता और अस्मिन् काल संज्ञाएं प्रयुक्त हुई हैं। चरकसंहिता का आदिकाल काश्यपसंहिता का आदि युग प्रतीत होता है। द्वितीय युग का पूरा निश्चय नहीं पर संभवतः यह देवयुग है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो चरक संहिता के पूर्वोक्त पाठों में एक क्रम का निर्देश स्पष्ट मिलता है। सर्वसम्मत चारों युग चरकसंहिता के कर्त्ता चरक ऋषि को मान्य थे, इस विषय में चरक का निम्नलिखित स्थान देखने योग्य है—

यथा लोकस्य सर्गादिस्तथा पुरुषस्य गर्भाधानं, यथा कृतयुगमेवं बाल्यं, यथा त्रेता तथा यौवनं, यथा द्वापरः तथा स्थाविर्यं, यथा कलिरेवम् आतुर्यं, यथा युगान्तस्तथा मरणमिति। शारीरस्थान, अ० ५।५॥

इस वचन में चार युगों के अतिरिक्त सर्गादि और युगान्त अवस्थाएं भी गिनी गई हैं। सर्गादि आदिकाल अथवा आदियुग प्रतीत होता है।

देवयुग—महाभारत में तीन स्थानों पर देवयुग परिभाषा का प्रयोग देखने में आता है—

(क) पुरा देवयुगे ब्रह्मन् प्रजापति सुते शुभे। आस्तां भगिन्यौ रूपेण समुपेतेऽद्भुतेऽनघे।
ते भार्ये कश्यपस्यास्तां कद्रूश्च विनता च ह। आदिपर्व १४।५॥ पूना संस्करण॥

(ख) पुरा देवयुगे राजन्नादित्यो भगवान् दिवः । सभापर्व ११।१॥

(ग) पुरा देवयुगे चैव दृष्टं सर्वं मया विभो । वनपर्व ६२।७॥

लोमश युधिष्ठिर को यह बात कह रहा है। इस देवयुग के पश्चात् कृतयुग आया। प्रतीत होता है इस देवयुग के वर्ष भी दिव्यवर्ष कहाते थे।

कृतयुग—(क) पुरा कृतयुगे राजन्नार्चार्को नाम राक्षसः। शा० ३८।३॥

(ख) पुरा कृतयुगे तात राजा ह्यासीदकम्पनः। शा० २६२।७॥

(ग) यथा राज्यं समुत्पन्नमादौ कृतयुगेऽभवत्। शा० ५८।१३॥

वायु पुराण का त्रेता

वायु पुराण में २४ त्रेता और २८ द्वापर माने गए हैं। इनमें से आद्य त्रेता स्वायंभुव अन्तर में था। उस संबन्ध के निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य हैं—

(क) तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा। वायु० ८।४६॥

(ख) त्रेतायुगमुखे पूर्वमासन् स्वायंभुवेऽन्तरे॥ " ३१।३॥

(ग) स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा॥ " ३३।५॥

वायु का चौवीसवां त्रेता दाशरथि राम के काल में था। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वायु की त्रेता की गणना एक विचित्र प्रकार की थी। यदि वह प्रत्येक मन्वन्तर के ७४ चतुर्युगों की गणना करता तो पहले छः मन्वन्तरों में ६×७४=३०४ और सातवें वैवस्वत मनु में इस समय तक २८ अर्थात् स्वायंभुव मन्वन्तरस्थ आद्य त्रेता से लेकर इस समय तक या दाशरथि राम के समय तक ३३२ त्रेता होते। परन्तु तथ्य ऐसा नहीं है। वायु का आद्य त्रेता स्वायंभुव अन्तर में था और अन्तिम त्रेता २४वां था। इस पर प्रसिद्ध वैयाकरण परलोकगत पं० शिवदत्तजी आदि ने गंभीर विचार न करके श्रीराम का काल कहीं का कहीं कर दिया है। वायु के अध्ययन से प्रतीत होता है कि वायु का युग-विभाग महाभारत से कुछ भिन्न प्रकार का है। वायु का वैवस्वत मनु का आरंभ त्रेता से होता है। वायु का वर्तमान रूप भारत-युद्ध के पश्चात् महाराज अधिसीमकृष्ण के काल का है। परन्तु वायु की बहुत सी सामग्री अति पुरातन काल की है। उसका काल-विभाग अन्य प्रकार का था। भावी विद्वानों को इस समस्या की पूर्ति करनी चाहिए। उसके लिए निम्नलिखित श्लोक भी दृष्टि में रखने होंगे—

कल्पस्यादौ कृतयुगे प्रथमे सोऽसृजत्प्रजाः॥२२॥

प्रागुक्ता या मया तुभ्यं पूर्वकालं प्रजास्तु ताः। तस्मिन्संवर्तमाने तु कल्पे दग्धास्तदाग्निना॥२३॥

त्रेतायां युगमन्यत्तु कृतांशामृषिसत्तमाः॥७७॥ वायु०, अ० ८॥

वायु के त्रेता एक ही त्रेता के अवान्तरविभाग—वायु के बहुत से त्रेता एक ही त्रेता के अवान्तर विभाग हैं। वायु के अनुसार आद्य-त्रेता से लेकर चौवीसवें त्रेता तक

निम्नलिखित व्यक्ति हुए थे।

दक्ष प्रजापति	... आद्य त्रेतायुग
वारह देव	... आद्य त्रेतायुगमुख
तृणविन्दु	... तृतीय त्रेतायुग
दत्तात्रेय	... दशम ,,
मान्धाता	... पन्द्रहवां ,,
जामदग्न्य राम	... उन्नीसवां ,,
दाशरथि राम	... चौवीसवां ,,

कालक्रम की दृष्टि से ये लोग थोड़े २ अन्तर पर एक दूसरे के पश्चात् हुए हैं। यदि ये पृथक् २ चतुर्युगों के पृथक् २ त्रेता में होते तो इनके मध्य में द्वापर, कलि और सत्युग के अन्य महापुरुष अवश्य गिने गए होते। पर ऐसा किया नहीं गया। अतः वायु के अनेक त्रेता एक त्रेता के अवान्तर-विभाग हैं।

अवान्तर त्रेताओं की अवधि—यदि इन अवान्तर त्रेताओं की अवधि तथा आदियुग, देवयुग और त्रेतायुग आदि की अवधि जान ली जाए, तो भारतीय इतिहास का सारा कालक्रम शीघ्र निश्चित हो सकता है। हम अभी इस बात को पूर्णतया जान नहीं पाए। इस बात का ज्ञान पुरातन युग-गणनाओं पर आश्रित है। अतः उन युग-गणनाओं का वर्णन आगे किया जाता है।

वायु-पुराण वर्णित युग-विभाग

(क) चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयो विदुः। कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं चेति चतुर्युगम्॥
एतत् सहस्रपर्यन्तं अहर्यद्ब्रह्मणः स्मृतम् ॥२४।१, २॥

अर्थात्—१००० चतुर्युग का ब्राह्मदिन होता है।

(ख) चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम्। ३२।५८—६८॥

(ग) अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः। ५७।२२—२१॥

वायु का चतुर्युग का यह परिमाण ज्योतिष का सर्वस्वीकृत परिमाण है। इसका वायु के ही पूर्वोक्त त्रेता परिमाण से पूरा सम्बन्ध जोड़ना अभी तक असंभव है। विद्वानों को इसका गहरा अन्वेषण करना चाहिए।

१. दानवासुर (=Dionyson) = कालयवन (?) संवत्

इस संवत् का पता यवन राजदूत मेगास्थनेस के लेख से, जो उसके तीन देशवासियों ने सुरक्षित किया, मिलता है। प्लायनी लिखता है—

From the days of Father Bacchus to Alexander the Great their kings are reckoned at 154 whose reigns extend over 6451 years and three months. (Pliny)

Father Bacchus was the first who invaded India and was the first of all who triumphed over the vanquished Indians. From him to Alexander the Great 6451 years are reckoned with three months additional, the calculation being made by counting the kings who reigned in the intermediate period, to the number 153 (Solin 52. 5.)

From the time of Dionyson (or Bacchus) to Sandra kottos the Indians counted 153 kings and a period of 6042 years, but among these a republic was thrice established—another to 300 years and another to 120 years. The Indians also tell us that Dionysos was earlier than Herakles by fifteen generations (Indika of Arian, Ch. IX.)

अर्थात्—बेकस के काल से अलक्षेन्द्र के काल तक ६४५१ वर्ष हो चुके हैं। इतने काल तक १५३ या १५४ राजाओं ने राज्य किया।

तीसरे लेख में ४०६ वर्ष न्यून दिए हैं।

यवन शब्द Dionyson डायोनीसियस अथवा Bacchus बेकस दानवासुर, विप्रचित्ति का विकृत रूप हैं। उसके पश्चात् Herakles अर्थात् सुरकुलेश विष्णु हुआ। विष्णु विप्रचित्ति से १५ स्थान पश्चात् है। बारह भ्राताओं में यह सब से कनिष्ठ था। ११ स्थान इन भ्राताओं के और ४ स्थान अन्य, इस प्रकार विप्रचित्ति १५ स्थान पहले था। विप्रचित्ति दनु का पुत्र था, अतः वह दानवासुर कहाया। विप्रचित्ति त्रेतायुग के आरम्भ में था। उससे लेकर भारतयुद्ध तक लगभग १०० राजा थे। भारतयुद्ध से रिपुञ्जय तक २२ राजा, तत्पश्चात् ५ प्रद्योत राजा, तदनन्तर १० शैशुनाग राजा, तदनु ६ नन्द हुए। ये सब १४६ राजा बने। संभव है, मगध के राजाओं की जो पुरानी गणना हो, उसमें कुछ अन्तर हो। तथापि इतनी बात ठीक है कि त्रेता के आरम्भ से अर्थात् विप्रचित्ति के काल से नन्दों के अन्त तक ६४५१ वर्ष अवश्य बीत चुके थे। यह वर्ष-संख्या मेगास्थनेस ने भारत के राजवृत्तों से ली। इसमें थोड़ी सी भूल हो सकती है, अधिक नहीं।

पुराणों में तुषारों अथवा देवपुत्रों के राज्य का एक वर्षमान ७००० वर्ष का है। यह वर्षमान त्रेता के आरंभ से गिना गया प्रतीत होता है। इस की तुलना हैरोडोटस के लेख से करनी चाहिए—

Seventeen thousand years before the reign of Amasis, the twelve gods were, they affirm, produced from the eight: and of these twelve, Hercules is one. (Book II Ch. 43).

पाश्चात्य ऐतिहासिकों का पक्षपात—वैसे तो पाश्चात्य ऐतिहासिक मेगास्थनेस की अनेक बातें उद्धृत करते रहते हैं, पर भारतीय इतिहास की पुरातनता के विषय में मेगास्थनेस के इस लेख को सर्वथा त्याग देते हैं। उनके अनुसार मेगास्थनेस के समकालिक भारतीय राज-ऐतिहासिक अनृतवादी थे और उन्होंने यह वर्ष-गणना कल्पित कर ली थी। पाश्चात्यों का यह तर्क सर्वथा कलुषित है। सारा भारतवर्ष असत्यवक्ता हो

और पाश्चात्य लेखक ही सत्य जान पाए हैं, यह बात विद्वान् नहीं मानेंगे। वस्तुतः पाश्चात्य लेखकों और उन के एतद्देशीय शिष्यों के पास इस बात का कोई उत्तर नहीं है। आश्चर्य तो एतद्देशीय उन इतिहास लेखकों पर है, जो भारत में आर्यों का इतिहास ईसा से २५०० पहले का ही मानते हैं। अपने पाश्चात्य गुरुओं की हां में हां मिलाने में वे बुद्धि को तिलाञ्जलि दे देते हैं।

मेगास्थनेस का यह लेख भारतीय इतिहास की पुरातनता सिद्ध करने में अच्छी सहायता देता है। उन दिनों के यवन-विद्वान् आर्य इतिहास की पुरातनता में विश्वास रखते थे। उनके ऊपर पादरी अशर के असत्य कथन की छाप नहीं थी।

२. कलि-संवत्

भारतयुद्ध तक के भारतीय इतिहास में कौन कौन से संवत् प्रयुक्त हुए, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु भारतयुद्ध कलि और द्वापर की सन्धि में हुआ, यह निर्विवाद है। महाभारत के भिन्न भिन्न पर्वों में इस सत्य को स्पष्ट करने वाले निम्नलिखित श्लोक हैं—

१. अन्तरे चैव संप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्। समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥[1]

२. एतत् कलियुगं नाम अचिरायत्प्रवर्तते। युगानुवर्तनं त्वेतत्कुर्वन्ति चिरजीविनः ॥[2]

३. अस्मिन्कलियुगेऽप्यस्ति........................ ।[3]

४. अप्ययं नः कुरूणां स्याद् युगान्ते कालसंभृतः। दुर्योधनः कुलांगारो जघन्यः पापः पुरुषः ॥[4]

५. तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप। द्विसहस्रं द्वापरे तु शतं तिष्ठति संप्रति ॥[5]

६. संक्षेपो वर्तते राजन्द्वापरेऽस्मिन्नराधिप। गुणोत्तरं हैमवतं हरिवर्षं ततः परम् ॥[6]

७. द्वापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च। सात्वतं विधिमास्थाय गीतः संकर्षणेन यः ॥[7]

८. द्वापरस्य कलेश्चैव सन्धौ पर्यवसानिके। प्रादुर्भावः कंसहेतोर्मथुरायां भविष्यति ॥[8]

इन आठ प्रमाणों से निश्चय होता है कि भारतयुद्ध द्वापर के अन्त अथवा कलि द्वापर की सन्धि में हुआ। कलि के आरम्भ से कलि संवत् प्रचलित हुआ यह निर्विवाद है।

कलि संवत् को झूट सिद्ध करने का फ्लीट महाशय ने महान् प्रयत्न किया। उसका खंडन वैदिक वाङ्मय का इतिहास के शाखाभाग में हमने किया है।[9] उसके पश्चात् हमने अनेक ऐसे प्रमाण एकत्र किए, जिनसे कलि संवत् के प्रयोग का पता लगता है। वे नीचे लिखे जाते हैं-

कलि आरंभ—भारतयुद्ध के ३६ वर्ष पश्चात् श्रीकृष्ण के दिवंगत होने पर कलि का आरम्भ हुआ। वायु पुराण में लिखा है—

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने। प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संख्यां निबोधत ॥[10]

अर्थात्—जिस दिन श्रीकृष्ण ने देह त्यागा, उसी दिन कलि प्रवृत्त हुआ। इस घटना के कुछ मास पश्चात् तक युधिष्ठिर का राज्य रहा।

---

१. आदिपर्व २।१३॥ २. आरण्यकपर्व १४८।३७॥ ३. आरण्यकपर्व १८८।१४॥
४. उद्योगपर्व ७२।१८॥ ५. भीष्मपर्व ११।६॥ ६. भीष्मपर्व ११।१४॥
७. भीष्मपर्व ६६।३६॥ ८. शान्तिपर्व ३४८।२२॥ ९. पृ० ६-११।
१०. वायु ९९।४२८॥

अब कतिपय पुरातन लेख जिनमें कलि संवत् का प्रयोग हुआ, लिखे जाते हैं—

१. कलि संवत १४१८—कोचिन के राजा चेर का पत्र।[1]

२. कलि संवत् ३४२६—तेलगु प्रदेश में नन्दिदुर्ग नाम का एक ग्राम था। वहां किसी कृष्णदेव राय का बनाया हुआ शिव का एक मन्दिर था। उस मन्दिर का एक दानपत्र था। तेलगु लिपि में उसकी एक प्रतिलिपि मद्रास के राजकीय भण्डार के संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रह में विद्यमान है। उसमें लिखा है[2]—

नन्दिदुर्गाह्वये ग्रामे सोमशंकररूपिणः। वस्युर्ति आगम गुणेष्वब्देषु जगतीपतेः॥

टीका—जगतीपतेः परमेश्वरस्य कलिसम्बन्धिषु षड्विंशत्युत्तरचतुःशतोत्तरत्रिसहस्रात्मसंवत्सरे—[3]अर्थात् कलि के संवत् ३४२६ में यह मन्दिर निर्मित हुआ।

३. कलि ३७३५?—चालुक्य कुल के महाराज सत्याश्रय पुलकेशी का शिलालेख।[3] इस लेख की संवत्-विषयक पंक्तियों के अर्थ में हमें सन्देह होता है। एक विद्वान् इनका ३३७५ कलि संवत् अर्थ करते हैं।[4] उन्होंने कैसे यह अर्थ किया, यह हमें अज्ञात है। मूललेख आगे उद्धृत किया जाता है—

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः। सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पञ्चसु।
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च। समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥

कीलहार्न का अर्थ—३०+३०००+७००+५=३७३५ कलि संवत् तथा ५०+६+५००=५५६ शक भूभुजों के वर्ष में है। परन्तु कीलहार्न के अर्थ में शतेष्वब्देषु का पाठ गतेष्वब्देषु में बदला गया है। यह चिन्त्य है।

४. कलि ३७४०—ऋग्वेद भाष्यकार आचार्य स्कन्दस्वामी का शिष्य उज्जयिनी में रहने वाला शतपथ ब्राह्मण का भाष्यकार हरिस्वामी लिखता है—

यदाब्दानां कलेर्जग्मुः सप्तत्रिंशच्छतानि वै। चत्वारिंशत्समाश्चान्याः तदा भाष्यमिदं कृतम्॥[5]

५. कलि ३८७१—पाण्ड्य देश के एक लेख में उत्कीर्ण है—

कलेः सहस्रत्रितयेऽब्दगोचरे गतेऽष्टशत्यामपि सैकसप्ततौ। कृतप्रतिष्ठो भगवानभूत्कमाद् इहैव पौषेऽहनि मासि कार्तिके॥[6]

६. कलि ३९७१—ग्रन्थाक्षरों में भविष्योत्तर पुराण के शिवरहस्य के १७ वें अध्याय में निम्नलिखित श्लोक है—

कल्यादौ [ब्दे?] च चतुःसहस्रसहिते यत्रैकविंशोनके पुष्ये मासि विलम्बिनाम्नि खम् अगादष्टप्रजो मौद्गलः।
पञ्चम्यां सितपक्षके भृगुदिने सह्यात्मजोदकटे कंसग्रामनिवासिभिः सुदर्शनः सार्धं विमानोज्ज्वलः॥[7]

---

१. इण्डियन कलचर, भाग १२, खण्ड १, पृ० ११।

२. संख्या १५६४७, सूचीपत्र भाग २८। परिशिष्ट रूप, सन १९३१, पृ० १०४७२, १०४७३।

३. हमारा भारतवर्ष का इतिहास। द्वितीय संस्करण, पृ० २०५।

४. Sources of Karnatak History, Mysore, p. 42.

५. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, वेदों के भाष्यकार, पृ० २।

६. ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ८, पृ० ३२०।

७. पाण्डुरङ्ग वामन काणे रचित धर्म-शास्त्र का इतिहास, भाग प्रथम में उद्धृत।

७. कलि ४०४४—चोल देश के एक तामिल लेख में लिखा है—

कलियुग.वर्ष नालायिरतु[1]

८. कलि ४०६८—दक्षिण भारत के मंगलोर के समीप कदरी के मञ्जीरनाथ मन्दिर की लोकेश्वर की मूर्ति पर का एक और लेख है—

चलौ वर्षसहस्राणामतिक्रान्ते चतुष [ष्ट] ये । पुनरब्दे गते चैव अप्यष्टषष्ट्या समन्विते ।७॥ गतेषु नवमासेषु कन्यायां संस्थिते गुरौ । पश्चिमेऽहनि रोहिण्यामुहूर्ते शुभलक्षणे ॥८॥[2]

९. कलि ४०७८—देवीशतक की विवृति में काश्मीरक कय्यट अपना काल लिखता है—

वसुमुनिगगनोदधिसमकाले याते कलेस्तथा लोके । द्वापञ्चाशे वर्षे रचितेयं भीमगुप्तनृपे ॥

अर्थात्—भीमगुप्त नृप के राज्य में जब कलि के ४०७८ वर्ष बीते थे ।

१०. कलि ४०८०[3]—

११. कलि ४०८३[4]—

१२. कलि ४१५१—भाटेर, सिल्हेट-जिला, आसाम के लेख में लिखा है—

पाण्डवकुलादिपालाब्द ४१५१ जेट ६ ।[5]

१३. कलि ४२६०—सर्वानन्द अपने अमरटीकासर्वस्व में लिखता है—

इदानीं चैकाशीतिवर्षाधिकसहस्रैकपर्यन्तेन शकाब्दकालेन (१०८१) षड्विवर्षाधिक द्वि चत्वारिंशच्छतानि कलिसन्ध्याया भूतानि (४२६०) । तथा च गणितचूडामणौ श्रीनिवासः—कलिसन्ध्याया स-समय-कृत वर्षाणि (४२६०)॥

१४. कलि ४२७०—

शास्त्रीये संवत् ४ [५] चैत्रवति दशम्यां कलेर्गतवर्षाणि ४२७० लसितम् ४२७७३० उब्द्दौ कलिप्रमाणं ४३२००० परम भट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीमद् अजयपालदेव प्रवर्धमानकल्याणविजयराज्ये संवत् ...... ।

१५. कलि ४२६४—ऐतरेय ब्राह्मण का टीकाकार षड्गुरुशिष्य अपनी वृत्ति में लिखता है—

गर्वगाया च मुख्येति कलिशुद्धदिने सति । श्रुतिः षाड्गुरवी जाता ब्राह्मणस्य सुखप्रदा ॥[6]

अर्थात्—कलिदिन संख्या १५६७३४३ में सुखप्रदा वृत्ति लिखी गई । ३६५ दिन का वर्ष गिन कर इसका काल कलि ४२६४ बनता है ।

१६. कलि ४३१५—दक्षिण भारत के एक और लेख में लिखा है—

कलियुग वरिस ४३१५ ।[7]

---

१. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग ८, पृ० २६१ ।
२. दक्षिण-भारत के लेख, संख्या १६६, श्री सदाशिव अल्तेकर के एंशियण्ट कर्नाटक पृ० १२१ पर उद्धृत।
३. S. I. I. Vol. III No. 135.
४. E. I. XXII, 219. Annual Report on South Indian Epigraphy, 1907, No. 265.
५. Ins. of N. India, Bhandarkar's List, No. 1769.
६. ऐ० ब्रा० अध्याय १० का अन्त ।
७. S. I. I. Vol. VII. No. 222, p. 111-12. A. S. Altekar, A. K. p. 121.

१७. कलि ४४८४—पुनः दक्षिण भारत के एक लेख में लिखा है—

शकवरूप ११०६ कलियुग ४४८४।[1]

१८. कलि ४७८१—महाभारत भीष्मपर्व की एक हस्तलिखित प्रति के अन्त का लेख है।

संख्याते द्विजराजसिद्धऋषिवरोपायैः (४७८१) कलेर्हायने, लोके सप्तगुणर्षिरूपकमिते (१७१७) काले शकघ्ने सति।
आनन्दस्य कृतिः श्रुतिस्मृतिमिता गीता गिरां पल्वकात्, कर्मज्ञानसमुच्चयोदयधिया भूयाच्छिवप्रीतये ॥[2]

विद्वान् पाठकों को ध्यान देना चाहिए कि इस लेख में विक्रमकाल को शकघ्न काल लिखा है।

इन लेखों से ज्ञात होता है कि संवत् ३४०० से लेकर कलिवर्ष के प्रयोग के प्रमाण तैलगु, पाण्ड्य, चोल, उज्जयिनी तथा कश्मीर आदि अनेक देशों से अब भी उपलब्ध हैं। जब अधिक प्राचीन ग्रन्थ, शिलालेख और ताम्रपत्र प्राप्त हो जाएंगे, तो इस संवत् का प्रयोग इस काल से पहले भी दिखाया जा सकेगा। अतः फ्लीट जी का मत सर्वथा कल्पित और निराधार है। फ्लीटजी के देश में कोई पुराना संवत् तो था नहीं, उन्होंने सोचा, दूसरों के पुराने संवत् क्यों माने जाएं।

कलिसंवत् और विक्रम संवत् का अन्तर ३०४४ वर्ष का है।

२. सप्तर्षि संवत्सर

कलि संवत् के अतिरिक्त एक सप्तर्षि संवत् है, जो बहुत पुरातन काल से भारत में प्रचलित रहा है। काश्मीर, चम्बा और मण्डी आदि प्रदेशों में यह अब तक प्रचलित है। इसके विषय में वायु पुराण अध्याय ११ में लिखा है—

सप्तविंशतिपर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले। सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम्।
सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया संख्यया स्मृतम् ॥४१६॥
सा सा दिव्या स्मृता षष्टिर्दिव्याह्वाश्चैव सप्तभिः। तेभ्यः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तु तैः ॥४२०॥
सप्तर्षीणां तु ये पूर्वा दृश्यन्ते उत्तरादिशि। ततो मध्येन च क्षेत्रं दृश्यते यत्समं दिवि ॥४२१॥
तेन सप्तर्षयो युक्ता ज्ञेया व्योम्नि शतं समाः। नक्षत्राणामृषीणां च योगस्यैतन्निदर्शनम् ॥४२२॥

अर्थात्—सप्तर्षि एक एक नक्षत्र के साथ सौ सौ वर्ष ठहरते हैं। सत्ताइस नक्षत्रों के साथ वे २७०० वर्ष ठहरेंगे। इस प्रकार २७०० वर्ष का एक युग हो जाता है। यह दिव्य संख्या के अनुसार है।

पुराणों में इस संवत् के अनुसार भी राजवंशों का काल संक्षिप्त रूप से गिना गया है। जब साधारण गणना और इस गणना-क्रम से कोई घटना-तिथि ठीक निकले, तो उस की तथ्यता में अणुमात्र दोष नहीं रह सकता। सुप्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में इस गणना को ठीक माना है। उसका पूर्वज वृद्ध गर्ग भी इस गणनाविधि को जानता था। हमने इस इतिहास में इस गणना की सहायता से सारी तिथियों की परीक्षा की है, और हमारे परिणाम ठीक निकले हैं, अतः यह गणना बड़े महत्व की है।

---

१. S. I. I. Vol. VII. No. 225, p. 113, A. S. Altekar, p. 144.

२. महाभारत, भीष्मपर्व, पूना संस्करण, भूमिका पृ० ५८।

वायुपुराण अध्याय ५७ में इस संवत्सर के विषय में एक भिन्न मत प्रदर्शित है—

त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः । त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः ॥१७॥

अर्थात्—मानुष प्रमाण से ३०३० वर्ष का सप्तर्षि वत्सर होता है। इस भेद का कारण हम अभी तक नहीं जान सके।

इससे मिलता जुलता एक और श्लोक पार्जिटर के वायु पुराण के ई संज्ञक हस्तलिखित कोश में पूर्व उद्धृत श्लोक ४२० के स्थान में मिलता है—

षष्टिर्दैवतयुगानां चैकसप्तभिरेपि च । त्रिंशच्चान्यानि वर्षाणि स्मृतः सप्तर्षिवत्सरः ॥

इस श्लोक का पाठ और अर्थ दोनों अस्पष्ट हैं।

३. वराहमिहिर-निर्दिष्ट संवत्, विक्रम संवत् से ५५४ वर्ष पूर्व

वृद्ध गर्ग के अनुसार वराहमिहिर बृहत्संहिता १३।३ में लिखता है—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ । षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालः तस्य राज्ञश्च ॥

अर्थात्—महाराज युधिष्ठिर के राज्यकाल में सप्तर्षि मघानक्षत्र में थे। तथा युधिष्ठिर के २५२६ वर्ष पर किसी शककाल का आरम्भ होता है।

वर्तमान लेखक, कल्हण काश्मीरी और अल्बेरूनी आदि लेखक शालिवाहन शक के साथ इस काल को जोड़ते हैं। यह विचारणीय है। वराहमिहिर 'कुतूहल मञ्जरी' में अपना काल स्वयं लिखता है। तदनुसार वह विक्रम संवत् के आरम्भ में विद्यमान था। अतः वह शालिवाहन शक से बहुत पहले हो चुका था। इससे प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त श्लोक में उसने किसी पुरातन संवत् का उल्लेख किया है। शालिवाहन शक का नहीं।

विक्रम संवत् का आरम्भ कलिसंवत् ३०४४ से माना जाता है। कलि संवत् के आरम्भ से ३६ वर्ष पूर्व युधिष्ठिर का शक चला था। अतः विक्रम संवत् के आरम्भ तक युधिष्ठिर शक के ३०८० वर्ष व्यतीत हुए थे।

वराहमिहिर-निर्दिष्ट शक युधिष्ठिर शक के २५२६ वर्ष पश्चात् और विक्रम संवत् से ५५४ वर्ष पूर्व चला।

४. शूद्रक संवत्, प्रथम-विक्रम-संवत्, कृत संवत्, आहव संवत्, मालवगण संवत्

शूद्रक संवत् के प्रचलित रहने के प्रमाण निम्नलिखित हैं—

१. गुप्तवंश भूषण श्री विक्रमाङ्क समुद्रगुप्त ने कृष्णचरित के आरम्भ में लिखा है—

वत्सरं स्वं शकान् जित्वा प्रावर्तयत वैक्रमम् ॥१॥

अर्थात्—शक विजय के पश्चात् शूद्रक ने अपना संवत् प्रवृत्त किया।

२. नेपाल देश वास्तव्य श्रीमान् विद्वद्वर राजगुरु पण्डित हेमराज शर्माजी के पास सुमतितन्त्र नाम का एक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ संवत् ६३३ के समीप लिखा गया था। उसकी

एक प्रति बृटिश म्यूज़िअम में भी सुरक्षित है।[1] नेपालस्थ प्रति बारहवीं शताब्दी की लिपि में है। उसमें लिखा है—

युधिष्ठिर राज्याब्द २०००, नन्दराज्याब्द ८००, चन्द्रगुप्त राज्याब्द १३२, शूद्रकदेव राज्याब्द २४७ वर्ष, शकराज्याब्द ४६८।

> युधिष्ठिरो महाराजो दुर्योधनस्तथाऽपि वा। उभौ राजौ सहस्रे द्वे वर्षन्तु सम्प्रवर्त्तेति ॥
> नन्दराज्यं शताष्टं वारचन्द्रगुप्तास्ततो परम्। राज्यङ्करोति तेनापि द्वात्रिंशच्चाधिकं शतम् ॥
> राजा शूद्रकदेवश्च वर्षसप्ताब्धि चाश्विनौ। शकराजा ततो पश्चाद्वसुरन्ध्रकृतं तथा ॥[2]

३. यज्ञार्य के ज्योतिष दर्पण के कतिपय श्लोक पूर्व पृ० १०८ पर उद्धृत किए गए हैं। उनमें से ७१ श्लोक का उत्तरार्ध आगे लिखा जाता है—

> बाणाब्धिगुणदस्रोना २३४५ शूद्रकाब्दाः कलेर्गताः।

इनमें से प्रथम प्रमाण के ग्रन्थ की तथ्यता में लोगों ने सन्देह प्रकट किया है। परन्तु ग्रन्थ के मूल पत्रों को देख कर हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि यह कूट-ग्रन्थ नहीं है। दूसरे ग्रन्थ के विषय में किसी ने सन्देह नहीं किया। तदनुसार शकों से पूर्व शूद्रक-देव का राज्य था। तीसरा प्रमाण हमने ही प्रथम बार उपस्थित किया है। यह उस हस्तलेख से लिया गया था जो पञ्जाब विश्वविद्यालय लाहौर के पुस्तकालय में था। इसकी तुलना बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय के ग्रन्थ संख्या ४४३७ से हमारे मित्र श्री पण्डित युधिष्ठिर मीमांसकजी ने २१ जुलाई सन् १६४५ को अर्थात् लगभग साढ़े चार वर्ष पूर्व की थी। इस ग्रन्थ के कोश मद्रास के राजकीय पुस्तकालय में भी है। इस ग्रन्थ के पाठ के अर्थ-विषय में आगे लिखा जाएगा।

अब इन तीन प्रमाणों से यह निश्चित हो जाता है कि भारत के किसी भू-भाग में कभी शूद्रक का संवत् प्रचलित था। पुरातत्त्व-विभाग के अन्वेषकों को यद्यपि इस नाम से अङ्कित किसी संवत् का अभी तक पता नहीं लगा, तथापि इतने मात्र से इस संवत् के अस्तित्व में सन्देह नहीं किया जा सकता। पुरातत्व-विभाग के यथार्थ कार्य का अभी श्रीगणेश ही है।

हम अपने भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० २६५ पर सप्रमाण लिख चुके हैं कि शूद्रक का एक नाम श्रीहर्ष था। इस बात के ज्ञान के पश्चात् हर्ष-संवत् का पता अत्यन्त उपादेय हो जाता है।

हर्ष संवत्—अलबेरूनी लिखता है—हिन्दू विश्वास रखते हैं कि भूमि के गुप्त कोशों को ढूंढने के लिए श्रीहर्ष भूमि की परीक्षा किया करता था। उसने वस्तुतः ऐसे कोश प्राप्त किए। फलतः उसने (कर द्वारा) प्रजापीडन का आश्रय न लिया। उस का संवत्

---

१. नेपाल का कालक्रम, बिहार-उड़ीसा रिसर्च सोसायटी जर्नल, भाग २२, अंश ३, पृ० १६१—१६५।

२. बृटिश म्यूज़िअम की प्रति के अनुसार शूद्रक राज्य २२७ वर्ष और शक राज्य ४१८ वर्ष रहा। देखो बृटिश म्यूज़िअम में संस्कृत हस्तलेखों का सूचीपत्र, सेसिल बैण्डल द्वारा सम्पादित १६०१, पृ० ११३, ११४, संख्या १५६४।

मथुरा और कन्नौज देश में प्रयुक्त होता है। श्रीहर्ष और विक्रमादित्य के मध्य में ४०० वर्ष का अन्तर है। ऐसा इस प्रदेश के रहने वाले कतिपय लोगों ने हम से कहा।[1] इति।

आईन-अकबरी में संवत्-प्रवर्तक विक्रम और आदित्य पोंवार (विक्रमादित्य शूद्रक) का अन्तर ४२२ वर्ष का है।[2]

शूद्रक-काल-विषयक पुरातन वंशावलियां—कर्नल विल्फर्ड ने पुरातन वंशावलियों के आधार पर लिखा है—

From the first of Āditya era to the first of Sūdraka, there are 347 years.[3]

From the first year of Sūdraka to the first year of Vikramāditya …………there are 343 years and only fifteen kings to fill up that space.[4]

कर्नल विल्फर्ड के पास वैसी वंशावलियां ही थीं, जैसी आईन अकबरी के लेखक अब्दुल-फज़ल के पास। अतः ४२२, ३४७ और ३४३ का अन्तर चिन्त्य है।

विक्रमाब्द के आरंभ में कलिसंवत् के ३०४४ वर्ष बीत चुके थे। अतः यदि अलबेरूनी का लेख ठीक है तो कलि २६४४ में श्रीहर्ष का संवत् आरम्भ होना चाहिए। परीक्षित से आन्ध्रों अथवा सात-वाहनों के आरम्भ तक २४०० वर्ष व्यतीत हुए थे। अतः आन्ध्रों के मध्य में श्रीहर्ष संवत् आरम्भ हुआ। हम जानते हैं कि आन्ध्रों के मध्य में महाप्रतापी सम्राट् शूद्रक विक्रम हुआ था।[5] अतः श्रीहर्ष-संवत् और शूद्रक-संवत् का ऐक्य बहुत संभव है। पूर्व पृ० १०८ तथा पृ० १६४ पर यल्लयार्य के ज्योतिषदर्पण के श्लोक ७१ बाणाब्धिगुणदस्रोना २३४५ शूद्रकाब्दाः कलेर्गताः के प्रमाण से प्रतीत होता है कि विक्रमाब्द और शूद्रकाब्द का लगभग ७०० वर्ष का अन्तर था। इसी ग्रन्थ के श्लोक ६४ में यह अन्तर और भी अधिक दिखाया गया है। अतः इस लेख में पर्याप्त भूल हुई है।

परन्तु श्लोक ७१ में गुण का अर्थ ३ न करके यदि ६ किया जाए,[6] जो पूर्ण उचित है, तो सब अर्थ ठीक बैठता है। तदनुसार कलि संवत् २६४५ में शूद्रक संवत् का आरम्भ हुआ। फिर भी प्रभूत सामग्री के अभाव में अभी अन्तिम निश्चय नहीं हो सकता। और अलबेरूनी के लेख का पूर्ण प्रमाणित होना बड़ा आवश्यक है।

वर्तमान ऐतिहासिकों का पक्षपात—शूद्रक विषयक इस ऐतिहासिक सत्य को वर्तमान ऐतिहासिकों ने नष्ट करने का महान् यत्न किया है। भारतवर्ष के पाश्चात्य रीति पर लिखे गए

---

१. अध्याय उनचासवां। यह अनुवाद हमारा है।

२. सूबा उज्जयिनी का वर्णन।

३. Asiatic Researches, Vol. IX, p. 201, 1809 A. D.

४. तत्रैव, पृ० २०२।

५. भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० ३११-३०६।

६. शब्दांक अर्थात् संख्या-सूचक शब्द-संकेत, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, श्रावण १९९८, श्री अगरचन्द नाहटा का लेख, पृ० १२४, नीचे से पांचवीं पंक्ति।

किसी भी इतिहास में शूद्रक का नाम नहीं मिलता। जिस शूद्रक ने मृच्छकटिक सदृश सुन्दर प्रकरण लिखा, जो बड़ा विद्वान् और तेजस्वी सम्राट् था, तथा जिसका संवत् कभी अति प्रसिद्ध था, उसे कल्पित व्यक्ति कह देना वर्तमान विद्वत्ता का ही काम है। क्या इसी पक्षपात का नाम सूक्ष्म विद्वत्ता (critical scholarship) है।

श्रीहर्ष-विक्रम मालवा, मथुरा, कन्नौज और काश्मीर आदि पर राज्य करता था। उस के ४०० वर्ष पश्चात् मालवा में दूसरा विक्रम-संवत् अधिक चल गया। परन्तु मथुरा और कन्नौज आदि में कहीं कहीं यह हर्ष-संवत् ही प्रचलित रहा। इसीलिए अलबेरूनी को इसका थोड़ासा ज्ञान हो गया।

कृत-संवत्—कृतसंवत् पुराना मालव-गणाम्नात संवत् है। मन्दसोर के नरवर्मा के शिलालेख में लिखा है—

श्रीर्म्मालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते। एकषष्ट्यधिके प्राप्ते समा शतचतुष्टये ॥

अर्थात्—मालवगणाम्नात संवत् कृत नाम का संवत् था। उसके ४६१ वर्ष में। फ्लीट, कीलहार्न, स्मिथ, रैपसन और जायसवाल आदि वर्तमान पाश्चात्य पद्धति के ऐतिहासिक प्रचलित विक्रम संवत् को मालवसंवत् अथवा कृतसंवत् मानते हैं। है यह मत सर्वथा कल्पित और निराधार। इस मत की असत्यता वत्सभट्टिकृत प्रशस्ति वाले शिलालेख से स्पष्ट होती है। उसमें लिखा है—

मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये। त्रिनवत्यधिकेऽब्दानाम् ऋतौ सेव्यघनस्वने ॥
सहस्यमास-शुक्लस्य प्रशस्तेऽह्नि त्रयोदशे। मंगलाचारविधिना प्रासादोऽयं निवेशितः ॥
बहुना समतीतेन कालेनान्यैश्च पार्थिवैः।[1] व्यशीर्यतैकदेशोऽस्य भवनस्य ततोऽधुना ॥
वत्सरशतेषु पञ्चसु विंशत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु। यातेषु-अभिरम्य तपस्य-मासशुक्ल-द्वितीयायाम् ॥

अर्थात्—मालवसंवत् ४९३ पौष मास में यह प्रासाद बना। [तब कुमारगुप्त के समकालीन दशपुर के शासक विश्ववर्मन् का पुत्र बन्धुवर्मन दशपुर पर शासन करता था।] तब बहुत काल व्यतीत होने पर और अन्य राजाओं के भी चले जाने पर इस भवन का एक देश खण्डित हुआ।............अब ५२९ वर्ष बीतने पर फाल्गुन मास में इसका जीर्णोद्धार किया गया है।

फ्लीट आदि लेखक मालवकृत संवत् को विक्रमसंवत् मान कर संवत् ४९३ में इस भवन का निर्माण मानते हैं और संवत् ५२९ में इसका जीर्णोद्धार। क्या इस ३६ वर्ष के अन्तर को बहुत काल और बहुत राजाओं के हो जाने का काल कह सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं। फिर यदि मालव-कृत संवत को विक्रमसंवत् मान कर ४९३ के साथ ५२९ का योग किया जाय, तो संवत् १०२२ में इस भवन का जीर्णोद्धार मानना पड़ता है। संवत् १०२२ में इस शिलालेख की लिपि को अप्रचलित हुए बहुत काल हो चुका था। अतः यह कल्पना भी सत्य सिद्ध नहीं होती। बात वस्तुतः यह है कि कृत-संवत् शूद्रक-विक्रम संवत् था। यह संवत् विक्रमसंवत् से ४०० वर्ष पहले चल चुका था। तदनुसार इस भवन का निर्माण ९३ विक्रम संवत् में हुआ था।

---

१. तुलना कर—स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ भगवद्गीता ४।२॥.

विक्रम-संवत् का प्रारम्भकर्ता चन्द्रगुप्त विक्रमाङ्क-साहसाङ्क अथवा समुद्रगुप्त-विक्रमांक था। उससे ६३ वर्ष पश्चात् कुमारगुप्त के समकालिक बन्धु वर्मा का पुत्र राज्य कर रहा था। कुमार गुप्त का राज्य उससे लगभग २० वर्ष पहले होगा। अर्थात् विक्रम संवत् ७३ में – उससे भी ५२६ वर्ष बीतने पर, अर्थात् ५२६+६३=संवत् ६२२ में इस भवन का जीर्णोद्धार हुआ। इस संगति के विना इस शिलालेख का दूसरा अर्थ लग नहीं सकता। गत ५० वर्ष में इसका कोई संगत अर्थ किया नहीं गया। अध्यापक धीरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने यह अर्थ किया है। परन्तु शूद्रक-विक्रम कृत-संवत् का कर्ता था, यह उन्होंने भी नहीं लिखा।

शूद्रक-विक्रम संवत् क्यों कृत-संवत् कहाया ?

महाराज समुद्रगुप्त ने लिखा है—

पुरन्दरवरो विप्रः शूद्रकः शास्त्रशस्त्रवित्। धनुर्वेदं गौरशास्त्रं रूपके द्वे तथाकरोत् ॥६॥
स विपद्मावजिताऽभूच्छस्त्रैः शस्त्रैश्च कीर्तये। बुद्धिवीर्ये नास्य परे सौगताश्च प्रसेहिरे ॥७॥
स तस्तारारिसैन्यस्य देहखण्डै रणे महीम्। धर्माय राज्यं कृतवान् तपस्विव्रतमाचरन् ॥८॥
शस्त्रैर्जितमयं राज्यं प्रेम्णाकृतान्निजं गृहम्। एवं ततस्तस्य तदा साम्राज्यं धर्मशासितम् ॥९॥

इनमें से आठवें और नवम श्लोक में यह लिखा है कि शूद्रक विक्रमादित्य धर्म के लिए राज्य करता था, अथवा उसके साम्राज्य में धर्म का शासन था। इस धर्मशासन के कारण शूद्रक का विक्रम-संवत् कृत-संवत् कहलाया।

शक १०४२ के शिलालेख में शीलाहार गंडरादित्यदेव को कलियुग-विक्रमादित्य लिखा है।[1] इस से प्रतीत होता है कि कोई कृत-विक्रमादित्य भी था। वह कृत-विक्रमादित्य शूद्रक था। उसी ने सब से पहले शकों का नाश करके धर्म का राज्य स्थापन किया।

शूद्रक का वृत्तान्त धर्मप्रधान था, इसका पता जैन आचार्य हेमचन्द्र के लेख से भी मिलता है—एवं धर्मादिपुरुषार्थमुद्दिश्य प्रकारवैचित्र्येण अनन्तवृत्तान्तवर्णनप्रधाना शूद्रकादिवत् परिकथा।[2]

विक्रम-संवत् के किसी एक भी शिलालेख या ताम्रपत्रलेख पर उसे कृतसंवत् नहीं कहा गया। कृतसंवत् वर्तमान विक्रम संवत् से एक सर्वथा पृथक् संवत् था।

कष्ट-प्रद और अधर्मयुक्त राज्य के पश्चात् जब धर्म प्रवृत्त होता है, तो उसे कृतयुग कहते हैं। परशुराम द्वारा क्षत्रियनाश के पश्चात् जब एक बार क्षात्रतेज पुनः उदित हुआ, तो महाभारत आदिपर्व ५८। २४ के अनुसार कृतयुग वर्तमान हो गया—एवं कृतयुगे सम्यग् वर्तमाने तदा नृप अर्थात् इस प्रकार कृतयुग हुआ।

इस प्रकार शूद्रक राज्य कृतयुग का प्रवर्तक था। और अनुमान है कि उसका संवत् कृत संवत् कहा जाने लगा।

मालवगण संवत्

१. कृतसंवत् के शीर्षक के नीचे हम पूर्व बता चुके हैं कि दशपुर=मन्दसोर के राजा नरवर्मा के कृतसंवत् ४६१ के लेख में इस संवत् को मालवगणाम्नात संवत् लिखा है।

१. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग ११, पृ० ११। २. काव्यानुशासन मुम्बई संस्करण, पृ० ४६४।

२. वत्सभट्टि की मन्दसोर प्रशस्ति में मालवानां गणस्थिति का संवत् ४९३ अङ्कित है।

३. गुप्तकुल के महाराज गोविन्दगुप्त का सेनापति वायुरक्षित था। उसका पुत्र दत्तभट था। वह दशपुर के राजा प्रभाकर का सेनापति था। दत्तभट का संवत् ५२४ का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है। उसका लेख नीचे दिया जाता है।

शशिनिशानाथकरामलायाः विख्यापके मालववंशकीर्तेः।

शरद्गणे पञ्चशते व्यतीते त्रिधातिताष्टाभ्यधिके क्रमेण ॥२१॥[1]

अर्थात्—मालववंश की कीर्ति कहनेवाले प्रसिद्ध संवत् के ५२४ वर्ष में…………।

४. श्री देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर सम्पादित उत्तर-भारतीय लेखों की सूची में विक्रम संवत् के लेखों की संख्या १८ के अन्तर्गत निम्नलिखित लेख है—

संवत्सरशतैर्यातैः सपंचनवत्यर्गलैः। सप्तभिर्मालवेशानां ॥[2]

अर्थात्—मालवेशों के संवत् ७९५ में।

५ भण्डारकर की सूची में संख्या २७ में अगला लेख सन्निविष्ट है—

मालवकालाच्छरदां षट्त्रिंशतसंयुतेष्वतीतेषु नवसु शतेषु संवत् ९३६।

६. पूर्वोक्त सूची में संख्या ३४६ में अगलालेख है—

मालवेश-गत-वत्सरशतैः द्वादशैश्च षड्विंशपूर्वकैः।

इन छः लेखों में से प्रथम तीन तो निश्चित कृतसंवत् के लेख हैं। यह कृत-संवत् मालवगण द्वारा अभ्यस्त अथवा प्रचलित किया गया था। तृतीय लेख का यही मालववंश की कीर्ति का संवत् था। चौथे और छठे लेख का संवत् मालवेशों का संवत् है। इसका मालवगणाम्नात संवत् से क्या सम्बन्ध था, यह अभी अज्ञात है। पांचवें लेख का संवत् और भी संदिग्ध है।

शूद्रक, कृत, मालवगणाम्नात और मालववंश के संवतों की सामग्री को हमने यहां एकत्र कर दिया है। इस विषय का पूर्ण निर्णय भावी में अधिक सामग्री के मिलने पर होगा।

५. प्रथम शक संवत्

यह संवत् चष्टन के कुल में प्रयुक्त हुआ है। शक मुद्राओं और शिलालेखों में इसका प्रयोग हुआ है। इसके विषय में अभी अधिक खोज की आवश्यकता है।

६. पारद संवत्

पंजाब के पश्चिमोत्तर प्रदेश में कभी पारद अथवा Parthian संवत् प्रचलित था। इसका दूसरा नाम Arsacid संवत् था। यह शक विक्रम संवत् से १८९ वर्ष (246 B. C.) पहले चला था।

---

१. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग २७, अंक १, पृ० १२। जनवरी १९४७, प्रकाशन सन १९४९।

२. मूल लेख इण्डियन एण्टिक्वेरी भाग १९, पृ० ५९ पर है।

पह्लवी भाषा का एक अति पुरातन लेख सन् १९०९ में कुर्दिस्तान से मिला था। उस पर ह्र्यतत् मास का इस शक का ३०० वर्ष अङ्कित है।[1]

६. विक्रम संवत्

आर्यों का यह प्रसिद्ध संवत् रहा है। कलिसंवत् ३०४४ से इसका आरम्भ माना जाता है। इसके विषय में अलबेरूनी लिखता है—

जो लोग विक्रमादित्य के संवत् का उपयोग करते हैं वे भारत के दक्षिणी और पश्चिमी भागों में बसते हैं। इति।[2]

भारतीय इतिहास में गुप्तों का वंश विक्रमों का वंश है। समुद्रगुप्त को विक्रमाङ्क, चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमाङ्क अथवा विक्रमादित्य, और स्कन्दगुप्त को विक्रमादित्य कहते हैं।[3] अतः इस प्रसिद्ध विक्रम संवत् का सम्बन्ध इन्हीं विक्रमों से जुड़ता है। अपने भारतवर्ष का इतिहास द्वितीय संस्करण पृष्ठ ३२६—३४८ तक हमने इस विषय की विषद विवेचना की है। तदनुसार विक्रम संवत् साहसाङ्क संवत् भी कहाता है। इसके तीन प्रमाण हमारे इतिहास के पृ० ३२६ पर दिए गए हैं। इनके अतिरिक्त भण्डारकर की पूर्वोक्त सूची में संख्या ४०२ और ४७६ भी साहस संवत्सर का उल्लेख करते हैं। इनके अतिरिक्त सूची की संख्या २०३३ का निम्नलिखित लेख है—

चतुर्विंशत्यधिकेऽब्दे चतुर्भिर्नवमे शते शुक्र साहसमङ्काङ्के नभस्ये प्रथमे दिने संवत् ९४४ भाद्रपद शुदि १ शुक्रे श्रीमद् विजयसिंहदेव राज्ये............।

भण्डारकर इसे कलचुरी संवत् मानता है। वह लिखता है—

The dates in Nos. 402 and 476 called साहस may also be years of the Kalchuri era, as they work out alright for this era also.[4]

अर्थात्—साहस संवत् वाले लेख कलचुरी संवत् के भी हो सकते हैं।

हमें यह मत ठीक प्रतीत नहीं होता। हमारे पास इस समय अपना बृहद् पुस्तकालय नहीं है। उसका प्रभूत भाग देश के विभाजन में २॥ वर्ष पहले नष्ट हो गया। अतः इस प्रश्न पर हम पूर्ण प्रकाश नहीं डाल सकते। परन्तु हमारे इतिहास के पाठ से इतना स्पष्ट हो जाता

1. Progress of Indic Studies 1917—1942. Poona, 1942. p. 77.
परलोकगत श्री स्टेन कोनो ने मुझे २२ नवम्बर सन् १९४६ के पत्र में लिखा था—
Every body who has tried to elucidate Indian chronology will know how many difficulties still remain to be cleared up, and in the last years a new and serious one has turned up through the discovery of a Parthian era of 245 ? B. C. It is a good thing that we have learnt that the Seleucid era was never used in India, but the Parthian has evidently played a greater role than we should have expected, and I am much obliged to your son in this connection for reminding me of the Girdharpur and Kankali Tila inscriptions. See, The Śakas in India by Satya Shrava, 1947, Lahore. Before the introduction.
2. अलबेरूनी का भारत, उनचासवां परिच्छेद, श्री सन्तराम कृत भाषानुवाद पृ० ७।
3. देखो, हमारा भारतवर्ष का इतिहास, द्वि० सं० पृ० ३५१—३५५।
4. List, p. 262, Note 2.

है कि साहसांक-संवत् विक्रम-संवत् माना जाता था। महाराज चन्द्रगुप्त द्वितीय इतिहास का प्रसिद्ध साहसांक है, अतः उसका विक्रम संवत् से किसी प्रकार का सम्बन्ध अवश्य है।

इस मत में एक बाधा है। पुरातन वंशावलियों में समुद्रपाल अर्थात् समुद्रगुप्त का राज्य अवन्ति के विक्रमादित्य के ६३ वर्ष पश्चात् माना जाता है। इस से एक बात सर्वथा निश्चित होती है कि समुद्रगुप्त का राज्य विक्रम से ३८० वर्ष पश्चात् कभी नहीं था। फ्लीट ने अलबेरूनी के मत को बिगाड़ कर यह कल्पना की है। अलबेरूनी का गुप्त-वलभी संवत् गुप्तों की समाप्ति पर आरम्भ होता है। अलबेरूनी के अनुसार गुप्तों के आरम्भ से चलने वाला गुप्त-संवत् और शक-काल एक थे। अतः फ्लीट ने बड़ा अन्याय करके सत्य को और भारतीय इतिहास को विकृत कर दिया है।

जैन लेख वंशावलियों का समर्थन नहीं करते। चामुण्डराज का गुप्त-संवत् १०३३ का ताम्रशासन गुप्त-संवत् और विक्रम संवत् का ऐक्य बताता है।[1] अतः उपर्युक्त बाधा दूर हो सकती है। पर अभी अधिक सामग्री एकत्र करने की बड़ी आवश्यकता है।

अध्यापक अल्तेकरजी ने विक्रम संवत् को कृत-संवत् सिद्ध करने के लिए एक लेख नागरी-प्रचारिणी पत्रिका के विक्रम-अङ्क में लिखा था। यह लेख किञ्चित्-उपयोगी तो है, पर एकदेशीय होने से अधिक महत्त्व का नहीं रहा। उन्होंने इस लेख में साहसाङ्क और उसके संवत् का वर्णन सर्वथा नहीं किया। अन्य अनेक बातें भी उनके लेख को अधूरा और पक्षपात-युक्त बताती हैं। अस्तु।

६. पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त संवत्

पृथ्वीराज रासो में निम्नलिखित पद मिलते हैं—

एकादस सै पैचदह। विक्रम साक अनंद॥ तिहि रिपु जय पुरहरन को। भय प्रिथिराज नरिंद॥छं०॥१६४॥रू०३५५॥

एकादस समयैन्न कृत। विक्रम जिम ध्रमसुत्त॥ त्रितयसाक प्रथिराज कौ। लिष्यौ विप्रगुन गुप्त॥छ०६६४॥रू०३५६॥

अर्थात्—पृथ्वीराज का जन्म शाके ११११५ में हुआ। यह वह शाका है, जो प्रचलित विक्रम-संवत् के ६० वर्ष पश्चात् चला। दूसरे पद का प्रथम चरण बहुत अशुद्ध है। इसमें कृत शब्द ध्यान देने योग्य है। दूसरे चरण में विक्रम शब्द पड़ा है। उत्तरार्ध सरल है और उसका अर्थ यह है कि हे विप्रगण, तीसरे शक में यह पृथ्वीराज का जन्म लिखा है। इस शक का नाम गुप्त है।

इस लेख का यदि यह अर्थ ठीक है तो गुप्त शक विक्रम शक के ६० वर्ष पश्चात् चला। आश्चर्य है कि चन्द्रगुप्त प्रथम के ७ वर्ष, समुद्रगुप्त के ५१ वर्ष और चन्द्रगुप्त द्वितीय के ३२ वर्ष ही हमने अपने इतिहास में लिखे थे। इन सब का योग ९० वर्ष बनता है। कलियुग राज वृत्तान्त के अनुसार यह काल ९४ वर्ष का है। चन्द्रगुप्त द्वितीय का अन्तिम ज्ञात वर्ष संवत् ८३ है।

ऐसी स्थिति में रासो की पुरानी प्रतियों के संवाद से इन पदों का पाठ पूर्ण शुद्ध होना अब बहुत आवश्यक प्रतीत हो रहा है। हमने यह सामग्री भविष्य में सत्यता की खोज के

[1] हमारा भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० १४८।

लिए यहां दी है। महाराज पृथ्वीराज की जन्मतिथि में इस शक का प्रयोग लगभग २०० वर्ष पुराने एक अन्य लेख में भी मिला है। देखिए, पूर्व पृष्ठ ३० का अन्त और उसी पृष्ठ का टिप्पण संख्या ३।

क्या विक्रम-काल भी कभी शक-काल कहाता था—श्री सत्यश्रवा ने अब्दुल-फज़ल के लेख और दूसरे प्रमाणों से सिद्ध किया है कि कभी विक्रम-संवत् भी शक-संवत् कहाता था।[1] अतः भारतीय ताम्रपत्र और शिला-लेखों के अध्ययन समय इस बात पर ध्यान रहना चाहिए। इस दृष्टि से भण्डारकर की सूची में संख्या १०७८ के ताम्रपत्रों पर शकनृपकालातीतसंवत्सर ४०० का अर्थ विक्रम-संवत् भी हो सकता है। तदनुसार वलभी के मैत्रकों के लेख शालिवाहन शक में अथवा उस के आस पास के काल के होंगे। स्मरण रहे कि मैत्रकों के लेख वलभी-संवत् में नहीं हैं। प्रसिद्ध वलभी-संवत् उनके पश्चात् चला था।

इस विचारानुसार धरसेनदेव का शक ४०० का ताम्रपत्र (भण्डारकरसूची संख्या १०७८) विक्रमसंवत् का सूचक है। तथा धरसेन द्वितीय का संवत् २६६ का ताम्रपत्र शककाल के वर्षों में लिखा गया है। इस प्रकार शक ४०० का ताम्रपत्र कूट नहीं कहा जाएगा।

इस जटिल विषय को वे आलसी लोग नहीं सुलझा सकते, जो कल्पित विचारों के अनुकूल न बैठनेवाले सब ताम्रशासनों को कूट (spurious) कह कर अपना पीछा छुड़ाते हैं।

१०. शालिवाहन शक

नाम प्राचीनता—इस नाम का सब से पुरातन उपलब्ध प्रयोग शक ६८१ का है—

एकादशशतवर्षांश्च तदधिकं षोडशं च विक्रमे देशं। संवत् १११६ नवसत एकासीति सकगत शालिवाहन च नृपधीस साके ६८१ ॥

अर्थात्—विक्रम संवत् १११६ तथा शालिवाहन शक ६८१।

नाम-कारण—एक लेख में लिखा है—

शालिवाहननिर्णीत शकवर्षक्रमागते।

अर्थात्—शालिवाहन के निर्णय किये शक वर्षों के क्रम में।

संवत् १४८८ में वटश्शेरिके परमेश्वराचार्य ने एक बार पुनः शकगणनार्थ शोधी।[2]

शक के आरंभ का कारण—अलबेरूनी लिखता है—

शक के संवत् या शक-काल का गणनारम्भ विक्रमादित्य से १३५ वर्ष पीछे होता है। अग्रोल्लिखित शक ने, इस देश के बीच में आर्यावर्त को अपना निवास बनाने के अनन्तर, सिन्धु नदी और सागर के बीच उनके देश पर अत्याचार किए। उसने हिन्दुओं के लिए आज्ञा करदी कि वे अपने आप को शकों के अतिरिक्त न कुछ और समझें और न कुछ और प्रकट करें। कुछ लोगों का मत है कि वह अलमनसूरा नगर का एक शूद्र था, कुछ

१. शकास इन इण्डिया, पृ० ३६—३७।

२. बड़ोदा राजकीय पुस्तकालयस्थ संख्या ६८८१ के हस्तलेख के आधार पर लेख, भारतीय विद्या, भाग ८ सि०, अक्तूबर, सन् १६४७, पृ० १०७।

लोगों की धारणा है कि वह हिन्दू सर्वथा न था, और वह पश्चिम से भारत में आया था। हिन्दुओं ने उसके हाथ से बहुत दुःख पाया, परन्तु अन्त को पूर्व से उनके पास सहायता आ पहुंची। विक्रमादित्य ने उसके विरुद्ध चढ़ाई की, और उसे भगाकर, मुलतान और लोनी के दुर्ग के बीच, करूर के प्रदेश में मार डाला। अब यह तिथि विख्यात हो गई, क्योंकि अत्याचारी की मृत्यु का समाचार सुनकर प्रजा को बड़ा आनन्द हुआ, और लोग, विशेषतः, ज्योतिषी, इस तिथि का एक संवत् के आरम्भ के रूप में प्रयोग करने लगे। वे विजेता के नाम के साथ श्री लगाकर उसका सम्मान करते हैं, और उसे श्री विक्रमादित्य कहते हैं।'[1] इति।

पूर्वलिखित लेख में निम्नलिखित बातें सुनिश्चित हैं—

१. शककाल किसी विक्रमादित्य की विजय से आरम्भ हुआ।

२. वह विक्रमादित्य पूर्व से आया था।

३. शक-राज का मारा जाना इस संवत् के आरम्भ का कारण था।

अलबेरूनी अपनी पुस्तक कानून मसऊदी में यही बात लिखता है—

..........ज्योतिषियों में, जो संवत् सबसे अधिक प्रसिद्ध है वह शककाल अर्थात् शक का समय है। यह संवत् उसके विनाश के वर्ष से गिना जाता है।[2]

इस कारण की ओर सबसे पहले श्री सत्यश्रवा ने विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने अपने अंग्रेजी ग्रन्थ शकास् इन इण्डिया में अलबेरूनी के लेख की पुष्टि में निम्नलिखित प्रमाण दिए—

१. खण्डखाद्यक का टीकाकार आमराज (लगभग १२३७ विक्रम संवत्) लिखता है—

शका नाम म्लेच्छा राजानस्ते यस्मिन्काले विक्रमादित्येन व्यापादिताः स शकसम्बन्धीकालः शाक इत्युच्यते।[3]

अर्थात्—शक नामक म्लेच्छ राजा जब विक्रमादित्य से मारे गए, तो इस शक मरण-सम्बन्धी काल को शाक कहने लगे।

२. सिद्धान्तशिरोमणि के ग्रहगणित अध्याय में प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य लिखता है—

नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः॥[4]

अर्थात्—शक नृप के अन्त पर कलि के ३१७९ वर्ष बीते थे।

३. सिद्धान्त शेखर का कर्ता श्रीपति भी यही लिखता है—

याताः कलेर्नवनगेन्दुगुणाः ३१७९ शकान्ते।[5]

---

१. श्री सन्तराम कृत अनुवाद, तीसरा भाग, सन् १९२८, पृ० ७,८।

२. तत्रैव, तीसरा भाग, टीका, पृ० १२२।

३. आमराजभाष्य सहित खण्डखाद्यक, कलकत्ता संस्करण, सन् १९२५, पृ० २।

४. कालमानाध्याय १।२८॥ ५. १।१५॥

अर्थात् शकराज के अन्त पर कलि के ३१७६ वर्ष व्यतीत हुए थे।

श्रीपति का टीकाकार मक्किभट्ट (विक्रम संवत् १४२४)[1] इस वचन पर लिखता है—

शकान्ते शकावधौ काले। शकवर्षप्रारम्भात् पूर्वं कलेः।

अर्थात् शक वर्ष के प्रारंभ में कलि के ३१७६ वर्ष बीते, अब शकों की अवधि होगई।

४. यही भाव एक अन्य पुरातन लेख में मिलता है—

व्योम-वियत्-फणीन्द्ररसना-चन्द्रप्रमाणाभिमतातीतासु क्षितिमृच्छकावधि रामासु.........।[2]

अर्थात्—शकराज की समाप्ति से होने वाले १२०० संवत् में।

५. तार्किक-प्रवर उदयन (शक ९०६) लिखता है—

तर्काम्बराङ्क प्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः। वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम् ॥

अर्थात् शक के अन्त से ९०६ वर्ष व्यतीत होने पर उदयन ने लक्षणावली रची।

६. अलबेरूनी से स्मृत भट्ट उत्पल वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता ८।२० की टीका में लिखता है—

शका नाम म्लेच्छजातयो राजानस्ते यस्मिन्काले विक्रमादित्यदेवेन व्यापादिताः स कालो लोके शक इति प्रसिद्धः।[3]

७. वटेश्वर (शक ७०२) भी यही लिखता है—

कलेर्नैवागैक्गुणाः शकावधेः।[4]

संख्या ३ और ४ में लिखे गए अवधि शब्द का प्रयोग ही वटेश्वर ने किया है।

८. ब्रह्मगुप्त शकनृपों[5] के ५५० वर्ष में अपने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में लिखता है—

कलेर्गोऽकगुणाः शकान्तेऽब्दाः।१।२६॥

अर्थात्—शकराज के अन्त में कलि के ३१७६ वर्ष बीत चुके थे।

श्री सत्यश्रवा ने आगे सुदृढ प्रमाणों से सिद्ध किया है कि शकनृपकालातीतसंवत्सर का अर्थ ही यह है कि जो संवत्सर शकनृप के काल के पश्चात् चला।[6]

कलिसंवत् ३१७६ के पश्चात् भारत में शकराज्य क्षीण हो गया। तब किसी विक्रमादित्य का राज्य हुआ। यह विक्रमादित्य गुप्तों का कोई प्रतापी राजा था।

---

१. जर्नल इण्डियन हिस्ट्री, मद्रास, भाग १६ पृ० २५६—२६२ पर पा० के० गोडे का लेख।

२. ऐ० इ० भाग १३, पृ० १५१—तथा भण्डारकर की सूची, संख्या ११११५।

३. बनारस संस्करण, पृ० १६३।

४. देखो, शकाज इन इण्डिया, पृ० ४३ टिप्पण २।

५. क्या यह विक्रम से पूर्व के शकनृपों का गणनाकाल है।

६. शकाज इन इण्डिया, पृ० ४४—४६।

शकनृपतेतीता अब्दाः ११४१ (भण्डारकर सूची, सं० ११११२) का अर्थ अन्य प्रकार का है। ऐसे प्रयोग को देख कर ही पूर्व-लेख का अशुद्ध अर्थ किया गया है।

अलबेरूनी के गुप्तकाल और शककाल का ऐक्य—गुप्त-वल्लभ संवत् का आरम्भ अलबेरूनी शककाल के २४१ वर्ष पश्चात् मानता है। अलबेरूनी के अनुसार गुप्त-संवत् गुप्तों के नाश से चला। गुप्त राज्य २४२ वर्ष रहा। अतः अलबेरूनी निर्दिष्ट गुप्त-वल्लभ संवत् से २४२ वर्ष पहले गुप्त आरम्भ हुए। इस प्रकार गुप्त-राज्य और शककाल का आरम्भ लगभग एक साथ पड़ता है।

अलबेरूनी के लेख की सत्यता का एक अन्य प्रमाण—शककाल शकराज की मृत्यु से चला और शकराज का हनन विक्रमादित्य द्वारा हुआ, इसका प्रमाण जैन ग्रन्थों में मिलता है। पूर्व पृ० ११६-१२० पर धवला और जयधवला के प्रमाण से हम लिख चुके हैं कि इन ग्रन्थों में शकनरेन्द्रकाल को विक्रमराजकाल कहा है। अतः शक को मारनेवाला शकनरेन्द्र विक्रमराज था। अलबेरूनी ने परंपरा का ठीक निदर्शन किया है।

जैन ग्रन्थ त्रिलोकसार में निम्नलिखित गाथा मिलती है—

पणछस्सय वस्सं पणमास जुदं गमिय वीर णिव्वुइदो। सगराजो तो कक्की चदुणवतियमहि सगमासं ॥८५०॥

माधवचन्द्र इस गाथा की व्याख्या में लिखता है—

श्रीवीरनाथनिर्वृतेः सकाशात् पंचोत्तरषट्शतवर्षाणि (६०५) पंचमासयुतानि गत्वा पश्चात् विक्रमांक शकराजो जायते।

जैन परम्परा का यह संकेत भविष्य में खोज करने वालों और इन प्रश्नों का अन्तिम निर्णय करने वालों के लिए आवश्यक जान कर यहां लिखा गया है।

वर्तमान ऐतिहासिकों का भ्रम

विक्रम-संवत्, साहसांक-संवत्, शककाल और गुप्तकाल के विषय में अति संक्षेप से जो ऊपर लिखा गया है, उससे जान पड़ता है कि इन संवतों के सम्बन्ध की अनेक बातें अभी अन्धकार में हैं जो लोग फ्लीट की कल्पना को ठीक मान कर आलस्य-युक्त हो गए हैं, और समझते हैं कि गुप्त-काल के आरम्भ का निर्णय हो चुका है, तथा शककाल चष्टन आदि शक राजाओं का काल है, अथवा कृतसंवत् प्रचलित विक्रम संवत् है, वे महाभ्रम में हैं। उनका आग्रह वैसा आग्रह ही है जैसा गैलीलियो के सामने ईसाई पादरियों का आग्रह था। ये मतवादी लोग सत्य को नहीं ढूंढ सकते। हमने प्रमाण उपस्थित कर दिए हैं और अधिक खोज आगे होनी चाहिए।

वर्षारम्भ—अलबेरूनी लिखता है—जो लोग शक-संवत् का प्रयोग करते हैं, अर्थात् ज्योतिषी, वे चैत्र मास से वर्ष आरम्भ करते हैं, परन्तु कनीर के अधिवासी, जो कश्मीर का उपान्तवर्ती प्रदेश है, भाद्रपद से आरम्भ करते हैं।.........

जो लोग बर्दरी और मारीगल के बीच के देश में बसते हैं वे सब कार्तिक से वर्ष आरम्भ करते हैं।...........

मारीगल के पिछली ओर, ताकेशर और लोहावर के नितान्त उपान्तों तक, नीरहर का देश है। उसमें बसने वाले लोग मार्गशीर्ष मास से वर्ष आरम्भ करते हैं।............ मुझे मुलतान के लोगों ने बताया है कि यह रीति सिंध और कन्नौज के लोगों में विशेष रूप से है, और वे मार्गशीर्ष की अमावस्या से वर्ष आरम्भ किया करते हैं, परन्तु मुलतान वालों ने थोड़े ही वर्ष से इस रीति को छोड़कर काश्मीर के लोगों की पद्धति को ग्रहण कर लिया है, और उन के उदाहरण का अनुकरण करते हुए वे चैत्र की अमावस्या से वर्ष आरम्भ करते हैं। इति।

शक-वर्ष का सब से पुरातन-उपलब्ध लेख—शक-काल का निर्विवाद सर्व-पुरातन उपलब्ध लेख निम्नलिखित है—

शक-वर्षेषु चतुश्शतेषु पञ्चषष्टियुतेषु.........चालिक्यो वल्लभेश्वरः।

अर्थात्—शक-वर्ष ४६५ में.........चालिक्य वल्लभेश्वर।[1]

शक-काल की वर्ष-गणना का शोधन—श्री सत्यश्रवा ने अपने ग्रन्थ के पृ० ३९ पर एक लेख उद्धृत किया है—

शालिवाहन-निर्णीत शकवर्ष क्रमागते

इस लेख से प्रतीत होता है कि शकवर्षों की गणना का शोधन हो चुका है। इसी शोधन-कर्म का परिचय निम्नलिखित लेख से मिलता है—

चालुक्यवंशतिलकः श्रीसोमेश्वर पतिः। कुरुते मानसोल्लासं शास्त्रं विश्वोपकारकम् ॥१०॥ प्रकरण १, अध्याय १।

षोडशाभिहिता पांष्टः प्रभवाब्दसंयुता। द्वावेरपि समायुक्ताः शाकभूपोद्धतास्समाः ॥६१॥

एकपञ्चाशदधिके सहस्रे शरदां गते। शाकस्य सोमभूपाले सति चालुक्यमण्डिते ॥६४॥

समुद्ररशनामुर्वी शासति ध्रुत्रैद्धिपि। सौम्यसम्वत्सरे चैत्रे मासादौ शुक्रवासरे।

पारिशोधितसिद्धान्ता अब्दास्सुर्भुवका इमे ॥६५॥ प्रकरण १, अध्याय २।

पूर्वोद्धृत अन्तिम पंक्ति में परिशोधितसिद्धान्ता अब्दाः पाठ ध्यान देने योग्य है। इस पाठ की अशुद्धियां हमने मूलवत् रहने दी हैं। तथापि शाक ६६३ तथा १०५१ द्रष्टव्य हैं।

भारतीय विद्या, अगस्त, सितम्बर, अकतूबर, सन् १९४७, पृ० २०७ पर बड़ोदा, राजकीय पुस्तकालय के मलयालम हस्तलेख संख्या ९८८६ के आधार पर लिखा है कि वटश्शेरि के परमेश्वराचार्य ने सन् १४३१ में शक-काल की गणना का शोधन किया।

इन सब बातों को ध्यान में रख कर कहा जा सकता है कि शक-काल के सूचक वर्षों का क्रम बहुत सावधानी से जोड़ना चाहिए। वर्ष-गणना ठीक न बैठने पर ताम्रपत्र को सहसा कूट नहीं कहना चाहिए। शक-काल की गणना का शोधन किस किस रीति पर हुआ, इसके लिए सामग्री एकत्र करनी चाहिए।

शक-काल और चालुक्य-राजाओं के इतिहास के लिए उपयोगी समझकर निम्नलिखित श्लोक नीचे दिए जाते हैं—

---

१. एपिग्राफिया इंडिका, भाग १७, अङ्क १, पृ० ८।

संवत्सराणां विगते सहस्रे सप्तसप्ततौ विक्रमपार्थिवस्य । इदं निषिद्धान्यमतं समाप्तं जिनेन्द्रधर्मप्रतिपादिशास्त्रम् ॥
इति श्रीमतगातिकृता धर्मपरीक्षा समाप्ता ॥

शाता चरम्नाग्रतवर्षयुक्ता पापोनिता स्यात् शककालसख्या ।
चालुक्ययुक्ता मुनिनिचित्तसमेता श्रीवर्धमानस्य समा भवेयुः ॥[1]

पिछले श्लोक का अर्थ अस्पष्ट है। भावी विद्वान् इस का तथ्य खोलेंगे।

११. कलचुरी–चेदीश संवत्

चेदी देश स्थिति तथा चेदी के राजा—वर्तमान बुन्देलखण्ड पुराना चेदी जनपद था। भारत युद्ध काल में भोजकुल के क्षत्रिय चेदी पर राज करते थे। कलचुरी कुल का राज, नागपुर, रेवा आदि में रहा है।

इस संवत् के दो लेखों में निम्नलिखित प्रकार से इस संवत् का उल्लेख है।

१. भण्डारकर सूची संख्या २०३१ अमोदा, (बिलासपुर, सी० पी०) पृथ्वीदेव प्रथम का लेख—

चेदीशस्य संवत् ८११............।

२. भण्डारकर सूची संख्या १२३१ कुग्द, (बिलासपुर, सी० पी०) पृथ्वीदेव द्वितीय का लेख—

कलचुरी संवत्सरे ८९३............।

वर्तमान लेखकों के अनुसार यह संवत् ईसा सन् २४८, २४९, २५० अथवा २५१ में प्रवृत्त हुआ। संवत्सर आरम्भ की ये भिन्न २ तिथियां बताती हैं कि इस विषय में कल्पनाएं बहुत अधिक की गई हैं।

बल्लयार्य का लेख—पूर्व पृ० १०८ पर हम ज्योतिषदर्पण के कुछ श्लोक उद्धृत कर चुके हैं। उनमें निम्नलिखित श्लोकार्ध ध्यान देने योग्य है—

खाब्युक्शाकवर्षेषु ५० भोजराजस्य वत्सराः ॥७॥[2]

अर्थात् शकवर्ष के साथ ५० युक्त हों तो भोजराज का संवत् बनता है। इस प्रकार भोजसंवत् शक-काल से ५० वर्ष पहले अथवा विक्रमाब्द से ८५ वर्ष पश्चात् प्रवृत्त हुआ था। इस संवत् का और पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त संवत् का ५–६ वर्ष का अन्तर है। अतः कलचुरी संवत् पर अधिक विचार की आवश्यकता है।

कीलहार्न और कलचुरी संवत्—कलचुरी संवत् के विषय में सब से पहले डा० कीलहार्न[3] ने और अन्त में श्री मिराशी[4] ने लेख लिखे हैं। इन दोनों के लेख अभी तक अनुमान कोटि में हैं। कीलहार्न का आधार निम्नलिखित लेखों पर है—

1. A Triennial Cat of Manuscripts, Madras, R. Number 5381, p. 7417.

२. भम्बेन्दु चन्द्रांशहतास्तेऽपि भोजपतेः समाः ११५। पर्कविंशाद्दशानारते २१ शेषाः शकुनिवत्सराः ॥ ५८ ॥
ज्योतिषदर्पण के कर्ता ने यह श्लोक ग्रन्थान्तर से पढ़ा है। इसका अर्थ यद्यपि अत्यन्त आवश्यक है, पर अस्पष्ट है।

3. Festgruss an Roth, pp. 53 f.

4. Annals of The Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol. XXVII, Parts I—II.
. Q. Vol. XXV. No. 2, June 1949, pp. 1f.

(क) भेराघाट, (जबलपुर) का नरसिंहदेव का लेख—

संवत् ९०७ मार्ग सुदि ११, रवौ..........।[1]

(ख) लालपहाड़ (भरहुत, मध्य भारत) का त्रिकलिङ्गाधिपति नरसिंहदेव का लेख—

संवत् ९०९ श्रावण सुदि ५, बुधे..........।[2]

(ग) आल्हाघाट, (रेवा, मध्य भारत) का डाहाल के नरसिंहदेव का लेख—

संवत् १२१६ भाद्र सुदि प्रतिपदा रवौ..........।[3]

फीलहार्न के अनुसार डाहाल का नरसिंहदेव और त्रिकलिङ्गाधिपति नरसिंहदेव एक व्यक्ति हैं। अतः संवत् १२१६ विक्रम संवत् है और संवत् ९०७ तथा ९०९ कलचुरी संवत् हैं।

इस सारे ऐक्य में अभी अनेक बातें विचारणीय हैं। पूर्ण सामग्री उपलब्ध करके हम विस्तृत विचार अन्यत्र प्रकाशित करेंगे।

फीलहार्न के अनुसार संवत्-आरम्भ—फीलहार्न ने इस संवत् का आरम्भ आश्विन शुक्ला १ से माना है। मध्यभारत में कभी आश्विन से वर्षारम्भ माना गया था, यह भी विचारणीय विषय है।

त्रैकूटक संवत्—परलोकगत श्री ओझा जी और दूसरे लेखकों के अनुसार त्रैकूटक संवत् भी कलचुरी संवत् है। त्रैकूटकों के संवत् का संवत्सर २४५ का एक लेख मिल चुका है। ध्यान रहे, इस लेख का संवत्सर शब्द पाश्चात्य शकों के लेखों के अनुकरण पर लिखा गया है।

हमारा विश्वास है कि कलचुरी-संवत् का आभीर राजाओं से कोई सम्बन्ध न था। वर्तमान लेखकों की यह कोरी कल्पना है। इसका आधार नहीं है। ऐसी दशा में यदि ज्योतिष दर्पण का लेख ठीक सिद्ध हो जाए, तो भारतीय इतिहास की तिथियों में एक अभूतपूर्व विप्लव आएगा।

१२. वलभी संवत्

आरंभ—शकवर्ष २४२ से वलभी-संवत् का आरम्भ हुआ था। अलबेरूनी के अनुसार इसे गुप्त-संवत् भी कहते हैं, क्योंकि गुप्त दुष्ट थे और उनकी समाप्ति पर जनता की प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए यह संवत् चला। इसका चलाने वाला कोई वल्लभ था। फ्लीट आदि लेखकों ने अलबेरूनी की एक बात पकड़ली और दो छोड़ दीं। अतः उन्होंने इसे गुप्त-वलभी संवत् लिखा।

अलबेरूनी के लेख की सत्यता—वेरावाल (जूनागढ़, काठियावाड़) के शिलालेख में उत्कीर्ण है—

रसूल महम्मद संवत् ६६२ तथा श्रीनृपविक्रम संवत् १३२० तथा श्रीमद् वलभी संवत् ९४५ तथा श्रीसिंह संवत् १५१ वर्षे आषाढ वदि १३ रवावद्येह..........।

१. भण्डारकर की सूची संख्या १२१७। २. तत्रैव, संख्या १२१८।

३. तत्रैव संख्या १०८।

अर्थात्—श्री विक्रम-संवत् १३२० = वलभी संवत् ९४५। इस प्रकार विक्रम से ३७५ वर्ष पश्चात् वलभी संवत् का आरंभ हुआ।

गुप्त-वलभी संवत् का अभाव—गुप्त संवत् था, और वह गुप्तों के उदय से आरम्भ हुआ। तथा वलभी-संवत् था और वह गुप्तों की समाप्ति पर वल्लभ से आरंभ हुआ। परन्तु गुप्त-वलभी-संवत् कोई न था। अभी तक जितने स्थानों पर वलभी संवत् का नामोल्लेख मिला है, वहां सर्वत्र वलभी-संवत् ही लिखा है। गुप्त-वलभी संवत् प्रयोग एक पुरातन लेख में भी नहीं मिला।

वलभी-संवत् का सर्वपुरातन उपलब्ध लेख—भण्डारकर की सूची के अनुसार इस संवत् का सबसे पुराना उपलब्ध लेख वलभी-संवत् ५७४ का चालुक्य-वंशोत्पन्न महासामन्त बलवर्मा का है। तत्पश्चात् देवलि (भावनगर) से गोविन्द तृतीय का वलभी-संवत् ५०० का ताम्रपत्र प्राप्त हो चुका है।[1] गोविन्दगुप्त के दूसरे लेख शक ७३० आदि के हैं। राष्ट्रकूट गोविन्द-गुप्त आदि राजा शककाल का प्रयोग करते थे। अतः गोविन्दगुप्त के शासन में वलभी-संवत् कारणवश प्रयुक्त हुआ है। भावनगर के समीप उन दिनों वलभी-संवत् ही प्रयुक्त रहा होगा, अतः तत्स्थानीय गोविन्दगुप्त के लेख में भी वही संवत् वर्ता गया।

वलभी-संवत् का प्रयोग-क्षेत्र—काठियावाड़ के बाहर इस संवत् का निश्चित प्रयोग अभी तक देखा नहीं गया। भावी लेखकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

वल्लभ—अभीतक यह निश्चय नहीं हो सका कि यह संवत् किसके काल से चला। परन्तु अलबेरूनी इसका आरंभ वल्लभ और वलभी-भंग के पश्चात् बताता है। इस वल्लभ के विषय में भी कोई बात ज्ञात नहीं हो सकी। चालुक्यों के प्रारंभिक राजाओं के नाम के साथ वल्लभ का विशेषण जुड़ा रहता है। यथा—जयसिंह वल्लभ, पुलकेशि-वल्लभ, विक्रमादित्य सत्याश्रय वल्लभ, विनयादित्य सत्याश्रय वल्लभ अथवा वल्लभेन्द्र तथा चालिक्य वल्लभेश्वर (शक ४६५) इत्यादि। परन्तु चालुक्यों का इस संवत् से सम्बन्ध दिखाई नहीं देता। अस्तु, ये बातें अभी अज्ञात हैं।

वलभी-भंग

इस सारे प्रश्न पर पूर्ण विचार के लिए वलभी-भंग की तिथि का निश्चय करना अत्यावश्यक है। अतः आगे इस विषय की सामग्री लिखी जाती है—[2]

(१) जैन आचार्य राजशेखर सूरि अपने चतुर्विंशतिमत प्रबन्ध अथवा प्रबन्धकोष (विक्रम संवत् १४०५) में लिखता है—

जैन आचार्य मल्लवादी वलभी के शीलादित्य का भागिनेय था। जैन आचार्य सुस्थित इन का समकालिक था। एक वणिक रङ्क था। उसने असंख्य धन एकत्र कर लिया। रङ्क और शीलादित्य की कन्याएं, सखियां थीं। रङ्क-कन्या के पास मणि-जटित एक

१. भावनगर समाचार, भाग ५, पृ० २४। इण्डियन हिस्टारिकल कार्टरलि, सितम्बर १९४८, पृ० २१८ पर लिखित।

२. श्री सत्यश्रवा के मुद्रयमाण लेख के आधार पर।

कंकतिका (कंघी) थी । इस को राज-कन्या लेना चाहती थी । शीलादित्य ने बल-प्रयोग किया । रङ्क, म्लेच्छ सेनाको, जो शक थी, ले आया । शीलादित्य मारा गया और वलभी भंग हुआ । शक भी परस्पर लड़ कर नष्ट हो गए । इस घटना का संवत् निम्नलिखित है—

विक्रमादित्य भूपालात् पञ्चर्विंत्रिक (५७३) वत्सरे । जातोऽयं वलभीभङ्गो ज्ञानिनः प्रथमं ययुः ॥६६॥[1]

अर्थात्—विक्रम के ३७५ वर्ष में वलभी भङ्ग हुआ । ज्ञानी लोग पहले ही वहां से चले गये ।

कोष्ठगत ५७३ का अङ्क चिन्त्य है । यह भूल कैसे हुई, इस का जानना आवश्यक है ।

(२) इस कथा का दूसरा रूप जिनप्रभसूरिकृत कल्पप्रदीप अथवा विविधतीर्थ कल्प (विक्रम-संवत् १३८९) में सुरक्षित है । इस ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है कि वलभी के शीलादित्य से कलह करके रङ्क गज्जनवई (गज़नी) गया । वहां के राजा हम्मीर[2] से मिला । उसे बहुत धन देकर वह उसकी सेनाओं को वलभी लाया । उन्होंने विक्रम संवत् ८४५ में वलभी का नाश किया—

तेण य सिन्नेण विक्कमाओ अट्ठहिंसयहिं पणयालेहिं (८४५) वरिसाणं गएहिं वलहिं भंजिऊण सो राया मारिओ । गओ सठाणं हम्मीरो ।[3]

यहां विक्रम संवत् ८४५ के स्थान में वीर-संवत् ८४५ युक्त-पाठ है । तुलना कीजिए, संख्या ४ का अगला प्रमाण ।

(३) प्रबन्ध-कोष के लेख से मिलता-जुलता लेख प्रबन्ध-चिन्तामणि (विक्रम-संवत् १३६१) में मिलता है । इस ग्रन्थ के अनुसार भी आचार्य मल्लवादी शीलादित्य का भागिनेय है । आगे लिखा है कि शीलादित्य और रङ्क की कलह उनकी कन्याओं के कारण हुई । इसका परिणाम वलभी-भंग हुआ । इस घटना का काल निम्नलिखित गाथा में अङ्कित है—

पणसयरी वाससयं तिन्निसयाइं अइक्कमेऊण । विक्कमकालाउ तओ वलही भङ्गो समुप्पन्नो ॥[4]

अर्थात्—वलभी भङ्ग विक्रम-संवत् ३७५ में हुआ ।

(४) जैन आचार्य प्रभाचन्द्र अपने प्रभावकचरित (विक्रम संवत् १३३४) में लिखता है—

श्री वर्धमान संवत्सरतो वत्सरशताष्टकेऽतिगते । पञ्चाधिकचत्वारिंशताधिके समजनि वलभ्याः ॥८१॥
भङ्गस्तुरुष्कविहितस्तस्मात् ते भृगुपुरं विनाशयितुम् । आगच्छन्तो देव्या निवारिताः श्री सुदर्शनया ॥८२॥
श्री वीर वत्सरादथ शताष्टके चतुरशीतिसंयुक्ते । जिग्ये स मल्लवादी बौद्धांस्तद्व्यन्तरांश्चापि ॥८३॥[5]

---

१. भारतीय विद्याभवन सिंघी ग्रन्थमाला, पृ० २३ ।

२. श्री हम्मीर महम्मदे मनपति । तुलना करो—हमीर गयासदीन विक्रम संवत् १३२७, (भण्डारकर-सूची, संख्या १६१५) । काबुल की शाही कुल के हिन्दू राजा भी हम्मीर कहे जाते थे । (देखो, भण्डारकर-सूची, संख्या १६१६) । अतः जैन ग्रन्थकार का हम्मीर राजा शाही-कुल का व्यक्ति हो सकता है ।

३. भारतीय विद्याभवन, ग्रन्थमाला, पृ० २६ । ४. भारतीय विद्याभवन, ग्रन्थमाला, पृ० १०१ ।

५. भारतीय विद्याभवन ग्रन्थमाला, विजयसिंहसूरि-चरित, श्लोक ८१—८३ । पृ० ४४ ।

अर्थात्—वलभी भङ्ग वीर संवत् ८४५ में तुरुष्क द्वारा हुआ। मल्लवादी वीरसंवत् ८८४ में बौद्धों पर विजयी हुआ।

यह भी लिखा है कि मल्लवादी वलभी-निवासिनी दुर्लभदेवी का तीसरा पुत्र था।[1]

(५) एक और पुरातन गाथा, जो जीर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों में पाई गई है, निम्न-लिखित है—

वीराओ वयरो वासाण पणसए दससएण हरिभद्दो। तेरसहिं बप्पभट्टी अट्ठहि पणयाल वलहि खओ ॥[2]

अर्थात्—वीर संवत् ८४५ में वलभी-क्षय हुआ। इस गाथा के लिखे जाने की तिथि अज्ञात है। पर हस्तलिखित ग्रन्थों की दशा को देख कर कहा जा सकता है, कि यह १३वीं शताब्दी विक्रम के अन्त में लिखी गई है। यह गाथा बप्पभट्टी के पश्चात् की तो है ही।

(६) अलबेरूनी (विक्रम संवत् १०८७) इस विषय में निम्नलिखित कथन करता है—

हिन्दू वलभी के राजा वल्लभ के विषय में एक कथा कहते हैं। इस राजा के संवत् का हमने उचित अध्याय में उल्लेख किया है। इति।

इस प्रकार रङ्क ने शनैः २ सारे (वलभी) नगर को खरीदने का प्रबन्ध कर लिया। राजा वल्लभ भी इस नगर को लेना चाहता था। उसने रङ्क को कहा कि धन लेकर नगर दे दे। रङ्क ने न माना। तथापि राजा से भय होने के कारण वह अलमनसूर के अधिपति के पास भाग गया। रङ्क ने राजा को धन की भेंट की और उससे नाविक-सेना की सहायता मांगी। अलमनसूर के राजा ने उसकी इच्छा पूरी की और उसकी सहायता की। अतः उसने राजा वल्लभ पर रात्रि के समय आक्रमण किया। राजा को मार दिया। प्रजा का संहार हुआ और वलभी नगर का क्षय हुआ। लोग कहते हैं, आज भी हमारे काल में, ऐसे चिन्ह उस देश में बचे हुए हैं, जो रात्रि के आक्रमण से नष्ट हुए स्थानों में पाए जाते हैं। इति।[3]

वलभ का संवत् वलभी के राजा वलभ के नाम पर है। यह संवत् शककाल के २४१ वर्ष पश्चात् है। शककाल विक्रम संवत् से १३५ वर्ष पश्चात् है। इति।[4]

पूर्वोक्त उद्धरणों से निश्चित होता है कि अलबेरूनी के अनुसार वलभी-भङ्ग विक्रम से २४१+१३५ वर्ष अर्थात् विक्रम संवत् ३७६ में हुआ। यह आक्रमण अरबों का आक्रमण नहीं था। यदि यह अरब आक्रमण होता तो अलबेरूनी सदृश मुसलमान इतिहास लेखक को इसका यथार्थ ज्ञान होता। अतः वर्तमान लेखकों का अनुमान कल्पनामात्र है।

अलबेरूनी का वल्लभ शीलादित्य वालभ्य होना चाहिए। प्रतीत होता है अलबेरूनी ने दूसरे कुल के वल्लभ से इस वालभ्य का ऐक्य मान लिया है।

१. प्रभावक चरित, पृ० १७, श्लोक ६—११।

२. अनेकान्तजय पताका, बड़ोदा संस्करण, भाग १, भूमिका, पृ० १८।

३. अलबेरूनी का भारत, अंग्रेजी अनुवाद, भाग १, पृ० १९२—।

४. तत्रैव, भाग २, पृ० ६, ७।

पूर्वोक्त सब लेख इस बात के निर्णायक हैं कि वलभी भङ्ग विक्रम संवत् ३७५-७६ में हुआ। इस का निर्णय एक और प्रकार से भी हो सकता है। वह आगे लिखा जाता है।

मल्लवादी (शक ५३५ से पूर्व)

आचार्य मल्लवादी का काल—जैन लेखक वलभीभङ्ग के काल में मल्लवादी का अस्तित्व मानते हैं। मल्लवादी एक महान् तार्किक और दिग्गज विद्वान् था। जैन आचार्य हरिभद्र सूरि ने अपनी अनेकान्त जयपताका में मल्लवादी कृत सन्मति टीका के अनेक प्रमाण दिए हैं। आचार्य हरिभद्र का निधन काल विक्रम अथवा शकसंवत् ५८५ है। विक्रम और शक उलझन का वृत्त हम पूर्व पृ० ११६, १२० पर लिख चुके हैं। हरिभद्र ने जयपताका अपनी मृत्यु से यदि १० वर्ष पूर्व लिखी तो वह संवत् ५७५ में मल्लवादी का स्मरण कर रहा था। अतः मल्लवादी संवत् अथवा शक ५३५ से अवश्य पूर्व का ग्रन्थकार है। इस प्रकार सुविख्यात वलभीभंग का अरबों के आक्रमण से कोई सम्बन्ध न था।

दो और लेख—धनेश्वरसूरि अपने शत्रुञ्जय माहात्म्य में लिखता है—

सप्तसप्ततिमब्दानामतिक्रम्य चतुःशतीम्। विक्रमाच्छिलादित्यो भविता धर्मवृद्धिकृत् ॥२८१॥

अर्थात्—विक्रम संवत् ४७७ में (वलभी में) शीलादित्य राजा था।

वलभी के मैत्रकों के उपलब्ध ताम्रशासनों में अन्तिम ताम्रशासन संवत् ४४७ का है। फ्लीट आदि लेखकों के अनुसार यदि इसे वलभी संवत् मानें तो ४४७+३७५= विक्रम संवत् ८२२ बनेगा। अब विचारने का स्थान है कि विक्रम संवत् ८२२ से कहीं पहले आचार्य मल्लवादी और वलभी भंग हो चुका था। अतः फ्लीट आदि का लेख सर्वथा कल्पित और निराधार है। यह अमान्य और भ्रांतिजनक है। ४४७ या तो शककाल है या विक्रमकाल। अथवा यह यल्लयार्य का बताया भोजकाल भी हो सकता है।

शत्रुञ्जय माहात्म्य को कई लोगों ने अर्वाचीन ग्रन्थ माना है। यह ठीक नहीं। इस ग्रन्थ का संवत् १४१० का एक हस्तलेख इस समय भी पट्टी (पंजाब) के एक जैन भण्डार में विद्यमान है।[1] उस समय के विद्वान् इसमें लिखे संवत् को बिना प्रमाण नहीं मान रहे थे।

मञ्जुश्रीमूलकल्प का शीलाख्य—मूलकल्प (विक्रम संवत् ९००) के अनुसार वलभी का एक शीलाख्य राजा स्त्रीकृत दोष से शस्त्रजीवी लोगों द्वारा मारा गया। यह संकेत उसी घटना की ओर है, जिसका उल्लेख जैन ग्रन्थों के प्रमाण से पहले किया गया है। मूलकल्प का लेख बहुत भ्रष्ट है, अतः उससे पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता।[2]

गुप्त-संवत् ५८५ का एक ताम्रशासन उपलब्ध हो चुका है। वलभी संवत् ५७४ का लेख भी उसी प्रदेश से उपलब्ध हुआ है। दोनों के अक्षरविन्यास में बहुत अधिक अन्तर है, अतः वलभी-संवत् गुप्त-संवत् के चिरकाल पश्चात् चला था, इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है।

१. देखो भीसत्यश्रवाकृत वलभी के मैत्रक, मुद्र्यमाण।

२. श्लोक संख्या ६०१, ६०२।

इनके अतिरिक्त भी कई संवत् हैं, यथा गाङ्गेय संवत्, सिंह संवत्, प्रताप संवत् आदि। परन्तु उनका भारतीय इतिहास में बहुत अधिक प्रयोग नहीं हुआ। अतः वे यहाँ नहीं लिखे गए।

हमारे पूर्वोक्त लेख से विद्वानों को पता लग जाएगा कि इस विषय में अभी महान् परिश्रम की आवश्यकता है। जो ऐतिहासिक फ्लीट और कीलहार्न के कथनों को प्रमाण समझ कर इतिहास के क्षेत्र में काम करने लग पड़ते हैं, वे न केवल स्वयं भ्रान्ति में पड़ते हैं, प्रत्युत औरों को भी भ्रान्तियों में डाल देते हैं। हमने उन को सत्यान्वेषण का मार्ग दिखाया है। अन्तिम निर्णय अधिक सामग्री मिलने पर भविष्य में होंगे।

अष्टम अध्याय

ब्राह्मण ग्रन्थ तथा इतिहास-पुराण का इतिहास-विषयक मतैक्य

सत्य की डौंडी पीटने वाले योरुप के अनेक लेखकों ने भारतीय इतिहास के निर्माण में ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों उपनिषदों और कल्पसूत्रों का थोड़ा-थोड़ा आश्रय लिया है। उन्होंने इन ग्रन्थों के अतिरिक्त वेदमन्त्रों से भी, जो सामान्यमात्र हैं, इतिहास निकालने का परिश्रम किया है। यथा इङ्गलैण्ड देशवासी रैपसन आदि ने पंजाब के दस राजाओं के युद्ध के वर्णन में। उन्होंने भारतीय इतिहास के लिखने में रामायण और महाभारत आदि इतिहासों तथा वायु और मत्स्य आदि पुराणों की कोई सहायता नहीं ली। उन्होंने एक नया वाद कल्पित किया कि इतिहास और पुराणों के रचयिता ब्राह्मणों के प्रवक्ताओं से भिन्न और बहुत उत्तरकाल के व्यक्ति थे।

स्मरण रहे कि ब्राह्मण आदि ग्रन्थ मूलतः इतिहास ग्रन्थ नहीं हैं, अतः केवल उन पर आश्रित अथवा बहुधा अर्ध-आश्रित इतिहास-निर्माण का काम सर्वथा अधूरा रहा। ब्राह्मण ग्रन्थों में मेधातिथि काण्व,[1] हिरण्यनाभ कौसल्य, बह्लिक प्रातिपीय आदि अनेक ऐतिहासिक व्यक्ति उल्लिखित हैं। इतिहास ग्रन्थों के अध्ययन के बिना इनका सत्य ऐतिहासिक स्थान अज्ञात रहा, अतः योरुपीय लेखकों ने भारतीय इतिहास न समझा और न वे उसके साथ न्याय कर पाए।

भगवान् कृष्णद्वैपायन ने सत्य कहा था—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः। पुराणं चेन्न संविद्यान्न स स्याद् सुविचक्षणः॥

अर्थात्—जो द्विज साङ्गोपनिषद् चारों वेदों को जानले, परन्तु यदि वह पुराण नहीं जानता, तो वह विद्वान् नहीं हो सकता।

इस सुपरीक्षित महान् तथ्य की योरुपीय लेखकों ने इस चातुर्य से अवहेलना की, कि इतिहास-पुराण के ज्ञान से शून्य होते हुए भी, वे नाममात्र के इतिहास लिखते रहे, और अनेक शिष्य-प्रशिष्यों की दृष्टि में विद्वान् बने रहे।

दूसरी ओर गत १५०० वर्ष के अनेक भारतीय इतिहास लेखकों ने इतिहास-निर्माण में इतिहास और पुराणों की थोड़ी २ सहायता ली, पर ब्राह्मण ग्रन्थों के अनेक कथनों से अपने लेखों की जांच न की, अतः उनका काम योरुपीय लेखकों के लेखों के समान असत्य-युक्त और अधूरा तो न हुआ, पर पूर्ण और परिमार्जित भी नहीं बना।

हम पूर्व लिख चुके हैं कि जो ऋषि ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रवक्ता थे, वे ही इतिहास और पुराण के रचयिता थे। अतः पुरातन भारत का सत्य इतिहास लिखने के लिए इतिहास पुराण तथा मन्त्र-व्यतिरिक्त सारे वैदिक वाङ्मय का उपयोग अत्यावश्यक है।

---

१. स ह-मेधातिथिः काण्वः सामापश्यत्। जैमिनीय ब्रा० ३।२३३॥ मेधातिथि के इतिहास के लिए, देखो, हमारा भारतवर्ष का इतिहास, पृ० ७४।

अपने दुराग्रह के प्रमाण में पाश्चात्य लेखकों ने यह मिथ्या कथन किया कि इतिहास और पुराण के लेख वैदिक ग्रन्थों के लेखों के विपरीत हैं। अतः इस अध्याय में यह निरूपण किया जाता है कि ऐतिहासिक बातों के वर्णन में इतिहास और पुराणों के लेख ब्राह्मण-ग्रन्थों के सर्वथा अनुकूल हैं।

विद्वान् पाठक देखेंगे कि पाश्चात्य विचार कितना दूषित है।

१ जल प्लावन की घटना शतपथ ब्राह्मण में वर्णित है। जलप्लावन के पश्चात् जल के न्यून होने के विषय में काठक-संहिता ८।२ में लिखा है—

आपो वा इदमासन् सलिलमेव स प्रजापतिर्वराहो भूत्वा उपन्यमज्जत् तस्य यावन्मुखमासीत् तावती मृदमुदहरत् सेयमभवत् यद्वराहविहितं भवति।

तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।३।६—७ में लिखा है—

स [प्रजापतिः] वै वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत्। स पृथिवीमध आर्च्छत्। तस्या उपहत्योदमज्जत्। तत् पुष्करपर्णे प्रथयत् तत् पृथिव्यै पृथिवित्वम्।

शतपथ ब्राह्मण १४।१।२।११ में लिखा है—

इयती ह वा इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री तामेमूष इति वराह उज्जघान सोऽस्या [पृथिव्याः] पतिः प्रजापतिः।

इन तीनों वचनों में लिखा है कि प्रजापति ने वराह का रूप धारण किया। शतपथ में वराह को एमूष कहा है। शतपथ का उल्लेख ऋग्वेद के एक मन्त्र के आधार पर है। मन्त्र में जो सामान्य घटना है, शतपथ में वही घटना-विशेष बनी है। मन्त्र कहता है—वराहमिन्द्र एमुषम्। अर्थात् इन्द्र ने एमुष वराह को। निरुक्त ५।४ में यास्क मुनि ने इस मन्त्र की व्याख्या में लिखा है—वराहो मेघो भवति। वायु पुराण ५१।३० में महिषा और वराहा नाम के विशेष प्रकार के मेघ कहे गए हैं। अतः पूरा अर्थ बना कि प्रजापति ने मेघ का रूप धारण करके पृथ्वी के ऊपर फैले, आकाश से नीचे आए जलप्लावन के अथाह जल को पुनः ऊपर आकाश में उड़ा दिया। उन मेघों का जल आकाश में लीन होगया। तब पृथ्वी दिखाई देने लगी।

प्रश्न होता है कि अनेक प्रजापतियों में से यह कौनसा प्रजापति था। उपलब्ध ब्राह्मणों आदि में इसका उत्तर नहीं है, पर महाभारत से स्पष्ट होता है कि यह प्रजापति ब्रह्मा था।

ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदा चरन्। स तु रूपं वराहस्य कृत्वा ऽपः प्राविशत् प्रभुः॥

अद्भिः संछादितामुर्वी समीक्ष्याथ प्रजापतिः। उद्धृत्योर्वीमणाद्भ्यस्तु अपस्तासु स विन्यसत्॥

अर्थात्—ब्रह्मा ने योगज शक्ति से वायु में चिति शक्ति का अधिष्ठान किया। यह वायु वराहाकार मेघों के रूप में उठा। पृथ्वीतल से बाहर दिखाई देने लगी।

यह सत्य ब्राह्मण ग्रन्थों और महाभारत से सहस्रों वर्ष पूर्व वाल्मीकिमुनि रचित रामायण में पाया जाता है। उस जलमयी अवस्था और लोक-समुत्पत्ति का वर्णन करते हुए वसिष्ठ-मुनि कहते हैं—

सर्वं सलिलमेवासीत्पृथिवी यत्र निर्मिता ।ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैः सह ॥
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम् । असृजच्च जगत्सर्वं सह पुत्रैः कृतात्मभिः ॥

जैसा पूर्व कहा गया है, इन श्लोकों से स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के पूर्वोक्त प्रसङ्गों में प्रजापति ही महाभारत और रामायण में ब्रह्मा कहा गया है । उस ब्रह्मा ने वायु में चिति शक्ति के प्रवेश से वराहरूप धारण किया । जो लोग इतिहास पुराण से अनभिज्ञ हैं, वे ब्राह्मण ग्रन्थों के वर्णन को कल्पित (mythology) मान लेते हैं । वस्तुतः यह उनका अपना अज्ञान है । पुरातन ग्रन्थों में विद्या के महान् रहस्य भरे पड़े हैं, पर उनका ज्ञान ब्राह्मण, इतिहास और पुराण के एक साथ पढ़ने से होता है ।

२. अब दूसरा तथ्य लिखा जाता है । श्री ब्रह्माजी का योगज शरीर धारण करना ब्राह्मणों और इतिहास पुराणों में समानरूप का लिखा है । शतपथ आदि ब्राह्मणों में ब्रह्मा को स्वयंभू कहा है ।[1] यही बात इतिहास में उल्लिखित है ।[2] दोनों प्रकार के ग्रन्थों का मतैक्य स्पष्ट है ।

३. ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों में ब्रह्मा को सर्वज्ञानमय, सर्वविद्यावित् अथवा सर्वविद[3] कहा है । हरिवंश और मत्स्यपुराण का सर्वतोमुख पद यही अर्थ प्रकट करता है । दोनों प्रकार के शास्त्रों में समान बात लिखी है । इस इतिहास के द्वितीय भाग के श्री ब्रह्माजी नामक अध्याय में इस बात की विस्तृत विवेचना की गई है ।

४. ब्रह्मा का सर्वमेध—शतपथ ब्राह्मण १३।७।१।१ में एक सुन्दर इतिहास वर्णित है—

ब्रह्म वै स्वयम्भु तपोऽतप्यत । तदैक्षत न वै तपस्यानन्त्यमस्ति हन्ताहं भूतेष्वात्मानं जुहवानि भूतानि चात्मनीति तत्सर्वेषु भूतेष्वात्मानं हुत्वा भूतानि चात्मनि सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यꣳ स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्यैत्तथैवै-तद्यजमानः सर्वमेधे सर्वान् मेधान् हुत्वा सर्वाणि भूतानि श्रैष्ठ्यꣳ स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति ।

अर्थात्—स्वयंभू ब्रह्म ने तप तपा । उसने तप का अन्त न देखा । [तब उसने सोचा] मैं भूतों में आत्मा को होमता हूँ और भूतों को आत्मा में । तब सब भूतों में आत्मा को होम कर और आत्मा में भूतों को होम कर वह समस्त भूतों का अधिपति हुआ । यह सर्वमेध यज्ञ है ।

इस सत्य इतिहास को महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ८ के निम्नलिखित श्लोक में अति संक्षिप्त रूप में कहा है—

विश्वरूपो महादेवः सर्वमेधे महामखे । जुहाव सर्वभूतानि तथैवात्मानमात्मना ॥ ३६ ॥

यहां स्वयंभू ब्रह्म को महादेव और विश्वरूप लिखा है ।

५. शतपथ ब्राह्मण में मनुष्यों के प्रथम राजा पृथु वैन्य का उल्लेख मिलता है—

पृथुर्ह वै वैन्यो मनुष्याणां प्रथमोऽभिषिषिचे । ५।३।५।४॥

यही बात महाभारत अनुशासनपर्व में लिखी है—

आदिराजा पृथुर्वैन्यः। २७१.५५॥

---

१. ब्रह्म वै स्वयम्भूस्तपोऽतप्यत । शतपथ १३।७।१।१॥

२. एकः स्वयंभूर्भगवानाद्यो ब्रह्मा सनातनः । महाभारत, शान्तिपर्व २०७।१॥

३. यास्कीय निरुक्त १।८॥

९. अथर्ववेद ११।६।४ में सामान्य रूप से दश विश्वसृजों अथवा प्रजापतियों का नाम स्मृत है। मानवधर्मशास्त्र की भृगु-प्रोक्त-संहिता १।३४,३५ में दस प्रजापति वर्णित हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण २५।१८।६ में विश्वसृजों के सहस्रवर्ष के अयन का कथन है।[1] इन दस में से मारीच कश्यप, दक्ष प्रजापति और अत्रि आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रजापतियों से सारी सृष्टि उत्पन्न होती है। याजुष मैत्रायणीय संहिता में कहा है—प्राजापत्या वा इमाः प्रजाः। इस भाव को शतपथ ब्राह्मण में और अधिक स्पष्ट रूप से कहा है—तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति। ७।५।१।५॥ अर्थात्—इसलिए पुरातन विद्वान् कहते हैं, सारी प्रजाएं कश्यप की हैं। इस वचन के अन्त में इति पद दर्शाता है कि सर्वाः प्रजाः काश्यप्यः पाठ किसी पुरातन ग्रन्थ से उद्धृत किया गया है।

जो बातें पूर्वोक्त वैदिक ग्रन्थों में मिलती हैं, वही बातें इतिहासों और पुराणों में हैं। यथा—

मरीचे कश्यपः पुत्रः कश्यपात्तु इमाः प्रजाः। आदिपर्व ६५।११॥

पुनः देखिए, ब्राह्मण आदिकों में देवों, दानवों और दैत्यों अथवा देवों और असुरों को एक प्रजापति की सन्तान लिखा है। यथा—उभये प्राजापत्याः ······। बृहदारण्यक उपनिषद् ५।२। में लिखा है—त्रयः प्राजापत्याः। देवा मनुष्या असुराः।

तथा शतपथ ब्राह्मण १४।८।२।१ में लिखा है—

त्रयाः प्राजापत्याः। प्रजापतौ पितरि ब्रह्मचर्यमूषुर्देवा मनुष्याः असुराः।

अर्थात्—देव, मनुष्य, दैत्य तथा दानव कश्यप प्रजापति की सन्तान थे। अब जिस व्यक्ति को इतिहास, पुराण का ज्ञान नहीं है, वह केवल ब्राह्मण ग्रन्थों से कभी नहीं जान सकता कि देव, मनुष्य और असुर कश्यप प्रजापति की सन्तान थे।

पुनः शतपथ ११।१।६।१८ में लिखा है—स प्रजापतिरिन्द्रं पुत्रमब्रवीत्। अर्थात्—कश्यप प्रजापति अपने पुत्र इन्द्र से बोला।

पं० विश्वबन्धुजी की भूल—वैदिक-पदानुक्रम कोश[2] में विश्वबन्धुजी ने तैत्तिरीय ब्राह्मण[3] के असुर-सन्तान कायाधव प्रह्लाद का अर्थ कयाधु का पुत्र लिखा है। पुराण न जानने से ही विश्वबन्धुजी ने यह भूल की है। भागवत पुराण में लिखा है—

हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधूर्नाम दानवी ॥ ६।१८।१२॥

विदेशी गुरुओं के चरण-चिन्हों पर चलते हुए, इतिहास, पुराण से पराङ्मुख विश्वबन्धुजी ने भाष्यों के अशुद्ध पाठों को देख कर दानवी कयाधू स्त्री को कयाधु पुरुष समझा है। विश्वबन्धुजी के कोश में अन्यत्र भी वैसी अशुद्धियां हैं।

इङ्गलैण्ड देशीय अध्यापक मैक्डानल और कीथ ने अपने वैदिक इण्डैक्स में प्रह्लाद और उसके पुत्र विरोचन का उल्लेख ही नहीं किया। तैत्तिरीय ब्राह्मण और छान्दोग्य उपनि-

---

१. तथा तै० ब्रा० १।१२।१।५६॥ २. पृ० ४६।

३. संवत् १९९१ का संस्करण, पृ० १४६, तीसरा स्तम्भ। ४. १।५।१।१०॥

पदु में ये दोनों ऐतिहासिक नाम पाए जाते हैं। कीथ की "सूक्ष्म विद्वत्ता" (critical scholarship) इन ऐतिहासिक नामों के विषय में बिना कुछ लिखे कहां दौड़ गई थी।

असुर और देव प्रजाओं के अतिरिक्त मानव प्रजाओं के सम्बन्ध में वैदिक ग्रन्थों में निम्नलिखित बातें मिलती हैं—

१. द्वय्यो ह वा इदमग्रे प्रजा आसुः आदित्याश्चैवाङ्गिरसश्च। शतपथ ३।५।१।१३॥

२. आदित्या वा इमाः प्रजाः। ताण्ड्य ब्रा० १८।८।१२॥

३. देवा आदित्याः। विवस्वानादित्यस्तस्येमाः प्रजाः। शतपथ ३।१।३।४॥

४. मानव्यो हि प्रजा इति विज्ञायते। बौधायन श्रौतसूत्र, प्रवर, पृ० ४६६।[1]

५. मानव्यो हि प्रजा इति ब्राह्मणम्। ,, ,, २४।२८॥

६. ऐडीश्च वा इमाः प्रजाः। मैत्रायणी संहिता १।५।१०॥

७. ऐडीर्हि प्रजाः। काठक संहिता, पृ० ४६।

८. इडा वै मनावासीत्। कपिष्ठल संहिता, पृ० ६८।

९. इडा वै मानवी यज्ञानूकाशिन्यासीत्। सा अशृणोत्। तै० ब्रा० १।१।४।४१॥

आदित्य, अङ्गिरा, विवस्वान्, मनु और इडा की प्रजाएं हैं, यह बात इतिहास, पुराण के पाठ बिना समझ में नहीं आ सकती।

पूर्व पृ० १३२ पर हमने केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया से एक लम्बा उद्धरण दिया है। वहां लेखक ने इडा को कल्पित सिद्ध करने का यत्न किया है। प्रतीत होता है, लेखक को संस्कृत भाषा के व्यापक रूप का पूर्णज्ञान नहीं है। उसने शतपथ ब्राह्मण ११।५।१।१ वचन पर ध्यान नहीं दिया—

उर्वशी हाप्सरा। पुरूरवसमैडं चकमे।

अर्थात्—उर्वशी नामक अप्सरा ने इडा के पुत्र पुरूरवा की कामना की।

इतिहास प्रकरण में ऐडं का तद्धितान्त रूप इडा की ऐतिहासिकता का द्योतक है। याजुष मैत्रायणी संहिता में भी लिखा है—पुरूरवा वा ऐडः।[2] बौधायन श्रौतसूत्र में भी यही ऐतिहासिक तथ्य सुरक्षित है—

पुरूरवो ह पुरा ऐडो राजा कल्याण आस।[3]

अर्थात्—पुराकाल में इडा का पुत्र पुरूरवा राजा था।

वेदमन्त्रों में जहां आलङ्कारिक पदार्थों के साथ तद्धितान्त रूप प्रयुक्त हैं, वहां सारे पदार्थ आलङ्कारिक हैं। पूर्वोक्त प्रकरणों में जब पुरूरवा ऐतिहासिक राजा है, तो इडा भी ऐतिहासिक है। विष्णुगुप्त चाणक्य सदृश महान् विद्वान् भी पुरूरवा को ऐतिहासिक पुरुष मानता है। अतः इतने अद्वितीय विद्वानों के साक्ष्य के सम्मुख केम्ब्रिज हिस्ट्री के क्षुद्र-लेखक का कल्पित कथन सर्वथा त्याज्य है। यह नितान्त सत्य है कि इतिहास पुराण ग्रन्थों की प्रायः सब ऐतिहासिक बातें वैदिक ग्रन्थों की ऐतिहासिक बातों को स्पष्ट और सुदृढ़ करने वाली हैं।

---

१. तुलना करो, तैत्तिरीय संहिता, ५।१।५।६॥ २. पृ० ९१। ३. १८।४४॥

७. दिति, दनू और अदिति आदि देवियों के विषय में जो ऐतिहासिक बातें वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध हैं, वे बातें ही इतिहास और पुराण में उपलब्ध हैं। अदिति प्रजापति दक्ष की कन्या थी। निरुक्त ११।२३ में लिखा है—अदितिर्दाक्षायणी। बृहद्देवता ३।५७ में शौनक मुनि लिखते हैं—दक्षसुतादितिः। अदिति बारह देवों की माता है। वे बारह देव विवस्वान्, इन्द्र और विष्णु आदि हैं। विष्णु देवों में सब से छोटा है, इत्यादि तथ्य महाभारत और पुराण में वर्णित हैं।

दक्ष प्रजापति ने राजा सोम को अपनी कन्याएं विवाहीं। याजुष मैत्रायणी संहिता में यह घटना उल्लिखित है—*प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितॄ आददात् नक्षत्राणि।*[1]

इन कन्याओं के नाम नक्षत्रों पर रखे गए। इसका कारण था। सोम चन्द्रमा का नाम है। मन्त्रों में सोम का नक्षत्रों से सम्बन्ध है। अतः अनेक बातों के दो-दो अर्थ प्रकट करने के लिए ऐसा नाम-साम्य हुआ है। साधारण विद्या वाले इस साम्य से घबरा जाते हैं।

८. महासुर वृत्र—शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

स यद्वर्त्तमानः समभवत्। तस्माद्वृत्रो अथ यदपात् समभवत् तस्मादहिः दनुश्च दनायूश्च मातेव च पितेव च परिजगृहतु तस्माद् दानव इत्याहुः ॥१।६।३।६॥

अर्थात्—वृत्र को दनु और दनायू ने माता पिता के समान पाला था।

यह वृत्र आकाशस्थ मेघ नहीं था। वह मनुष्य विशेष था। इसके विषय में इतिहास ग्रन्थों में लिखा है—

महासुरं वृत्रमिवामराधिपः। रामायण ६७।११२॥

किं कार्यमवशिष्टं वो हतस्त्वाष्ट्रो महासुरः। वृत्रश्च सुमहाकायो वै लोकाननाशयत्॥

महाभारत, उद्योगपर्व ११।२०॥

९. महेन्द्र—इस महासुर वृत्र को मार कर इन्द्र ने महेन्द्र का पद प्राप्त किया था। काठक संहिता में लिखा है—

/इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा स महेन्द्रोऽभवत्।[2]

/इन्द्रो वाऽएष पुरा वृत्रस्य वधादथ वृत्रं हत्वा यथा महाराजो विजिग्यान एवं महेन्द्रोऽभवत्। शतपथ २।५।४।९॥

महाभारत, शान्तिपर्व में यही सत्य अङ्कित है—

/इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत १५।१५॥

१०. शालावृक और यति—ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुधा कहा गया है—इन्द्रो वै यतीन् शालावृकेभ्यः प्रायच्छत्। तेषां त्रय उदशिष्यन्त–पृथुरश्मिर्बृहद्गिरो रायोवाजः। तां० १३।४।१७॥[3]

शालावृक का साधारण अर्थ कुत्ता है। ब्राह्मण ग्रन्थों का यह पाठ इतिहास, पुराण की सहायता के विना कभी स्पष्ट नहीं हो सकता। महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय ३४ के अनुसार शालावृक नाम के ब्राह्मण थे—

तथैव पृथिवीं लब्ध्वा ब्राह्मणाः वेदपारगाः। संश्रिता दानवानां वै साह्यार्थे दर्पमोहिताः ॥१६॥

शालावृका इति ख्यातास्त्रिषु लोकेषु भारत। अष्टाशीतिसहस्राणि ते चापि विबुधैर्हताः ॥१७॥

---

१. पृ० ११६।　२. पृ० ३६४।　३. तथा देखो, तां० १४।११।२८॥ कै० ब्रा० ११।१५॥

अर्थात्—अनेक वेदपारग ब्राह्मण पृथिवी की प्राप्ति के लोभ के कारण दानवों के सहायक हो गए। वे संसार में शालावृक नाम से प्रसिद्ध हुए। अर्थात् जिन्होंने पाकशाला के भोजन अथवा धन के लोभ से धर्म बेच दिया।

यतियों का उल्लेख हमने भारतवर्ष का इतिहास, पृ० ५६ टिप्पण ४ में किया है। वे वरूत्री के पुत्र थे। उनका उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों में है।

आचार्य सायण की भूल—महाभारत के उपर्युक्त श्लोकों का ध्यान न करके प्रसिद्ध वेद भाष्यकार सायण लिखता है—

सालावृकेभ्यः सालावृक्याः पुत्रेभ्य क्रोष्टुभ्यः। ताण्ड्य ब्रा० भा० ११।४।७॥

अर्थात्—सालावृकी के पुत्र सालावृक थे। यह महा अशुद्ध अर्थ है।

यति भी भोजन के भूखे थे। तभी ताण्ड्य ब्राह्मण में इस प्रसंग के आगे लिखा है कि इन्द्र ने कहा कि इन अवशिष्ट तीनों का पालन, पोषण मैं करूंगा।

११. बृहस्पति और काव्य उशना का वर्णन जैसा ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध होता है, वैसा ही इतिहास, पुराण में उपलब्ध होता है।

१२. ऐक्ष्वाक-राज त्र्यरुण

(क) सामवेदीय ताण्ड्य महाब्राह्मण १३।३।१२ में लिखा है—

वृशो वै जानस् त्र्यरुणस्य त्रैधातवस्य ऐक्ष्वाकस्य पुरोहित आसीत्।

अर्थात्—जन का पुत्र वृश,[1] इक्ष्वाकु-कुल के त्रिधातु के पुत्र त्र्यरुण का पुरोहित था। सायणकृत ऋग्वेद भाष्य ५।२।१ में ताण्ड्य ब्राह्मणगत इस इतिहास के श्लोकानुवाद में त्र्यरुण के स्थान में त्रसदस्यु पाठ छपा है। यह पाठ भेद कितना पुराना है, चिन्त्य है।

(ख) सम्प्रति अनुपलब्ध सामवेदीय शाट्यायन ब्राह्मण में यही इतिहास उल्लिखित था। उसका श्लोकबद्ध रूप आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्य ५।२।१ पर लिखा है—

शाट्यायनब्राह्मणोक्त इतिहास इहोच्यते—

राजा त्रैवृष्ण ऐक्ष्वाकः त्र्यरुणोऽभवदस्य च।
पुरोहितो वृशो जान ऋषिरासीत्तदा खलु॥

अर्थात्—जन का पुत्र वृश, इक्ष्वाकु-कुल के राजा त्रिवृष्ण के पुत्र त्र्यरुण का पुरोहित था। शाट्यायन ब्राह्मण का त्रिवृष्ण ताण्ड्य में त्रिधातव कहा गया है।

(ग) सामवेदीय जैमिनीय ब्राह्मण में भी यह इतिहास स्मरण किया गया है।

---

१. मित्रवर श्री पण्डित चिन्नस्वामी शास्त्रीजी सम्पादित ताण्ड्य ब्राह्मण के सायणभाष्य में—विजानोः पुत्रो वृशः, छपा है। यह अशुद्धि सायण के पण्डितों की अथवा लिखित कोशों के दोष के कारण हुई है। विजानु पाठ मूल का पाठ नहीं हो सकता।

(घ) शौनककृत बृहद्देवता में इसी इतिहास का संकेत है—

ऐक्ष्वाकुस्त्र्यरुणो राजा त्रैवृष्णो रथमास्थितः ।

सजग्राहाश्वरश्मींश्च वृशो जानः पुरोहितः ॥

इतिहास-पुराण पाठ—वाल्मीकीय रामायण की वंशावलियों में त्रिधातव और त्र्यरुण पाठ टूट गए हैं, पर पुराण-वंशावलियों में ये नाम सुरक्षित हैं। तदनुसार इक्ष्वाकु-कुल का २६वां राजा त्रिधन्वा और ३०वां त्र्यारुण था। इस त्रिधन्वा के दूसरे नाम त्रिधातव तथा त्रिवृष्ण हो सकते हैं।

कीथ की भ्रान्ति—इतिहास को न जानकर और खींचतान करके वेद मन्त्रों से इतिहास निकालने की चेष्टा करते हुए केम्ब्रिज हिस्टरी के प्रथम भाग के चतुर्थ अध्याय में कीथजी लिखते हैं—

Other princes of the Pūru line were Tryaruna, and Trivrishna or Tridhātu; and later evidence enables us with fair certainity to connect with the Pūrus the princely name Ikshvāku, which occurs but once in a doubtful context in the Rigveda.'

अर्थात्—त्र्यरुण और त्रिवृष्ण अथवा त्रिधातु पुरु-कुल के राजा थे। और उत्तर कालीन साक्ष्य इक्ष्वाकु राज को पुरुओं से पर्याप्त-निश्चितरूप से जोड़ने के योग्य बनाता है।

कहां पुरु-कुल और कहां इक्ष्वाकु राजा। पुरु-कुल का इक्ष्वाकु-कुल से विवाह-सम्बन्ध तो इतिहास में सुना जाता है पर वंश सम्बन्ध अश्रुतपूर्व है। इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि वेद-मन्त्रों में इतिहास ढूंढना एक महा-भ्रान्ति है। पाश्चात्य लेखकों की ऐसी भूल अक्षम्य है। इतिहास-पुराण के मत को न जानने का यह फल है।

इनके अतिरिक्त दीर्घजिह्वी और सनत्कुमार स्कन्द तथा देवासुर संग्रामों की शतशः घटनाएं ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित हैं। उन्हीं घटनाओं का स्पष्टीकरण इतिहास, पुराणों में पाया जाता है। हमारे भारतवर्ष का इतिहास में ऐसे अन्य अनेक प्रमाण पाठक देख सकते हैं, और भारतवर्ष का बृहद् इतिहास के प्रारंभिक भागों में इस मतैक्य के शतशः प्रमाण वे प्रति पृष्ठ पर देखेंगे। अतः रैपसन आदि के मत का आमूल चूल निराकरण समझना चाहिए।

राथ, ह्विटने, वैबर, मैक्समूलर, मैकडानल, कीथ और रैपसन आदि पाश्चात्य लेखकों को यह महान् भय था कि यदि एक बार भी आर्य इतिहास सत्य स्वीकृत हो गया तो तौरेत, जबूर और इञ्जील का मत, जो वर्तमान यहूदी और ईसाइयों ने समझ रखा है, संसार से उठ जाएगा। संसार वेदों की ओर झुकेगा। भारतीय गौरव पराकाष्ठा को प्राप्त होगा। संसार भारत का अभूतपूर्व मान करने लगेगा। मनु आदि ऋषि सर्वोपरि माने जाएंगे। कपिल, आसुरि और पञ्चशिख आदि सांख्य प्रवक्ता, हिरण्यगर्भ आदि योग-वक्ता, स्कन्द, इन्द्र, विष्णु, भरत चक्रवर्ती, मान्धाता, हैहय अर्जुन, जामदग्न्यराम, दाशरथिराम और पार्थ अर्जुन आदि अतिमहारथ महासेनापति वर्तमान ऐतिहासिकों के हृदयों में उज्ज्वलता

१. p. 83.

प्राप्त करेंगे। संसार का अद्वितीय पुरुष श्रीकृष्ण, जिसके पश्चात्, इससे शतांश दिव्य गुण रखने वाला एक पुरुष भी आज तक इस भूतल पर नहीं जन्मा, संसार का हृदय सम्राट होगा। अतः इन जर्मन और अङ्गरेज आदि लेखकों ने भारतीय इतिहास के मूलाधार इतिहास, पुराण ग्रन्थों का महा निरादर किया। वैदिक ग्रन्थों से वे साक्षात् रूप में परे हट नहीं सके, पर इन्हें अधिकांश mythology (मिथ्या कल्पनाएं) कह कर उन्होंने परे फेंका, और इतिहास आदिकों को उन्होंने वैदिक ग्रन्थों के विपरीत बताकर अपनी कपोलकल्पना आरम्भ की। हमारे पूर्वोक्त अति-संक्षिप्त लेख से उनके इस वाद का प्रत्याख्यान जानना चाहिए।

नवम अध्याय

वैदिक ग्रन्थों में उल्लिखित महाभारत-काल के व्यक्ति

इस ग्रन्थ के अगले भागों में भारत-युद्ध-काल के आधार पर उससे पूर्व और उत्तर कालिक सब तिथियों की गणना की गई है। उपलब्ध वैदिक-ग्रन्थ, यथा—ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और कल्पसूत्र आदि भारत-युद्ध-काल से सौ वर्ष पूर्व से कृष्ण-द्वैपायन वेदव्यास तथा उनके शिष्य, सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैल द्वारा तथा प्रशिष्य बाष्कल, शांखायन और शौनक आदि द्वारा प्रोक्त होने आरम्भ हुए और युद्ध-काल के २५० वर्ष पश्चात् तक प्रोक्त होते रहे। वैदिक-ग्रन्थों के अति समीपवर्ती यास्कीय निरुक्त तथा शौनकीय बृहद्देवता[1] आदि ग्रन्थ भी उन्हीं दिनों रचे गए। *महाभारत नामक इतिहास-ग्रन्थ की रचना कृष्ण* द्वैपायन व्यास, वैशंपायन और सूत द्वारा युद्ध के १५० वर्ष पश्चात् तक हो गई थी। अतः समान-कर्तृक और समकालिक होने के कारण वैदिक ग्रन्थों में उन महात्माओं का उल्लेख स्वाभाविक है कि जिनका सम्बन्ध भारत-युद्ध से था और जो महाभारत-संहिता में वर्णित हुए। इस वर्णन से वैदिक-ग्रन्थों के निर्माण-काल के ज्ञान के विषय में जहां बड़ी सहायता मिलती है, वहां इतिहास का क्रम भी ठीक जुड़ जाता है और महाभारत का ऐतिहासिक महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। पण्डितंमन्य पाश्चात्य लेखकों ने इस सूक्ष्म-विषय की ओर अणु-मात्र ध्यान नहीं दिया। भला ध्यान देते भी कैसे। इस एक विषय के निर्धारण से उनकी अनेक कल्पनाओं की और उनके अधूरे भाषा-विज्ञान की निस्सारता प्रकट हो जाती है।

वैदिक-ग्रन्थों में प्रक्षेप की मात्रा अति स्वल्प है। अतः इनमें वर्णित महापुरुष कल्पित व्यक्ति नहीं कहे जा सकते। पाश्चात्य-पद्धति पर लिखे गए वर्तमान काल के इतिहासों में इन व्यक्तियों को यथास्थान कालक्रम में जोड़ना तो दूर रहा, इनमें से अनेक का उल्लेख भी नहीं मिलता। ऐसी अवस्था में कौन विद्वान् विनसेण्ट स्मिथ तथा राय चौधुरी आदि के ग्रन्थों को इतिहास-कोटि में गिनेगा।

अब हम प्रकृत की ओर आते हैं—

१. धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य

याजुष काठकसंहिता १०।६ के आरम्भ में लिखा है—

---

१. बृहद्देवता ५।८१ में लिखा है—षड्भिः सनादिति स्तुत्वा जगामर्षिरपि क्षयम्। यहां क्षय, घर के अर्थ में है। महाभारत, सभापर्व ३३।१६ में लिखा है—आदिश्य विबुधान् सर्वानजायत यदुक्षये। अर्थात्—श्रीकृष्ण यदु-गृह में उत्पन्न हुए। क्षय का इस अर्थ में प्रयोग ऋग्वेदादि में अधिक है। उपलब्ध लौकिक वाङ्मय में इस अर्थ में क्षय शब्द का प्रयोग अत्यल्प है। ऐसे बहुविध-प्रयोग महाभारत और बृहद्देवता आदि में हैं। उत्तरोत्तर-काल में संस्कृत भाषा संकुचित हुई है, अतः ऐसे प्रयोग उपलब्ध लौकिक वाङ्मय में स्वल्प रह गए।

नैमिष्या वै सत्रमासत त उत्थाय सप्तविंशति कुरुपञ्चालेषु वत्सतरानयाचन्त तान्बको दाल्भिरब्रवीद् यूयमेवैतान् विभजध्वम् इममहं धृतराष्ट्रं वैचित्रवीर्यं गमिष्यामि । इति ।

अर्थात्—नैमिष वन में रहने वाले मुनि एक सत्र कर रहे थे। उनको दल्भ' का पुत्र वक' बोला। [हे मुनियो] इन [पशु धनों] को आप ही बांट लें। मैं विचित्रवीर्य के पुत्र इस धृतराष्ट्र के पास [धन के लिए] जाऊँगा।

यहां विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र का स्पष्ट उल्लेख है। यह धृतराष्ट्र महाभारत-कालीन कुरु-कुलाङ्गार दुर्योधन का पिता था। भारत युद्ध के समय धृतराष्ट्र का वय लगभग १०० वर्ष का था। अतः वक-धृतराष्ट्र विषयक घटना भारत-युद्ध से लगभग ७० वर्ष पूर्व घटी थी।

दाल्भि और दाल्भ्य एक व्यक्ति थे। काठक संहितान्तर्गत कथा का दाल्भि महाभारतान्तर्गत उसी कथा में दाल्भ्य कहा गया है—

ययौ राजंस्ततो रामो बकस्याश्रममन्तिकात् । यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः ॥४१॥[2]

अर्थात्—हे राजन् [जनमेजय] तब बलरामजी वक के आश्रम के समीप गए। जहां दाल्भ्य वक ने तीव्र तप किया था, ऐसी श्रुति है।

इससे आगे अध्याय ४२ में लिखा है—

यत्र दाल्भ्यो बको राजन् पश्वर्थं सुमहातपाः ।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं कोपसमन्वितः ॥ १ ॥
तानब्रवीद् बको दाल्भ्यो विभजध्वं पशूनिति ॥ ५ ॥

अर्थात्—वक ने मुनियों को कहा कि इन पशुओं को आप बांट लें। [मैं धृतराष्ट्र के पास जाऊंगा। वक धृतराष्ट्र के पास गया। उसने वक को कुछ न दिया।] क्रोध में आए वक ने धृतराष्ट्र के विरुद्ध यज्ञ किया।

पूर्वोक्त ५वें श्लोक में विभजध्वं पशून् पद काठक सदृश किसी और पुरातन वेद-शाख से अक्षरशः लिए गए हैं। इति पद इस गम्भीर तथ्य का द्योतक है। काठक में पशून् पद छोड़ दिया गया है। महाभारत के अनुसार भी यह घटना विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र से सम्बद्ध है। पाणिनि मुनि के अनुसार दाल्भि आग्रायण नहीं था।[3] छान्दोग्योपनिषद् १।२।१२ में उसे नैमिषीयों का उद्गाता और वक दाल्भ्य लिखा है। वह पाण्डवों के वनवास-काल में युधिष्ठिर से मिला था—

१. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण १।२।२।३ तथा ४।६।१।२ में भी वक दाल्भ्य वर्णित है। पं० विश्वबन्धुजी के वैदिक पदानुक्रम कोश पृ० ४८६ तथा ७१९ पर इस एक ऋषि नाम को दो पदों में तोड़कर दो स्थानों में सन्निविष्ट किया है। इससे एक भयङ्कर भूल होगई है। ताण्ड्य ब्राह्मण १३।१०।१२ में केशी दाल्भ्य उल्लिखित है। उसको भी पण्डितजी ने दो पदों में तोड़ दिया है। नाम विशेषों के इस प्रकार खण्ड खण्ड कर देने से जो आपत्ति हुई है, उसका इसी अध्याय के संख्या ७ के नाम के नीचे विस्तृत निर्देश किया जाएगा।

२. शल्यपर्व, अध्याय ४१। तथा देखो, हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, पृ० ७७, ७८।

३. कारिकादिभ्यो? ४।१।१०२॥

अथाब्रवीद् बको दाल्भ्यो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।[1]

अध्यापक कीथ का छल—दि केम्ब्रिज हिस्टरी ऑफ़ इण्डिया, भाग प्रथम के पञ्चम अध्याय के लेखक अध्यापक आर्थर बैरिडेल कीथ ने काठक-संहिता में उल्लिखित वैचित्रवीर्य धृतराष्ट्र को काशेय अर्थात् काशीराज धृतराष्ट्र लिखा है—

In the Kāthaka Samhitā there is an obscure ritual dispute between a certain priest, Baka, son of Dalbha, who is believed to have been a Panchala, and Dhritarashtra Vaichitravirya, who is assumed to have been a Kuru king............there is no ground for supposing that this Dhritarashtra was any one else than the king of Kacis.[2]

यह सत्य है कि एक धृतराष्ट्र काशेय था। उसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। परन्तु यह विचित्रवीर्य का पुत्र धृतराष्ट्र था, इसका सारे संस्कृत वाङ्मय में एक भी प्रमाण नहीं है। कीथ की यह प्रतिज्ञा-मात्र है। इसमें कल्पना ही नहीं, छल भी है। कीथ डरता है कि विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र को कौरव-राज मान लेने से अनेक पाश्चात्य कल्पित-वादों का खण्डन हो जाएगा, अतः उसने अपने बचाव का यह मार्ग निकाला। अनेक भारतीय लेखक उसके मिथ्या-कथन को सहते रहे, पर हमने उसका छल-प्रकाशन अपना धर्म समझा और पूर्वोक्त लेख लिखा है।

कुरु-कुल में एक धृतराष्ट्र पहले हो चुका था। वैचित्रवीर्य विशेषण उस धृतराष्ट्र से इस धृतराष्ट्र को सर्वथा पृथक् कर देता है। महाभारत का ऐतिहासिक वर्णन सारा विषय अति स्पष्ट करता है। अतः विद्वान् पाठकों को इन critical scholars 'सूक्ष्म तर्क' करने वाले विद्वानों का सूक्ष्म तर्क देखना चाहिये।

काठक-संहिता का प्रवचन-काल—पूर्वोक्त संदर्भ से निश्चय होता है कि काठक-संहिता का प्रवचन महाभारत युद्ध से लगभग ६५ अथवा ७० वर्ष पूर्व हुआ था। यह काल द्वापर का अन्त था।

२. प्रातिपीय बह्लिक

माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण १२।९।३।३ में लिखा है—

तदु ह बह्लिकः प्रातिपीयः शुश्राव। कौरव्यो राजा.......।

अर्थात्—प्रतीप का पुत्र बह्लिक जो कौरव कुल का राजा था...।

शतपथ के वचन की तुलना महाभारतके निम्नलिखित वचनों से करनी चाहिए—

(क) कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो वैचित्रवीर्यः कुशली महात्मा।
महाराजो बाह्लिकः प्रातिपीयः[3] कच्चिद्विद्वान् कुशली सूतपुत्र ॥[4]

---

१. आरण्यकपर्व २७।५॥ २. के. हि. पृ० ११९। तथा देखो पृ० १२०, ३१६।

३. उद्योगपर्व के मुद्रित ग्रन्थों का पाठ प्रातिपेयः है। महाभारत के पूना संस्करण में भी प्रातिपेयः पाठ छपा है। तथापि पूना संस्करण के काश्मीरी-शाखा के अधिकांश देवनागरी कोषों में प्रातिपीयः पाठान्तर मिलता है। पूना संस्करण के उद्योगपर्व १७।१८ में धृतराष्ट्र को प्रातिपीय पद से सम्बोधन किया गया है।

४. उद्योगपर्व २३।६॥

(ख) बाह्लिकश्च महारथः ।
सोमदत्तोऽथ कौरव्यो भूरिर्भूरिश्रवा शलः ॥[1]

(ग) प्रातिपीयाः शांतनवाः भैमसेनाः सबाह्लिकाः ।
दुर्योधनापराधेन कृच्छ्रं प्राप्स्यन्ति सर्वशः ॥[2]

(घ) युधिष्ठिर उवाच—आमन्त्रयामि भरतांस्तथा वृद्धं पितामहम् ।
राजानं सोमदत्तं च महाराजं च बह्लिकम् ॥[3]

अर्थात्—युधिष्ठिर पूछता है, हे सूतपुत्र सञ्जयजी, क्या विचित्रवीर्य के पुत्र महात्मा धृतराष्ट्र पुत्रसहित कुशलपूर्वक हैं। तथा क्या प्रतीप के पुत्र, विद्वान् महाराज बह्लिक कुशल पूर्वक हैं। इत्यादि।

शतपथ ब्राह्मण के पूर्व-निर्दिष्ट प्रकरण से ज्ञात होता है कि कौरव्य-राज बह्लिक यज्ञ-विषय का एक अच्छा पण्डित था। उद्योगपर्व के पूर्व-लिखित (क) श्लोक में बह्लिक को विद्वान् लिखा है। महाभारत और पुराणों में विद्वान् शब्द मन्त्र-द्रष्टाओं अथवा याज्ञिक-विद्वानों के लिए बहुधा प्रयुक्त हुआ है। बह्लिक के पुत्र सोमदत्त कौरव्य का पुत्र भूरिश्रवा था। भूरिश्रवा के ध्वज पर यूप का चिह्न रहता था। अर्थात् वह अति यज्ञप्रिय था। उसे यज्ञशील भी कहा है।[4] ये विशेषण बताते हैं कि इस कुल में यज्ञ-विद्या का बड़ा प्रचार था।

महाभारत के वर्तमान पुस्तकों में बाह्लीक पाठ भ्रष्ट-पाठ है। मूल पाठ बह्लिक अथवा कहीं कहीं बाह्लिक है।

प्रतीप-पुत्र बह्लिक भारत-युद्ध में भीम से मारा गया।[5] भारत युद्ध के समय वह लग-भग १७५ वर्षीय था। कलिकाल के वर्तमान लोगों के लिए यह आश्चर्य की बात है कि इतने वय का योद्धा समर-भूमि में लड़ता था। स्मरण रहे, बह्लिक, उसका पुत्र सोमदत्त तथा सौमदत्ति भूरि, भूरिश्रवा और शल तथा भूरिश्रवा के कई पुत्र महाभारत-युद्ध में साथ साथ लड़ रहे थे।

महाभारत आदिपर्व अध्याय ६३ में लिखा है—

प्रतीपस्तु खलु शैब्यामुपयेमे सुनन्दां नाम। तस्यां त्रीन् पुत्रानुत्पादयामास। देवापिं शन्तनुं बह्लिकं चेति ॥४७॥

अर्थात्—शिवि-कुल उत्पन्न सुनन्दा से प्रतीप ने विवाह किया। उसमें से उसके तीन पुत्र जन्मे। देवापि, शन्तनु और बह्लिक।

इन सब प्रमाणों से निश्चित होता है कि शतपथ का प्रवचन-कर्ता याज्ञवल्क्य और उसका शिष्य माध्यन्दिन बह्लिक की वंश-परंपरा को जानते थे।

---

१. सभापर्व ११।=॥
२. सभापर्व ३१।१॥ बह्लिकाः—पाठान्तरों से हमने पाठ शोधा है।
३. सभापर्व ५६।२॥
४. द्रोणपर्व १४२।१५॥
५. द्रोणपर्व १५५।११–१५॥

शतपथ का प्रवचन काल—माध्यन्दिन शतपथ में बह्लिक को राजा लिखा है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय बह्लिक महाराज पद से व्यवहृत हुआ है। तब वह शिबिराज्य पर अभिषिक्त होचुका था, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में ब्रह्मिष्ठ, अध्वर्युसत्तम याज्ञवल्क्य अध्वर्यु का काम करता था। महाभारत के वर्णन से प्रतीत होता है कि उस समय ,याज्ञवल्क्य का शतपथ ब्राह्मण बन चुका था। शतपथ में वर्णित बह्लिक घटना उसके कई वर्ष पूर्व की है।

अध्यापक कीथ और बह्लिक प्रातिपीय—शतपथ ब्राह्मण के बह्लिक-विषयक प्रकरण का उल्लेख करके अध्यापक कीथजी लिखते हैं—

despite the opposition of Balhika Prātipīya, whose patronymic reminds us of the Pratīpa who was a descendant of the Kuru king Parikshit.........[२]

अर्थात्—प्रातिपीय विशेषण कुरुराज परीक्षित के उत्तराधिकारी प्रतीप की स्मृति कराता है।

यदि कीथजी अपने लेख के तत्त्व का भार अपने सिर पर मानते होते, तो इसके साथ यह लिखे बिना न रहते कि बह्लिक के दो और भाई देवापि और शन्तनु भी थे। ये दोनों भाई निरुक्त और बृहद्देवता में स्मृत हैं। इसके साथ ही कीथजी को शन्तनु के कुल का इतिहास भी मानना पड़ता। फिर तो वेदों का काल बहुत पुरातन मानना पड़ता। इन सब बातों से बचने के लिए कीथजी ने इस ब्राह्मण-वचन के विषय में दो पंक्ति लिखकर सब बात समाप्त करदी।

हमने इस विषय में यहां अधिक इसलिए नहीं लिखा कि हम महाभारतान्तर्गत एतद्विषयक इतिहास पहले ही सत्य और ब्राह्मण-वचनों का स्पष्टीकरण करने वाला मानते हैं।

३. नग्नजित् गान्धार

माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण ८।१।४।१० में लिखा है—

अथ ह स्माह स्वर्जिन्नाग्नजितः। नग्नजिद्वा गान्धारः.........।

अर्थात्—नग्नजित् का पुत्र स्वर्णजित् बोला। यह नग्नजित् गान्धार देश का [राजा] था। शतपथ से पूर्वकाल के ऐतरेय ब्राह्मण में भी नग्नजित् का उल्लेख है।

भारत-युद्धकाल में गान्धार देश पर नग्नजित् का कुल राज्य करता था।[3] नग्नजित् एक विस्तृत देश का राजा था। उसके अधीन अनेक छोटे २ गणराज्य थे।[४]

महाभारत आदिपर्व अध्याय ५७ में नग्नजित् के कुल के विषय में निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य हैं—

१-१. सभापर्व ३०।३५॥

२. केम्ब्रिज हि० आ० इ०, भाग १, अध्याय ५, पृ० ११२।

३. गान्धारभूमौ राजर्षिर्नग्नजिद् स्वर्गमार्गदः। आयुर्वेदीय भेलसंहिता, पृ० ३०।

४. नग्नजित् प्रमुखांश्चैव गणान् जित्वा महारथान्। आरण्यकपर्व २५५।१३॥

प्रह्लादशिष्यो नग्नजित् सुबलस्त्वभवत्ततः । तस्य प्रजा धर्महन्त्री जज्ञे देवप्रकोपनात् ॥१३॥
गान्धारराजपुत्रोऽभूच्छकुनि सौबलस्तथा । दुर्योधनस्य माता च जज्ञातेऽर्थविदावुभौ ॥१४॥

अर्थात्—प्रह्लाद[1] का शिष्य नग्नजित् था । उसका पुत्र था सुबल । भाग्य के कोप से उसकी प्रजा धर्म की नाशक उत्पन्न हुई । गान्धारराज सुबल का पुत्र शकुनि हुआ । उसकी भगिनी दुर्योधन की माता गान्धारी थी । शकुनि और गान्धारी दोनों अर्थशास्त्र के ज्ञाता थे ।

इन श्लोकों तथा अन्य अनेक प्रमाणों के आधार पर गान्धार राजाओं का निम्नलिखित वंश-क्रम उपलब्ध होता है—
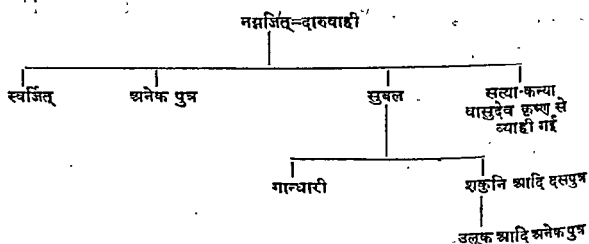
नग्नजित्=दारुवाह—हमने भारतवर्ष का इतिहास, दूसरा संस्करण, पृ० १४८ पर विस्तार से सप्रमाण बताया है कि गान्धार-राज नग्नजित् का एक नाम अथवा नाम-विशेषण दारुवाह अथवा दारुवाही था । संभव है गान्धार देश द्वारा दारु=लकड़ी दूर देशों में जाती थी । दारुवाह का अपभ्रंश रूप Darius है । इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं । यह अपभ्रंश रूप गान्धार के साथ के ईरान देश के अनेक उत्तरकालीन राजाओं ने अपने नाम के लिए ग्रहण किया । उनका नग्नजित् के पुरातन कुल से अवश्य संबंध था ।

४. व्यास पाराशर्य

तैत्तिरीयारण्यक १।९।३५ में लिखा है—स होवाच व्यासः पाराशर्यः । अर्थात् पराशर का पुत्र यह व्यास बोला । पाराशर्य व्यास का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के वंश तथा बृहदारण्यक के वंश में भी मिलता है—पाराशर्यो जातूकर्ण्यात् ।[2] अर्थात् पराशर के पुत्र ने जातूकर्ण्य से विद्या सीखी । यहां अत्यन्त स्पष्ट रूप से बताया गया है कि व्यास ने जातूकर्ण्य से विद्या प्राप्त की । जातूकर्ण्य कृष्ण द्वैपायन व्यास का चचा था । इस सूक्ष्म तथ्य की ओर

१. यह प्रह्लाद बाह्लीक देश का राजा था—प्रह्लादो नाम बाह्लीकः स बभूव नराधिपः । आदिपर्व ६१।२८॥
२. शतपथ १४।५।५।२२॥

सबसे पहले हमने विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया था। इसके विशेष परिज्ञान के लिए देखिए, हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग १, पृ० ६५,६६।

सामविधान ब्राह्मण के वंश में निम्नलिखित गुरु-परंपरा लिखी है—

नारद
|
विष्वक्सेन
|
व्यास पाराशर्य
|
जैमिनि

इस वंश का नारद प्रसिद्ध दीर्घजीवी, अर्थशास्त्रकृत देवर्षि नारद है।[1] विष्वक्सेन देवकीपुत्र कृष्ण का अपर नाम है। व्यास पाराशर का पुत्र है। नारद और श्री कृष्ण विष्वक्सेन की मैत्री महाभारत-संहिता में प्रसिद्ध है। श्री कृष्ण ने नारद की बड़ी महिमा गाई है।[2] नारद भी श्रीकृष्ण की महिमा को जानता था।[3] श्रीकृष्ण और पाराशर्य व्यास का सम्बन्ध बड़ा घनिष्ट था।[4]

गोपथ ब्राह्मण १।२६ में लिखा है—एतस्माद् व्यासः पुरोवाच। यह व्यास कृष्ण द्वैपायन है।

बोधायन गृह्यसूत्र ३।६।४ में कृष्ण द्वैपायन और जातुकर्ण्य स्मृत हैं। आग्निवेश्य गृह्य-सूत्र में भी कृष्ण द्वैपायन स्मृत है।[5] आश्वलायन, कौषीतकि और शौनक के गृह्यसूत्रों में पाराशर्य व्यास के चार प्रधान शिष्य और भारत तथा महाभारत स्मृत हैं। पूर्व पृ० ६०, ६१ पर यह लिखा जा चुका है।

इसलिए व्यासजी mythical व्यक्ति नहीं हैं। वे भारतीय इतिहास के द्वापर के अन्त के एक प्रधान महापुरुष हैं। राथ, वैबर, मैक्समूलर, मैकडानल, कीथ और हाप्किन्स प्रभृति पाश्चात्य लेखकों को सबसे अधिक भय व्यासजी और महाभारत से था। इस हेतु उन्होंने व्यासजी को mythical[6] और उनके ग्रन्थ को विभिन्न-कालों में बहुविध लोगों से रचित माना। उनकी ऐसी मिथ्या धारणाओं का खण्डन आज से २६ वर्ष पूर्व हम अपने वैदिक वाङ्मय का इतिहास ब्राह्मण भाग में कर चुके हैं। उस पर एक भी पूर्वपक्षी आज तक एक पंक्ति भी उत्तर रूप में नहीं लिख सका।

हाप्किन्स का मत—अमेरिका वासी अध्यापक हाप्किन्स की एक और विचित्र धारणा आगे लिखी जाती है—

---

१. The mythical sages Parvata and Narada..., C.H.I. Vol. I, ch V., p. 124 Of Narada, who belongs to the fifth century (A. D.)...C. H. I. Vol. I, ch XII, p. 280.

इनमें से पहला कथन कीथ का और दूसरा हाप्किन्स का है। ये दोनों वचन संस्कृत विषयों में पाश्चात्यों की परम अज्ञानता के द्योतक हैं।

२. शान्तिपर्व अध्याय ८१ तथा २१७।　　३. आरण्यकपर्व १६।४६॥

४. शान्तिपर्व २०६।१,४॥　　५. पृ० १५।

६. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग प्रथम, पृ० ५६।

Vaiśampāyana and Vyāsa are mentioned as early as the Taittirīya Āranyaka, but not as authors or editors of the epic which is now their chief claim to recognition.[1]

अर्थात्—वैशंपायन और व्यास तैत्तिरीयारण्यक सदृश पुरातन ग्रन्थ में वर्णित हैं, परन्तु वे वहां महाभारत के कर्ता अथवा सम्पादक के रूप में, जो उनकी प्रसिद्धि का प्रधान कारण है, स्मृत नहीं।

इस लेख में तीन प्रतिज्ञाएं की गई हैं—

१. वैशंपायन[2] और व्यास तैत्तिरीयारण्यक में वर्णित हैं।

२. परन्तु इस ग्रन्थ में कोई संकेत नहीं, कि व्यास ने महाभारत रचा अथवा संपादित किया।

३. इस समय व्यास की प्रसिद्धि का प्रधान कारण महाभारत का कर्तृत्व है।

अब इन तीनों प्रतिज्ञाओं की परीक्षा की जाती है।

१. पहली प्रतिज्ञा ठीक है, पर अधूरी। हम लिख चुके हैं कि व्यास अथवा पाराशर्य व्यास शतपथ ब्राह्मण, सामविधान ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण में स्मरण किया गया है। तैत्तिरीय आरण्यक वैशम्पायन के भ्राता तित्तिरि का प्रवचन है। अतः ब्राह्मणों और इस आरण्यक में प्रवचन-कर्ताओं ने अपने मूल गुरु का स्मरण किया, इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

अद्यावधि कण्ठस्थ चले आ रहे, और इन स्थानों में पाठभेदशून्य ब्राह्मण ग्रन्थों में जो महान् आचार्य स्मरण किया गया है, वह ऐतिहासिक व्यक्ति था। उन भगवान् श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास का इतिवृत्त योरुप से प्रचलित हुए सब मिथ्या-वादों का खण्डन करता है। वह व्यास महर्षि था जिसने वर्तमान ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रथम-प्रवचन किया और जिसने तदनन्तर भारत-संहिता की रचना की।

२. अब आई दूसरी प्रतिज्ञा। बेचारा हाप्किन्स नहीं जानता कि भारत-संहिता की रचना से बहुत वर्ष पहले तैत्तिरीयारण्यक का प्रवचन हो चुका था। भारत-संहिता भारतयुद्ध के ३५–४० वर्ष पश्चात् रची गई। तैत्तिरीयारण्यक भारत-युद्ध से ५०–६० वर्ष पहले प्रोक्त हो चुका था। इस सत्य-परम्परा को न जानकर ही हाप्किन्स ने यह व्यर्थ कथन किया है। भारत-संहिता की रचना से पहले भारत-युद्ध हुआ। उससे भी पहले तैत्तिरीयारण्यक की रचना हुई। पुनः उसमें महाभारत ग्रन्थ का संकेत कैसे हो सकता है। ऐसे लेख से हाप्किन्स की योग्यता की परीक्षा हो जाती है।

आश्वलायन और शांखायन नामक आचार्यों ने अपने २ गृह्यसूत्र भारतयुद्ध के १५० वर्ष पश्चात् लिखे।

१. केम्ब्रिज हि० आफ इ० भाग १, पृ० २५२।

२. वैशंपायन का वर्णन हम आगे करेंगे।

उस समय भारत-संहिता रची जा चुकी थी, और उसने महाभारत का स्वरूप धारण कर लिया था। अतः इन गृह्यसूत्रों में भारत और महाभारत का नाम स्पष्ट मिलता है।

३. अब आई अन्तिम या तीसरी प्रतिज्ञा। न इस समय और न गत पांच सहस्र वर्ष में व्यास की प्रसिद्धि का प्रधान कारण महाभारत ग्रन्थ हुआ। कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास की असाधारण प्रसिद्धि का कारण था, उसका वेदविदों में श्रेष्ठ होना।

सर्ववेदविदां श्रेष्ठो व्यासः सत्यवतीसुतः।[1]

अर्थात्—सत्यवती का पुत्र व्यास सारे वेद जानने वालों में श्रेष्ठ था।

इस योग्यता के कारण उसने सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन और पैल के लिए अथर्व, साम, यजु और ऋग्वेद का क्रमशः प्रवचन किया। व्यास एक ओर शाखाओं और ब्राह्मणों आदि का प्रोक्ता था और दूसरी ओर भारत-संहिता आदि का कर्ता था।

सर राधाकृष्ण और वेदव्यास—श्री सर्वपिल्ले राधाकृष्ण लिखता है—

We do not know the name of the author of the Gitā. Almost all the books belonging to the early literature of India are anonymous. The authorship of the Gitā is attributed to Vyāsa, the legendry compiler of the Mahābhārata. 1[2]

अर्थात्—हम गीता के कर्ता का नाम नहीं जानते। प्राचीन भारतीय वाङ्मय की लगभग सब पुस्तकें कर्ता के नाम के विना हैं। गीता का कर्तृत्व व्यास के साथ जोड़ा जाता है जो व्यक्ति महाभारत का कहानिगत संग्रहकर्ता था।

अंग्रेज़ों ने अपने कैसे प्रतिनिधि उत्पन्न किए, उसका यह ज्वलन्त उदाहरण है। राधाकृष्णजी श्रेष्ठ पुरुष हैं, पर कथित scholarship के चक्र में पड़े रहने के कारण सत्य और असत्य का निर्णय स्वतन्त्र नहीं कर सके। उन्होंने हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास और भारतवर्ष का इतिहास पढ़े होते, तो सोच समझकर ऐसी बात लिखते। उनके ऐसा लिखने से जो अनिष्ट हो रहा है, वह प्रायश्चित्त-योग्य है।

९. वैशंपायन=चरक

तैत्तिरीयारण्यक १।७।५, आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।३।४, कौषीतकि गृह्यसूत्र २।५।२ तथा बोधायन गृह्यसूत्र ३।६।६ आदि में वैशंपायन स्मृत है। वैशंपायन का एक नाम चरक था।[3] इस नाम से वह शतपथ ब्राह्मण में बहुधा स्मृत है।[4] जो आचार्य शतपथ ब्राह्मण में स्मरण किया गया है, उसी दीर्घजीवी ऋषि ने शतपथ के प्रवचन के कुछ काल पश्चात् तक्षशिला में,

---

१. शान्तिपर्व २१९॥

२. The Bhagavadgita, by S. Radha Krishnan, London, Introductory essay. p. 14.

३. देखो, हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, पृ० ७१।

४. तत्रैव, पृ० ७५, ७६।

अपने गुरु व्यास की आज्ञा से कौरव-कुल के महाराज पारिक्षित-जनमेजय तृतीय को सर्प-सत्र के समय, भारत-संहिता की कथा सुनाई। उस कथा में उसने भारत-संहिता में अपने कई श्लोक जोड़े। ये श्लोक कथा-प्रसङ्ग की पूर्तिमात्र करने वाले हैं और व्याकरण-ग्रन्थों में चारका श्लोकाः नाम से स्मृत हैं।[1]

६. कृष्ण देवकीपुत्र

छान्दोग्य उपनिषद् ३।१७।६ में लिखा है—

तद्धैतद्घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोवाच।

अर्थात्—अङ्गिरा गोत्र वाला घोर नामा ऋषि देवकीपुत्र कृष्ण के लिए बोला।

यादव-कृष्ण का देवकी-पुत्र विशेषण महाभारत-संहिता आदिपर्व, अध्याय १८१ में तथा अन्यत्र भी बहुधा मिलता है—

को हि राधासुत कर्णं शक्तो योधयितुं रणे।
अन्यत्र रामाद् द्रोणाद्वा कृपाद्वापि शरद्वतः ॥२८॥
कृष्णाद्वा देवकीपुत्रात् फल्गुनाद्वा परंतपात् ॥२९॥
कृष्णो हि देवकीपुत्रो………। उद्योगपर्व १२३।१६॥
कृष्णो वा देवकीपुत्रो………। भीष्मपर्व ११९।१९॥

अतः स्पष्ट है कि छान्दोग्य-उपनिषद् में आर्य्य-हृदय-सम्राट् देवकी-पुत्र यादव कृष्ण का ही उल्लेख है। दूसरे उपलब्ध वैदिक ग्रन्थों के साथ यह उपनिषद् भी उन्हीं दिनों कही गई थी।

पूर्व संख्या ४ के अन्तर्गत सामविधान ब्राह्मण के प्रमाण में विष्वक्सेन का वर्णन लिखा जा चुका है। ध्यान रहे यहां विष्वक्सेन श्रीकृष्ण का नाम है। महासेनापति बालब्रह्मचारी भीष्मजी कहते हैं—

शक्तोऽहं धनुषैकेन निहन्तुं सर्वपाण्डवान्। यद्येषां न भवेद्गोप्ता विष्वक्सेनो महाबल ॥११॥[2]

अर्थात्—महाबल विष्वक्सेन = जनार्दन की बुद्धि के कारण पाण्डव जीत रहे हैं।

इस इतिहास ज्ञान के बिना सामविधान के वचन का अर्थ समझ में नहीं आ सकता। कौषीतकि ब्राह्मण ३०।९ में लिखा है—

कृष्णो हैतदाङ्गिरसो ब्राह्मणाच्छंसीयायै तृतीयसवनं ददर्श। तस्मात् कार्ष्णोऽहरहः पर्यासो भवति।

अर्थात्—अङ्गिरागोत्र के कृष्ण ने यह तृतीय सवन देखा। क्या घोर आङ्गिरस का शिष्य होने के कारण श्रीकृष्ण भी आङ्गिरस कहाते थे। यदि यह बात निश्चित हो जाए, तो एक और प्रमाण स्पष्ट हो जाएगा।

---

१. पश्चिम के एकमात्र संस्कृत व्याकरण समझ सकने वाले, अध्यापक गोल्डस्टकर ने यह तथ्य समझ लिया था। देखो, उनका ग्रन्थ पाणिनि, प्रयाग में मुद्रित, सन् १९१४, पृ० ५९।

२. भीष्मपर्व, अध्याय ११४।

हाप्किन्स और श्रीकृष्ण—जिस महापुरुष का उपदेश गीता में उपनिबद्ध है, जो अपनी इच्छा से संसार में जन्मा, जो गो-ब्राह्मण और यज्ञ का परम-रक्षक था, तथा जिसे आर्य जाति अपना आराध्य-पुरुष मानती है, उसके विषय में अमेरिका का ईसाई अध्यापक वाशबर्न हाप्किन्स लिखता है—

But, as no attempt has ever been made to separate myth from history in India, it is impossible to say whether Krishna, the divine hero of the Mahabharata, ever really existed, though this is probable.

अर्थात्—कृष्ण के अस्तित्व की संभावना है पर निश्चय से कहना असंभव है कि वह वस्तुतः हुआ था। इसका कारण यह है कि भारतवर्ष में इतिहास और काल्पनिक कहानियों का पृथक्करण कभी नहीं किया गया।

यह लिखा है, केम्ब्रिज हिस्टरी ऑफ़ इण्डिया, भाग प्रथम के अध्याय ग्यारह में।[1] इससे आगे लेखक ने श्रीकृष्णजी के विषय में और भी कई बातें लिखी हैं जो जघन्य हैं। आश्चर्य है, ऐसे भ्रष्ट ग्रन्थ स्वतन्त्र भारत में भी पढ़ाए जारहे हैं।

७. सौवल—ऐतरेय ब्राह्मण ६।२४ में लिखा है—तदेतत् सौवलाय सर्पिर्वात्सिः शशास।
अर्थात्—यह विद्या वत्सपुत्र सर्पि ने सुबल के पुत्र को दी।

यहां गान्धार-राज सुबल के शकुनि आदि किसी पुत्र का संकेत संभव है। पूर्व संख्या ३ में सुबल के पूर्वज नग्नजित् का उल्लेख होचुका है।

८. याज्ञसेन[2] शिखण्डी—कौषीतकि ब्राह्मण ७।४ में लिखा है—केशी ह दार्भ्यो दीक्षितो निषसाद। तं ह हिरण्मयः शकुन आपत्योवाच…………। तौ ह संनोचाते स ह स आसोलो वार्ष्णिवृद्ध इष्ट्वा काव्यः शिखण्डी वा याज्ञसेनो यो वा स आस स स आस।

अर्थात्—दर्भ का पुत्र केशी यज्ञ के लिए दीक्षित हुआ।……………अथवा वह यज्ञसेन का पुत्र जो शिखण्डी था……।

इस वचन में यज्ञसेन के पुत्र शिखण्डी का उल्लेख है। यह दर्भ के पुत्र केशी का समकालीन था। केशी दीर्घायु पुरुष था। उस समय शिखण्डी छोटी आयु का था। यज्ञसेन सुप्रसिद्ध पञ्चालाधिपति महाराज द्रुपद का दूसरा नाम या विरुद था। इसलिए महाभारत में शिखण्डी को याज्ञसेन लिखा है।[3] द्रुपद और शिखण्डी आदि पाञ्चाल वेदवित् थे।[4] उन्होंने अवभृथ स्नान किए थे।[5] इसीलिए ब्राह्मण ग्रन्थों के यज्ञ-विषयक प्रकरणों में शिखण्डी का

---

१. पृ० २४७, २४८।

२. जैमिनीय ब्राह्मण में एक सुत्वा याज्ञसेन उल्लिखित है। डाक्टर कालेण्ड का संक्षेप, संख्या १२४।

३. शिखण्डिनं याज्ञसेनिम्। द्रोणपर्व १०।४५॥ याज्ञसेनं शिखण्डिनम्। द्रोणपर्व १५।३७॥

४. द्रुपदश्च विराटश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥४॥
सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ॥६॥ उद्योगपर्व, अध्याय १५१॥

५. वेदान्तावभृथस्नाताः सर्वे यनेऽपराजिताः। १७।
शिखण्डी युयुधानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।१८। उद्योगपर्व, अध्याय १६४।

वर्णन मिलता है। इस शिखण्डी के समकालीन राजा केशी की वंश-परंपरा ब्राह्मण-ग्रन्थों में उपलब्ध है। वह निम्नलिखित वचनों से निर्मित की जा सकती है—

(क) गोविनतेन शतानीकः सात्राजित ईजे। शतपथ १३।५।४।१९॥

(ख) एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण सोमशुष्मा वाजरत्नायनः शतानीकं सात्राजितम् अभिषिषेच। ऐतरेय ब्राह्मण ८।२०॥

(ग) दर्भमु ह वै शातानीकं पञ्चाला राजानं सन्तं नाप चाय्य चक्रुः। जै० ब्रा० २।१००॥

(घ) केशी ह दार्भ्यो दर्भपर्णयोर्दिदीघे। जै० ब्रा० २।५३॥

सत्राजित्
|
शतानीक
|
दर्भ = दल्भ—पत्नी, कौरव्य उच्चैश्श्रवा की भगिनी
|
केशी

महाभारत के युद्धपर्वों में इनमें से किसी का भी उल्लेख नहीं मिलता। इससे प्रतीत होता है कि इन्होंने भारतयुद्ध में भाग नहीं लिया था। भारतयुद्ध से पूर्व हो चुके थे।

केशी दार्भ्य और उच्चैश्श्रवा कौरव्य—जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ३। २१। १ में लिखा है—

उच्चैश्श्रवा ह कौपयेयः[1] कौरव्यो राजास। तस्य ह केशी दार्भ्यः पाञ्चालो राजा स्वस्रीय आस।

अर्थात्—उच्चैश्श्रवा कौरव-कुल का राजा था। उसकी भगिनी का पुत्र केशी दार्भ्य था।

महाभारत आदिपर्व की प्रथम वंशावली में जनमेजय द्वितीय के भ्राता अभिष्वान् के आठ पुत्रों में एक उच्चैश्श्रवा है।[2] आदिपर्व की यह वंशावली बहुत त्रुटित है। प्रतीत होता है कि इस उच्चैश्श्रवा का सम्बन्ध पर्यश्रवा अर्थात् भीष्म के पितामह प्रतीप से था। यदि कौरव्य उच्चैश्श्रवा प्रतीप के काल के समीप हुआ, तो पुराणों की कौरव वंशावली में उसके साथ के आठ नाम ठीक नहीं हैं।

केशी दाल्भ्य पर वंश-उच्छेद—काठक आदि संहिता में लिखा है कि केशी दाल्भ्य के पश्चात् पञ्चाल त्रेधा अनीक हुए।[3] केशी पर वंश उच्छेद प्रतीत होता है—

एवं ह केशिनो दाल्भ्यस्य वंशाश्चने·········।

अर्थात्—केशी दाल्भ्य के वंश के कट जाने पर। महाभारत-युद्ध के काल में पाञ्चाल जनपद सोमक, सृञ्जय और प्रभद्रकों में विभक्त था। क्या ये ही तीन भाग हो गए थे।

---

१. जैमिनीय ब्राह्मण में भी यह नाम मिलता है। कालेण्ड का संक्षेप, संख्या १५१।

२. ८९। ४५-४८॥

३. काठक संहिता ३०।२॥ कपिष्ठल संहिता ४६।५॥

शिखण्डी याज्ञसेन और सुत्वा याज्ञसेन—पूर्व पृ० २०१ पर संख्या ८ के अन्तर्गत कौषीतकि ब्राह्मण से जैसा वचन उद्धृत किया गया है, लगभग उसी अभिप्राय का निम्नलिखित पाठ जैमिनीय ब्राह्मण में मिलता है—

केशी ह दार्भ्यो दर्भपर्णयोर्दिदांचे । अथ ह सुत्वा याज्ञसेनो हंसो हिरण्मयो भूत्वा यूप उपविवेश।······ ··············यदहमेतस्यै विरास्त्वत्पूर्वो राजासम् । जै० ब्रा० २।५३॥

प्रश्न होता है, क्या कौषीतकि ब्रा० में उल्लिखित शिखण्डी याज्ञसेन का दूसरा नाम सुत्वा याज्ञसेन था, अथवा शिखण्डी का भ्राता सुत्वा था । जैमिनीय ब्राह्मण के इस वचन से पता लगता है कि केशी के पश्चात् सुत्वा याज्ञसेन पञ्चालों का राजा बना । केशी स्वयं कहता है—मैं तेरे से पूर्व इन प्रजाओं का राजा था । अतः कालक्रम की दृष्टि से सुत्वा अथवा शिखण्डी निश्चय ही द्रुपद यज्ञसेन का पुत्र था ।

रैपसन का अज्ञान—केम्ब्रिज हिस्टरी आफ इण्डिया में अंग्रेज़ अध्यापक रैपसन लिखता है—सात्राजित् शतानीक कलियुग के आरंभ के शीघ्र पश्चात् हुआ था ।[1] इति ।

In the Puranic list of Puru kings, Bharata and his father, Dushyanta, appear long before, and Catanika soon after, the beginning of the Kali age.

बेचारे रैपसन ने कौरव कुल के शतानीक को जो भारत-युद्ध के पश्चात् हुआ, पञ्चाल देश के शतानीक के साथ, जो भारत-युद्ध से कई सौ वर्ष पहले हुआ, एक मान लिया है । इतिहास न जानने का यह फल है । दुःख है, वर्तमान भारतीय विद्यार्थी इन्हीं अशुद्ध इतिहासों को पढ़कर अपने को पण्डितंमन्य मान रहे हैं ।

९. सुरथ शैब्य—पञ्जाबान्तर्गत शिवि जनपद कभी अति प्रसिद्ध था । उसकी राजधानी उशीनरकोट अथवा वर्तमान शोरकोट थी । वहां के राजा शैब्य कहाते थे । बौधायन श्रौत-सूत्र में लिखा है—

अथ हैतेन सुरथः शैब्य ईजे आतिष्ठर्थ परतामियामिति ।१८।१३॥

यह शैब्य सुरथ महाभारत में स्मरण किया गया है । पाँच पाण्डव भ्राता पञ्जाब के काम्यकवन में विचरते हुए अपने वनवास के दिन अतिवाहित कर रहे थे । वहां दुर्योधन के भगिनी-पति जयद्रथ और उस के साथी शैब्यराज कोटिकास्य ने द्रौपदी को देखा । यह कोटिकास्य शैब्य सुरथ का पुत्र था ।[2]

अहं तु राज्ञः सुरथस्य पुत्रो यं कोटिकास्येति विदुर्मनुष्याः ।६।
अथाब्रवीद् द्रौपदी राजपुत्री पृष्टा शिबीनां प्रवरेण तेन ।१॥

१०. यास्क का निरुक्त महाभारत-युद्ध से लगभग ४०-५० वर्ष पहले रचा गया था । पाश्चात्य लेखकों ने उसका काल बहुत अर्वाचीन कल्पित किया है । यह सर्वथा असिद्ध है । यास्क लिखता है—अक्रूरो ददते मणिम् ।

१. भाग प्रथम, पृ० ३०८ तथा ३११, ३१३, ३१६ ।
२. आरण्यकपर्व २६६ । ६ ॥ २६७ । ५ ॥

अर्थात्—अक्रूर मणि को धारण करता है।

अक्रूर के मणि-धारण की कथा वायु और विष्णु पुराणों में अति प्रसिद्ध है। अक्रूरजी का महाभारत में बहुधा उल्लेख है—

प्राविशद् भवनं राजन् पाण्डवानां हलायुधः।

सहाक्रूरप्रभृतिभिर्गदसाम्बोद्धवादिभिः॥ उद्योगपर्व १५७।१७॥

अक्रूरः कृतवर्मा च सात्यकिश्च शिनेः सुतः। सभापर्व ४।२७॥

अर्थात्—अक्रूर आदि के साथ पाण्डव भवन में बलरामजी प्रविष्ट हुए।

११. निरुक्त में कौरव्य शन्तनु और देवापि का भी उल्लेख है। ये दोनों महाराज प्रतीप के पुत्र और संख्या २ में वर्णित बह्लिक के भ्राता थे।

अब सोचने का स्थान है कि विचित्रवीर्य-पुत्र धृतराष्ट्र, प्रतीप-पुत्र बह्लिक, नग्नजित् गान्धार, व्यास पाराशर्य, वैशंपायन, देवकी पुत्र कृष्ण, नारद, सौबल, द्रुपद-पुत्र शिखण्डी, सुरथ शैब्य, अक्रूर और शन्तनु तथा देवापि आदि ऋषि और राजगण महाभारत की ऐतिहासिक कथा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। वैदिक ग्रन्थों के पाठ आज तक पर्याप्त सुरक्षित रहे हैं। उनमें वर्णित होने से महाभारत की कथा में भी इनका स्थान पूर्ण ऐतिहासिक है, और ये व्यक्ति कल्पित कहानी के पात्र नहीं हैं।

योरुप के लेखकों को ज्ञान हो जाना चाहिए कि उनकी कल्पनाएं अब भारत में मान्य नहीं होंगी। उन्हें शिष्य बनकर भारतीय विद्वानों से पढ़ना होगा, और अपने उच्छृङ्खल तथा कल्पित-भाषा-विज्ञान को तर्कयुक्त बनाना होगा। उन्हें ईसाई पक्षपात छोड़कर सत्य की अधिक आराधना करनी होगी।

महाभारत-संहिता आदि के आधार पर इस पवित्र, ऋषिदेश भारत का जो इतिहास हमने निर्माण किया है, उसके तथ्य को मानना ही पड़ेगा।

दशम अध्याय

भारतीय इतिहास, संसार-इतिहास की तालिका

वर्तमान दुःखी मानव-संसार का विस्तार एक मूल सुख स्थान से, अपि च वर्तमान अधूरे-ज्ञान का आगम एक स्वच्छ, निर्मल, अद्वितीय, पूर्ण और उज्ज्वल ज्ञान-राशि से, तथा वर्तमान समस्त अपभ्रंश भाषाओं का भ्रंशन एक मूल संस्कृत-भाषा से हुआ।[1] इन तीनों मूलों का यथार्थ पता केवल भारतीय वाङ्मय में सुरक्षित रहा है।[2] इतर देशों और जातियों ने इनके टूटे-फूटे अंशों का ज्ञान बचाया है। इस प्रतिज्ञा के साधक अनेक हेतु और उदाहरण, इस इतिहास में यत्र-तत्र मिलेंगे। पर आवश्यक है कि यूनान, अरब (ताजिक), मिश्र,

१. इस तथ्य को अध्यापक एच. एच. विलसन सदृश पक्षपाती ईसाई लेखक भी कुछ २ जान गया था। विष्णु-पुराण के अंग्रेजी-अनुवाद की भूमिका में वह लिखता है—

The affinities of the Sanskrit language prove a common origin of the now widely scattered nations amongst whose dialects they are traceable, and render it unquestionable that they must all have spread abroad from some centrical spot in that part of the globe first inhabited by mankind, according to the inspired record.
(Preface, p. CIII, Oxford, 1840, edition 1864).

अर्थात्—सम्प्रति सुदूर बिखरी हुई जातियों की बोलियों से संस्कृत-भाषा के निकटस्थ सम्बन्ध, इन जातियों के समान-उद्गम को सिद्ध करते हैं। इति। इस सिद्धान्त को योरुप और अमेरिका के ईसाई अध्यापक देर तक सह नहीं सके। उन्होंने भाषा-विज्ञान की धारा को शीघ्र ही एक कल्पित दिशा की ओर मोड़ा।

२. जर्मन लेखक एल. गाईगर लिखता है—

The Indians developed their religion to a kind of old-world classicity, which makes it for all time the key of the religious beliefs of all mankind. (Ursprung und Entwickelung den menschlichen Sprache und Vernumft. Stutgart, 1868, Vol. I, p. 119f. Cf. Vol. II. p. 339)

अडोल्फ केगी के, दि ऋग्वेद, टिप्पण ८६ पर उद्धृत।

गाईगर ने इस विषय में पूर्ण-यत्न नहीं किया। अन्यथा यह सत्य उसे अनायास ज्ञात हो जाता, कि भारतीयों ने अपने धर्म को विकसित नहीं किया, प्रत्युत उनका धर्म आरम्भ से ही पूर्ण विकसित था। भारतीयों ने युगयुगान्तर का इस धर्म का सत्य इतिहास अवश्य सुरक्षित रखा है। गाईगर के लेख में इतना अंश सत्य है कि भारतीय इतिहास के ज्ञान के बिना मनुष्यमात्र के पुरातन धार्मिक-विश्वास समझ में नहीं आ सकते।

केगी ने इसी गाईगर-मत की प्रतिध्वनि अपने मूल ग्रन्थ के पृ० २६, पंक्ति २४—पर की है।

ईसाई लेखक इस विचार-धारा को भी सह न सके। आक्सफर्ड के बोडन-आसन्दी के उपाध्याय मार्थर-एनथनि-मैकडानल का लेख देखिए—

Comparative Mythology proves that the nature of various dieties cannot be fully understood from Vedic evidence alone because they are derived from earlier periods. Thus the original character of Yama can only be ascertanied by taking the conception of the Avestic Yama into consideration. (R. G. Bhandarkar Com Vol.; Principles to be followed in Translating the Rigveda, 1917; p. 12.)

इस असत्य कथन के पूर्ण खण्डन का यहां स्थान नहीं। परन्तु—"वेदान्तर्गत कई बातें, वेद से पूर्वकाल के स्रोतों से ली गई हैं," यह लेख ईसाई पक्षपात की पराकाष्ठा है और यथार्थ-इतिहास से अज्ञानता प्रकट करना है।

असुर्या, सूर्या, कालडिया तथा ईरान आदि देशों के अवशिष्ट-इतिहासों में उस मूल ज्ञान और तत्सम्बन्धी विषयों का कुछ इतिहास एकत्र करके, इनसे प्राचीनतम भारतीय इतिवृत्तों से, उनका संवाद किया जाए।[1] तब उन देशों में सुरक्षित पुरातन बातों का स्पष्टीकरण और संगति यदि भारतीय वाङ्मय में मिल जाए, तो किसी विद्वान् को इस बात के स्वीकार करने में आपत्ति न होगी, कि भारतीय ग्रन्थ सत्य-इतिहास बताते हैं। अतः इस अध्याय में कतिपय ऐसी बातें संक्षेप से लिखी जाती हैं, जो पूर्वोक्त प्रतिज्ञा को सिद्धान्त का रूप देने में अकाट्य-प्रमाणों का काम दें। इन तुलनाओं से यह भी व्यक्त होगा कि हमारा लिखा भारतवर्ष का इतिहास ही सत्य-इतिहास है, और काल्पनिक 'भाषा-ज्ञान' की डिंडिभि पीटने वाले, जर्मन तथा अंग्रेज़ लेखकों के लिखे भारत के इतिहास प्रायः अशुद्ध और भ्रमपूर्ण हैं। कारण, उनमें इन मूल तत्त्वों का गन्ध भी नहीं।

१. जल-प्लावन

ऐतिहासिक घटना—जल-प्लावन का विस्तृत वर्णन हमने इस ग्रन्थ के दूसरे भाग के प्रथम अध्याय में किया है। जलप्लावन को मिश्री, यहूदी, बावल (बभ्रु, बभ्री, वेद; बभ्री अवेस्ता; बवेरू, पाली) वाले, सुमेर (बावल देश के निचले-भागों के लोग), दक्षिण अमेरिका वासी और भारतीय लगभग समान प्रकार से जानते थे। संसार की इन विभिन्न जातियों ने किसी अति पुरातन काल में किसी सभा में एकत्र होकर यह निश्चय नहीं किया था कि एक कल्पित असत्य प्रचलित किया जाए। अतः जल-प्लावन की घटना एक ऐतिहासिक घटना थी।

१. भारतीय वर्णन—भारतीय ऋषियों के अनुसार एक बार सारी पृथ्वी का संवर्तक-अग्नि से भयङ्कर दाह हुआ। तदनु एक वर्ष की अतिवृष्टि से महान् जल-प्लावन आया। सारी पृथिवी जल-निमग्न होगई। वृष्टि की समाप्ति पर, जल के शनैः शनैः नीचे होने से, कमलाकार पृथ्वी प्रकट होने लगी। उस समय उन जलों में श्री ब्रह्माजी ने योगज-शरीर धारण किया।

---

१. भारतीय इतिहास को यथार्थ-रूप में न जानने के कारण, भारतीय इतिवृत्तों और वेद-मन्त्रों के प्राचीनतम होने में श्री बाल-गङ्गाधर-तिलक सदृश विद्वान् को भी सन्देह हुआ—

This ancient (Babylonian) civilization...............was the parent of the Assyrian civilization which flourished about 2000 years before Christ. It is believed that the Hindus came in contact with the Assyrians after this date. Thus Rudolph von Ihering,..............in his work on the Evolution of the Aryans, came to the conclusion that the Aryans were originally a nomadic race unacquainted with agriculture, canals navigation, stone-houses, working in metals, money transactions. alphabet, and such other elements of higher civilization, all of which they subsequently borrowed from the Babylonians................

...............This makes the Vedic and the Chaldean civilizations almost contemporanious................

If we therefore discover any names of Chaldean spirits or demons in the Atharva, it could only mean that the magic of the Chaldeans was borrowed, partially at least by the Vedic people...... (Bhandarkar Com. Vol., Chaldean and Indian Vedas, pp. 29—33).

तिलकजी ने जो रुडल्फ वान इहेरिङ्ग का मत लिखा है वह ऐसे मनुष्य का लेख है जिसे वेद, शास्त्र का अणुमात्र ज्ञान नहीं, अतः उसके विषय में हम कुछ लिखना नहीं चाहते।

उनके साथ योगज शरीर-धारी सप्तर्षि और कई अन्य ऋषि मुनि भी प्रकट हुए। सृष्टि वृद्धि को प्राप्त हुई। तब बहुत काल के पश्चात् समुद्रों के जलों के ऊंचा हो जाने के कारण एक दूसरा जल-प्लावन वैवस्वत मनु और यम के समय में आया। मनु ने एक नौका में अपनी और अनेक प्राणियों की रक्षा की।

इस वर्णन की तिथियां—पूर्वोक्त वर्णन मत्स्य पुराण (विक्रम से २७०० वर्ष पूर्व) में पाया जाता है। उससे पूर्व के महाभारत (विक्रम से ३०५० वर्ष पूर्व) में भी इसका उल्लेख है। महाभारत से १०० वर्ष पूर्व के शतपथ ब्राह्मण में यह घटना वर्णित है। उससे पूर्व की वाल्मीकीय रामायण (भारत-युद्ध से २५०० वर्ष पूर्व) में भी इसका उल्लेख पाया जाता है।

२. मिश्री वर्णन—श्री पण्डित रामगोपालजी शास्त्री पहले हमारे साथ अनुसन्धान-कार्य करते थे। तब संवत् १९७९ में उन्होंने आथर्वण-बृहत्सर्वानुक्रमणी का प्रथम बार सम्पादन किया। इसकी भूमिका में मिश्र देश-विषयक एक पुराना उद्धरण देकर शतपथ ब्राह्मण के एक प्रकरण से उन्होंने उसकी तुलना की। उस तुलना में हमने ऋग्वेद के मन्त्रों का कुछ भाग कोष्ठों में जोड़ा है। सारी तुलना आगे उद्धृत की जाती है—

मिश्री लेख का अंग्रेजी अनुवाद

There was a time when neither heaven nor earth existed, and when nothing had been except the boundless primeval water, which was however shrouded with thick darkness[1].

At length the spirit of primeval water felt the desire for creative activity.[4]

The next act of creation was the formation of a germ, or egg, from which sprang Ra, the sun God within whose shining form was embodied the almighty power of the divine spirit.[4]

वेद और शतपथ ब्राह्मण

[नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।][2]

[तम आसीत् तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं । सलिलं सर्वमा इदं ।][3]

आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास। ता अकामयन्त कथं नु प्रजायेमहीति। ता अश्राम्यँस्तास्तपोऽतप्यन्त।[5]

तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्यमाण्डं सम्बभूवाजातो ह तर्हि संवत्सरं आस तदिदं हिरण्यमाण्डं यावत् संवत्सरस्य वेला पर्यप्लवत्। ततः संवत्सरे पुरुषः समभवत् स प्रजापतिः।[5]

दोनों देशों के लेखों का समान अर्थ—पहले न व्योम था, न पृथ्वी अथवा रज। गहरा अन्धकार था और सब जल से प्लावित था। जल में कामना हुई। कैसे प्रजा बढ़े। एक हिरण्य अर्थात् चमकता अण्ड उत्पन्न हुआ। उसमें प्रजापति र अर्थात् क जन्मे।

---

1. Books on Egypt and Chaldea by E. A. Walles Budge, 1908, p. 22.

२. ऋग्वेद १०।१२९।१॥   ३. ऋग्वेद १०।१२९।३॥
नासदीय सूक्तान्तर्गत कोष्ठगत मन्त्रभाग हमने लिखे हैं।

४. वालेस बज का ग्रन्थ, पृ० २२।   ५. शतपथ ब्राह्मण ११।१।६।१॥

भारतीय भाषाओं में भी र और क का बहुधा अभेद है। हिन्दी में क और राजस्थानी में रा समानार्थक हैं।

मिश्र देश वालों का रा ब्रह्मा है। मिश्र देश के अन्य पुरातन लेखों में रा को क भी लिखा है। संस्कृत में क प्रजापति है और प्रजापति ब्रह्मा भी है।

दोनों वर्णनों में आश्चर्यकरी समता है। मिश्र देश वालों ने अपने पूर्वज आर्यों से यह इतिहास सीखा। उन्होंने इसे अक्षरशः सुरक्षित रखा। मिश्र के लेखों का अंग्रेजी अनुवाद करने वाले बज महोदय का कथन है कि मिश्र वालों का यह अपना ज्ञान है। स्पष्ट है कि अन्य पाश्चात्य लेखकों के समान बज जी को भी पुरातन इतिहास का पूर्ण परिचय नहीं था। अतः उन्होंने ऐसा कथन किया।

इस अध्याय के अगले अनेक संवादों से पता लगेगा कि मिश्र देश वालों ने आर्य इतिहास की अन्य अनेक बातें भी याथातथ्य रूप से सुरक्षित रखी हैं।

मिश्र देश का पूर्वोक्त लेख योरुपीय दृष्टि में विक्रम से १५००-२००० वर्ष पूर्व का है। संभव है हमारे अनुसन्धान द्वारा इससे अधिक पुराना सिद्ध हो। इस ज्ञान के लिए मिश्री आर्यों के ऋणी हैं। वे आर्य-सन्तान थे ही।

३. यहूदी वर्णन—यहूदी लोगों ने आत्मभू (आदम) ब्रह्मा के पूर्व के जल-प्लावन को भुला दिया है। उनके पास मनुः अथवा नूह के जल-प्लावन का कुछ वृत्त सुरक्षित रहा है। तदनुसार नूह ने एक नौका में अपनी और अनेक प्राणियों की रक्षा की। यहूदी वर्णन शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित मनु की कथा का अंशमात्र है।

४. कालडिया में सुरक्षित इतिवृत्त—कालडिया देश के पुरातन इतिहास में पहले जल-प्लावन का स्वल्प अंश बच रहा है। भविष्य में भी वैसा जल-प्लावन आसकता है। उसका वर्णन करते हुए बेरोसस लिखता है—

Berosus, the priest in the Marduk[1] temple of Babylon under the rule of Selucids wrote Chaldaic............ He asserts that the world will burn when all the planets ....come together in the Crab.[2]

अर्थात्—संसार जलेगा, जब सब ग्रह कर्क-राशि में एकत्र होंगे।

मनु-सम्बन्धी जल प्लावन का इतिवृत्त भी कालडिया आदि के पुराने विद्वानों को बहुत अच्छे रूप में ज्ञात था—

The cuneiform texts mention kings before the Flood in opposition to kings after the flood.[3]

---

१. तुलना करो, ऋग्वेद ४।१८।१२—कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीत्।

२. Encyclopedia of Religion and Ethics (Article on Ages).

३. तत्रैव।

In the time before the Flood there lived the heroes, who (Gilgames Epic) dwell in the under world, or like the Babylonian Noah, are removed into the heavenly world. At that time there lived, too, the (seven) sages.[1]

अर्थात्—पुरातन लेखों में जल-प्लावन से पूर्व के और जल-प्लावन से उत्तर के राजाओं का वर्णन है।

जल-प्लावन से पूर्व वे देव थे, जो पाताल में रहते थे अथवा बाबल-देश के ग्रन्थों में वर्णित नोह के समान देवलोक में ले जाए गए थे। उसी समय सप्तर्षि भी रहते थे। इति।

कालडीय देश में सुरक्षित पुरावृत्त का भारतीय पुरावृत्त से कैसा आश्चर्यजनक साम्य है। कौन विज्ञ-पुरुष कहेगा कि रामायण, महाभारत और पुराण-वर्णित वृत्त से यह कोई भिन्न वृत्त है। नोह का वृत्त यहूदियों ने बाबल वालों और भारतीयों से लिया। बाबल वालों ने यह इतिहास अति पुरातन आर्यों से लिया। बावेरू वालों का नोह, मनुः के अतिरिक्त और कोई नहीं। बावेरू के ग्रन्थों में पाताल, देवलोक और सप्तर्षियों का उल्लेख भारतीय इतिहास की प्रतिलिपि मात्र है। सप्तर्षियों का महत्त्व भारतीय ग्रन्थों के बिना समझ ही नहीं आ सकता। ये सप्तर्षि थी ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। इसी प्रकार पाताल और देवलोक के वास्तविक अर्थ से तथा इन स्थानों की भौगोलिक परिस्थितियों से संसार अपरिचित होचुका है। योरपीय लोग इन्हें mythology अर्थात् कल्पित बातें कहेंगे, पर भारतीय ग्रन्थ इनका तथ्य खोलेंगे।

सुमेर के एक वृत्त के अनुसार नौका में बैठने वाला ziu suddu था।[1] यह शब्द वैवस्वत (ziu = वैव, suddu = स्वत) का अपभ्रंश है। वैवस्वत मनु था।

भारतीय जाति संसार की मूल जाति है। भारतीय परंपरा ने अधिकांश मूल इतिहास सुरक्षित रक्खा है। भारतीय इतिहास की अनवच्छिन्न श्रृङ्खला आज से न्यून से न्यून १२००० (बारह सहस्र) वर्ष पूर्व से आरम्भ होती है। इस सत्य से भयभीत होकर अनेक योरपीय लेखकों ने भारतीय वाङ्मय और इतिहास की तिथियों को संकुचित करके ईसा से २५०० वर्ष पूर्व के अत्यल्प काल में सीमित करने का घोर-पाप किया है।

५. दक्षिणी अमेरिका—संवर्तक-अग्नि और जल-प्लावन से, पृथ्वीस्थ प्राणियों के नाश की दोनों घटनाएं दक्षिण-अमेरिका के पुरातन अधिवासियों में प्रसिद्ध चली आरही थीं—

It is noteworthy that among the South American Indians it is generally held that the world has already been destroyed twice, once by fire and again by flood, as among the eastern Tupies and the Aravaks of Guiana.[3]

---

1. Encyclopedia of Religion and Ethics (Article on Ages)
2. Burried Empires, by Carleton, pp. 64—.
3. Encyclopedia of R. and E.

अर्थात्— दक्षिण-अमेरिका के लोग मानते थे कि संसार पहले भी दो बार नष्ट हो चुका है। एक बार आग से और एक बार जल-प्लावन से। इति।

दक्षिण अमेरिका के पुरातन-वासियों के इतिहास में मनु के जलौघ का स्मरण अन्यत्र मिलता है—

Long ago the people (of that world) knew that there would be a great flood. Up in the North among the high mountains they built a great boat. When it was nearly time for the water to rise they began to load it with much corn and they took all the different animals into the boat and a white pigeon. When everything was ready the sons of the builder of the boat and their sons came into the ship. When they were all in, they put pitch over all the cracks of the boat. The flood came. The boat floated on the water.. Every living thing on the earth was drowned, but the boat still floated.

When the waters went down, the boat grounded on a high place in the mountains to the North.. So the people on the boat were saved from the first-ending-of-the-world by-flood.[1]

अर्थात्—बहुत पुराने काल में लोग जानते थे कि एक बड़ा जलौघ आएगा, उत्तर के पर्वतों में उन्होंने एक बड़ी नौका बनाई। जब पानी के ऊपर होने का समय आया, उन्होंने नौका को गेहूँ, विभिन्न पक्षियों और एक श्वेत कपोत से लादा। जब सब सज्जित था तो नौका बनाने वाले के पुत्र, पौत्र नौका में आगए। जलौघ आया। पृथ्वी के सब प्राणी डूब गए, पर वह नौका तैरती थी।..................जब पानी नीचे उतर गया, तो नौका पर्वतों में एक ऊँचे स्थान पर टिक गई। इति।

इस वर्णन में नौका का कीर्तन है। यह स्पष्ट मनु-सम्बन्धी जल-प्लावन का इतिवृत्त है। जल-प्लावन की अति-प्राचीन घटना एक सत्य ऐतिहासिक घटना थी। पूर्वोक्त पुरातन जातियों ने इसका ज्ञान सुरक्षित रक्खा है। भारतीय वाङ्मय में इसका अति स्पष्ट और सुसंगत इतिवृत्त मिलता है। वर्तमान पाश्चात्य लेखकों ने अपने इतिहास ग्रन्थों में इसका कहीं वर्णन नहीं किया। अतः पाश्चात्यों के रचित इतिहास-ग्रन्थ पुराने काल के विषय में कल्पनामात्र उपस्थित करते हैं, जो सर्वथा अप्रमाण है।

२. अकृष्टपच्या भूमि

अब दूसरा पुरातन तथ्य लेते हैं। वायुपुराण में एक बड़े महत्त्व का लेख है—

1. 'Tales of the Cochiti Indians' by Ruth Benedict, Smithsonian Institution, Bureau of American Ethnology, Bulletin 98. p. 2—3

न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्क्रयः ।
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमेतदासीत् पुरा किल ॥
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् सर्वस्यैतस्य संभवः ॥६२।१७२-॥

अर्थात्—चाक्षुष अन्तर तक गेहूं आदि न थे। घरों में गोपालन नहीं होता था। जंगलों में घूमती गौओं का दूध दोह लिया जाता था। हल चला कर खेती न की जाती थी। भूमि की स्वाभाविक उपज पर लोग निर्वाह करते थे। क्रय-विक्रय रूपी वणिक्-व्यवहार न चलता था। वैवस्वत अन्तर से इन्द्र आदि देवों और बहु-शास्त्र-निष्णात विश्वकर्मा आदि की कृपा से ये सब व्यवहार संसार में प्रवृत्त हुए।

प्रथम जल-प्लावन के पश्चात् भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी। जब कालान्तर में भूमि की वह शक्ति चली गई, तो साधारण उपजाऊ अथवा उर्वरा भूमि हल आदि द्वारा कर्षित होने पर अन्न आदि देने लगी। आदि युग के लोगों को हल चलाने का ज्ञान वेद से प्राप्त होचुका था—

कृषिमित्कृषस्व। ऋग्वेद १०।३४।१३॥
यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति। अथर्ववेद १०।६।३३॥

परन्तु जब कर्षण की आवश्यकता न थी, तब कोई हल क्यों चलाता। मनुष्य के ज्ञान में उत्तरोत्तर युगों में कोई उन्नति विशेष नहीं हुई, प्रत्युत मानव-शक्ति के क्षीण होने पर, आदि वैदिक-ज्ञान का ऋषियों की सहायता से मनुष्य ने अधिक उपयोग आरम्भ कर दिया।

अकृष्टपच्य अन्न के लाभ—अकृष्टपच्य अन्न नीरोगता और दीर्घायु के देने वाले होते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।६।१।११ में लिखा है—

सौम्यं श्यामाकं चरुं निर्वपति। सोमो वा अकृष्टपच्यस्य राजा।

अर्थात्—सोम ही अकृष्टपच्य का राजा है।

सोम कल्याणकारी है और अकृष्टपच्य भी कल्याणकारी है। अमेरिका के कृषि शास्त्र के विद्वानों ने यह निष्कर्ष अभी निकाला है, कि भूमि के कर्षण में जो ट्रैक्टर तथा कृत्रिम खाद आदिक सम्प्रति प्रयुक्त होने लगी हैं, उनसे विषैले अन्न उपज रहे हैं। अब पुनः प्रस्तुत विषय पर आते हैं।

उपलब्ध वायु-पुराण से पूर्वकाल की महाभारतसंहिता में लिखा है कि पूर्वयुग में महाराज पृथु-वैन्य के काल तक कृषि न होती थी—

अकृष्टपच्या पृथिवी आसीद्वैन्यस्य कामधुक्।[1]

अर्थात्—पृथु वैन्य के काल में पृथ्वी अकृष्टपच्या और कामधुक थी। तत्पश्चात्—

यदा प्रनष्टा ओषध्यो न प्ररोहन्ति ताः पुनः। ततः स तासां वृत्त्यर्थं वार्तोपायं चकार ह।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान् दृष्ट्वा सिद्धिं तु कर्मजाम्। ततः प्रभृत्योषध्यः कृष्टपच्यास्तु जज्ञिरे॥

१. द्रोणपर्व, ६९।४॥ षोडशराजोपाख्यान।

अर्थात्—जब भूमि पर इधर उधर बखेरे अन्न उगाने बन्द होगये, तो स्वयंभू ब्रह्मा ने वार्ता शास्त्र दिया। ब्रह्माजी ने देखा कि पृथ्वी कामधुक नहीं रही। उस पर सिद्धि कर्म द्वारा ही हो सकेगी। उस समय से हल चलने पर अन्न उत्पन्न होने लगे।

ब्राह्मण ग्रन्थ में भी पूर्वकाल में पदार्थों के कामधुक होने का संकेत है—

अष्टौ वा एताः कामदुघा आसंᳫ स्तोमेका समशीर्यंत सा कृषिरभवदृष्यतेऽस्मै कृषौ य एवं वेद। ताण्ड्य ब्रा० ११।५।८॥

भारतीय परम्परा और मेगास्थनेस—पूर्वोक्त ऐतिहासिक तथ्य यवन राजदूत मेगास्थनेस को ज्ञात था। उसके लेख का अंग्रेजी अनुवाद आगे उद्धृत किया जाता है—

The legends further inform us that in primitive times the inhabitants subsisted on such fruits as the earth yielded spontaneously.[1]

अर्थात्—इससे आगे कहानियां बताती हैं कि पुराकाल में लोग उन फलों पर निर्वाह करते थे, जो भूमि स्वयं अनायास देती थी।

[टिप्पण—इस अंग्रेजी अनुवाद में legends = कहानियां पद खटकता है। इस स्थान पर यवन-भाषा में जो मूल शब्द उल्लिखित था, उसका पुरातन अर्थ चिन्त्य है।]

एक बात निश्चित है। मेगास्थनेस का संकेत अकृष्टपच्या शब्द की ओर है। यह पुरावृत्त यहूदियों ने भी संक्षिप्तरूप में सुरक्षित रक्खा है। उसका परिचय अंग्रेज-लेखक रार्बर्टसन के शब्दों में मिलता है—

पुराने (पूर्वकालिक यहूदी) वृत्तों में, सुवर्णयुग के यवन इतिवृत्तों के समान लिखा है—आदि में मनुष्य सर्वथा निर्दोष और समस्त पशुओं के साथ मित्ररूप से रहता था। वह भूमि की स्वाभाविक उपज पर अपना निर्वाह करता था।[2] इति।

जो बात यहूदी और यवन लोगों ने अति संक्षिप्तरूप में सुरक्षित रखी है, वह बात पुरातन भारतीय इतिहास में विशद और अत्यन्त स्पष्ट रूप में मिलती है। भारतीय इतिहास की सहायता के विना संसार उस पुरातन तथ्य से वञ्चित हो कर भूल में भटक रहा है, और मिथ्या विकासवाद के भ्रामक-चक्र में फंसा हुआ है।

३. संसार में युग-विभाग

भारतीय युग-विभाग—भारतीय ऋषियों ने वेद के आधार पर पल, घड़ी, मुहूर्त, अहोरात्र, ऋतु, अयन, युग और महायुगों में काल का विभाजन सृष्टि के आरम्भ से ही कर लिया था। महायुग-विभाग के सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग अति प्रसिद्ध हैं। इस सूक्ष्म गणना के कारण भारतीय इतिहास बहुत सुरक्षित रहा है। इस युग गणना को न समझ कर

१. फ्रेगमेंट्स, पृ० १४।

२. मूल अंग्रेजी पाठ के लिए देखो, पूर्व पृष्ठ १८, टिप्पण १।

संस्कृत-विद्या का अभ्यास करने वाले योरुपीय लेखकों ने अनेक भूलें की हैं। उन में से फ्लीट ने तो इतनी धृष्टता की कि युग-विभाग को अत्यन्त अर्वाचीन-कल्पना लिख दिया। उस का उत्तर हमने वैदिक वाङ्मय का इतिहास, शाखा भाग, प्रथमाध्याय में दिया।

युग-विभाग का ज्ञान आर्यों ने संसार भर को दिया, यह अगली पंक्तियों से सिद्ध होगा।

बाबली, पारसी और यहूदी-युग-विभाग—बावल देश के पुराने विद्वान् युग-गणना को जानते थे। इस का उल्लेख पूर्व पृ० १६ टिप्पण १ में हो चुका है। पारसी लोग १२,००० वर्ष का एक युग-चक्र मानते थे।[1] यह आर्यों का १२,००० दिव्य-वर्षों का सुप्रसिद्ध युग-चक्र है। यहूदी लोग भी इस युग-तथ्य से परिचित थे—

The succession of the Ages of the World is also at the basis of the Book of Daniel.[2]

अर्थात्—ईसाइयों की पुरानी प्रतिज्ञा के अन्तर्गत डेनियल के ग्रन्थ का आधार संसार का युग-क्रम है।

यवन युग-विभाग—यवन लोग सुवर्ण युग, रजत युग, कांसी युग और अधम युग नामक चार युग जानते थे।[3] हेसिअड[4] नामक पुरातन ग्रन्थकार का यह मत है—

Greek view presented by Hesiod (Works and Days, 109—201) according to whom there have been four Ages—golden, silver, brass, and iron—each worse than the one preceding.[5]

बावली आदि पूर्वोक्त जातियों ने युग-गणना का मूल तत्त्व अपने पूर्वज आर्यों से सीखा था। युग-गणना के सूक्ष्म तत्त्व तो उन्हें भूल गए, पर स्थूल विभाग उन्हें स्मरण रहे। उत्तरोत्तर युगों में मनुष्य की किन किन शक्तियों का किस किस प्रकार ह्रास हुआ, इसका पूर्ण ज्ञान भारतीय वाङ्मय में ही मिलता है।

४. आदि संसार निरामिष भोजी

भारतीय साक्ष्य—वायुपुराण में स्पष्ट और विस्तृत रूप से लिखा है कि आदि युग में मनुष्य पृथ्वी से उपजे अन्न ही खाते थे। इसका एक अंश आगे उद्धृत किया जाता है—

---

१. पहलवी बुन्दहिश (मुसलमानी युग के उत्तरकाल में),
Encyclopedia of Religion and Ethics (Article on Ages).

२. तथैव।

३. Greek Mythology, by D. A. Mackenzie, p. 18, 19.

४. हेरोडोटस से ४०० वर्ष पूर्व का ग्रन्थकार। हेरोडोटस लिखता है—
For Homer and Hesiod..........and they lived but four hundred years before my time.
ग्रन्थ द्वितीय, अध्याय ५३। भाग १, पृ० १४१।

५. Encyclopedia of Religion and Ethics (Article on Ages).

पृथ्वीरसोद्भवं नाम आहारं ह्याहरन्ति वै ।८।४८॥

अर्थात्—उस सत्युग में पृथ्वीरस से उत्पन्न आहार पर मनुष्य निर्वाह करते थे।

उस आदिकाल में पशुओं को मार कर खाना तो दूर रहा, यज्ञ में भी पशु वध नहीं किए जाते थे। इस का प्रमाण आयुर्वेद की चरक संहिता में मिलता है—

आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालभनीयाः ब॰ूवुर्नालम्भाय प्रक्रियन्ते स्म। चिकित्सास्थान १९।४॥

अर्थात्—आदिकाल में यज्ञों में पशुओं का आलम्भ अर्थात् वध नहीं होता था।

महाभारत संहिता और मत्स्य पुराण में भी यही तथ्य वर्णित है। डार्विन मतानुयायी लोगों की मिथ्या-कल्पना है कि आदि मनुष्य आखेट करके अपना भोजन प्राप्त करता था। संसार का पुरातन इतिहास पदे पदे इस मत का खण्डन करता है।

उत्तरकाल में पशु बलि—उत्तरकाल में यज्ञों में पशु मारे जाने लगे। तब भी वृथा मांस भक्षण निषिद्ध था। महाभारत में दीर्घ जीवन-प्राप्ति के उपदेश में लिखा है—वृथा मांसं नाश्नीयात्। वृथा मांस-भक्षण आयु को न्यून करता है।

अन्य जातियां—यहूदी और यवन मानते थे कि आदि अर्थात् सुवर्ण-युग में मनुष्य निरामिष-भोजी था—

Among the Greeks and Semites, therefore, the idea of a Golden Age,[1] and the trait that in that age man was vegetarian in his diet,..........

man in his primitive state of innocence, lived at peace with all animals, eating the spontaneous fruits of the earth.[2]

अर्थात्—यवन और यहूदी आदि लोग मानते थे कि सुवर्ण-युग में मनुष्य केवल शाकाहारी था.........।

मनुष्य सर्वथा निर्दोष था और सब पशुओं के साथ शान्ति का व्यवहार करता था। वह भूमि की स्वाभाविक उपज खाता था। इति।

गोमांस वर्जन—जब लोग शिष्टाचार विहीन हो गए और मांस खाने लग पड़े, तब भी संसार की अनेक जातियां गोमांस खाना मानव आचार के विरुद्ध समझती रहीं। हैरोडोटस[3] लिखता है—

Thus from Egypt as far as lake Tritonis................ Cows flesh however none of these tribes ever taste, but abstain from it for the same reason as the Egyptians, neither do they any of them breed swine. Even at Cyrene, the women think it wrong to eat the flesh of the cow, ...

१. The Religion of the Semites, p 303.

२. तत्रैव, पृ० ३०१।

३. भाग १, पृ० ३९१ (ग्रन्थ चतुर्थ, अध्याय १८६)।

अर्थात्—ये जातियां गोमांस का स्वाद भी कभी नहीं लेतीं। सिरीन की स्त्रियां भी गोमांस खाना अधर्म समझती हैं।

कभी यह भाव सारे संसार में विद्यमान था। उत्तरकाल में मनुष्य असभ्य होता गया और इन श्रेष्ठ गुणों का परित्याग करता गया।

ईसा के शिष्य निरामिष-भोजी—ईसाजी के सब शिष्य और अनुयायी भिक्षु पहले निरामिष-भोजी थे। अल-मासूदी (हिजरी ३३० = विक्रम संवत् ६६८) लिखता है—

"The disciples of the Messiah are seventy two in number, besides whom twelve more have to be counted................"

"of all the Christian Monks, those of Egypt are the only ones who eat meat, because Mark permitted them to do so."[1]

अर्थात्—सारे ईसाई भिक्षुओं में से केवल मिश्र के भिक्षु मांस खाते हैं, क्योंकि ईसा-शिष्य मार्क ने उन्हें इस बात की आज्ञा दी थी।[2] इति।

पशु-बलियाँ—जब भारतवर्ष में कुछ पतन हो गया और पशु-बलियां यज्ञों का अङ्ग बन गईं तब संसार के अन्य देशों ने भी इस प्रथा का अनुसरण किया। पर वृथा मांसभक्षण से बचे रहने का वे फिर भी यत्न करते रहे। हैरोडोटस लिखता है—

The Egyptian priests make it a point of religion not to kill any live animals except those which they offer in sacrifice.[3]

अर्थात्—मिश्र के पुरोहितों का धार्मिक सिद्धान्त है कि वे यज्ञ के अतिरिक्त किसी जीवित पशु को नहीं मारते।

५. देव

अब एक ऐसी बात लिखी जाती है, जो अत्यन्त आश्चर्य उत्पादक है। इसकी ओर किसी विद्वान् का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ। वह है देवों के विषय में। इस का वर्णन विदेशीय ग्रन्थों के उद्धरणों से आरम्भ किया जाता है। इतिहास-लेखक हैरोडोटस मिश्र देश के पुरोहितों तथा पुजारियों के नीलपटों के आधार पर लिखता है—

The twelve gods were, they affirm, produced from the eight: and of these twelve, Hercules is one.[3]

The account which I received of this Hercules makes him one of the twelve gods.[4]

---

१. इण्डियन ऐण्टिक्वेरि, भाग १८, अक्टूबर सन् १८८६, पृ० ३१५ पर मेजर जे. एस. किङ्ग का मूल अरबी ग्रन्थ से अंग्रेजी में अनुवाद—अरबी ग्रन्थ-किताब-अल-मरूज-अल-ज़हब व मुआदिन-अल-जौहर।

२. भाग १, पृ० ३०३।

३. हैरोडोटस, भाग १, पृ० ११६।

४. तथैव, पृ० ११५।

Hercules is one of the gods of the second order, who are known as the twelve.[1]

कर्नल वंस कैनेडी ने इस वचन का निम्नलिखित अनुवाद किया है—

Hercules belonged to the second class, which consisted of twelve gods.[2]

and Bacchus belongs to the gods of the third order.[2]

अर्थात्—बारह देव आठ देवों से प्रकट हुए। इन बारह में से हरकुलीस एक है। हरकुलीस देवों की दूसरी श्रेणी में से है। दूसरी श्रेणी में बारह देव हैं। बेकस देवों की तीसरी श्रेणी में से है।

मिश्र देश के विद्वानों ने संसार का जो पुरावृत्त सुरक्षित रक्खा उसे कोई विद्वान्, जिस ने वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, महाभारत तथा वायु आदि पुराण नहीं पढ़े, नहीं समझ सकता। निम्नलिखित पंक्तियां इस बात को स्पष्ट करेंगी—

(क) आठ देव—इस बात का सम्बन्ध ऋग्वेद के एक मन्त्र से है। ऋग्वेद १०।७२।८ में अदिति के आठ पुत्र लिखे हैं—अष्टौ पुत्रासो अदितेः। ऋग्वेद का वर्णन ऐतिहासिक नहीं सामान्यमात्र है।[3] इस सामान्य कथन की इतिहास-मिश्रित व्याख्या में ब्राह्मण ग्रन्थों में भी कहीं कहीं आठ देव गिने हैं—

अदितिः पुत्रकामा............धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्............।

तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।९।१४॥[4]

बारह देव—परन्तु आर्य वाङ्मय के अनुसार ऐतिहासिक देव बारह थे। ये दक्ष-कन्या अदिति के पुत्र हैं। अदिति नाम वेद-मन्त्रों के आधार पर रखा गया था। माता अदिति से जन्मने के कारण बारह देव, बारह आदित्य भी कहाते हैं। वे हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा और विष्णु। रामायण, महाभारत और पुराण में ये नाम पढ़े गए हैं।

आठ मुख्य देव—पहले युग में आठ सामान्य देव माने जाते थे। त्रेता के आरम्भ में बारह ऐतिहासिक देव अथवा आदित्य जन्मे। अतः आठ और बारह की कठिनाई को दूर करने के लिए ऐतिहासिकों ने आठ देवों को मुख्य मान लिया। वायु पुराण में इस का निदर्शन है—

१. तत्रैव, पृ० १८१।

२. Researches into the Nature and Affinity of Ancient and Hindu Mythology, London, 1831, p. 37

३. श्री० के. एम. मुंशीजी, दि ग्लोरी दैट वाज़ गुर्जरदेश भाग १, पृ० ७७ पर लिखते हैं कि ऋग्वेद १।१५५।१ के अनुसार देवों के जन्मदाता द्यावा और पृथ्वी हैं। अतः वे आधिदैविक देवों को ही जानते जान पड़ते हैं। उन्हें ऐतिहासिक देवों का ज्ञान नहीं हुआ। उन्होंने वेदमन्त्रों में से इतिहास निकालने का निष्फल यत्न करके आर्य परम्परा को सर्वथा त्यागा है।

४. तुलना करो, गोपथ ब्राह्मण, पूर्व भाग, २।—॥

अष्टानां देवमुख्यानाम् इन्द्रादीनां महात्मनाम् । वायुपुराण ३४।१२ ॥

अर्थात्—इन्द्र आदि महात्माओं का, जो आठ मुख्य देवों में से हैं।

आठ से बारह का प्रकट होना—अति प्राचीन काल में मिश्र के विद्वानों को देवों की आठ और बारह की समस्या का ज्ञान था। हैरोडोटस ने इस भाव को अपने टूटे-फूटे शब्दों में वर्णन करके संसार का महान् उपकार किया। उसके मार्मिक शब्दों का व्याख्यान केवल भारतीय ग्रन्थों से ही संभव हुआ है।

वेद-काल—मैक्समूलर, वैबर, मैकडानल और कीथ प्रभृति पाश्चात्य लेखक, जो वेद-काल को ईसा से लगभग १५०० वर्ष पूर्व का मानते हैं तथा उनके पाश्चात्य शिष्य, और उनका उच्छिष्ट खाने वाले कतिपय भारतीय महोपाध्याय ऋग्वेद वर्णित आठ देवों के भाव का, मिश्र के प्राचीन ग्रन्थों में पाए जाने का, क्या उत्तर देते हैं। आठ देवों का उल्लेख करने वाले मिश्री वृत्तों से ऋग्वेद आदि ग्रन्थ अत्यधिक प्राचीन हैं। पाश्चात्य लेखक हैरोडोटस को ईसा से लगभग ४०० वर्ष पूर्व का मानते हैं। हैरोडोटस से लगभग १७००० वर्ष पूर्व ये देव हुए थे।[1] देवों में एक इन्द्र था। यह इन्द्र, निश्चित वही एक इन्द्र, ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों का ऋषि है। मिश्र की गणना के अनुसार उसके दृष्ट मन्त्र आज से लगभग १६५०० वर्ष पहले विद्यमान थे।

पूर्व पृष्ठ २०६ पर जल-प्लावन के विषय में, मिश्री वचनों का जो अंग्रेजी अनुवाद उद्धृत किया गया है, उस से भी यही परिणाम निकलता है कि वेद क्या, शतपथ ब्राह्मण का काल भी बहुत पुराना है।

अब, हे पाश्चात्य लेखको "इतिहास के पिता" हैरोडोटस को क्या भगवद्दत्त कहने गया था कि "श्रीमन्! ये सब बातें कल्पित कर के लिख दो।" अहो, इन पाश्चात्यों का मिथ्या-ज्ञान। इन्होंने संसार को गहरे अन्धकार में निमज्जित कर दिया है।

हरकुलीस का वृत्त आगे अङ्क ६ में सुस्पष्ट किया जाएगा। यहां देवों की तीन श्रेणियों का वर्णन किया जाता है।

(ख) तीन श्रेणियां—तीन श्रेणियों के विभाग पर योरप के लोग कुछ नहीं लिख सके। यह भी वैसा ही जटिल प्रश्न है जैसा पूर्व प्रदर्शित आठ देवों से बारह का प्रकट होना। योरप के संस्कृत विद्या पढ़ने वाले तथा पुरातन इतिहास पर लिखने वाले लोगों की दृष्टि अति संकुचित है। ऐसे लेखों को देख कर वे घबराते हैं। उन की घबराहट का चित्र कर्नल कैनेडी के निम्नलिखित शब्दों में मिलता है—

"Hercules belonged to the second class, which consisted of twelve gods; and Dionusos to the third class, which was produced from these last." What Herodotus could possibly mean by such a succession of

---

१. देखो, पूर्व पृष्ठ १५७।

deities it is in vain to enquire, but it may be safely affirmed that it never existed amongst any people;......"[1]

अर्थात्—यह खोजना व्यर्थ है कि देवों की तीन श्रेणियों से हैरोडोटस संभवतः क्या अर्थ ले सकता था। पर यह कुशल रूप से निर्धारित किया जा सकता कि ऐसा विभाजन किसी जाति में कदापि न था। इति।

पाश्चात्य लेखक इसी प्रकार अनेक परिणाम निकालते हैं। यह अज्ञान की पराकाष्ठा है। अब देखिए, इन तीन श्रेणियों का निर्मल वर्णन।

तीन भगिनियां—दक्ष प्रजापति की अनेक कन्याएं थी। उन में दिति बड़ी थी। अदिति उससे छोटी और तीसरी दनू इस अदिति से छोटी। ये तीनों कश्यप प्रजापति से व्याही गई। वही कश्यप प्रजापति जिस के गोत्र में तथागत बुद्ध था। यदि बुद्ध का गोत्र झूठा कहोगे, तो बुद्ध भी न रहेगा। अस्तु।

दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु आदि प्रथम श्रेणी में थे। संस्कृत वाङ्मय में इन्हें पूर्वदेव कहते हैं।[2] देवासुर संग्रामों से पहले इनका सारे संसार पर एकमात्र आधिपत्य था। संग्रामों के काल से वे असुर कहाए। अदिति के बारह पुत्र विवस्वान, इन्द्र और विष्णु आदि थे। वे दूसरी श्रेणी के कहे गए हैं। दनू का पुत्र विप्रचित्ति दानवासुर = Dionysius था। वह तीसरी श्रेणी में था। हैरोडोटस का लेख किसी गम्भीर सत्य का पता देता है। पर उस का स्पष्टीकरण भारतीय वाङ्मय से होता है।

मिश्र देश में इतिहास के सुरक्षित रहने का कारण—मिश्र देश के इतिहास का आरम्भ सूर्य, सविता अथवा रवि से माना जाता है। रवि इन बारह देवों में से एक था। मिश्र में रवि का अपभ्रंश रा शब्द प्रचलित होने लग पड़ा था। मिश्र की पुरानी जाति देव सन्तान में थी। इस लिए मिश्र वालों ने अपनी ऐतिहासिक परम्परा सुरक्षित रखी।

यहूदी और देव—जिस प्रकार मिश्र के ग्रन्थों की देव-विषयक समस्या का समाधान भारतीय ग्रन्थ कर देते हैं, उसी प्रकार ईसाइयों की पुरानी प्रतिज्ञा के एतद्विषयक कठिन भावों को भी भारतीय ग्रन्थ ही खोलते हैं। पवित्र बाइबिल में लिखा है—

There were giants in the earth in those days, and also after that when the son of God came in unto the daughters of men. Genesis Ch. 6. 4.

अर्थात्—उन दिनों पृथ्वी पर दीर्घकाय लोग रहते थे। उस के पश्चात् भी, जब देव का पुत्र मानव की कन्याओं से मिला।

भला कौन यहूदी अथवा ईसाई है, जो इस वचन का यथार्थ भाव समझा सकता है। दीर्घकाय लोग कौन थे, देव पुत्र कौन था, मानव कन्याएं कौन थीं, ये प्रश्न वर्तमान ईसाई और यहूदी नहीं जानते।

1. Researches into the Nature and affinity of Ancient and Hindu Mythology, p. 37; London, 1831.

२. अमरसिंह कृत नामलिङ्गानुशासन १।१।१२॥

हम पूर्व पृष्ठ १४१ पर छः प्रमाण लिख चुके हैं कि ऋषि, मनुष्य और देव भिन्न २ जातीय लोग थे। निम्नलिखित सात अन्य प्रमाण इस सिद्धान्त को अधिक पुष्ट करते हैं—

(क) तानि वा एतानि चत्वार्यम्भांसि। देवा मनुष्याः पितरोऽसुराः।

(ख) तद् यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्। तथर्षीणां तथा मनुष्याणाम्। शतपथ ब्राह्मण १४।४।२।२१॥

(ग) मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन्। निरुक्त १३।१२॥

(घ) ऋषीणां देवतानां च मानुषाणां च सर्वशः। पृथिव्यां सहवासोऽभूद् रामे राज्यं प्रशासति॥ द्रोणपर्व ५९।१२॥

(ङ) तां तु गाथां जगुः प्रीता गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः। पितृदेवमनुष्याणां शृण्वतां वल्गुवादिनः। द्रोणपर्व ६०।७॥

(च) लोकत्रये योधयेगं सदेवासुरमानुषम्। द्रोणपर्व १११।६॥

(छ) उद्युक्ता पृथिवी सर्वा सुरासुरमानुषाः। द्रोणपर्व १११।१०॥

अर्थात्—देव (सुर) असुर, ऋषि, मनुष्य, गन्धर्व, पितर आदि सब पृथक् पृथक् जातीय लोग थे।

कहीं २ मनुष्यों के अन्तर्गत भी देव हो जाते थे। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

द्वय्या वै देवा देवा मनुष्यदेवाः।

अर्थात्—दो प्रकार के देव। देव और मनुष्य देव।

परन्तु यहूदी वर्णन में जो देव हैं, वे मनुष्यों से पृथक् हैं। daughters of men से बाइबिल का संकेत मनु की सन्तान से है। और god का अभिप्राय देवों से है। परन्तु son of God एक वचन का प्रयोग खटकता है। पुरानी प्रतिज्ञा के इबरानी के हस्तलिखित ग्रन्थों का देखना अपेक्षित है। उस काल में और उस से पहले पृथ्वी पर निस्सन्देह दीर्घकाय लोग रहते थे। son of God और daughters of men का भेद पूर्वोक्त प्रमाणों के विना समझ नहीं आ सकता।

देव-विषयक यवन-वाङ्मय अपूर्ण—पाश्चात्य लेखकों ने यवन-वाङ्मय में उल्लिखित देव-विषयक बातों पर कुछ अधूरा सा काम किया है। यवन वर्णन पहले ही अधूरा था, अतः अधूरे वर्णन पर अधूरा काम कोई फल नहीं दे सका। संसार का पुराना इतिहास अंधकार में पड़ा रहा और उसका नाम mythology (कल्पित-कथा) रख दिया गया। यवन-लेखों का अधूरापन हैरोडोटस के शब्दों से स्पष्ट है—

"Almost all the names of the gods came into Greece from Egypt. My inquiries prove that they were all derived from a foreign source, and my opinion is that Egypt furnished the greater number.[1]

1. Book II. 50.

"Whence the gods severally sprang, whether or no they had all exited from eternity, what forms they bore............these are questions of which the Greeks knew nothing until the other day, so to speak. For Homer and Hesiod were the first to compose Theogonies and give the gods their epithets."[1]

अर्थात्—लगभग सब देवों के नाम यवन देश में मिश्र से आए थे। देवों का पृथक जन्म, उनका अनादि काल से अस्तित्व, उनके रूप, इन विषयों में यवन लोग कुछ पूर्व तक कुछ नहीं जानते थे। होमर और हैसियड ने पहले पहल देववृत्त संग्रह किए थे।

इलियड और रामायण—होमर का इलियड ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण की छाया पर लिखा गया है। लाहौर के ट्रिब्यून नाम दैनिक अंग्रेजी समाचार पत्र में कभी एक विस्तृत सूचना छपी थी कि लण्डन विश्वविद्यालय के एक अध्यापक ने लगभग ३० वर्ष के अध्ययन के पश्चात् ऐसा परिणाम निकाला है। वह सूचना देश के विभाजन के समय लाहौर में हमारे पत्रों में नष्ट हो गई है। परन्तु हैरोडोटस का लेख हमारे कथन का पोषक है।

६. Hercules = हरकुलीस = विष्णु

मिश्र देश की परम्परा के आधार पर हैरोडोटस लिखता है—

हरकुलीस दूसरी श्रेणी के देवों में से एक है। ये बारह हैं। इति।

यवन-ग्रन्थों के आधार पर वह पुनः लिखता है—

The Greeks regard Hercules, Bacchus and Pan as the youngest of the gods.[2]

अर्थात्—यवन लोग हरकुलीस को देवों में कनिष्ठतम मानते हैं।

हरकुलीस = सुरकुलेश अथवा विष्णु—वायुपुराण में पुरुषोत्तम विष्णु को सब देवों का राजा लिखा है—आदित्यानां पुनर्विष्णुं ।७०।५॥ अर्थात् बारह आदित्यों में से विष्णु को राज्य दिया गया। यवन-लेख सत्य है कि विष्णु देवों में कनिष्ठतम था। महाभारत में यही लिखा है—

एकादशस्तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते। जघन्यजस्तु सर्वेषाम् आदित्यानां गुणाधिकः॥ आदिपर्व।

अर्थात्—विष्णु देवों में बारहवां है। सब आदित्यों में कनिष्ठ, पर गुणों में सब से अधिक है।

वायुपुराण में भी इसी बात की प्रतिध्वनि है—

ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यजः ।६६।६७।

अर्थात्—जन्म में सब से छोटा होने पर भी विष्णु छोटा नहीं था।

बारह देवों का कुल सुरकुल था। देवों का एक राजा होने के कारण विष्णु सुरकुलेश था। सुर का स:ह में विकृत हुआ और विष्णु का नाम हरकुलीस बन गया।

१. Book II. 53.   २. भाग १, पृ० १८६।

अध्यापक विलसन आदि की भूल—विष्णुपुराण के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में अंग्रेज़ अध्यापक विलसन लिखता है—

The Hercules of the Greek writers was, indubitably, the Balrama of the Hindus.[1]

अर्थात्—यवन लेखकों का हरकुलीस, निस्सन्देह हिन्दुओं का बलराम था। इति।

ऐसा ही अन्य अनेक लेखकों का अनुमान रहा है। विलसन ने "निस्सन्देह" लिखकर अनेक लोगों को भ्रान्ति में डाला है। विलसन ने अणुमात्र नहीं सोचा कि यवन लेखकों ने देवों का इतिवृत्त मिश्र के विद्वानों से लिया था। और मिश्र के लेखों के अनुसार हरकुलीस के ग्यारह भाई थे। बलरामजी के ग्यारह भाई नहीं थे। उनके एकमात्र भ्राता स्वनामधन्य भगवान् कृष्ण थे। अतः विलसन का कथन अशुद्ध है।

कर्नल कैनेडी की योग्यता भी ऐसी—कैनेडी अपने ग्रन्थ में लिखता है—

With respect to the remaining gods of Egypt,...........and Hercules, so very little is known respecting them, and they appear to have been of such secondary importance, that they may be passed over without remark.[2]

अर्थात्—हरकुलीस के विषय में अत्यल्प बातें ज्ञात हैं। वह गौण देव था।

भारतीय ग्रन्थों पर पूर्ण अधिकार न होने के कारण कर्नलजी ने ऐसा लिख दिया। परम विख्यात, महासेनापति, भगवान् विष्णु को गौण देव कहना और उन्हें कल्पित (mythology का) देव मानना योरुप का महा-अज्ञान दर्शाता है।

विष्णु का काल

भारतीय ऐतिहासिक ग्रन्थों के अनुसार बारह देव त्रेतायुग के आरंभ में थे।[3] मिश्र देश की गणना के अनुसार हैरोडोटस लिखता है—

Seventeen thousand years (from the birth of Hercules) before the reign of Amasis the twelve gods were, they (Egyptians) affirm...........[4]

अर्थात्—मिश्र देश के मन्दिरों के पुजारियों के अनुसार विष्णु के जन्म से अमेसिस के राज्य से पूर्व तक १७,००० वर्ष हो चुके थे।

and even from Bacchus, who is the youngest of the three, they reckon fifteen thousand years to the reign of that King.[5]

---

१. लयडन में मुद्रित, सन् १८६४, भूमिका, पृ० १२।

२. Researches into the Nature and Affinity of Ancient and Hindu Mythology. p. 37.

३. आद्यत्रेता युग, वायु ६७।४३॥ ४. भाग १, पृ० १३६।

५. भाग १, पृ० २८१।

अर्थात्—देकस (विप्रचित्ति दानव) से, जो दैत्यों और देवों में सब से छोटा है, मिश्र के पुरोहित इस (अमेसिस) राजा तक १५,००० वर्ष गिनते हैं।

इस बात को अधिक स्पष्ट करता हुआ, वह पुनः लिखता है—

I have already mentioned how many years intervened according to the Egyptians between the birth of Hercules and the reign of Amasis. From Pan to this period they count a still longer time; and even from Bacchus, who is the youngest of the three, they reckon fifteen thousand years to the reign of that king. In these matters they say they cannot be mistaken, as they have always kept count of the years, and noted them in their registers.[1]

अर्थात्—मिश्र के पुरोहित कहते हैं, इन विषयों में वे भूल नहीं कर सकते। वे सदा वर्षों को जोड़ते आए हैं और अपनी बहिकाओं में लिखते आए हैं।

पूर्व पृ० १५७ पर इस १७,००० वर्ष की गणना से हमने पुराण-कथित ७,००० वर्ष की तुषार-राज्यमान गणना की तुलना की है। यदि मिश्र वालों की गणना का मूल पाठ हैरोडोटस के ग्रन्थ में कभी ७,००० वर्ष रहा हो, तो यह तुलना आश्चर्य जनक होगी। अन्यथा इस विषय पर अधिक सामग्री एकत्र करने की आवश्यकता है।

शक और विष्णुपाद—हैरोडोटस अन्यत्र लिखता है—

They (Scythians) show a foot mark of Hercules, impressed on a rock, in shape like the print of a man's foot, but two cubits in legth.[2]

अर्थात्—शक लोग चट्टान पर अङ्कित विष्णु के पैर की छाप दिखाते हैं, जो मनुष्य पैर के सदृश है, पर दो क्यूबिट (= ३६ इञ्च) अथवा एक भारतीय गज़ है।

देव-युग के लोगों का और विशेष कर देवों का पैर कितना लम्बा था, अथवा देव-शरीर कितने बड़े थे, यह अन्वेषण-योग्य विषय है। विष्णु के पैर की छाप मनुष्य के पैर के समान थी, अतः देव मनुष्य समान थे, भिन्न नहीं।

यवन-देश में हरकुलीस नाम का एक राजा भी था।[3] परन्तु विष्णु उस से पुरातन हरकुलीस था। इस हरकुलीस-विष्णु का पूर्ण परिचय भारतीय इतिहास में ही सुरक्षित है। मिश्र देश ने इस विषय की कुछ २ जानकारी सुरक्षित रखी। हैरोडोटस की सावधानी से यह हम तक पहुँची। उस का महत्त्व बताना हमारे भाग्य में था। हैरोडोटस के आधार पर पहले लिखा जा चुका है कि यवन देश वाले, देवों के विषय के ज्ञान में मिश्र देश वालों पर आश्रित थे। अतः यवन उल्लेख अधिक प्रामाणिक नहीं हैं।

१. भाग १, पृ० १८६। २. भाग १, पृ० ३१०।
३. Of the other Hercules, with whom the Greeks are familiar, I could hear nothing in any part of Egypt. हैरोडोटस, भाग १ पृ० १३५।

प्रस्तुत संदर्भ का विष्णु पुरातन संसार का एक महान्, पराक्रमी और दिग्विजेता महासेनापति था। स्मरण रहे वेद में वर्णित विष्णु यह ऐतिहासिक विष्णु नहीं है।

७. Zeus = हिरण्यकशिपु

हमारे भारतवर्ष का इतिहास द्वितीय संस्करण पृ० ५० पर इस के कुल का विस्तृत वंश-वृक्ष दिया है। यहां उस का संक्षेप लिखते हैं—

दिति— दक्ष कन्या
|
हिरण्यकशिपु = Zeus
|
प्रह्लाद = Epaphos = Libye
|
विरोचन = Belos
|
बलि
|
बाण — चन्द्रमा = Cadmos[1]
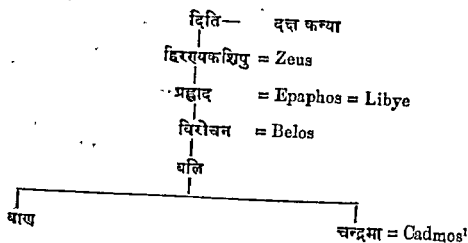
इस वंश-वृक्ष में यवन-लेखक नौन्नस के अनुसार कुछ नामों का यवन रूप रोमन अक्षरों में दिया गया है।[1] यवन परम्परा में या तो विरोचन नाम का विकृत रूप छूट गया है अथवा बलि का। यवन ग्रन्थकारों को और अनेक बातें भी समझ में नहीं आई। रोमन ग्रन्थकार इनसे भी अधिक भूले हैं। वे जूस = Zeus को बृहस्पति कहते थे।[2] भारतीय इतिहास की सहायता से ही हमने यवन-नामों के ठीक मूल पहचाने हैं।

नौन्नस और कैप्टेन विल्फर्ड—कैप्टेन विल्फर्ड अपने लेख में लिखता है—

Nounus, in his Dionysics calls the lord paramount of India, Morrheus (महाराज) and says that his name was Sandes (जरा-सन्ध) with the tittle of Hercules,...............

The Dionysiacs of Nounus are really the history of the Mahabhārata or great war,.......... A certain Dionysius wrote also a history of the Mahābhārata in Greek, which is lost, but from the few fragments remaining, it appears that it was nearly the same with that of Nounus, and he entitled the work Bassarica. These two poets had no communication with India; and they composed their respective works from the records and legendary tales of their own countries. Nounus was an

1. Pedigree, Nounos I, 377.
2. The Merriam—Webster Pocket Dictionary, 1947, p. 453.

Egyptian and a Christian. The Dionysiacs supply deficiencies in the Mahabhārata in Sanskrit; such as some emigrations from India, which it is highly probable took place in consequence of this bloody war.[1]

हमारा विचार है कि नोन्नस का ग्रन्थ भारत-युद्ध विषयक नहीं है । उसके ग्रन्थ में देवासुर-संग्रामों का अति-विकृत चित्र है । कैपटन विल्फर्ड ने Hercules को बलराम आदि समझ कर सब अगले लेखकों को भूल में डाला है ।

हिरण्यकशिपु-देवलोक में—हिरण्यकशिपु पहले देवलोक अथवा द्यु लोक का राजा था । इस लिये उसे द्यु अथवा यवन-अपभ्रंश में जूस कहने लग पड़े ।

पूर्वोक्त वंश-वृत्त में प्रह्लाद नाम का एक अपभ्रंश Libye है । वर्तमान अफ्रीका द्वीप में मिश्र के परे कभी लीबिया देश था । उसका प्रह्लाद से सम्बन्ध ढूंढना चाहिए ।

८. Dionysius = दानवासुर

नाम—यवन नाम दायोनिसिअस संस्कृत नाम दानवासुर अथवा दानवेश का अपभ्रंश है । दनू माता के पुत्र दानव थे । विप्रचित्ति इन में प्रधान था । विप्रचित्ति का अपभ्रंश बेकस Bacchus हो सकता है । परन्तु एक और बात विचारणीय है । बेकस का शराब के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है । आश्चर्य का स्थान है कि सिन्धु-प्रदेश में जन्मे वाग्भट के ग्रन्थ अष्टाङ्ग-संग्रह के सूत्र स्थान के छठे अध्याय में बकस नामक सुरा का उल्लेख है । इस अवस्था में वाग्भट ने बकस सुरा का नाम यदि किसी पुरातन आयुर्वेदीय आर्ष संहिता से लिया है, तो संस्कृत में बकस नाम प्रचलित रहा होगा । उसे ही यवन-लोगों ने ले लिया है । अन्यथा विप्रचित्त का अपभ्रंश बेकस हुआ है और उससे सम्बद्ध सुरा बकस-सुरा है । अन्तिम दशा में वाग्भट ने यवन नाम का प्रयोग किया है ।

ओरोतल, पुरातन अरबी नाम—हैरोडोटस के अनुसार पुरातन अरबी भाषा में इस नाम का अपभ्रंश ओरोतल था—

Bacchus they (the Arabs) call in their language Orotal.[2]

विद्वान् जानते हैं कि विप्र का अपभ्रंश ओरो है । और चित्ति से तल रूप बिगड़ा है ।

आसिरिस—हैरोडोटस के अनुसार पुराने यवन लोगों में आसिरिस नाम भी प्रसिद्ध था—

but according to the Hellenic tongue Osiris is the same as Dionusos.[3]

स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि असुर शब्द का अपभ्रंश आसिरिस है ।

मैक्समूलर का ज्ञान—पक्षपाती मैक्समूलर Dionysius शब्द का मूल द्युनिस समझता है ।[4] यह नाम साम्य कितना भद्दा है, पाठक स्वयं समझ सकते हैं ।

१. Asiatic Researches, Vol. IX. Article:—The Kings of Magadha, by Captain Wilford, pp. 93, 94; 1809.

२. भाग १, पृ० २११ ।

३. ग्रन्थ द्वितीय, अध्याय १४४ ।

४. India What Can it teach us, p. 163.

पूर्व लिखा जा चुका है कि मिश्र देश के पुरोहितों के अनुसार विप्रचित्ति तीसरी श्रेणी के देवों में से था। यह सत्य है क्योंकि इस की माता दनू, दिति (कुस्ता ?, मै० सं० ४।२।३॥ कुस्ता ३।२।८॥) और अदिति से छोटी थी। यह तीसरे स्थान पर थी। अरायन (पृ० २०६) आदि यवन लेखक दानवासुर को विष्णु से १५ पीढ़ी पूर्व रखते हैं। यह भूल है। मिश्र के पुरोहित सत्य कहते हैं।

निवास स्थान, पाताल—हैरोडोटस ने एक और उपयोगी बात सुरक्षित की है। वह लिखता है—

Egyptians maintain that Ceres and Bacchus preside the realms below.[1]

अर्थात्—मिश्र देश वालों के अनुसार Bacchus पाताल का अध्यक्ष था।

पाताल का पर्याय रसातल भी है। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार रसातल में दैत्य, दानव, सुरभि-माता और नाग रहते थे।[2]

नन्दलाल दे की खोज—अनेक बातों में दे महाशय के परिणाम ठीक नहीं हैं। परन्तु रसातल आदि का ठीक निश्चय दे ने ही किया है।[3] उन की कृपा से रामायण और महाभारत में उल्लिखित ये सब स्थान सजीव रूप में प्रत्यक्ष हो रहे हैं।

Realms below का अर्थ न यवन ग्रन्थ में रह गया है, न मिश्री ग्रन्थों में। भारतीय ग्रन्थों में ही इस का पूर्ण स्पष्टीकरण मिलता है। दानव लोग पाताल और तुर्की आदि देशों में बसते थे।

धर्मपत्नी—हैरोडोटस के अनुसार बेकस की भार्या Isis इसिस थी।[4] भारतीय ग्रन्थों में उस का मूल नाम सिंहिका है।

कैनेडी लिखता है—

The conjugal relation subsisting between Osiris and Isis seems placed beyond all doubt by the paintings and sculptures still extant in Egypt.[5]

अर्थात्—असुर और सिंहिका, पति-पत्नी रूप में अब भी मिश्र में चित्रित और पत्थरों पर उत्कीर्ण देखे जा सकते हैं।

इन्हीं दोनों का पुत्र प्रसिद्ध राहु था।

राज्य—वायु और मत्स्य पुराणों के अनुसार दानवासुर विप्रचित्ति एक महाबली राजा था—

दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद् बलदर्पितम्। विप्रचित्तिः प्रधानोऽभूद् येषां मध्ये महाबलः। मत्स्य ६।१६॥

विप्रचित्तिं च राजानं दानवानामथादिशत्। वायु ७०।७॥

---

१. भाग १, पृ० १७७। २. उत्तरकाण्ड, अध्याय १४, १५।

३. Rasatala or the Under-world, by Nundo Lal Dey, Calcutta. 1927; pp 7—15.

४. भाग १, पृ० १६६। ५. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ५०।

अर्थात्—दनू के सौ बलगर्वित पुत्रों में से विप्रचित्ति महाबल और प्रधान था। पिता कश्यप ने उसे दानवों का राजा बनाया।

इस विप्रचित्ति ने तीनों लोक अर्थात् देवलोक, मानव लोक या भूलोक अथवा भारतवर्ष तथा पाताल अपने क्रोध से त्रासित किए। महाभारत भीष्मपर्व अध्याय ६० में इसका साक्ष्य है—

यथा शक्रो महाराज पुरा विव्याध दानवम् ॥२८॥
विप्रचित्तिं दुराधर्षं देवतानां भयंकरम्।
येन लोकत्रयं क्रोधात् त्रासितं स्वेन तेजसा ॥२९॥

पञ्जाब पर दानव विप्रचित्ति का राज्य—यवन राजदूत मेगास्थनेस लिखता है—

The men of greatest learning among the Indians tell certain legends, ... They relate that in the most primitive times, when the people of the country were still living in villages, Dionusos made his appearance coming from the regions lying to the west, and at the head of a considerable army. He overran the whole of India,............... He was besides, the founder of large cities............... after reigning over the whole of India for two and fifty years he died of old age,......... At last, after many generations had come and gone, the sovereignty, it is said, was dissolved, and democratic governments were set up in the cities.[1]

.... and their city Nysa, which Dionyson had founded.[2]

The Nysaioi, however, are not an Indian race, but descendants of those who came into India with Dionysos...............[3]

Father Bacchus...............was the first of all who triumphed over the vanquished Indians.[4]

They further called the Oxydrakai descendants of Dionysos, because the vine grew in their country.[5]

Their tombs are plain, and the mounds raised over the dead lowly.[6]

अर्थात्—भारतीय विद्वानों की परम्परा के अनुसार दानवासुर पश्चिम से (India) सिन्धु में आया। उसने सारा सिन्धु विजय किया। वह बड़े बड़े नगरों का निर्माता था।

१. Fragments, p. 35,136.
२. तत्रैव, पृ० ११०।
३. तत्रैव, पृ० १४३।
४. तत्रैव, पृ० ११६, सोलिन ५२।५।
५. तत्रैव, पृ० १११।
६. तत्रैव, पृ० ६१, अरूरस्य १०।

नैश नगर उसी का निर्मित है। नैश के वासी भारतीय नहीं हैं। । दानवासुर के वंशज हैं। क्षुद्रक लोग भी दानवासुर के वंशज हैं। उन के देश में अंगूर = द्राक्षा उगती थी।...क्षुद्रकों की कबरें साफ और नीची होती हैं।[1]......दानवासुर के अनेक पीढ़ी पश्चात् एक राजा का राज्य हटकर अनेक नगरों में गण-राज्य स्थापित हुए।

टिप्पण—पुराने यवन सिन्धु और पञ्जाब को India अथवा सिन्धु-प्रदेश कहते थे। शनैः २ यह शब्द समस्त भारत के लिए प्रयुक्त होने लगा। पञ्जाब और सिन्धु की अनेक जातियां असुरों के वंशों में हैं।

भारत में असुर-प्रजा—मेगास्थनेस के उपरि-लिखित उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि विप्रचित्ति-बकस नगरों का निर्माता था। उसने पञ्जाब और सिन्धु पर विजय प्राप्त की। यह क्षुद्रकों का पूर्वज था। उसकी विजय के पश्चात् ये लोग पञ्जाब में बस गए। महाभारत, भीष्मपर्व ४७।१६ के अनुसार भारत-युद्ध में क्षुद्रक-मालव लड़ रहे थे। अतः भारत-युद्ध-काल में भी आसुरि-प्रजा भारतान्तर्गत पञ्जाब में रहती थी। मार्कण्डेय पुराण ५८।४५ में—असुरा मालवा स्मृत हैं।[2] असुर पद या तो यहां मालवों का विशेषण है, अथवा मालवों के साथी क्षुद्रकों का द्योतक है। मार्कण्डेय पुराण में इस से पूर्व—क्षुद्रमीनाश्च ये जनाः[3] पाठ पढ़ा है। पराशर-मुनि की अति प्राचीन ज्योतिष-संहिता में—क्षुद्र-मालवक-मत्स्य-वसाति[4] नाम एक साथ स्मृत हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी ४।३।११४ तथा चान्द्र व्याकरण के अनुसार क्षुद्रक-मालव न ब्राह्मण थे, न क्षत्रिय। अतः स्पष्ट है कि मेगास्थनेस का लेख सत्य है। क्षुद्रक तो असुर थे ही, मालव भी संभवतः असुर थे। पाणिनीय गण-पाठ में—पर्शु-असुर रक्षस, प्रजाएं स्मृत हैं। पञ्जाब और सिन्धु की सीमा पर ये सब जातियां रहती थीं।

हड़प्पा और मोहेञ्जोदरो—ऐरावती नदी पर स्थित हड़प्पा नगर क्षुद्रकों का एक पुराना नगर प्रतीत होता है। सिन्धुगत मोहेञ्जोदरो नगर इन क्षुद्रकों के साथी अन्य असुरों का नगर था।[5] वहां से मिली पुरातन-मुद्राओं पर अङ्कित लिपि असुर-लिपि है।[6] असुर-लिपि में मीन अथवा मत्स्य की आकृति का प्रयोग क्षुद्र-मीना शब्द से प्रकट है। भारतीय इतिहास को न जानते हुए, पाश्चात्य-लेखक जान मार्शल, मैके और उन के साथी इस विषय में वृथा कल्पनाएं कर रहे हैं। हड़प्पा की स्थिति भारतीय इतिहास में अत्यन्त स्पष्ट है। यूरोप और अमेरिका के लेखकों की कल्पनाओं का इस में स्थान नहीं। हड़प्पा और मोहेञ्जोदरो के कला-कौशल को वेद-काल से पूर्व का कहना अपना अज्ञान प्रकट करना है। यह कला-कौशल भारत-युद्ध के काल के आस पास का है।

---

१. पतितानां न दाहः स्यात् नान्त्येष्टिर्नास्थिसञ्चयः। उशनः संहिता, ७।१॥ पतित जातियों ने दबाना आरम्भ किया।

२. यह पाठ अद्भुतसागर पृ० ४१४ पर उद्धृत पाठ के अनुसार है। यही पाठ ठीक है।

३. अद्भुत सागर, पृ० २६५। ४. तत्रैव।

५. सतलुज नदी समीपस्थ रोपड़ के पास के कोटि-निहंग नामक ग्राम के साथ की भूमि में से भी हड़प्पा-सदृश-मृत्तिका के भाण्डे मिले हैं। सतलुज से रावी नदी के आसपास तक क्षुद्रक देश था।

६. ललित विस्तर, अध्याय १० में असुर-लिपि नाम मिलता है।

गण-राज्य—अशोक-मौर्य के शिला-लेखों से ज्ञात होता है कि अशोक के काल में पञ्जाब और भारत की सुदूर सीमाओं तक अनेक गण-राज्य विद्यमान थे। मेगास्थनेस के पूर्व लेख से स्पष्ट है कि ये गण-राज्य पहले पहल असुर-वर्गों में प्रचलित हुए। इन में आर्य मर्यादा न्यून थी। इन्हीं गण-राज्यों को दृष्टि में रख कर राज-नीति के महान् आचार्य बाल-ब्रह्मचारी भीष्म पितामहजी ने गण-राज्यों की त्रुटियां दिखाई हैं।[1] ये त्रुटियां वर्तमान प्रजा-तन्त्र शासनों में बहुत अधिक पाई जाती हैं।

पाणिनि इन गणों में से अनेक को आयुधजीवी संघों में गिनता है। क्षुद्रक सैनिक ईरानियों की सेनाओं में भी नौकरी करते थे। मेगास्थनेस लिखता है—

The Persians indeed summoned the Hydraki from India to serve as mercenaries.[2]

अर्थात्—ईरानी क्षुद्रकों को बुलाते थे कि वे उनकी सेनाओं में वेतनभोगी सैनिक बनें।

दानवासुर और मेगास्थनेस—मेगास्थनेस का एक वचन उद्धृत करके अरायन लिखता है—

The stories about Dionysius are of course but fictions of the poets, and we leave them to the learned among the Greeks.[3]

अर्थात्—दानवासुर विषयक कथाएं कवि-कल्पनाएं हैं।

हमारी आलोचना—यह ठीक है कि यवन-लेखकों ने इस विषय में कुछ कल्पनाएं की हैं। परन्तु उनके अन्तर्गत सत्य इतिहास की मूलरेखा अवश्य विद्यमान है। उस रेखा के दर्शन भारतीय इतिहास में संभव हैं। अरायन, स्ट्रैबो आदि यवन-लेखकों ने उन अनेक बातों को, जो उन की अल्प समझ में नहीं आईं, कल्पित कह दिया है।

पुत्र—विप्रचित्ति का एक पुत्र श्वेत था।[4] वायुपुराण ६८।१७ के अनुसार विप्रचित्ति के १४ महासुर पुत्र थे।

संवत्—दानवासुर के संवत्, अथवा दानवासुर से मेगास्थनेस तक की ६४५१ वर्ष की गणना का उल्लेख पूर्व पृष्ठ १५६, १५७ पर हो चुका है।[5] यवन-लेखकों के अनुसार यह वर्ष-गणना भारतीयों की बताई हुई है। यह गणना बताती है कि हड़प्पा और मोहेञ्जोदड़ो की खुदाइयों में निकले नगरावशेष भारतीय इतिहास का अंशमात्र हैं और वेदों के प्रादुर्भाव से सहस्रों वर्ष पश्चात् के हैं।

---

१. महाभारत, शान्तिपर्व
२. Fragment, p. 110.
३. तत्रैव, पृ० १८४।
४. मत्स्य पुराण, पृ० १७२,१८१।
५. डाक्टर सुनीतिकुमार चटोपाध्यायजी लिखते हैं—

भारतीय हिन्दू-सभ्यता का वयः पूर्व-निर्दिष्ट इतिहास के अनुसार बहुत अधिक प्राचीन नहीं होगा।*** ******सचमुच खीस्ट-पूर्व १,००० से हिन्दू-सभ्यता की प्रतिष्ठा का आरम्भ हुआ। इति।

(भारतीय अनुशीलन में लेख, पृ० १४)

मिस्री, यवन और भारतीय गणनाओं की विद्यमानता में, जो आर्य-सभ्यता को सर्व प्राचीन सिद्ध करती है, चटोपाध्यायजी का पूर्वोक्त लेख उन के मिथ्या-ज्ञान का ज्वलन्त उदाहरण है।

पाताल—हैरोडोटस-लिखित realms below महाभारत आदि का पाताल अथवा रसातल है। यह ठीक भारतीय शब्द है और मिश्री लोगों ने इसे सुरक्षित करके भारतीय इतिहास की प्राचीनता सिद्ध करदी है। यवन भाषा का pataline शब्द भी पाताल का अपभ्रंश है।

९. कवि उशना = शुक्र

अवेस्ता में—पारसी धर्म-ग्रन्थ अवेस्ता में कवि-उसा शब्द स्मृत है। फिरदौसी के शाहनामा में कवि-उसा शब्द का रूप कैक-ऊस बन गया है। ईरानी ग्रन्थों में इसे राजा कहा है। पहलवी बुन्देहेश में यह नाम दहक=अहि-दानव से पहले मिलना चाहिए। परन्तु यहां यह नाम नहीं है।[1]

अथर्ववेद आदि में—कवि उशना शब्द अथर्ववेद में मिलता है। वहीं से यह शब्द लेकर शुक्र का नाम कवि उशना भी हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थों में कवि उशना असुरों का पुरोहित और महामन्त्री कहा गया है।[2]

राजा—ईरानी ग्रन्थों में ठीक लिखा है कि वह राजा भी था। वायु पुराण ७०।४ के अनुसार वह भृगुओं का राजा था—

मृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत्।

अर्थात्—काव्य उशना को भृगुओं का राजा अभिषिक्त किया। पारसियों के तूरानी और पुराण के भृगु एक प्रतीत होते हैं।

आथर्वण ऋचाएं—कवि अथवा काव्य उशना और उसका पिता भृगु अनेक आथर्वण सूक्तों अथवा छन्दोवेद के सूक्तों के द्रष्टा हैं। इस छन्दोवेद का अति-विकृत रूप ज़न्द-अवेस्ता में है।

जब यवन सिकन्दर ने पारसियों का विपुल वाङ्मय नष्ट भ्रष्ट कर दिया, तो उसके उत्तरकाल में ज़न्द का रूप अधिक विकृत हो गया। वर्तमान ज़न्द-धर्म पुरातन आर्य-धर्म का बहुत उत्तरकालीन रूप है। कैकौस की दिव्य बातें भारतीय ग्रन्थों से ही स्पष्ट हो सकती हैं।

१०. वृषपर्वा = अफरासियाय

अवेस्ता में—यह नाम अवेस्ता में Fran-hrasyan होगया है। इस पारसी रूपान्तर में आद्यन्तविपर्य हुआ है। शाहनामा आदि में इस नाम का अफरासियाय रूप मिलता है।

पहलवी बुन्देहेश के वंश-वृत्त में इसका स्थान बहुत उत्तर-काल में रखा हुआ है। यह ठीक नहीं। वृषपर्वा और कवि उशना समकाल में थे। अतः बुन्देहेश के लेख के मूल को खोजना आवश्यक है।

---

१. भण्डारकर कमेमोरेशन वाल्यूम, श्री जीवनजि जमशेद जि मोदी का लेख, पृ० ७१।

२. देखो, हमारा भारतवर्ष का इतिहास, पृ० ११,१२।

भारतीय ग्रन्थों में—वृषपर्वा दनू के पुत्रों में से एक था।[1]

भ्राता—यह विप्रचित्ति दानवासुर का कोई कनिष्ठ भ्राता था। विप्रचित्ति के वंशज पञ्जाब में बस गए और वृषपर्वा का राज्य उत्तर भारत के पास स्थापित हो गया। आदिपर्व ६१।१७ के अनुसार उसका एक भ्राता अजक था। इस नाम का अपभ्रंश Azes है। यह नाम भारत के पश्चिमोत्तर के अनेक यवन-राजाओं ने उत्तरकाल में धारण किया।

वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा और कवि उशना की कन्या देवयानी पौरव-महाराज ययाति से ब्याही गई थीं। ययाति का राज्य सिन्धु और पञ्जाब आदि पर था। उसके समीप वृषपर्वा का राज्य था। यह बात निम्नलिखित पंक्तियों से अधिक स्पष्ट हो जाएगी।

अफरासियाब का नगर—फ्रैञ्च लेखक गेबरेल के लेख का अंग्रेजी अनुवाद है—

The present ruins of Samarkand include the ruins of Afrāsiab and are known as the city of Afrāsiab.[2]

अर्थात्—समरकन्द के भग्नावशेषों में अफरासियाब के नगर के भग्नावशेष भी मिलते हैं।

समरकन्द अफगानिस्तान के साथ है। अतः महाभारतान्तर्गत ययाति उपाख्यान सत्य भौगोलिक परिस्थितियों को बताता है।

११. पह्लव भाषा

कवि उशना के वर्णन के साथ पह्लव जाति और उसकी भाषा का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। भारतवर्ष के महाराज ययाति और दानव वृषपर्वा की कन्या आसुरि शर्मिष्ठा का एक पुत्र अनु था। ययाति वेद का पण्डित था।[3] उस का नाम वेदमन्त्रगत पद के आधार पर था।[4] उसने अपनी सन्तान के नाम भी वेदमन्त्रों के पदों से चुने। ऋग्वेद में मन्त्रार्द्ध है—

यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।१।१०८।८॥

वेदमन्त्र ययाति से अति पूर्वकाल के हैं। अतः वेदमन्त्रों में मानव इतिहास ढूंढना वैदिक प्रक्रिया से अनभिज्ञता प्रकट करना है।

---

१. वायुपुराण ६८।८॥

२. Through the Heart of Asia, by M. Gabrial Bonvalot, translated from the French by Pitman, Vol II, pp. 7 and 31.

जे. जे. मोदि द्वारा भण्डारकर कमैमोरेशन वाल्यूम पृ० ७० पर उद्धृत।

३. हमारा भारतवर्ष का इतिहास, दूसरा संस्करण, पृ० ५८, टिप्पण ८।

४. ऋग्वेद १०।६३।१

परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि ब्रुवन्तु नः॥

म्लेच्छ जातियां—ययाति के पुत्र अनु से अनेक म्लेच्छ जातियों की उत्पत्ति हुई—अनोस्तु म्लेच्छजातयः।[1] म्लेच्छ शब्द का मूल अर्थ अपभ्रंश शब्द बोलने वाला है। इस अर्थ को समझने के लिए निम्नलिखित वचनों का समझना आवश्यक है—

(क) तेऽसुरा आत्तवचसो हेऽलवो हेऽलवो इति वदन्तः परा बभूवुः ॥ २३ ॥
तत्रैतामपि वाचमूदुः। उपजिज्ञास्यांऽ स म्लेच्छस्तस्मान्न ब्राह्मणो म्लेच्छेद्। असुर्या हैषा वाग्। एवैवैष द्विषतांऽ सपत्नानामादत्ते वाचं तेऽस्यात्तवचसः पराभवन्ति य एवमेतद् वेद ॥ २४ ॥ शतपथ ३।२।१॥

(ख) तेऽसुरा हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुस्तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै। म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः ॥[2]

(ग) मनसा वा इषिता वाग्वदति। यां ह्यन्यमना वाचं वदति असुर्या वै सा वाग् अदेवजुष्टा ॥ ऐतरेय ब्रा० ६।४॥

(घ) यां वै दृप्तो वदति यामुन्मत्तः सा वै राक्षसी वाक् ॥ ऐ० ब्रा० ६।७॥

(ङ) न म्लेच्छभाषां शिक्षेत। म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्द इति विज्ञायते। भारद्वाज गृह्यसूत्र।[3]

(च) व्युच्छेदात्तस्य धर्मस्य निर्यायेपपद्यते।
ततो म्लेच्छा भवन्त्येते निर्घृणा धर्मवर्जिताः॥ अनुशासनपर्व १४६।२४॥

(छ) गोमांसभक्षको यस्तु लोकबाह्यं च भाषते।
सर्वाचारविहीनोऽसौ म्लेच्छ इत्यभिधीयते ॥[4]

(ज) म्लेच्छाः पारसीकादयः।[5]

इन सब वचनों से निम्नलिखित परिणाम निकलते हैं—

१. असुर लोग अर्थात् कालडिया, ईरान, तुर्की आदि के सब निवासी पहले संस्कृत बोलते थे। यह काल वर्तमान ब्राह्मण ग्रन्थों से बहुत पूर्व का काल था। ब्राह्मण ग्रन्थ महाराज विक्रम से ३१००-३२०० वर्ष पूर्व प्रोक्त हुए। उन पांच सहस्र वर्ष से बहुत पूर्व का यह वृत्त है।

२. अनमना होने, दृप्त होने तथा उन्मत्त होने से असुरों की भाषा विकृत हो गई। यह असुर्या अथवा राक्षसी वाक् हुई।

३. भाषा का पहला विकार अपशब्दों में हुआ। यह भाषा लोकभाषा से विकृत हुई। यह लोकबाह्य हो गई।

---

१. महाभारत आदिपर्व ८०।२६॥
२. व्याकरण महाभाष्य पस्पशाह्निक में किसी ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन।
३. याज्ञवल्क्य स्मृति पर बालक्रीडा टीका में भी उद्धृत।
४. अमरकोश २।१०।२१ पर टीकासर्वस्व में उद्धृत।
५. गौतमधर्मसूत्र, मस्करीभाष्य ६।१७॥

४. उत्तरकाल में म्लेच्छ-भाषा-भाषी गोमांस भक्षक हो गए। उनमें धर्म का लोप हो गया वे आचारहीन हो गए।

महाभारत, आदिपर्व के अनुसार पह्लव, शक आदि जातियां म्लेच्छ हो गईं थीं। अतः पहले संस्कृत भाषा-भाषी थीं।

पह्लवों के साथ एक पारद जाति थी। पारद शब्द का वर्तमान अपभ्रंश Parthian और पह्लव का पहलव है।[1] हैरोडोटस म्लेच्छ शब्द से पूरा परिचित था। वह Melanchlaeni जाति का उल्लेख करता है।[2] ये लोग शकों के समीप रहते थे। इस प्रकार महाभारत का लेख हैरोडटस के लेख से पुष्ट होता है। मिश्र के लोग यूनानियों को भी अपवित्र अर्थात् म्लेच्छ समझते थे।[3] वस्तुत पहले काल में यवन म्लेच्छ नहीं थे। तुर्वसोर्यवनाः स्मृताः।[4] वे अनु के भ्राता तुर्वसु की सन्तान में थे। प्रतीत होता है, वे उत्तरकाल में म्लेच्छ हुए।

पह्लव लोग पहले मध्य एशिया में रहते थे। वायुपुराण ४७।४४ के अनुसार उनके देश में से वक्षु अर्थात् Oxus नदी बहती थी। तत्पश्चात् वे अन्य देशों में फैले।

सैमेटिक भाषाएं संस्कृत का रूपान्तर—पहलवी-भाषा म्लेच्छ-भाषा है और संस्कृत भाषा का अति विकृत रूप है। इसमें संस्कृत के अति विस्तृत रूप का दर्शन होता है। इससे स्पष्ट पता लगता है कि सैमेटिक भाषाएं भी संस्कृत के विकार का फल हैं। पहलवी में ज़न्द के रूपों का और इबरानी के रूपों का विचित्र सम्मिश्रण पाया जाता है। इस सम्मिश्रण को वे लोग नहीं समझ सकते, जो सैमेटिक भाषाओं को आर्य-भाषाओं से सर्वथा पृथक समझते हैं। एक पाश्चात्य लेखक आश्चर्य करता हुआ लिखता है—

'The Pahlavi language—is a very curious mixture of Semetic and Iranian elements.

म्लेच्छ-भाषा पहलवी के वर्तमान संस्कृत भाषा से अधिक सादृश्य रखने वाले अनेक शब्द सिकन्दर से उत्तर-काल तक सुरक्षित रहने वाले ज़न्द के वाङ्मय में मिलते हैं और

---

१. जे ई. लोहुईज़ेन-डि-लिऊव नामक परिश्रमी लेखक अपने ग्रन्थ दि सीथिन पीरिअड, लाईडन, सन् १९४९, पृ० ४४ पर लिखता है—

In enumerations of the different wild tribes in North-West India, apart from the Yavanas and the Pahlavas, we find the S'akas and the Tusāras also continually mentioned together in the epic poetry. The different texts in which these tribe names occur probably all go back to one Purānic text, and the names in question did not convey much to the authors.

वाल्मीकि और व्यास को पह्लव, पारद, यवन, शक, तुषार आदि जातियों का पूरा ज्ञान नहीं था, यह कहना अपने अज्ञान का परिचय देना है। भगवान् व्यास की महाभारत-संहिता की कृपा से ही हम इन जातियों की पुरानी बातों का सत्य इतिहास लिखने में समर्थ हुए हैं।

२. ग्रन्थ चतुर्थ, अध्याय ११५।

३. The Egyptians considered all foreigners unclean, with whom they would not eat, and particularly the Greeks. हैरोडोटस, भाग १, पृ० ११४ पर अनुवादक का टिप्पण।

४. आदिपर्व ८०।२६।

संस्कृत में लुप्त हो जाने वाले अनेक शब्द अति-विकृत-रूप वाली Syria अथवा सुलीकों[1] की इबरानी (= Hebrew) भाषा में भी पाए जाते हैं।

यथा—ताजिक शब्द वैदिक वाङ्मय में प्रत्यग्र के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उत्तरवर्ती ग्रन्थों में इसका प्रयोग अत्यल्प है। अरबी भाषा में ताज़ह शब्द इसी अर्थ में मिलता है।

पह्लवी-भाषा के अपभ्रंशन का क्रम निम्नलिखित है—

संस्कृत अति विस्तृतरूप

संकुचित संस्कृत	संकुचित संस्कृत
ज़न्द का पुरातन रूप	पुरातन पह्लव भाषा
ज़न्द का नया रूप	इबरानी
फारसी	अरबी
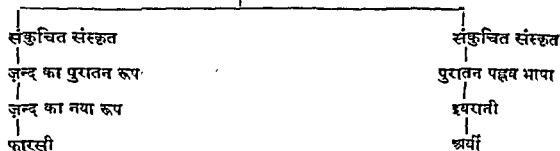
इबरानी भाषा ने जहां पह्लवी भाषा से अनेक शब्द ग्रहण किए हैं, वहां संस्कृत से अपभ्रंश हुई दूसरी भाषाओं से भी सामग्री ग्रहण की है।

१२. यम वैवस्वत

ईरान का राजा—ईरानी वाङ्मय में इसे यिम खिश ओस्त आदि नामों से स्मरण किया है। अवेस्ता में यह नाम यिम खुशएत है। यह विवंघन्त का पुत्र पिशृदादियन-कुल का राजा था। इसके साथ एक थ्रित भी उल्लिखित है। पिशृदादियन कदाचित् पश्चाद्व शब्द का अपभ्रंश है। यिम खुशएत का वर्तमान ईरानी रूप जमशेद है।

यम वैवस्वत देव-विवस्वान् का पुत्र और मनु का भ्राता था। देखो पूर्व पृष्ठ १३४।

पितर-देश का राजा—माध्यन्दिन शतपथ में लिखा है—यमो वैवस्वतो राजेत्याह तस्य पितरो विशः।१३।४।३।६। इसकी प्रतिध्वनि रूप वायु-पुराण ७०।८ में लिखा है—[1] वैवस्वतं, पितॄणां च यमं राज्येऽभ्यषेचयत्।

अर्थात् विवस्वान् के पुत्र यम को पितरों अर्थात् ईरान देशवालों का राजा अभिषिक्त किया।

---

१. आयुर्वेद की चरकसंहिता, चिकित्सास्थान ३०।२३६ में लिखा है—

बाह्लीकाः पह्लवाश्च चीनाः शूलीकाः यवनाः शकाः।

शूलीक देश को महाचीन देश की भाषा में सु-ले = Su-le कहते हैं। अरब लेखक इसे काशगर कहते हैं। देखो, एंशियण्ट खोतन, सर ऑरल स्टाइन्कृत मूल ग्रन्थ, भाग १, पृ० ४८। वर्तमान में जिस देश में ये लोग बसे, वह सीरिया हुआ। सुलीक का नाम रूपान्तर सीरिया है।

१. तथा देखो वायु ८४।८१।

याजुष मैत्रायणीय-संहिता १।६।१२ में लिखा है—

स वाव विवस्वानादित्यो यस्य मनुश्च वैवस्वतो यमश्च । मनुरेवास्मिंल्लोके यमोऽमुष्मिन् ।

अर्थात्—विवस्वान् के पुत्र मनु और यम थे। मनु का राज्य इस भारत में और यम का राज्य उस [पितर] लोक में।

बौधायन श्रौत १८।४३ में यम का उल्लेख है—यमो वैवस्वतोऽकामयत।

यम-वृत्त ईरानी ग्रन्थों में—यश्त ९ का अंग्रेजी अनुवाद है[1]—

3. Then made answer Zarathushtra:
 "What man first, O glorious Haoma,
 Pressed thee for the world material?

4. Then to me he made an answer,
 Haoma, holy, death—averter:
 "'Twas Vivahvant, first of mortals.
 To him was a son begotten,
 Yima of fair flocks, all shining.
5. In swift Yima's great dominion
 Neither winter was nor summer,
 Neither age nor death befel them,
 Neither sickness (?) demon given.
 Fifteen years in age—so seemed it—
 Son and father walked together.
 While he reigned, of fair flocks shepherd,
 Son of Vivahvant, great Yima"

अर्थात्—तब ज़रथुश्त्र ने उत्तर दिया, पृथ्वीलोक पर सब से पूर्व सोम को किसने निकाला। पवित्र सोम, जो मृत्यु को परे करके स्वर्गलोक का देने वाला है, मर्त्यलोक में इसे विवस्वान् ने पहले निकाला। उस का पुत्र यम था। यम के राज्य में सर्दी, गर्मी, जरा, मृत्यु, रोग नहीं थे। पिता और पुत्र युवा एकत्र घूमते थे।

मर्त्यलोक या मानवलोक का भाव भारतीय ग्रन्थों के बिना समझ में नहीं आ सकता। विवस्वान्-पुत्र मनु से मानव अथवा मर्त्यों का आरंभ हुआ।

कठोपनिषद् १।१२ में इस वैवस्वत यम का विस्तृत वर्णन है। यहां लिखा है—

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति ।
तीर्त्वाशना पिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥

१. [illegible], जे. एच. मोल्टन, पृ० ३१,३२।

अर्थात्—स्वर्ग लोक में भय, मृत्यु, जरा, भूख, प्यास कुछ नहीं। शोकरहित मनुष्य स्वर्ग में विचरता है।

इस वर्णन में विशेष सुखरूपी स्वर्ग का वर्णन पूर्ण रूप से लिखा गया है। ईरानियों का पितर देश का वर्णन इसके अनुरूप है।

ईरानी साहित्य में उपलब्ध यम-वृत्त का संक्षेप एक पारसी लेखक ने किया है। उस का निम्नलिखित अंश आवश्यक समझकर लिखा जाता है—

Yim,.........Azi Dhāka's predecessor, having organized the solar year, counting the beginning of the year with the day of Hormezd of the month of Fravardin............[1]

अर्थात्—यिम अज़ि धाक (अहि दानव) का पूर्ववर्ती था। उस ने ईरान में सौरवर्ष प्रचलित किया।

पारसी ग्रन्थकारों ने इतिहास के कई अंश ठीक सुरक्षित रखे हैं। यम पुत्र था देव विवस्वान् का। देवों में सौर वर्ष प्रचलित था। अतः यम ने उसी सौर वर्ष को ईरान में प्रचलित किया। भारतीय ग्रन्थों में यम का अति-विस्तृत उल्लेख है। इस सत्य से आंख मूंद कर आक्सफोर्ड का बोडन अध्यापक आर्थर एनथनि मैकडानल लिखता है—

Comparative Mythology proves that the nature of various dieties cannot be fully understood from Vedic evidence alone because they are derived from earlier periods. Thus the original character of Yama can only be ascertained by taking the conception of the Avestic Yama into consideration.[2]

अर्थात्—वैदिक ग्रन्थों से यम का मूल स्वरूप पूर्णतया समझ में नहीं आ सकता। अवेस्ता के यम के वर्णन से वह समझ में आता है।

मैकडानल का लेख ऐसे मनुष्य का लेख है, जो भारतीय परम्परा से सर्वथा अपरिचित है। भारतीय परम्परा वैदिक और लौकिक (इतिहास-पुराण) दोनों ग्रन्थों के आधार पर समझ में आ सकती है। यह हम पहले लिख चुके हैं। अतः मैकडानल के लेख का विद्वानों के सामने कोई मूल्य नहीं। और वेद-मन्त्रों का यम इतिहास का यम नहीं है।

यम-कृत वर्ण-विभाग—जिस प्रकार स्वायंभुव मनु ने वेद के आधार पर आर्य जनों की वर्ण व्यवस्था बनाई थी, उसी प्रकार वैवस्वत मनु के भ्राता यम ने पुरातन ईरानी लोगों में वर्ण-विभाग किया। उसका पता अगले फारसी शब्दों से लगता है। ज़रथुस्त्र के काल में पारसियों में लोगों की तीन श्रेणियां थीं—आथर्वण, रथेष्टा, विश। आथर्वण ब्राह्मण थे। वे

1. Tirupati All India Oriental Conference, p. 145;
बहूलेसरिया का लेख।

2. Bhand. Com. Volume; Principles to be followed in Translating the Rigveda; 1917, p. 12.

१. तिरुपति आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस, पृ० १४५।

अथर्ववेद का अभ्यास करने से आथर्वण कहाए। अथर्ववेद को भृगु-अङ्गिरो वेद भी कहते हैं। कवि उशना भार्गव था। उस का अधिकांश आथर्वण ऋचाओं से गहरा सम्बन्ध था। इसी कारण ईरान देशस्थ आथर्वण ब्राह्मणों ने ज़न्द में उस का कवि-उसा नाम सुरक्षित रखा।

रथेष्ठा क्षत्रिय थे। रथेष्ठा शब्द यजुर्वेद में उपलब्ध होता है। विश शब्द संस्कृत में वैश्य अथवा प्रजा के लिए वर्ता जाता है। वस्तुतः सारा ज़न्द धर्म वैदिक धर्म का अवान्तर रूप है। यदि ईरानी लोगों के पुराने ग्रन्थ मिल जाते, तो वैदिक धर्म से उनका सादृश्य अधिक भासता। ज़र-थुश्तर = विश्वरूप-त्वाष्ट्र का अपभ्रंश है।

स्मरण रहे, वेदों में यम का अर्थ वायु और सूर्य-पुत्र काल आदि है। उस का ऐतिहासिक यम से, स्वल्प गुण-सादृश्य होने पर भी, कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐतिहासिक यम ऋग्वेद १०।१४ का ऋषि है और स्वयं दूसरे काल-रूपी यम के ज्ञान का प्रसारक है।

पितर, जाति-विशेष—ऐतिहासिक यम पितर अर्थात् फारस देश का राजा था। पितर इस भूभाग के देश विशेष में रहते थे। इस विषय का स्पष्ट ज्ञान तैत्तिरीय-संहिता के अगले प्रमाण से हो जाएगा—

देवा मनुष्याः पितरस्ते ऽन्यत आसन्। असुरा रक्षाꣳसि पिशाचास्ते ऽन्यतः तेषां देवानामुत यदल्पं लोहितमकुर्वन् तद्रक्षाꣳसि रात्रीभिरसुभ्नन् तान्त्सुब्धान् मृतानभिव्यौच्छत्। ते देवा अविदुः। यो वै नो ऽयं म्रियते रक्षाꣳसि वा इमं घ्नन्तीति। २ ४।१।१-२॥

लगभग ऐसा पाठ जैमिनीय ब्राह्मण १।१५४ में है—

देवाः पितरो मनुष्यास्ते ऽन्यत आसन्। असुरा रक्षांसि पिशाचा अन्यतः।

अर्थात्—[पुरातन देवासुर संग्रामों में इन्द्र और विष्णु आदि] देव, [वैवस्वत मनु की सन्तान, अथवा] मनुष्य [तथा मनु के भ्राता यम के वंशज] पितर[1] एक ओर [मित्र शक्ति बनाए] थे। [दैत्य, दानव अर्थात्] असुर, राक्षस और पिशाच दूसरी ओर थे।

जिन विद्वानों का भारतवर्ष के पुरातन इतिहास में थोड़ा सा भी प्रवेश है, वे इन प्रमाणों से जान जाएंगे कि पितर एक जातिविशेष थी। यम और उसके पितर देश, तथा पितर-प्रजाओं का स्पष्ट ज्ञान भारतीय इतिहास से ही हो सकता है।

यम और जल-प्लावन—पारसीक ग्रन्थों के अनुसार यम के काल में एक जल-प्लावन आया। यह जल-प्लावन शतपथ ब्राह्मण में वर्णित मनु के काल का जल-प्लावन है। यह जल-प्लावन काल्डिया के ग्रन्थों और यहूदी बाईबिल में नोह के जल-प्लावन के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रह्मा से पूर्व का महान् जल-प्लावन, मनु के जलप्लावन से पूर्व का जलप्लावन था।

१. यम के वंशज भी ऋग्वेद के दशम मण्डल के सूक्तों के द्रष्टा हैं। यथा शंख यामायन १५, दमन यामायन १६, देवश्रवा यामायन १७, सङ्कुसुक यामायन १८, मथित यामायन १९॥ [मथित, त्रितआप्त्य-त्रित, फ़रीदूँ = [Thraetaona]

४३. अहि दानव=अज़ि दहाक

पारसीकों की अबान यश्त (Aban yasht 29) में अज़ि दहाक का उल्लेख मिलता है।[1] अरबी भाषा में यह व्यक्ति ज़हहाक नाम से प्रसिद्ध है।[1] उसके वंश के विषय में पारसीक ग्रन्थों में लिखा है—

Azi Dahāk is the fourth descendant of Tāz. Tāz, the fourth ancestor of Azi Dahāk is the founder of the race of the Arabs.[3]

अर्थात्—ताज़ की चौथी पीढ़ी में अज़ि दहाक था। ताज़ से अरब (गन्धर्व) जाति की उत्पत्ति हुई है।

अज़ि दहाक नाम संस्कृत-मूल अहि-दानव का अपभ्रंश है। अहि शब्द का एक पर्याय वृत्र है। अहि अथवा वृत्र का वंश-सम्बन्ध समझने के लिए भृगु वंश का संक्षिप्त वंश-वृक्ष नीचे दिया जाता है। इसका अधिक विस्तार हमारे भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० ५६ पर देखा जा सकता है—

वरुण = Taz[3] (यादसांपति, याद का विकृतरूप ज़ाद = आद्यन्त=विपर्य्य=दाज = ताज)
|
स्त्री-हिरण्यकशिपु कन्या दिव्या + भृगु-कवि = Viraf-sang
|
कवि = शुक्र = काव्य उशना
|
त्वष्टा | वरूत्री | शण्ड | मर्क

वरूत्री → रज्ञन | पृथु रश्मि | बृहद्रश = विद्वान् (= शालावृक)
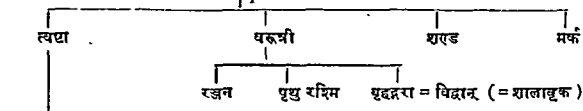
त्वष्टा → त्रिशिरा = विश्वरूप | वृत्र[4] = अहि दानव | विश्वकर्मा मय | संज्ञा = सुरेणु

इस वंश-वृक्ष के अनुसार अहि से तीन स्थान पूर्व भृगु = Viraf तथा कवि = Dang और चार स्थान पूर्व वरुण है। वरुण को पारसीक ग्रन्थकार ताज़ कहते हैं। वरुण गन्धर्व= (अरब) देशों का राजा था।

वृत्र अथवा अहिदानव का वर्णन रामायण, महाभारत, पुराण और ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। विश्वरूप के वध के पश्चात् त्वष्टा ने वृत्र को जन्म दिया। संभवतः वह नियोगज-पुत्र था। वह दानव कैसे कहाया, इसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में है—

१. तिरुपति, आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस, मद्रास, १९४१, पृ० १४५, १४६।

२. तत्रैव, पृ० १४२।

३. Taz, the fourth ancestor of Azi Dahaka is the founder of the race of the Arabs.

४. वा० रामायण युद्धकाण्ड ६७।१२ में लिखा है—महासुरं वृत्रमिवामराधिपः। महाभारत संहिता, उद्योगपर्व १६।२० में—त्वाष्ट्रो महासुरः पाठ देखने योग्य है। तथा देखो शान्तिपर्व, अध्याय ६५१।

दानव नाम का कारण—माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

स यद्वर्तमानः समभवत् । तस्माद् वृत्रो अथ यदपात् समभवत् तस्मादहिः तं दनुश्च दनायूश्च मातेव च पितेव च परिजगृहतुः तस्माद् दानव इत्याहुः ।१।६।३।९॥

......दनुश्च दानवी च मातेव च पितेव च परिजगृहतुः साऽस्य दानवता । काण्व श० ब्रा० २।६।२।५॥

अर्थात्—वृत्र अथवा अहि को दनु और दनायू [भगिनियों] ने माता और पिता के समान ग्रहण किया, अतः उसे दानव कहते हैं।

निरुक्त और वृत्र—भाषा शास्त्र का अद्वितीय ज्ञाता यास्कमुनि अपने निरुक्त में लिखता है—

तत्को वृत्रो मेघ इति नैरुक्ताः। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः।

अर्थात्—वेदार्थ में वृत्र का अर्थ मेघ है। और इतिहास के ग्रन्थों में त्वष्टा का पुत्र असुर वृत्र कहाता है।[1]

यास्क का ग्रन्थ महाभारत से ५०, ६० वर्ष पूर्व बन चुका था, अतः इस प्रकरण के ऐतिहासिकाः पद से निरुक्त का संकेत वाल्मीकि की ओर है। यास्क की दृष्टि में रामायण और तत्सदृश अन्य पुरातन इतिहास-ग्रन्थ अवश्य थे।

पारसी होम यश्त (९) का अंग्रेजी अनुवाद—

> He the Serpent slew, Dahāka,
> Triple-jawed and triple-headed
> Six-eyed, thousand-powered in mischief,
> Falsehood-demon very mighty,
> False, a pest to all creation.
> Him, the mightiest fiend of falsehood
> Angra Mainyu's self had fashioned,
> To material creation
> Foe, for death of Asha's creatures.[2]

अर्थात्—उस ने दहाक अहि का घात किया। दहाक तीन जबड़ों, तीन सिरों और छः आंखों वाला दुष्टता में सहस्र गुण था। सारी सृष्टि के लिए यह महामारी था। उसको अह्र मन्यु (अहंकाररूप क्रोध = पुत्र, त्वष्टा) ने रचा था।

यह सारा वर्णन अल्प परिवर्तन के साथ ब्राह्मण ग्रन्थों और महाभारत के वचनों का अनुवाद मात्र है।

पारसीक ग्रन्थ में स्वल्प-परिवर्तन—उपरि-लिखित वंश-वृक्ष से स्पष्ट है कि विश्वरूप और वृत्र दो भ्राता थे। इन में से त्वाष्ट्र त्रिशिरा विश्वरूप ऋषि था। यह विश्वरूप तीन शिरों

१. जो लोग निरुक्तान्तर्गत 'ऐतिहासिकाः' पद से मन्त्रों में इतिहास निकालते हैं, वे निरुक्त का भाव नहीं समझे।

२. भण्डारकर कमेमोरेशन वाल्यूम, दस ओरियण्टल ट्रान्सलेशन जे. एच. मोल्टन, पृ० ९१।

वाला और छः आंखों वाला—त्रिशीर्षा षडक्ष आस, था। अहिदानव अथवा वृत्र दुष्टता का पुञ्ज था। पारसीक वर्णन में दोनों को मिला कर एक कर दिया है।

ईरानियों में अहुर मज़्द— यह महासुर वृत्र अवेस्ता आदि ईरानी ग्रन्थों में अहुर मज़्द नाम से स्मरण किया गया है। ईरान में पहले देवों का सत्कार, प्रतिष्ठा और पूजा होती थी। परन्तु ज़रक्सीज़ (Xerexes) के पर्सिपोलिस के लेख से ज्ञात होता है कि इस राजा ने देव-पूजा को नष्ट किया और अहुर मज़्द की पूजा प्रवृत्त कराई । हप्त-हिन्दु (सप्त-सिन्धु) देश महासुर वृत्र ने उत्पन्न किया।

विश्वरूप त्वाष्ट्र तो वस्तुतः ऋषि था। उस के कनिष्ठ-भ्राता महासुर को भी ईरानियों ने ऋषि माना और बहुधा दोनों को एक करके भी माना।

मूल तथ्य के ज्ञानाभाव में कल्पनाओं की सृष्टि—ह्यूनसांग की जीवनी के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में श्री एस. बील ने लिखा है—

"The Medes, as is well known, were called Mars, i.e., Snakes; and in the Vendidad, Ajis Dahak, "the biting snake," is the personification of Media."[1]

अहि-दानव का अर्थ दनु का पुत्र सर्प हो सकता है, परन्तु "काटने वाला सर्प" लाक्षणिक अर्थ है, वास्तविक अर्थ नहीं।

वेदमन्त्रों में ऐतिहासिक वृत्र का कोई स्थान नहीं।

१४. त्रिशिरा विश्वरूप = विवरस्प = Bivaraspa[2]

वृत्र का ज्येष्ठ भ्राता और त्वष्टा का प्रथम पुत्र विश्वरूप था। पारसीक ग्रन्थों में उस के नाम का अपभ्रंश विवरस्प है।

माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में इस के विषय में लिखा है—

त्वष्टुर्ह वै पुत्रः। त्रिशीर्षा[3] षडक्ष आ। तस्य त्रीण्येव मुखान्यासुस्तद्यदेवं रूप आस तस्माद् विश्वरूपो नाम। ।१।६।३।१॥५।५।४।२॥

अर्थात्—त्वष्टा का पुत्र, तीन शिरों,[3] और छः आंखों वाला था। उसके तीन मुख थे।[4] क्योंकि इस रूप का था, अतः वह विश्वरूप नाम वाला हुआ।

---

१. भण्डारकर कमैमोरेशन वाल्यूम, सम अवेस्तन ट्रान्सलेशन्ज़, जे. एच. मोल्टन पृ० ६२।

२. त्रिवन्द्रम ओरिएण्टल कानफ्रेंस, पृ० १२२।

३. जैमिनीय ब्राह्मण १।१२५ में एक त्रिशीर्ष गन्धर्व वर्णित है।

४. त्रिशीर्ष नाम वेदमन्त्रों के आधार पर रखा गया है। देखो ऋग्वेद १०।८।८॥ तथा १०।९९।६॥ वेद में इस शब्द का अर्थ भिन्न प्रकार का है। ब्राह्मण-पाठ में, तीन देशों में प्रभाव रखने वाला अर्थ युक्त है।

तुलना करो—इन्द्रो वै यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्। तेषां एतानि शीर्षाणि यत् खर्जूराः। मै० सं० १।१०।१२॥ तथा हारीतधर्मे सूत्र—दशोभयतः श्रोत्रियाः—त्रिणाचिकेतः— त्रिमधु—त्रिसौपर्णः—त्रिशीर्षः—ज्येष्ठसामगः—। वीरमित्रोदय, श्राद्धप्रकाश, पृ० ७० । त्रिशीर्षा—अथर्व—रुद्र—वैश्वानर—शिरसा—मध्यता। भिन्नभिन्नका अर्थ।

पारसी वर्णन से तुलना—पूर्व पृष्ठ २३८ पर पारसी ग्रन्थ अवेस्ता से अहि-दानव का जो वर्णन लिखा गया है, वह वस्तुतः अहिदानव के ज्येष्ठ-भ्राता विश्वरूप त्वाष्ट्र का वर्णन है, वृत्रासुर का नहीं। ब्राह्मण ग्रन्थों और महाभारत की सहायता के बिना यह भेद ज्ञात नहीं हो सकता।

विश्वरूप, ऋषि—विश्वरूप महान् विद्वान् और ऋग्वेद १०।८,९ का ऋषि था। शतपथ ब्राह्मण के गुरु-परंपरा वंश में लिखा है—

......विश्वरूपात् त्वाष्ट्रात्। विश्वरूपस्त्वाष्ट्रो ऽश्विभ्याम् ।१४।३।५।२२.

अर्थात्—त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप ने यज्ञ की यह विद्या दोनों अश्वियों से सीखी।

शतपथ ब्राह्मण का उल्लेख इतिहास का एक निश्चित सत्य है। ये अश्विद्वय देवों के वैद्य और आयुर्वेद के निष्णात आचार्य थे। पूर्वोक्त घटना त्रेतायुग के आरम्भ में घटी थी।

पारसी ग्रन्थों में विश्वरूप के वर्णन का कारण—विश्वरूप की माता का नाम यशोधरा अथवा विरोचना था। वह विरोचन की भगिनी और प्रह्लाद की कन्या थी। वायुपुराण ८४।१९ में लिखा है—

प्राह्लादी विश्रुता तस्य त्वष्टुः पत्नी विरोचना।
विरोचनस्य भगिनी माता त्रिशिरसस्तु सा॥

पुराण वर्णित पूर्वोक्त तथ्य याजुष काठक संहिता १२।१०।२८ तथा मैत्रायणीय- संहिता २।४।१ में भी सुरक्षित है—विश्वरूपो वै त्रिशीर्षासीत् त्वष्टुः पुत्रो ऽसुराणां स्वस्रीय।

अर्थात्—त्रिशिरा विश्वरूप त्वष्टा का पुत्र तथा असुरों की भगिनी (विरोचना) का पुत्र था।

पारसीक लोगों का असुर परिवारों तथा असुरों के पुरोहित भार्गवों से गहरा सम्बन्ध है। इसलिए असुरों के सम्बन्धी विश्वरूप का, उल्लेख उन के ग्रन्थों में स्वाभाविक है।

१५. विश्वरूप का पिता और चचा-त्वष्टावरूत्री

विश्वरूप का पिता त्वष्टा था। त्वष्टा के थे तीन भ्राता, वरूत्री, शण्ड और मर्क। संस्कृत वाङ्मय में त्वष्टावरूत्री समास इकट्ठा पढ़ा जाता है और शण्डामर्क इकट्ठा। पारसीक वाङ्मय में त्वष्टावरूत्री समास का अति विकृत अपभ्रंश खुवस्तास्व है। पर पारसीक इस को एक व्यक्ति कहते हैं। अस्तु।

त्वष्टावरूत्री असुरों के पुरोहित थे। मैत्रायणीय संहिता ४।८।१ में लिखा है— अथ वा एतौ तर्ह्यसुराणां ब्राह्मणा आस्तां त्वष्टावरूत्री। पुनः काठक संहिता २७।२२ में भी यही भाव व्यक्त है—अथ तर्हि त्वष्टावरूत्री आस्तामसुरब्रह्मौ।

महाभारत, पूना संस्करण में अति भ्रष्ट पाठ—आदिपर्व ५९।३६ में श्रीसुकथङ्कर जी ने एक पाठ मुद्रित किया है—त्वष्टावरस्तथात्रिश्च। यहां त्वष्टावरूत्री पाठ युक्त है, और उपस्थ पाठान्तर इस का संकेत करते हैं।

१६. शण्ड, मर्क

अवेस्ता में शण्ड तथा महक—जर्मन-लेखक हिल्लेब्रण्ट (Hillebrandt) ने एक अधूरी बात लिखी कि भारतीय ग्रन्थों के शण्ड और मर्क ईरानी वाङ्मय की छाया रखते हैं। इस अधूरी बात से ही भयभीत हो कर महापक्षपाती ईसाई लेखक आर्थर बैरिडेल कीथ ने लिखा—

He (Hillebrandt) also points to the fact that among the names of Asuras, who appear in the accounts of the Brahmanas, there are some with an Iranian aspect: namely Canda and Marka, the latter being Avestan Mahraka, Kāvya Ucna, who is comparable with Kaikāos, Prahrāda Kāyādhava, perhaps Avestan Kayadha.........The evidence, is, however, clearly inadequate to prove the thesis.[1]

अर्थात्—भारतीय ग्रन्थों में उल्लिखित अनेक असुर नाम ईरानी छाया रखते हैं। अवेस्ता के महक, कैकोस और कयाध, भारतीय मर्क, कवि उशना और, प्रह्लाद कायाधव हैं। हिल्लेब्रण्ट का ऐसा लेख प्रमाण-शून्य है।

हमारी आलोचना—हिल्लेब्रण्ट की भूल इतनी है कि वह भारतीय वर्णन में ईरानी भाव का प्रदर्शन समझता है। तथा कीथ की यह महती भ्रान्ति है कि वह नामैक्य मानने के लिए उद्यत ही नहीं। हम ने गत लेख में अज़ि दहाक और विश्वरूप का सम्बन्ध भी प्रमाणित किया है। कीथ डरता था कि यदि इस प्रकार के ऐक्य सिद्ध हो गये, तो अन्त में संसार को मानना पड़ेगा कि आर्य वाङ्मय अति प्राचीन है, और इस में संसार का पुरातन इतिहास विस्तृत रूप से सुरक्षित है। यदि कीथ जीवित होता और तनिक पक्षपात छोड़ता, तो हमारे लेखों से उसे ज्ञात हो जाता कि ईसाई-यहूदी लेखकों को हम अपने अकाट्य-प्रमाणों से दुराग्रह छोड़ने पर बाधित कर देंगे।

असुर-पुरोहित—शण्ड और मर्क ऋषि विश्वरूप के चचा थे। वे असुरों के पुरोहित थे। काठक संहिता २७।२२ में लिखा है—बृहस्पतिर्देवानां शण्डामर्कौ असुराणां। यही ऐतिहासिक बात मैत्रायणीय-संहिता ४।६।३ में लिखी है—षण्डामर्कौ वा असुराणां पुरोहिता आस्ताम्। पारसी धर्म पुस्तक अवेस्ता में इन्हीं शण्ड और मर्क का स्मरण किया गया है।

वेदमन्त्रों में त्वष्टा, वरूत्री, शण्ड और मर्क सामान्यमात्र हैं।

वैदिक ग्रन्थों के प्रमाण—यद्यपि पाणिन्यादि मुनियों के अकाट्य वचनों के आधार पर हम उपलब्ध वैदिक ग्रन्थों के प्रवक्ताओं और इतिहास-पुराण के कर्ताओं का अभेद मानते हैं, तथापि पक्षपाती कीथ की अकारण घबराहट को दूर करके इस विषय में आगे चलना चाहते हैं। कीथ लिखता है—

In India the case is even worse than in Greece, where the epic is the oldest recorded literature: the legends, out of which scholars are now engaged in seeking to extract results which the nature of the case

1. Religion and Philosophy of the Veda and Upanishads, Vol. I, p. 232.

forbids us to attain, are recorded in works, the epics and the Purāṇas, of late and uncertain date.[1]

अर्थात्—यूनान की अपेक्षा भारत में स्थिति और भी हीन है। यहां रामायण और महाभारत प्राचीनतम लिखित वाङ्मय है। इनकी कहानियों से विद्वान् मिश्र, बाबल, ईरान और यूनान आदि की पुरातन कथाओं की तुलना करते हैं। यह वृथा है। रामायण आदि ग्रन्थ बहुत नए हैं, अतः इस तुलना से कोई परिणाम नहीं निकालने चाहिए।

हमारी आलोचना—रामायण और महाभारत आदि ग्रन्थ नए नहीं हैं। रामायण विक्रम से ५५०० वर्ष पूर्व का तथा महाभारत विक्रम से ३००० वर्ष पूर्व का ग्रन्थ है। मिश्र और बाबल आदि के विद्वानों ने रामायण आदि ग्रन्थों से बहुत भाव ग्रहण किए हैं। इस पर भी पूर्वोक्त तुलनाओं में हमने रामायण और महाभारत के साथ साथ काठक-आदि वैदिक-संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों के वचनों का सादृश्य मिश्र आदि देशों के पुरातन लेखों से दिखाया है। अतः कीथ आदि के अनुयायिओं को अपना हठ त्याग कर सत्य का ग्रहण करना चाहिए।

१७. वरुण—भृगु

जे. प्रज़ीलुस्की का मत है (JRAS, 1931) कि वरुण शब्द आस्ट्रो एशियाटिक वरु (=समुद्र) से बना है। अधिक क्या लिखें, प्रज़ीलुस्की जी इतिहास से अज्ञ तो हैं ही, पर भाषा-विज्ञान भी अणुमात्र नहीं जानते। आस्ट्रो भाषाएं अपभ्रंश हैं और कल की हैं।

बाबल में—कस्सिति = कैसाइट राजाओं का बाबल पर राज्य रहा। उनके राजाओं की सूची तथा अनेक कस्सिति शब्दों की बाबली भाषा में अनुवाद सहित सूची उपलब्ध हुई है।[2] वर्तमान अधूरी गणना के अनुसार ये राजा विक्रम-पूर्व १७०३ से राज्य करते थे। इस सूची में Burna-burias अर्थात् वरुण-भृगु अथवा वारुण-भृगु नाम का एक राज नाम लिखा है। यह नाम साक्षात् आर्य इतिहास से लिया गया है। हो सकता है बाबल के किसी राजा ने यह नाम धारण कर लिया हो। इस सूची में एक नाम Surias है। इसका बाबली भाषा में सूर्य अर्थ भी उस सूची में है।

ईरान में—ईरानी वाङ्मय में दो शब्द farna और baga अर्थात् वरुण और भृगु उपलब्ध होते हैं। पारसियों के विनष्ट-प्रायः साहित्य में उनके पूर्वजों की स्मृतियां कुछ सुरक्षित हैं। पारसियों ने अपने इतिहास के साथ अरब देश का इतिहास भी सुरक्षित रखा है। तदनुसार अरब जाति का प्रवर्तक ताज़ था—

Taz, the fourth ancestor of Azi Dahāka is the founder of the race of the Arabs.

1. Bhandarkar Commemoration Volume, Indo Iranians, p. 82.
2. Published by F. Delitzsch, Die Sprache der Kossaeer (1884)
कीथलिखित इण्डो-ईरानियन लेख में उद्धृत। देखो, भण्डारकर कमेमोरेशन वाल्यूम, पृ० ८१।

अर्थात्—अहि-दानव का चौथा पूर्व-पुरुष ताज़ (= वरुण) था। उससे अरब जाति की उत्पत्ति मानी जाती है।

वरुणालय और गन्धर्व जाति—हम पूर्व लिख चुके हैं कि यादसांपति शब्द वरुण के लिए प्रयुक्त होता है। याद का रूपान्तर दाय, तदनु दाज और फिर ताज बना। सोमदेव सूरिकृत कथा सरित्सागर (विक्रम संवत् ११२७) ३७। ३४, ३६ में ताजिक शब्द प्रयुक्त हुआ है। यह प्रयोग चिन्त्य है। वरुण का प्रदेश वरुणालय कहाता था। यहां गन्धर्व जाति रहती थी। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

अथ तृतीयेऽहन्।………वरुण आदित्यो राजेत्याह तस्य गन्धर्वा विशस्तऽइमेऽआसतऽइति युवानः शोभना उपसमेता भवन्ति तानुपदिशत्यथर्वाणो वेदः……।१३।४।३।७॥

लगभग यही पाठ शांखायन श्रौतसूत्र १६।२।७–६ में है।

अर्थात्—फिर तीसरे दिन।………अदिति का पुत्र वरुण राजा है। गन्धर्व उसकी प्रजाएं हैं।……वे सुन्दर हैं, उनके लिए अथर्ववेद का उपदेश होता है।

गन्धर्व लोग देवयोनि के थे। (राजशेखर कृत काव्य-मीमांसा अध्याय सप्तम)

गन्धर्व का अपभ्रंश अरब—गन्धर्व शब्द के अन्तिम भाग का अपभ्रंश अरब प्रतीत होता है। वरुण पद का अपभ्रंश भी अरब बन सकता है, पर निश्चय के लिए अभी अधिक अनुसन्धान की आवश्यकता है।[1] जै० ब्रा० ३।१२७, १६६ के अनुसार वरुणकुल के उशना काव्य ने गन्धर्व लोक को प्राप्त कर लिया था।

वरुण और अग्नि—मैत्रायणी-संहिता ३।६।१२ में लिखा है—अग्निर्वै वरुणं ब्रह्मचर्यमागच्छत्। अर्थात्-अग्नि ने वरुण के समीप ब्रह्मचर्य वास किया। अग्नि ही ब्राह्मण वेश में अर्जुन और कृष्ण के पास इन्द्रप्रस्थ के बाहर यमुना तट पर आया था। अर्जुन के कहने पर वह अग्नि वरुण से उसका रथ और गाण्डीव धनुष लाया था। ये सब ऐतिहासिक घटनाएं हैं।

भृगुओं के मन्त्रों का कुरान पर प्रभाव—कुरान इस समय अरब जाति का मान्य-पुस्तक बन गया है। कुरान की अनेक आयात (वचन) पढ़ कर कुरानाभ्यासी रोगियों की चिकित्सा करते हैं। वे अनेक प्रकार के अन्य टोने आदि भी करते हैं। उन्होंने यह बात भृगुओं के वंशजों में प्रचलित अनेक आथर्वण मन्त्रों से ली है। अथर्ववेद का भृगु-ऋषियों से गहरा सम्बन्ध है। अथर्ववेद का एक नाम भृगु- अङ्गिरो-वेद है। आथर्वण मन्त्रों द्वारा ऐसी क्रियाएं बहुत देर से चल पड़ी थीं। अतः आथर्वण-क्रियाओं की प्रतिध्वनि होने से निश्चय है कि कुरान पर भृगु-प्रभाव अधिक पड़ा है।

१८. इलीबिश

वेद में—ऋग्वेद १।३३।१२ में इलीबिश शब्द मिलता है। इसका अर्थ दुष्ट, वृत्र, घृणित आदि है। यह इन्द्र अर्थात् परमैश्वर्यवान् परमात्मा आदि का शत्रु है। जिस प्रकार वृत्र शब्द अहि = सांप का द्योतक हो जाता है, उसी प्रकार यह शब्द भी सांप-वाची हो सकता है।

यहूदी और अरबी ग्रन्थों में इस शब्द का अपभ्रंश इबलीस बन गया है। इबलीस का अर्थ शैतान आदि किया जाता है। इन देशों के साहित्य में यह शब्द वेदस्थ शब्द से विकृत हुआ है।

१. रामायण के काल में पेशावर के समीपस्थ प्रदेश भी गन्धर्व देश कहाते थे। हमारा भा. का. इ. पृ० १११।

१६. सर्प

ऋग्वेद १०।७६ सूक्त जरत्कर्ण ऐरावत सर्प का सूक्त है।

ऋग्वेद १०।६४ सूक्त अर्बुद काद्रवेय सर्प का सूक्त है।[1]

ऋग्वेद १०।१८६ सूक्त सार्पराज्ञी ऋषिका का है।

शतपथ ब्राह्मण १३।४।३।६ में लिखा है—

अर्बुदः काद्रवेयः राजेत्याह तस्य सर्पा विशस्तऽइमऽआसतऽइति सर्पाश्च सर्पविदश्च-उपसमेता भवन्ति ।

पूर्वोक्त लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जरत्कर्ण ऐरावत सर्प आदि लोग एक ऐसी जाति के थे, जो मनुष्य होते हुए भी सर्प जाति कही जाती थी। शतपथ का प्रमाण इसे बहुत स्पष्ट करता है। तदनुसार सर्पविद अर्थात् सांपों को जानने वाले भी वहां एकत्र होते थे। वे केवल सर्प-वेश वाले न थे, प्रत्युत सर्प-विद्या का ज्ञान रखने वाले भी थे।

काद्रवेय का अर्थ है कद्रू का अपत्य। कद्रू के वंश से अरब की कुर्द जाति का आरम्भ हुआ, ऐसा नन्दलाल दे का मत है।

बौधायन श्रौतसूत्र १७।१८ में यह भाव अधिक व्यक्त है—

एते वै सर्पाणां राजानश्च राजपुत्राश्च खाण्डवे प्रस्थे सत्रमासत पुरुषरूपेण विषकामाः ।

अर्थात्—ये सर्प-जाति के राजा और राजपुत्र खाण्डव प्रस्थ में यज्ञ कर रहे थे। वे सर्प-जाति का वेश धारण किए नहीं थे, प्रत्युत पुरुष-वेश में थे।

तैत्तिरीय ब्राह्मण २।२।६।३५ में लिखा है—देवा वै सर्पाः ।

भट्ट भास्कर इसके अर्थ में लिखता है—देववत् पूज्याः ।

ज्ञात होता है कि अति पुरातन दिनों में संसार की भिन्न २ जातियों के लोग, भिन्न भिन्न वेश धारण करते थे।

शतपथ १०।५।२।१६, २० में इस विषय में अधिक स्पष्ट कहा है। यह शरीर अन्न है, इस शरीर को अध्वर्यु अग्नि रूप में उपासना करते हैं,..........सर्प विष रूप में उपासते हैं। सर्प का अर्थ सर्प-विद्या जानने वाले हैं। इति।

नाग जाति—मनुष्यों की एक जाति नाग जाति थी। किसी काल में इसके निवास सिन्धु के पाताल (जहां सिन्धु नद समुद्र में गिरता है) और दूसरे रसातल आदि में थे। पाण्डव भीम की नागों ने रक्षा की थी। जनमेजय ने नागों के विरुद्ध यज्ञ किया था।

दक्ष की कन्याओं में एक सुरसा[2] (= सरमा ?) थी। उसके पुत्र नाग थे। हरिवंश १।३।११०—में लिखा है—

---

१. ताण्ड्य ब्राह्मण ४।६।५ में सर्पराज्ञी सूक्त के विषय में कहा है—अर्बुदः सर्प एताभिर्मृतान्त्वचमपाहत।

२. वायु पु० ६६।५५ में यही पाठ है।

सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणाममितौजसाम् ।
अनेकशिरसां तात खेचराणां महात्मनाम् ॥
काद्रवेयाश्च बलिनः सहस्रममितौजसः ।

इन श्लोकों का पाठ संदिग्ध है । परन्तु इतना निश्चित है कि कद्रू के पुत्र सर्प-जाति के लोग थे । उनका विनता के पुत्रों अरुण और गरुड़ अथवा सुपर्ण से युद्ध होता रहा है ।

सुरसा, सरसा, स्वसारा अथवा सरमा के वंश का पाठ हरिवंश में टूट गया है । तुलना करो, वायुपुराण ६९।६६—॥

न्यूरिअन जाति और नाग—मध्य एशिया में शकों के साथ एक न्यूरिअन जाति रहती थी । उस पर कभी नागों ने आक्रमण किया । इस विषय में हैरोडोटस लिखता है—

105. The Neurian customs are like the Scythian. One generation before the attack of Darius they were driven from their land by a huge multitude of serpents which invaded them. Of these some were produced in their own country, while others, and those by far the greater number, came in from the deserts on the north. (Book IV.)

अर्थात्—डेरिअस = दारावाह के आक्रमण से एक पीढ़ी पहले नागों ने न्यूरिअन जाति पर आक्रमण किया । इत्यादि ।

यवन ग्रन्थकार और पूर्वोक्त वृत्त—स्ट्रैबो आदि यवन ग्रन्थकारों का मत है कि यह आक्रमण एक मिथ्या-कल्पना है । ऐसा होना असम्भव था । वास्तविक बात यह है कि स्ट्रैबो आदि इस को भूल गए थे कि नाग एक जाति थी और उस जाति के भिन्न २ वर्गों के नाम सर्प-नामों से मिलते थे । इस बात का यथार्थ ज्ञान ब्राह्मण ग्रन्थों आदि से ही हो सकता है । पुरातन संस्कृत ग्रन्थों में सर्प, नाग आदि शब्दों से मनुष्यों की नाग जाति और सर्प कीट दोनों का प्रकरणानुकूल ग्रहण होता है । अतः अर्थ समझते समय सावधानी बर्तनी चाहिए ।

नन्दलाल दे के अनुसार नागों के नामों पर अनेक हूण जातियों के नाम पड़े हैं ।[1] परन्तु महाशय का यह विचार कि संस्कृत में ये नाम तूरानी भाषा से आए हैं (पृ० ६१), सत्य नहीं ।

२०. बाल गङ्गाधर तिलक और आलिगि आदि सर्प

सन् १९१७ अथवा विक्रम संवत् १९७४ में श्री बाल गङ्गाधर तिलक ने रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर स्मारक ग्रन्थ में एक लेख लिखा—Chaldean and Indian Vedas, अर्थात्—कालडिया देश के और भारत के वेद । उसमें उन्होंने सिद्ध किया कि अथर्ववेद में कालडिया के भूतों आदि के नाम हैं । अतः अथर्ववेद में ये बातें कालडिया वालों से ली गई हैं ।[2]

इससे आगे उन्होंने अथर्ववेद ५।१३ से कुछ मन्त्र लिखे, जिनमें—

1. Rasatala or the under world, p. 20.

2. If we therefore discover any names of Chaldean spirits or demons in the Atharva, it could only mean that the magic of the Chaldeans was borrowed, partially at least, by, the Vedic people prior to the second millennium before Christ, (p. 33.)

तैमातस्य । आलिगी । विलिगी । उरूगूलाया । तावुवम् ।

आदि पद पढ़े थे। तिलकजी लिखते हैं—

"the serpent *Taimāta* is, I am sure, no other than the primeval watery dragon *Tiāmat* generally represented as a female but sometimes even as a male monster snake in the Chaldean cosmogonic legends;............As regards *Urugulā* the word appears as *Urugala* or *Urugula* in the Accadian language............is generally used to denote the great neither world,".

I have not been able to trace *Āligi* and *Viligi* but they evidently appear to be Accadian words, for there is an Assyrian god called *Bil* and *Bil-gi*. (p. 34, 35.)

अर्थात्—वेद का तैमात शब्द कालडिया का तिआमत शब्द है। इसका अर्थ आदि-जलों का भयङ्कर दानव है। उरूगूला शब्द अक्काद-भाषा का है। आलिगी और विलिगी शब्द असीरिया की भाषा के प्रतीत होते हैं।

कालडिया की राजधानी बावल—तिलकजी की बात पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि कालडिया देश का उपलब्ध इतिहास कितना पुराना है। राजधानी बावल का प्राकृत नाम बवेरू है। इसका शुद्ध संस्कृत रूप बभ्रु है। बावल में ब को दीर्घादेश बताता है कि बभ्रु का उत्तरवर्ती रूप बावल है। हम पूर्व लिख चुके हैं कि भृगु लोगों अथवा उशना आदि ऋषियों के परिवार ईरान आदि देशों में फैले हुए थे : वहां अथर्ववेद का बहुत अधिक प्रचार था। आथर्वण शाखाओं के प्रोक्ताओं में एक बभ्रु था।[1] इससे पहले भी अनेक ऋषियों ने यह नाम धारण किया था। उनमें से किसी एक ने यह नगर बसाया। बभ्रु का नगर होने से यह बाभ्रव अथवा बावल हुआ।

नन्दलाल दे का मत है कि शाल्मली-द्वीप, कालडिया का रूपान्तर है। हम हैरोडोटस का वचन लिख चुके हैं, जिसके अनुसार बारह देव आज से लगभग २२५०० वर्ष पूर्व हो चुके थे। आर्य इतिहास उससे भी पूर्व से चला है। अतः कालडिया वालों ने अनेक शब्द वेद से लिए, इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है। अथर्ववेद में एक शब्द भी कालडिया से नहीं आया। तिलकजी को भ्रम हुआ है।

अध्यापक हेरास और बावेरु जातक—आर्य इतिहास को न जानने के कारण पादरी एच. हेरासजी ने लिखा है—

To all evidence the story (Baveru-jātaka) is of pre-Aryan origin.[2]

---

१. हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग १, पृ० १२१।

2. The Origin of the Round Proto-Indian Seals discovered in Sumer, B. B. & C. I. Annual, 1938.

अर्थात्—बावेरू-जातक की कथा भारत में आर्य इतिहास से पूर्व की कथा है।

वैदिक वाङ्मय का पूर्ण-अवगाहन न होने से हेरास-सदृश श्रेष्ठ महाशय ऐसा विचार रखते हैं।

२१. जेहोवा

तिलकजी ने अपने पूर्वोक्त लेख में लिखा है—

It was further pointed out by Professor Delitzsch, the well-known Assyriologist, that the word Jehovah, God's secret name revealed to Moses, was also of Chaldean origin, and that its real pronunciation was Yahve, and not Jehovah. (p. 37)

अर्थात्—उपाध्याय डेलिट्ज़श ने सिद्ध किया है कि बाइबिल का जेहोवा शब्द कालडिया के यह्वे शब्द का रूपान्तर है। तत्पश्चात् तिलकजी ने बताया है कि यह शब्द ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में पाया जाता है।

तिलकजी का लेख सन् १९१७ में छपा। हमने सन् १९१६ में इसी विषय पर एक व्याख्यान आर्यसमाज, अनारकली लाहौर के उत्सव पर दिया था। उसमें हमने विद्वानों का ध्यान इस विषय पर आकृष्ट किया था कि वेद में यह्व का अर्थ महान् है, और वहीं से यह शब्द बाइबिल में गया है। तिलकजी का मत ठीक है कि वेद से यह शब्द कालडिया में गया और कालडिया से यहूदियों के पास पहुँचा। हम तिलकजी की इस बात को अशुद्ध मानते हैं कि ऋग्वेद का काल वर्तमान लोगों से अनुमानित कालडिया की संस्कृति का काल है।

वैदिक साहित्य के बिना जेहोवा शब्द का वास्तविक इतिहास अन्धकार में रहता।

२२. Oior-pata = नर-पातक

हैरोडोटस लिखता है—

110. It is reported of the Sauromatae, that when the Greeks fought with the Amazons, whom the Scythians call *Oior-pata* or "man-slayers," as it may be rendered, *Oior* being Scythic for "man," and *pata* for "to slay"—(Book IV.)

इस वचन में सौरमते तथा नर-पातकों का उल्लेख है। यवन लेखक स्ट्रैबो के मत का उल्लेख करते हुए नन्दलाल दे लिखता है—

Sarma apparently represents the tribe of "Sarmarians, who are Scythians" and who lived on the north of the Caspian Sea.

अर्थात्—सरमा के वंश को यवन-लेखक सरमेशिअन कहते हैं। ये क्षीर-सागर अथवा कसपिअन सागर के उत्तर में रहते थे और शक थे।

हैरोडोटस का सौरमते स्ट्रैबो का सरमेतिअन है। इसमें सन्देह नहीं कि ये दोनों रूप सरमा नाम के अपभ्रंश हैं।

वायुपुराण ६६।७५ के अनुसार खशा के पुत्र पुरुषादक अर्थात् नरभक्षक थे। शक भाषा का नर-पातक शब्द भारतीय इतिहास के बिना समझ में नहीं आ सकता।

नन्दलाल दे की भूल—नन्दलाल दे बार बार लिखता है कि संस्कृत ग्रन्थकारों ने विदेशी नामों को संस्कृत बना दिया है। दे जी ने यह नहीं सोचा कि पुरातन संसार की अनेक जातियों को प्रत्यक्ष जाने बिना कौन मनुष्य उनके नामों का संस्कृत रूपान्तर कर सकता था। पुनः उस संस्कृत-रूप पर एक ऐसा शृङ्खला-बद्ध इतिहास खड़ा कर देता, जो सर्वथा सुसम्बद्ध हो।

सीधी बात यही है कि आर्य लोग आदि से अपना इतिहास सुरक्षित रखते रहे। उस इतिहास से पता लगता है कि संसार की अनेक जातियां कश्यप आदि की सन्तान में हैं। ये पहले संस्कृत बोलती थीं। उत्तर काल में ब्राह्मण के अदर्शन से वे अपभ्रंशों अथवा म्लेच्छ-शब्दों के बोलने वाली बन गईं। यवन भाषा में उन जातियों के नामों का अपभ्रंश-रूप रह गया है।

२३. पञ्चजनाः

वेद में—ऋग्वेद १।८९।१० के उत्तरार्ध में कहा है—विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिः।

अर्थात्—पञ्चजन अदिति हैं।

पञ्चजन कौन हैं। यास्क अपने निघण्टु २।३ में पञ्चजन शब्द को मनुष्य नामों में पढ़ता है। इस शब्द की व्याख्या में ऐतरेय ब्राह्मण (विक्रम संवत् से ३३०० वर्ष पूर्व) १३।७ में लिखा है—सर्वेषां वा एतत् पञ्चजनानामुक्थं—देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणां च पितॄणां च।

अर्थात्—(१) देव, (२) मनुष्य, (३) गन्धर्व और अप्सरा, (४) सर्प अथवा नाग, और (५) पितर अर्थात् फारस में रहने वाली यम की प्रजाओं का यह उक्थ है।

कभी आर्यों के ये पांच विभाग थे। ये देवों के सहायक थे।

यास्क-प्रदर्शित मत—ऋग्वेद का एक और मन्त्र है—पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम्।

अर्थात्—हे पञ्चजनो! मेरे होम को सेवो। इस पर निरुक्त ३।८ में यास्क प्रश्न करता है, ये पञ्चजन कौन हैं। उत्तर है—गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस, ऐसा अनेक आचार्य मानते हैं। उपमन्यु का पुत्र औपमन्यव मानता है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद, ये पञ्चजन हैं।[1]

---

१. ईरानियों के फर्वर्दिन यश्त १३।१४४ में निम्नलिखित पञ्चजन हैं—१. ऐर्य (आर्य) २. तूर्य, ३. सरिम्यान् (सरमा के वंशज), ४. सायनि (चीनी), ५. दाहि (दधि-लोग) बृहद्देवता ७।६७—७२ में पञ्चजना के अन्य अर्थ भी दिए हैं।

इस प्रकार पञ्चजनों के विषय में पूर्वोक्त तीन मत मिलते हैं। दूसरे मत में मनुष्य और नाग गिने नहीं गए। मनुष्य साक्षात् देव-सन्तान हैं। अतः यास्क प्रदर्शित इस प्रथम प्रमाण के अनुसार वे देवों के अन्तर्गत माने गए हैं। उनके स्थान में असुर गिने गए हैं। नागों के स्थान में यहां राक्षस लिखे हैं। तीसरा मत सर्वथा अन्य प्रकार का है।

मतभेद का कारण—श्रुति सामान्यमात्र है। उसके आधार पर विभिन्न काल के आचार्यों ने समयानुकूल अपना अपना अर्थ जोड़ा है।

तलवकार का मत—जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में लिखा है—

ये देवा असुरेभ्यः पूर्वं पञ्चजना आसन्।१।४१।७॥

अर्थात्—जो देव असुरों से पूर्व पञ्चजन थे।

यह बहुत प्राचीन काल की बात है। इसका स्पष्ट चित्र अभी हमारे सामने नहीं है।

पञ्चमानव—पञ्चजनों से भिन्न पञ्चमानव थे। उनका उल्लेख माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में है—

महदद्य भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः। दिवं मर्त्य इव बाहुभ्यां नोदापुः पञ्चमानवाः॥ इति।

अर्थात्—भरत के पूर्ववर्त्ती और उत्तरवर्ती पांचों मानव उसके महत्त्व को नहीं पहुंच सके।

यह गाथा स्वल्प पाठान्तरों के साथ ऐतरेय ब्राह्मण ३।२३ में भी उद्धृत है। पाठान्तर बताते हैं कि यह गाथा ऐतरेय के काल से बहुत पुरानी थी। इस गाथा के पञ्चमानव—पुरु, यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु हैं। ये नाम निघण्टु २।३ में मनुष्य नामों में पढ़े गए हैं। वेद में होने से ये नाम सामान्य नाम हैं, पर उत्तरवर्ती काल में ऐतिहासिक पुरुषों के द्योतक बने हैं। शतपथ ब्राह्मणान्तर्गत एक अगली गाथा में सात मानवों का उल्लेख है। वे सात मानव मनु के सात प्रधान पुत्र थे। अस्तु।

यवन-लेखक हेसिअड—हेसिअड ने अपनी कविता में मनुष्य की पांच जातियों का वर्णन किया है। यह ऐतिहासिक तथ्य उसने पुरातन आर्य परम्परा से ग्रहण किया है। महापक्षपाती जर्मन-लेखक राथ ने हेसिअड के कथन को सर्वथा कल्पित सिद्ध करने का यत्न किया है।[1]

२४. अप्सरा

वेद में—वेद में अप्सरा शब्द विद्युत् और अधरारणि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। रूपवती, सुन्दर विद्युत् अप्सरा अर्थात् जल में सरण करती है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में—ब्राह्मण ग्रन्थों में पूर्वोक्त दोनों अर्थ तो मिलते ही हैं, पर इनके साथ उर्वशी आदि अप्सराएं भी ब्राह्मण में वर्णित हैं। ये देव-जाति की स्त्रियां थीं। इन्हें देवी भी कहा है। यथा, मैत्रायणी संहिता १।६।१२ में—

१. ट्युबिन्गन नगर में प्रकाशित। सन् १८६०। केगी के ग्रन्थ 'दि ऋग्वेद' में उद्धृत टिप्पण, पृ० ११५।

पुरूरवा वा ऐडः। उर्वशीमविन्दत् देवीं।

शतपथ १३।४।३।८ के अनुसार सोम वैष्णव की प्रजाएं अप्सराएं हैं। अङ्गिरस वेद उनका वेद है। मै० सं० २।८।१० और शतपथ ब्राह्मण ८।६।१।१६ में दस अप्सराओं के नाम लिखे हैं।

इतिहास में—रामायण और महाभारत आदि में ऐतिहासिक अप्सराओं का वर्णन है। इनमें से कई एक का विवाह आर्य-राजाओं से हुआ। अहल्या एक ऐसी अप्सरा की कन्या थी।

परियां—संसार में परियों की अनेक कहानियां प्रसिद्ध हैं। अप्सरा से अंग्रेजी का fairy शब्द विकृत हुआ है। अप्सराओं की कथाओं में यद्यपि अनेक कल्पनाएं मिश्रित हो चुकी हैं, तथापि आर्य इतिहास की सहायता से वे पर्याप्त समझ में आ सकती हैं।

२५. मितन्नी तथा हित्तितिस = क्षत्रिय

संवत् १९६४ की खुदाईयां—उत्तर मैसोपोटेमियां में मितनी या मितन्नी नाम की एक जाति रहती थी। मितन्नी का राजा मत्तिवज़ अथवा मतिउअज़ था। उसने हित्तिति-राज सुब्बी-लुल्युम से एक सन्धि लगभग १४०० ईसा-पूर्व में की। यह वृत्त एक पुरातन मृत्तिका-मुद्रा पर तद्देशीय अक्षरों में लिखा मिला है। यह मुद्रा संवत् १९६४ में बोघाज़कोई (पुरातन नाम—तेरिया, पितर देश तुर्किस्तान) के स्थान से ह्यूगो-विङ्कलर नामक जर्मन पुरातत्त्व-विशेषज्ञ को मिली थी।

पाश्चात्यों की कल्पित तिथियां अविश्वसनीय—पूर्वोक्त वर्णन पाश्चात्य लेखकों के आधार पर लिखा गया है। हमें पाश्चात्यों की काल गणना में विश्वास नहीं। परन्तु मितन्नी के राजाओं का काल मिश्र के पुरातन राजाओं के काल से सम्बन्ध रखता है। मितनी के राजा मिश्र के अधीन थे, अतः पूर्वोक्त काल-गणना में अधिक अशुद्धि नहीं है।

मुद्रा पर अङ्कित नाम—मत्तिवज़ नाम मित्रवह, मर्त्यवह अथवा मरुत्वह का अपभ्रंश है। सुब्बी-लुल्युम का पूर्वार्ध सुरभी है।

मुद्रा का विषय—उपलब्ध मुद्रा का अनुवाद करते हुए पाश्चात्य लेखक लिखते हैं—राजा मित्रवह मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य देवों का आह्वान करता है। मित्रवह से कुछ काल पूर्व एक मितन्नी-राज दशत्त नामक था। यह नाम दशरथ शब्द का अपभ्रंश है। उन देशों के अन्य राजाओं के नाम भी संस्कृत शब्दों के अपभ्रंश प्रतीत होते हैं।

डाक्टर सी. बेज़ोल्ड तथा डा. ई. ए. वालिस बज ने बृटिश म्यूज़िअम की ओर से The Tell El-Amarna Tablets नामक जो ग्रन्थ सन् १८९२ में लण्डन से सम्पादित और प्रकाशित किया था, उसमें दशत्त का पाठ तुशरत्त (पृ० ३१) छपा है। तुशरत्त का पिता शुतर्न था। यह नाम शिवतरण अथवा शिवतारण का रूपान्तर प्रतीत होता है। एक मृत्तिका-मुद्रा पर सु-कि नाम से देश का स्मरण है। (तत्रैव, पृ० ३८, टिप्पण १)

सम्पादकों का विचार है कि यह नाम संभवतः मितनी देश का वाची है। इसी ग्रन्थ में खत्ति (पृ० ६५) नाम की भूमि और शक्क (पृ० ७२) नाम के देश वर्णित हैं। ये दोनों नाम क्षत्रिय और शक्क हैं।

भारतीय इतिहास स्पष्ट कहता है कि संसार भर में कभी संस्कृत-भाषा का साम्राज्य था। इस सत्य की सहायता से ही मिश्र, बाबल, मितनी और हित्तिति आदि देशों के पुरातन वृत्त समझ में आ सकते हैं। अन्यथा वृथा कल्पनाएं होंगी, यथा पाश्चात्य लेखक कर रहे हैं।

एतद्विषयक पाश्चात्य-परिणाम—इस विषय पर लिखते हुए पाश्चात्य लेखकों ने बहुत कागज़ काले किए हैं। आर्य इतिहास से इस बात का इतना ही सम्बन्ध है कि मितन्नी आदि जातियां अति पुरातन आर्यों की सन्तान हैं। जब आर्य जाति अति प्राचीन काल से, मनु के जल प्लावन से भी बहुत पहले से, भारत में बस रही है, तो यह परिणाम किसी प्रकार भी निकल नहीं सकता कि आर्य लोग भारत में बाहर से आए थे। भारतीय इतिहास न जानने के कारण ऐसी कल्पनाएं की जा रही हैं।

ई मेयर और वाडेल—एडवर्ड मेयर नामक पाश्चात्य इतिहास लेखक मितन्नी आदि देशों में आर्यों का अस्तित्व मानते हैं। पक्षपाती आर्थर बैरिडेल कीथ को उनका ऐसा मानना अच्छा नहीं लगा। कीथ ने उनके खण्डन में लेख लिखना आवश्यक समझा।[1] कीथ आदि लेखकों ने सत्य आर्य इतिहास का अपमान किया है। आर्य-इतिहास उच्च-स्वर में कह रहा है कि मध्य-एशिया की शक पह्लव आदि जातियां कभी आर्य-भाव-भावित थीं। ब्राह्मण के अदर्शन से वे क्षत्रिय से वृषल हो गईं।

पाश्चात्य लेखक कर्नल एल. ए. वाडेल ने ठीक लिखा था कि हित्तिति शब्द क्षत्रिय का अपभ्रंश है।[2] अनेक पक्षपाती पाश्चात्य लेखक, वाडेल महाशय का, इस सत्य-भाषण के लिए बड़ा अनादर करते रहे हैं। श्री रङ्गाचार्यजी ने पाश्चात्यों की घबराहट का अच्छा चित्र खींचा है—

When the Mitanni inscriptions were discovered, these scholars received an unpleasant shock at first, but afterwards recovered their equanimity, rallied their scattered forces, and began to contend that

१. भण्डारकर कमेमोरेशन वाल्यूम, इण्डो-इरानियन्स, पृ० ८१–९२।

कीथ के लेखों पर वि. रङ्गाचार्य का मत देखिये—

Keith dogmatically denies Aryan influences over the Kassites and Hittites. (Pre-Musalman India, by V. Rangacharya, p. 145, foot-note.)

इस विषय में विण्टर्निट्ज़ का मत कुछ भाविक युक्त है—

Thus I do not believe that the discovery of Boghaz-Koi, provided that the readings of the tablets are correct, proves anything more than that Vedic culture is atleast as old as the 15th century B. C. (Some Problems of Indian literature, p. 17)

२. बाबू सुनीति-कुमार चटोपाध्यायजी इतिहास न जानने के कारण हित्तिति भाषा को संस्कृत भाषा से पूर्व का मानते हैं। वे पाश्चात्य गुरुओं के पूरे चेले हैं।

these inscriptions must refer to pre-vedic times, that they indicate the passage of the Aryans from Europe to Irān or from Iran to Europe.[1]

अर्थात्—जब मित्तन्नी के लेख आविष्कृत हुए, तो पाश्चात्य लेखकों को पहले एक कटु-धक्का लगा, पर कुछ काल पश्चात् उन्होंने अपने मत खड़े कर लिए और वे सुस्थित हो गए कि ये लेख वेद से पूर्वकाल के हैं।

रङ्गाचार्यजी का कथन बहुत युक्त है। वेदकाल को अर्वाचीन सिद्ध करने का अधिकांश पाश्चात्यों ने सतत-परिश्रम किया है परन्तु हमने उनके अधूरे ज्ञान का पूरा उद्घाटन कर दिया है। आश्चर्य उन भारतीय लेखकों पर है जो सर्वाङ्ग-विचार बिना पक्षपाती पाश्चात्य-लेखकों के उच्छिष्ट-भोजन में अपने को निष्पक्ष विद्वान् मानते हैं।

अफ्रीका में विष्णु के जयस्तम्भ—मितन्नी आदि ही केवल आर्य-प्रभावान्वित देश न थे, प्रत्युत अफ्रीका में मिश्र से नीचे जो लीबिया देश था, उसमें विष्णु के जय स्तम्भ थे। यवन-ऐतिहासिक हैरोडोटस लिखता है—

Such are the tribes of wandering Libyans dwelling upon the sea-coast. Above them inland is the wild-beast tract; and beyond that, a ridge of sand, reaching from Egyptian Thebes to the pillars of Hercules.[2]

विष्णु के ये जय स्तम्भ कितने सुदृढ़ थे, जो हैरोडोटस के काल तक खड़े थे। यह भी संभव है कि उत्तरकालीन राजा इनका संस्कार करते रहे। परन्तु अफ्रीका में कभी आर्य-संस्कृति थी, उसका यह ज्वलन्त प्रमाण है।

२६. Tel-el-Amarna = तला-तल-अमर

पुराणों में—वायु[3], विष्णु, भागवत[4] आदि पुराणों में असुर अथवा दैत्य, दानवों के निम्नलिखित सात निवास स्थानों का उल्लेख मिलता है।

वायु—अतल, सुतल, वितल, गभस्तल, महातल, श्रीतल, पाताल।
भागवत—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल।

इनमें से भागवत का चतुर्थ स्थान तलातल विशेष द्रष्टव्य है। मय नामक महासुर यहां रहता था।

मिश्र में—असुरों की वेदयी जाति, जिसे बेनी-अमरान् कहते थे, आठवीं शती विक्रम के समीप उत्तर मिश्र में रहती थी। उनका एक ग्राम एल-तिल-एल-अमर्ना (अमरान् का

1. Pre Musalman India, pp. 145, 146.
2. (Book IV. Ch. 42).
यदि लोग सदा इसकी पूजा करते थे।
३. ५०।११—॥ ४. ५।२४।७—॥

बहुवचन) कहाता था।[1] इस ग्राम के नाम पर मिश्र के महाराज अखेततेन के नगर के सारे प्रदेश का नाम तिल-अल-अमरना हो गया। इस से पता लगता है कि अरब जाति के लोग तिल अथवा तल नाम से सुपरिचित थे। उन्होंने या तो मिश्र के इस नगर के अति पुराने नाम को अरबी का अल लगाकर पुनर्जीवित किया, अथवा अरब के किसी प्रदेश के नाम को यहां प्रचरित किया। मिश्र और अरब समीप के देश थे, अतः तल नाम की मिश्र में भी संभावना हो सकती है। अस्तु।

तल-अल-अमरना की खुदाइयों में आर्य संस्कृति के अनेक प्रमाण मिले हैं। इनके अतिरिक्त मिश्र के पिरेमिड वहां की उन्नत वास्तुकला का एक उज्ज्वल दृष्टान्त हैं। असुर मय के अथवा उसके वंशजों या शिष्य-प्रशिष्यों के देश में इस कला का अस्तित्व स्वाभाविक है। पाताल आदि देशों में असुरों के पराजित होने के पश्चात् देवों अथवा अमरों का राज्य होगया था। इस कारण तला-तल की स्मृति अमर-अरबों ने युक्त रूप से सुरक्षित की है।

नन्दलाल दे—दे महाशय ने अपने ग्रन्थ रसातल अथवा पाताल में अतल आदि नामों की अच्छी तुलना की है। उनकी तुलना से हम पूरे सहमत नहीं है, परन्तु इस बात का श्रेय दे जी को ही है कि उन्होंने सबसे पहले इस विषय की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया।

तुर्की का अनातोलिया—अनातोलिया नाम अतल आदि किसी शब्द का अपभ्रंश है और पुरिता न स्मृतियों को सजीव रख रहा है। इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है।

सुमालीपुर—तलातल के स्थान में वायुपुराण में जो गभस्तल वर्णित है, उसमें राक्षसराज सुमाली का पुर था। यह पुर मिश्र के पास होना चाहिए। क्या वर्तमान सोमाली जाति का राक्षसराज सुमाली से कोई सम्बन्ध हो सकता है। इस विषय पर पूरा अनुसन्धान अभीष्ट है।[2]

तृतीय तल प्रह्लाद का—वायु के अनुसार तीसरा तल वितल था। भागवत में दूसरा तल वतल है। वायु के अनुसार तीसरे तल में, प्रह्लाद, अनुप्रह्लाद, तारक, विश्वरूप त्रिशिरा, और शिशुमार आदि के पुर थे। पूर्व पृष्ठ २२३ पर हम लिख चुके हैं कि प्रह्लाद का नाम-भ्रंश Libye हो सकता है। अतः अफ्रीका का Libye देश एक ऐसा तल था।

कैंब्रिज आफ इण्डियन हिस्ट्री के लेखक ने मेसपेरो के ग्रन्थ डान आफ सिविलाइज़ेशन (सभ्यता का उदय,) के आधार पर लिखा है कि प्राचीन मिश्र के पांचवें राजकुल में फैरोहास थे। उनमें एक उसिरनिरि अनु था। उसका राज्यकाल ३६०० से ३८७५ पूर्व ईसा था। श्री सी० आर० कृष्णामाचार्लु का कहना है कि यह राजा अनु के कुल का प्रसिद्ध उशीनर था।

हमें यह बात युक्त प्रतीत होती है। परन्तु काल गणना कुछ पीछे जाएगी।

पूर्वोक्त २६ अङ्क के अन्तर्गत अनेक बातें हमने भावी खोज के लिए लिखी हैं। मिश्र का आर्य-संस्कृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था, इसे कौन विद्वान् स्वीकार न करेगा। जल

1. (Tell-el-Amarna, by J. D. S. Pendlebury. London, 1935, Introduction, p. XVII)

२. कैंडल आफ इण्डियन हिस्ट्री के लेखक का मत है कि शाल्मलि द्वीप सोमाल द्वीप था। पृ० ५४। हमें यह युक्त प्रतीत नहीं होता।

सावन, बारह देवों का उल्लेख विष्णु के जय-स्तम्भ, मनु का राज्य और दानवासुर की कथाएं, जो पहले लिखी जा चुकी हैं, मिश्र के आर्य भाव भावित होने का पूरा प्रमाण हैं।

२७. क्षीर-सागर, दधि सागर आदि

रामायण, महाभारत और पुराणों में क्षीर सागर, दधि-सागर और इक्षु-सागर आदि का बहुधा उल्लेख मिलता है। क्षीर सागर के समीप चन्द्र और द्रोण पर्वत थे। वहीं पर विशल्य-करणी और सञ्जीव-करणी ओषधियां थीं। अश्वियों ने यहां पर दूसरी ओषधियां भी उगाई थीं। प्रायः लोग कहते थे, यह सर्वथा असत्य है।

नन्दलाल दे और क्षीर सागर—यह बात नन्दलाल दे के भाग्य में थी कि उन्होंने सप्रमाण सिद्ध किया कि Caspian सागर ही पुराना क्षीर-सागर था। मार्को-पोलो नामक यात्री के ग्रन्थ में से उन्होंने दर्शाया कि मार्को-पोलो के काल में अर्थात् आज से लगभग ७०० वर्ष पहले कैसपिअन सागर को शीर-सागर कहते थे। शीर शब्द फारसी का है और संस्कृत क्षीर का अपभ्रंश है। कैसपिअन नाम का भी कारण है। हिरण्यकशिपु उन प्रदेशों का राजा था। उसके नाम में जो कशिपु अंश है, उससे कैसपिअन नाम सम्बन्ध रखता है। इसके पश्चात् भारत के पूर्व में एक अन्य सागर भी क्षीर-सागर कहाया।

दधि-सागर—यूनानी ग्रन्थों में दाही Dahae नाम की जाति का उल्लेख है। जहां यह जाति रहती थी, वहां की नदी का नाम दहि हो गया था। यह नाम दधि का अपभ्रंश है। उस नदी की बनाई झील दधि-सागर था।

इक्षु-सागर—वर्तमान आक्सस अथवा जेहू नदी संस्कृत में वक्षु अथवा चक्षु कहाती थी। इसके एक भाग का नाम इक्षु भी था। उसकी बनाई झील इक्षु-सागर था।

हम इस विषय पर यहां अधिक नहीं लिखना चाहते। दे जी ने नाम साम्यता तो जान ली थी, पर उन्हें आर्य-इतिहास का पूरा ज्ञान न था। अन्यथा उनका काम असाधारण होता।

२८. सुमेर के राजाओं के नाम

सुमेर देश की मृत्तिका मुद्राओं पर अङ्कित अनेक राज-नाम मिले हैं। उनमें से कुछ एक निम्नलिखित हैं—

Issaku	इक्ष्वाकु
Shar-itiash	शर्यात
Shur-Sin	शूरसेन
Shar-ar-gun	सहस्रार्जुन
Shar-gar	सगर
Purash-Sin	पुरुषसेन अथवा परशु-सेन
Man	मनु

भिन्न भिन्न लेखकों ने इस नाम-साम्य के भिन्न भिन्न कारण लिखे हैं। परन्तु वास्तविक तथ्य एक ही है। अनेक भारतीय राजाओं का सुमेर आदि में राज्य था। सगर तो निस्सन्देह

सारे मध्य-एशिया और योरुप के अनेक भागों का राजा था। उसके नाम का एक और रूपान्तर Saragon है। शक, यवन, काम्बोज आदि पर उसने विजय प्राप्त की थी। सुमेर के दूसरे राजाओं ने आर्य-संस्कृति के प्रेम के कारण संस्कृत नाम धारण किए थे। संस्कृत का दारुधाह नाम ईरान के अनेक राजाओं ने Darius के रूप में धारण किया, ऐसा पूर्व लिखा जा चुका है।

वाडेल की भूल—अपने सुमेर-आर्य कोश में वाडेल ने लिखा है—

the Sumerian Language with its writing was the early Aryan speech and script and the parent of the Aryan family of languages, ancient and modern.[1]

अर्थात्—सुमेर की भाषा और लिपि आर्य भाषाओं की जन्मदातृ थी।

सुमेर की भाषा म्लेच्छ भाषा है और नए काल की है। म्लेच्छ जातियां अनु की सन्तान में हैं। संस्कृत इससे सहस्रों वर्ष पूर्व प्रचलित थी। अतः वाडेलजी का मत युक्त नहीं है। उनकी भूल का कारण भाषा-विज्ञान के वे मिथ्यावाद हैं, जो जर्मनी से उत्पन्न हुए।

२६. वर्ण-मर्यादा

वर्ण का आरम्भ—इतिहास का साक्ष्य है कि सत्युग में सारा संसार ब्राह्मण था। ब्रह्मर्षि भगवान् भृगु बृहस्पति-पुत्र भरद्वाज से कहते हैं—

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्राह्मणाः पूर्वसृष्टा हि कर्मभिर्वर्णतां गताः ॥१०॥
पिशाचा राक्षसाः प्रेता विविधा म्लेच्छजातयः।
प्रनष्टज्ञानविज्ञानाः स्वच्छन्दाचारचेष्टिताः ॥१८॥
शान्तिपर्व, अ० १८६।

अर्थात्—वर्णों की कोई विशेषता नहीं। सारा जगत् ब्रह्म का है। पहले सब ब्राह्मण थे। धर्म के न्यून होते जाने पर कर्मों के भेद से वर्ण-विभाग हो गया। पिशाच, राक्षस, प्रेत और कालडिया, मिश्र, अरब आदि की जातियां जो म्लेच्छ कहाने लगीं, जिन का ज्ञान और विज्ञान नष्ट हो गया था, तथा जिन का आचार और जिन की चेष्टाएं स्वच्छन्द हो गई थीं, वे सब भी कभी आर्य थीं। उन सब की सम्पत्ति ब्राह्मी सरस्वती अर्थात् वेद और संस्कृत भाषा में दी गई ब्रह्माजी की ज्ञान-राशि थी। (श्लोक १५ का भाव)।

सत्युग में सब लोग सत्यवक्ता, धर्म पर आचरण करने वाले, नीरोग, दीर्घायु, संहत-शरीर, ज्ञानवान और पृथ्वी की स्वाभाविक सिद्धियों पर निर्वाह करने वाले थे। उनका ज्ञान बहुत उच्च था क्योंकि उसकी प्राप्ति के लिए उनके पास समय बहुत अधिक था। वह काल चला गया। पृथ्वी की सिद्धि न्यून हुई। मनुष्य के लिए कर्मज सिद्धि का युग आगया। भोजन के लिए परिश्रम अपेक्षित हुआ। धर्म का पूरा एक पाद न्यून हो गया। मात्स्य न्याय का प्रवर्तन होने लगा—

---

1. A Sumer-Aryan Dictionary, L. A. Waddell, London 1927, Introduction, p. x.

संकीर्णे च तथा धर्मे वर्णः संकरमेति च।
संकेर च प्रवृत्ते तु मात्स्यो न्यायः प्रवर्तते ॥६०॥ शान्तिपर्व, अ० १२४।

अर्थात्—धर्म के संकीर्ण होने पर वर्ण-संकरता आरम्भ होती है। इसकी प्रवृत्ति पर मात्स्य-न्याय प्रवृत्त होता है।

त्रेता के आरम्भ में यही बात हुई। आचार्य विष्णुगुप्त कौटल्य ने इसी ऐतिहासिक तथ्य को लिखा है—

मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं प्रचक्रिरे।

कौटल्य ने यह सत्य व्यासकृत महाभारत से लिया था—

राजा चेन्न भवेल्लोके पृथिव्यां दण्डधारकः।
शूले मत्स्यानिवाभक्ष्यन् दुर्बलान् बलवत्तराः ॥१६॥
अराजकाः प्रजाः पूर्वं विनेशुरिति नः श्रुतम्।
परस्परं भक्षयन्तो मत्स्या इव जले कृशान् ॥१७॥
ताभ्यो मनुं व्यादिदेश मनुर्नाभिनन्द ताः ॥२१॥ शान्तिपर्व, अ० ६७।

कौटल्य ने संक्षेप से काम लिया है। व्यास बताता है कि मनु ने राजा बनना पहले स्वीकार नहीं किया। मनु की कितनी उच्चता थी। भारतीय इतिहास ऐसे दृश्य बहुधा उपस्थित करता है। अस्तु।

इस प्रकार राज्यव्यवस्था का सूत्रपात हुआ। राज्य-व्यवस्था नहीं चलेगी, मानव का निःशङ्क कल्याण नहीं होगा, असन्तोष और ईर्ष्या के कलुषित भाव नष्ट नहीं होंगे, इन बातों को प्रत्यक्ष देखकर ऋषियों ने वेद की शरण ली। वेद में सब ज्ञान आदि से था, पर उसका प्रयोग समय पर हुआ। मनुष्य औषध विज्ञान को जानता है, पर रोग की अवस्था में ही उसका प्रयोग करता है। नीरोग अवस्था में ज्ञान रहने पर भी कोई औषध नहीं खाता। इसी प्रकार वेद में वर्ण व्यवस्था का उपदेश तो था, पर उसकी प्रवृत्ति का समय नहीं आया था। समय पड़ते ही यह व्यवस्था प्रचलित कर दी गई।

कभी सारा संसार वर्ण-धर्म के नीचे

(क) फारस में—पारसी ग्रन्थों के आधार पर कैखुसरो ए. फिट्टर जी ने लिखा है—

It seems that in Zarathushtra's time, the Iranian Society was divided into three classes, viz, the Priest, the warrior and the Agriculturist (Athornān Ratheshtār and Vastrios). We may, therefore, surmise that these three classes were first made in Ragha. Later on a Fourth Class, viz Hutokhsh (artisan) was created.[1]

1. Proceedings and Transactions of the Tenth All India Oriental Conference, Madras, 1941 p. 90.

अर्थात्—असुर-स्याए के समय ईरान का समाज तीन भागों में विभक्त था। वे तीन भाग थे—आथर्वण (ब्राह्मण), रथेष्ठ (क्षत्रिय), और विश अर्थात् वैश्य-प्रजाएं । तत्पश्चात् हुतोक्श = सुतक्ष अर्थात् तरखान या शूद्र आदि बनाए गए।

ज़रथुष्ट्र का काल इतना अर्वाचीन नहीं है, जितना सम्प्रति माना जाता है। नहीं कह सकते, पं० जवाहरलालजी ने किस आधार पर लिखा है कि ईरान में सासानी काल में समाज का चतुर्विध विभाग था।[1] ईरान में सासानी काल से बहुत पहले से ऐसा विभाग था।

(ख) शकों में—मगाश्च मशकाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा ॥३३॥

मगा ब्राह्मणभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता नृप।
मशकेषु तु राजन्या धार्मिकाः सर्वकामदाः ॥३४॥

मानसेषु महाराज वैश्याः कर्मोपजीविनः।
सर्वकामसमायुक्ताः शूरा धर्मार्थनिश्चिताः।
शूद्रास्तु मन्दगे नित्यं पुरुषा धर्मशीलिनः ॥३५॥

अर्थात्—शकों के मग देश में ब्राह्मण, मशक में क्षत्रिय, मानस में वैश्य और मन्दग में शूद्र रहते थे।

महाभारत में वर्णित अवस्था के अढाई सहस्र वर्ष पश्चात् की शकों की स्थिति का उल्लेख हैरोडोटस करता है—

18. Above this dwell the Scythian Husband men.

20. On the opposite side of the Gerrhus is the Royal district, as it is called: here dwells the largest and bravest of the Scythian tribes; (Book IV.)

यहां शक वैश्य और शक क्षत्रियों का वर्णन है।

(ग) मिश्र में—मिश्र की पुजारी श्रेणी प्रसिद्ध है। ये ब्राह्मणों की श्रेणी थी।

(घ) यवन देश में—अफलातून ने अपनी रिपब्लिक में वर्ण धर्म का उल्लेख किया है। यह बात सुप्रसिद्ध है।[2] यही नहीं, इङ्गलैण्ड के अध्यापक अर्विक का कथन है—

'The Republic' is based largely upon ancient Indian social philosophy.[3]

---

1. There was a four-fold division in that other branch of the Aryans, the Iranians, during the Sassanian period. The Discovery of India, Second ed. 1946, p. 62.
2. Plato in his Republic refers to a division similar to that of the four principal castes. Discovery of India p. 62.
3. The Message of Plato: A Re-Interpretation of the Republic, by E. J. Urwick, London. 1920.

श्री पंधरीनाथ मलवरकर के लेख में उद्धृत—प्राग्रेस आफ इण्डिक स्टडिज, सन् १९४२, पृ० ३११।

अफलातून और सुकरात ने यूनान के भूले सिद्धान्त को पुनर्जीवित किया अथवा इस को दोबारा वैदिक सिद्धांत से लिया, यह विचारणीय है।

इतना सत्य है कि संसार में वर्ण का सिद्धान्त कभी सर्वत्र प्रचलित था। जितना जितना इसका संसार में अभाव होता गया, उतना दुःख संसार में बढ़ता गया। वर्णसंकरता मनुष्य-जीवन को नरक-जीवन बना रही है। वर्तमान झगड़ों का एक बड़ा कारण classless society अथवा श्रेणी-हीन समाज का होना है। वर्ण का कुरूप बुरा है और वर्ण का अभाव भी।

पूर्वपक्ष—वर्ण इस प्रकार उत्पन्न नहीं हुआ। पं० जवाहरलालजी ने लिखा है—

The conquered race, the Dravidians, had a long background of civilization behind them, but there is little doubt that the Aryans considered themselves vastly superior to them and a wide gulf separated the two.........Out of this conflict and inter action of races gradually rose the caste system.[1]

अर्थात्—आर्यों और द्राविड़ों के, अथवा विजेता और विजित के संघर्ष से वर्ण उत्पन्न हुआ।

उत्तरपक्ष—पण्डित जवाहरलालजी का लेख इतिहास-विरुद्ध और पाश्चात्य लोगों की कल्पित बातों पर आश्रित है। आर्य लोग बाहर से यहां आए, उनका द्राविड़ों से झगड़ा हुआ, यह शशश्रृङ्गवत् असत्य बात है। ऐसी असत्य बातों पर विश्वास करके पण्डित जवाहरलालजी भारत का सत्य चित्र खींचने में असफल हुए हैं। जो विद्वान् हमारे इतिहास को आद्यन्त पढ़ेंगे, उन्हें ज्ञान हो जाएगा कि संसार का मूल केवल आर्यों का था। आदि में उस में ब्राह्मण ही एक वर्ण था। फिर समय पाकर इस एक वर्ण के दो भेद हुए, आर्य और दस्यु। आर्य फिर चार वर्णों में बंटे। पहले वर्ण बहुत अपरिवर्तनशील नहीं था, गुण कर्मानुसार बदल जाता था। ब्राह्मण पिता का पुत्र इन्द्र कर्म से क्षत्रिय हुआ—

इन्द्रो वै ब्रह्मणः पुत्रः क्षत्रियः कर्मणाभवत्। शान्तिपर्व २२।११।

फिर ब्राह्मण दर्शन से संसार में वर्ण-मर्यादा शिथिल हुई। भारत में इसका अस्तित्व बना रहा। फिर यहां भी दस्यु कुछ अधिक हुए। चार वर्णों में भी दस्यु होगए—

दृश्यन्ते मानुषे लोके सर्ववर्णेषु दस्यवः। शान्तिपर्व ६५.२३॥

तत्पश्चात् वर्ण अधिकांश अपरिवर्तन शील होने लगा।

इस समय संसार में दस्यु अधिक और आर्य थोड़े हैं। ज्ञान का अभाव इसका मुख्य कारण है। योरुप और अमेरिका में भी दस्युपन अधिक है, अतः वहां का कथित ज्ञान प्रायः अज्ञान है। इतिहास में इस विषय की अधिक विवेचना यथास्थान होती जाएगी।

३०. ईसा, बुद्ध का ऋणी

ईसाई मत में एक बड़ी प्रसिद्ध बात है कि ईसा सब को तार देगा। ईसा पर विश्वास करो और वह सब के पापों का भार अपने ऊपर ले लेगा।

1. Discovery of India, p.62.

ठीक यह बात बुद्ध ने कही। धन्यवाद है भट्ट कुमारिल का, जिस ने इस तथ्य को सुरक्षित किया। भट्ट कुमारिल बुद्ध पर आक्षेप करता है कि उसने यह असत्य बात क्यों कही।

भारतीय इतिहास संसार-इतिहास की तालिका है, यह संक्षेप में लिख दिया। इस अध्याय में न तो आर्यों की वृथा महत्ता दिखाई गई है, और न उनकी अकारण निन्दा की है।[1] न scientific के आतङ्क के नीचे मिथ्या-कथन किया गया है। इतिहास के नग्न तथ्य यहां रखे गए हैं। विद्वान् इस संक्षिप्त लेख से सब जान सकते हैं। आगे भारतीय इतिहास की तिथि-गणना के मूलाधार स्तम्भ विषय पर लिखा जाता है।

१. कई एकदेशीय पण्डितम्मन्यों को अकारण निन्दा का स्वभाव पड़ गया है। सुनीतिकुमार चटोपाध्यायजी लिखते हैं—

and for that a different orientation towards the problem of the Aryans and their, connexion with India and the contribution they made in the evolution of Indian history and civilization, an orientation freed from all notions of "Aryan" superiority is of paramount importance. (Progress of Indic Studies, p. 325)

चटोपाध्यायजी अपने को बड़ा निष्पक्ष मानकर अकारण देसी निन्दा बहुधा करते रहते हैं। विद्वान् जानते हैं कि पाश्चात्यों की दृष्टि में बड़ा बनने के लिए देसी रट लग रही है।

एकादश अध्याय

भारतीय इतिहास की तिथि-गणना के मूलाधार स्तम्भ

जब योरुप के कतिपय ईसाई और यहूदी लेखक अपना कल्पित भाषा शास्त्र बना चुके[1] तो उन्होंने देखा कि भारतीय इतिहास की पुरानी तिथि-गणना उनके अनुकूल नहीं बैठती। इस पर उन्होंने एक नया आन्दोलन आरम्भ किया। वे कहने लगे कि भारतीय इतिहास की कोई तिथि ठीक नहीं। भारतीय विद्वानों को तिथि लिखनी नहीं आती थी। इस विषय पर भारतीय तिथि-गणना के खण्डन का विण्टर्निट्ज़जी ने मध्यम मार्ग पकड़ा। वे लिखते हैं—

However, the safest dates of Indian history are those which we do not get from the Indians themselves. (p. 27)

Next to the Greeks it is the Chinese to whom we are indebted for some of the most important date-determinations of Indian literary history. (p. 29)

The chronological data of the Chinese are, contrary to those of the Indians, wonderfully exact and reliable. (p 29)

Nevertheless, one must not believe, as it has so often been asserted that the historical sense is entirely lacking in the Indians. In India, too, there has been historical writing; and in any case we find in India numerous accurately dated inscriptions, which could hardly be the case if the Indians had had no sense of history at all. (pp. 29, 30.)[2]

अर्थात्—भारतीय इतिहास की अधिक सत्य तिथियां वे हैं, जो हम भारतीयों से नहीं लेते।

यवनों से दूसरे स्थान पर चीनी हैं, जिनके भारतीय साहित्य के इतिहास की बहुत निश्चित तिथियों के लिए हम आभारी हैं।

भारतीयों के विपरीत चीनियों का बताया काल-क्रम आश्चर्यरूप से युक्त और विश्वसनीय है।

---

१. श्री सुनीतिकुमार चटोपाध्याय लिखते हैं—

Jules Bloch of Paris and Ralph Lilley Turner then came to the field, and these scholars are the real *gurus* of the present generation of Indians working in the domain of Indian Linguistics. (Progress of Indic Studies, p. 324)

हम जानते हैं कि ब्लौख और टर्नरजी ने भाषा-शास्त्र में थोड़ा सा काम किया है। पर वह काम उन्हीं अनेक असत्य नियमों को लिए है, जिनका भाषा-शास्त्र में कोई मूल्य नहीं। और ये महानुभाव चटोपाध्यायजी सदृश भारतीय-इतिहास न जानने वालों के गुरु होंगे। भारतीय भाषा-शास्त्र में पारङ्गत तथा परिश्रम करने वाले दूसरे विद्वानों के नहीं। आनन्द तो तब आए, जब चटोपाध्यायजी हमारे साथ इस विषय पर चर्चा करें।

2. *Indian Literature*

तथापि, जैसा पाश्चात्य लेखक प्रायः कहते रहे हैं, यह विश्वास नहीं करना चाहिये, कि ऐतिहासिक मनोवृत्ति भारतीयों में सर्वथा न थी। भारत में ऐतिहासिक लेख मिलते हैं, अन्यथा राजाओं के शतशः ताम्रशान, जिन पर ठीक तिथियां दी गई हैं, कैसे मिलते। इति।

ईश्वर कृपा है कि विएटर्निट्ज़ ने भारतीय इतिहास के साथ स्वल्प सा न्याय किया है। पर मौलिक तिथियों के विषय में यह अपने देश भ्राताओं से पीछे नहीं रहा है।

पं० जवाहरलालजी इतना न्याय भी नहीं कर सके। पाश्चात्य गुरुओं की प्रतिध्वनि करते हुए वे लिखते हैं—

Unlike the Greeks, and unlike the Chinese and the Arabs, Indians in the past were not historians. This was very unfortunate and it has made it difficult for us now to fix dates or make up an accurate chronology. Events run into each other, overlap and produce an enormous confusion. Only very gradually are patient scholars today discovering the clues to the maze of Indian history.

For the rest we have to go to the imagined history of the epics and other books ;

they (the masses) built up their view of the past from the traditional accounts and myth and story.........(p 77)

भावार्थ—क्योंकि पुरातन काल में भारतीय ऐतिहासिक नहीं थे, अतः अब तिथियों का निश्चित करना कठिन हो गया है।

शेष बातों के लिए हमें रामायण, महाभारत और दूसरे ग्रन्थों के कल्पित इतिहास की ओर जाना पड़ता है।

जन साधारण को पुरातन बातों का ज्ञान परम्परागत वृत्तों, मिथ्या कल्पित कहानियों और साधारण कहानियों से बनाना पड़ता है। इति।

पूर्वोक्त दोनों सज्जनों के लेख कितने निस्सार, सत्य से कितने दूर और कितने भ्रान्त ज्ञान पर आश्रित हैं, इसका पर्याप्त पता इस पुस्तक के गत पृष्ठों के पाठ से लग गया होगा, और पुरातन तिथियों का सुदृढ़ आधार इस अध्याय के अगले पृष्ठों के पाठ से लग जाएगा।

रामायण और महाभारत समूचे ग्रन्थ कल्पनाओं के संग्रह हैं, ऐसा लेख वही पुरुष लिखता है, जिसने ये अपूर्व इतिहास सद्गुरु से कभी पढ़े नहीं। ऐसा लिखना आर्य जाति को गालियां देने से न्यून नहीं। भारत के जन-साधारण भारत की अधोगति के काल में भी संसार के जन-साधारणों की अपेक्षा अधिक समझ वाले रहे हैं। जिन के घरों के पास विद्वान् ब्राह्मणों के घर थे जो उन विद्वानों से सदा कथा-वार्ता सुनते थे, वे मिथ्या-कल्पित कहानियों को सत्य ज्ञान मानते थे, ऐसा कथन युक्त नहीं। भारत के जन-साधारण की पराकाष्ठा की अधोगति या तो अंग्रेज़ी राज्य में हुई, या अब हो रही है, जब केवल अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग, अथवा पाश्चात्य-धाराओं के प्रसार के लिए अन्न प्राप्त करने वाले स्वार्थी जन, उन्हें मिथ्या बातें समझा-समझा कर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। गत कई सौ वर्ष में ब्राह्मण को राज्य-आश्रय नहीं मिला और वास्तविक ब्राह्मण के अभाव में देश का अधः पतन हो रहा है।

जिस यवन और चीनी काल गणना को लोग प्रशस्त मानते हैं, उसकी कोई स्थिति नहीं। अर्न्स्ट हर्ज़ फेल्ड मासूदी-तनबीह ८८ को उद्धृत करता है—

"The Persians and other nations are greatly at variance regarding the chronology of Alexander, a fact many people forget."[1]

अर्थात्—ईरानी और दूसरी जातियां सिकन्दर के काल के विषय में बहुत मतभेद रखती हैं। यह बात अनेक लोग भूल जाते हैं।

यवन लेखकों की तिथियों के आधार पर भारतवर्ष के इतिहास को खड़ा करना भयङ्कर भूल है। और चीनी तिथियों के विषय में भी यही कहा जा सकता है। महावैयाकरण भर्तृहरि का काल लिखते समय इसी अध्याय में हम इस सत्य को पूरा स्पष्ट करेंगे। अस्तु, अब प्रस्तुत विषय पर आते हैं।

१. ब्रह्माजी और वेद

आदिकाल = आदि-युग = सर्गादि

(१४००० वर्ष विक्रम पूर्व)

मानव उत्पत्ति—सांख्य, योग और यज्ञशास्त्र के गम्भीर विद्वानों के लिए यह जानना कठिन नहीं कि आदि में मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पति और कीट-पतङ्ग आदि की सृष्टि कैसे हुई। इस विषय के वर्तमान कल्पित पाश्चात्य-वाद कितने निस्सार और मानव को अनृत-विचार की ओर लेजाने वाले सिद्ध हुए हैं, यह सुस्पष्ट है। चार पांच लाख वर्ष पूर्व मनुष्य इस धर्ती पर प्रकट होगया और तब वह बड़ा असभ्य था, यह वाद सर्वाङ्ग-विद्या न जानने वाले योरुप के लोगों को सन्तोष दे सकता है।[2] सूर्य का ताप कई बार अति उष्ण हो चुका है।[3] आर्य ग्रन्थों में इसका बहुधा उल्लेख है। उस ताप के प्रभाव से इस भूमि पर कोई प्राणी और वनस्पति जीवित नहीं रहा। ऐसे काल में अवान्तर प्रलय हो जाती है। योरुप के विचारकों को इसका ज्ञान नहीं। स्वामी दयानन्द सरस्वती सदृश सूक्ष्म-विद्वान् महाप्रलय और अवान्तर प्रलयों के विषय में लिखते हैं—

जब महाप्रलय होता है, उसके पश्चात् आकाशादि क्रम। अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता, और अग्न्यादि का होता है, अग्न्यादि क्रम से। और जब विद्युत् अग्नि का भी नाश नहीं होता, तब जलक्रम से सृष्टि होती है।[4] इति।

---

१. ज़ोरास्टर एण्ड हिज़ वर्ल्ड, सन १९४७, भाग १, पृ० ६३।

2. The story begins perhaps 500,000 perhaps 250,000 years ago with man emerging as a rare animal and a *food-gatherer*, (What Happened in History, by V. Gorden Childe, Pelican Books, p 23).

3 It is possible that in the past there have been periods of greater and lesser intensity. About that we know nothing (*Outlines of the History of the world*; ed. 1921, p. 17.)

४. सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास।

उदारबुद्धि यास्क अपने पूर्वजों का एक श्लोक उद्धृत करता है। उसमें कहा है कि स्वायंभुव मनु विसर्गादि में था। यहां विसर्ग का अर्थ अवान्तर प्रलय है।

इन अवान्तर प्रलयों के पश्चात् पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति कैसे होती है, इसका यथार्थ ऐतिहासिक उत्तर केवल आर्य-वाङ्मय में सुरक्षित है। इसका विस्तृत उल्लेख इस बृहद् इतिहास के दूसरे भाग के प्रथम अध्याय में किया गया है।

स्वयम्भू अथवा आत्मभू ब्रह्म जब अपनी योगज-सत्ता से उत्पन्न हुए, तो वर्तमान सृष्टि का आरम्भ हुआ।

स्वयंभू-ब्रह्म का जन्मकाल—यह काल अति पुरातन हो सकता है।[1] कालडिया देश के ऐतिहासिक बेरोसस (वीरसिंह ?) के लेख के आधार पर अंग्रेज़ी लेखक लिखता है और साथ साथ अपना टिप्पण करता है—

Five of the historical dynasties of Berossus, following his first dynasty of eighty-six kings who ruled for 34,090 years after the deluge, are preserved only in the Armenian version of the chronicles of Eusebius,.............A. Von Gutschmid's suggestion that the kings after the deluge were grouped by Berossus in a cycle of ten sars, *i. e.* 36,000 years, furnished the key that has been used for solving the problem.[2]

अर्थात्—जल प्लावन के पश्चात् कालडिया के प्रथम राजकुल में ८६ राजाओं ने ३४,०९० वर्ष राज्य किया।

यह वर्णन कितना ठीक है,[3] इस पर यहां विचार का स्थान नहीं। हम इस वंशावलि में सत्य का अंश पाते हैं। संसार के इतिहास का आरंभ जलप्लावन के पश्चात् हुआ, यह सर्वथा ठीक है। जलप्लावन कल की घटना नहीं, प्रत्युत बहुत पुरानी घटना है। यह निर्विवाद है। इस घटना के बहुत काल पश्चात् वारह देव हुए। उनका काल मिश्र के ग्रन्थों के अनुसार विक्रम से १७५०० वर्ष पूर्व है।[4] यवन लेखकों के अनुसार दानवासुर विप्रचित्ति सिकन्दर से ६४५० वर्ष पूर्व हुआ था। ये वर्णन भारतीय इतिहास की तिथियों को बहुत पुराना सिद्ध करते हैं।

महाभारत-अनुसार— पूर्वोक्त पृष्ठों में जो सत्य प्रकाशित किए गए हैं, तदनुसार ब्रह्माजी का काल बहुत पुराना है। जर्मन भाषा शास्त्र के आधार पर भारतीय इतिहास की जो रूप-रेखा उपस्थित की गई है, वह अविश्वसनीय सिद्ध हो चुकी है। महाभारत ग्रन्थ का काल (विक्रम से ३००० वर्ष पूर्व) निर्धारित हो चुका है। तदनुसार जलप्लावन के लिए हमने

---

१. भूमि के अन्दर से जो मानव कपाल आदि कई लाख वर्ष पुराने निकलते हैं वे वर्तमान सृष्टिचक्र से पहली सृष्टि के भी हो सकते हैं।

2. A History of Babylon, Leonard W. King, London, Chatto & Windus, 1919 pp. 114, 115.

३. केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग १ में लिखा है कि ये वंशावलियां कल्पित हैं, (देखो, पूर्व पृ० १३१) यह कथन पक्षपात-पर आश्रित है। इन वंशावलियों में न्यूनाधिक्य संभव है, पर सारा वृत्तान्त असत्य नहीं।

४. देखो, पूर्व पृष्ठ १५७ तथा ११७।

कलि से पूर्व लगभग ११,००० वर्ष का काल माना है। ४८,०० वर्ष कृतयुग, ३६,०० वर्ष त्रेता युग, २४०० वर्ष द्वापर युग। पूरा योग बना १०,८०० वर्ष। इसके साथ कलि और प्रवृद्ध कलि के ५००० से कुछ अधिक वर्ष जोड़ने पर लगभग १६,००० वर्ष बनते हैं। यह न्यूनातिन्यून काल है।[1] पूर्ण संभव है, यह काल इससे कहीं अधिक हो। आने वाले विद्वान् इस विषय पर अधिक प्रकाश डाल सकेंगे। परन्तु एक बात का ध्यान उन्हें रखना होगा। उन्हें इन सब वर्षों का राजनीतिक इतिहास जोड़कर प्रस्तुत करना पड़ेगा। जो विद्वान् इतिहास को साक्षात् तिथि-क्रम-पूर्वक जोड़े बिना कथनमात्र करेगा, उसका प्रमाण नहीं होगा।

ब्रह्माजी और उनके पौत्र स्वायंभुव मनु आदिकाल में थे, इसका प्रमाण महाभारत में मिलता है—

> सिद्धानां चैव संवादं मनोश्चैव प्रजापतेः ॥१॥
> सिद्धास्तपोव्रतपराः समागम्य पुरा विभुम्।
> धर्मं पप्रच्छुरासीनम् आदिकाले प्रजापतिम् ॥४॥
> तैरेवमुक्तो भगवान् मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥६॥ शान्तिपर्व, अ० ३७॥

अर्थात्—आदिकाल में सिद्धों और स्वायंभुव मनु का संवाद हुआ।

१. ब्रह्माजी और वेद

ब्रह्माजी ने सृष्टि के इस चक्र के आरंभ में वेद दिया। वह वेद चरण, शाखा और प्रशाखा विभाग-युक्त आज तक विद्यमान है। चरणों और शाखाओं में कहीं कहीं मन्त्रगत शब्दों के पाठान्तर हुए हैं। उन पाठान्तरों से वेद में इतिहास ढूंढना और वेदकाल का निर्णय करना, वैदिक परंपरा से अनभिज्ञता प्रकट करना है। योरुप तथा अमरीका के संस्कृत-अध्येता और उनके भारतीय-शिष्यों में एक भी विद्वान् न हुआ, न है, जिसे वैदिक परंपरा का ज्ञान है। उनकी ओर से इस विषय पर एक ग्रन्थ भी नहीं निकला। हमने वैदिक वाङ्मय का इतिहास (संवत् १९८४-१९९१) लिखकर इस विषय पर प्रकाश डाला। जिस कल्पित काल-गणना को मैक्समूलर, उसके सहपाठी और उनके शिष्य-प्रशिष्य प्रस्तुत करते हैं, उसकी अमान्यता हमारे भारतवर्ष का इतिहास से सिद्ध है।

पूर्वपक्ष—वेदकाल पर अकाट्य-प्रमाण उपस्थित करने से पहले, हम पूर्वपक्षियों के मत की परीक्षा करनी चाहते हैं। यह सत्य है कि इस प्रसंग का प्रत्येक पूर्वपक्ष दूसरे पूर्व पक्ष का बड़ी सुन्दरता से खण्डन कर देता है। आर. एन. डाण्डेकरजी ने उचित शब्दों में इस सत्य को स्वीकार किया है—

> **Chronology of Vedic texts**: Scholars are generally of the opinion that the question of the age of R. V. is closely related to that of the entry of the Aryans into India............Geological, astronomical and religio-historical considerations also played their own part in this

१. वायुपुराण ३२। ५८—६७ में अत्यन्त सुन्दर प्रकार से इस १२ सहस्र की गणना की है। जिस प्रकार चतुर्युगी में बारह सहस्र वर्ष हैं, उसी प्रकार मूल पुराण बारह सहस्र (श्लोकयुक्त) है। यदि युगगणना में दिव्य वर्ष का बड़ा अर्थ लिया जाए, तो मूल पुराण में उतनी श्लोक गणना कभी नहीं बन सकती।

engrossing field. The result of all this is the enunciation of a large number of theories,........... Indeed one is sometimes inclined to feel that in this veritable plethora of hypotheses, interesting as they might be, one hypothesis would easily cancel the other.[1]

अर्थात्—ऋग्वेद के काल का आर्यों के भारत में पदार्पण के साथ गहरा सम्बन्ध है। इस विषय में अनेक कल्पनाएं की गई हैं। बहुधा यह अनुभव होता है कि एक प्रतिज्ञा दूसरी प्रतिज्ञा को अनायास काट देती है। इति।

डाण्डेकरजी के प्रति हमारा इतना निवेदन है कि आर्य लोग भारत में बाहर से आए, यह स्वयं असिद्ध पक्ष है। इस विषय का प्रत्येक पाश्चात्य मत भी दूसरे पाश्चात्य मत को अनायास काट देता है। अस्तु। दूसरे विषय में उनका मत सर्वथा ठीक है।

श्री पण्डित जवाहरलालजी का मत—इस विषय की इस असिद्ध अवस्था में भी भारतवर्ष के महामन्त्री पं० जवाहरलालजी ने यह आवश्यक समझा कि वे इस विषय पर अपना मत प्रकाशित करें। वे लिखते हैं—[2]

The Vedas were simply meant to be a collection of the existing knowledge of the day; they are a jumble of many things............ The Rigveda, the first of the Vedas, is probably the earliest book that humanity possesses. Yet behind the Rig Veda itself lay ages of civilized existence and thought; during which the Indus Valley and the Mesopotamian and other civilizations had grown.

अर्थात्—उन दिनों में जैसा ज्ञान था, उसका संग्रह-मात्र ये वेद हैं। वेदों में से प्रथम ऋग्वेद, पुस्तकरूप में संभवतः सब से पुरातन पुस्तक है, जो मानव की सम्पत्ति है। तथापि ऋग्वेद से पूर्व सभ्यता और विचार के अनेक युग थे। उन युगों में सिन्धु-घाटी की सभ्यता और मैसोपोटेमिया आदि की सभ्यताएं वृद्धि को प्राप्त हुई थीं।

आलोचना—श्री पण्डितजी प्राचीन इतिहास, वेद और संस्कृत के ज्ञाता नहीं हैं। उन का लेख पाश्चात्यों के लेख पर आश्रित है। अतः उनके लेख के मूलाधार का पता लगाकर उस की पूरी आलोचना आवश्यक और उपादेय है।

बटकृष्ण घोष—पं० जवाहरलालजी के लेख से दस वर्ष पूर्व घोष महाशय ने लिखा था—

Yet the language of the Rigveda is as much akin to the language of the Gāthās of Avesta that they may be safely considered to belong to approximately the same age, and as the language of the Gāthās is by no means very far removed from that of the Old Persian inscriptions of the Achœmenian monarchs of the sixth century B. C., the Rigveda may be roughly dated about 1000 B. C.[3]

1. Progress of Indic Studies, Vedic Studies, pp. 23, 31.
2. Discovery of India, second ed. 1946; p. 57.
3. Indian Culture, Calcutta, July 1936, p. 35

अर्थात्—ऋग्वेद की भाषा अवेस्ता की गाथाओं की भाषा के अति निकट है। ये लगभग एक काल के ग्रन्थ हो सकते हैं। गाथाओं की भाषा डेरियस के षष्ठ शती के फारसी के शिलालेखों से अनतिदूर की भाषा है। अतः ऋग्वेद लगभग १००० ईसा पूर्व के काल का है।

घोषजी का पूर्ववर्ती, विएटर्निट्ज़—संवत् १९९१ अथवा मार्च १९३५ में, अर्थात् घोषजी के लेख से एक वर्ष से अधिक पूर्व हमने विएटर्निट्ज़ के एक लेख का उद्धरण अपने "वैदिक वाङ्मय का इतिहास" में दिया था।[1] यह उद्धरण इस लिए किया गया था कि विद्वान् इस का मूल्य जान लें। वह उद्धरण निम्नलिखित है—

The only serious objection against dating the earliest Vedic hymns so far back as 2000 or 2500 B. C. is the close relationship between the language of the old Persian cuneiform inscriptions and the Awesta. The date of the Awesta is itself not quite certain. But the inscriptions of the Persian kings are dated, and are not older than the 6th century B. C. Now the two languages, Old Persian and Old High Indian, are so clearly relatad, that it is not difficult to translate the Old Persian Inscriptions right into the language of the Veda[2]

10..........the beginning of the Vedic literature was nearer 2500 or 2000 B. C. than to 1500 or 1200 B. C.[3]

अर्थात्—वेद के सूक्त ईसा से २००० अथवा २५०० वर्ष पूर्व नहीं रक्खे जा सकते। अन्यथा एक जटिल समस्या उत्पन्न होती है। अवेस्ता और पुराने फारसी शिलालेखों का निकटस्थ सम्बन्ध है। फारस के राजाओं के इन लेखों पर तिथियां दी गई हैं। ये षष्ठ शती ईसा से पूर्व की नहीं हैं। पुरानी फारस और वैदिक भाषा का निकटतम सम्बन्ध है। अतः वेद इन शिलालेखों के काल से बहुत अधिक पुराने नहीं हो सकते।

वैदिक वाङ्मय का श्रीगणेश २००० ईसा पूर्व से २५०० ईसा पूर्व था। १२००-१५०० ईसा पूर्व नहीं।[4] इति।

इस प्रकार ज्ञात हो जाता है कि पं० जवाहरलालजी पर विएटर्निट्ज़ आदि जर्मन लेखकों का प्रबल प्रभाव है। घोषजी तो पढ़े ही जर्मनी में हैं। उनके अध्यापक श्री वाल्थेर वुस्टजी ने घोषजी के लिए विलुप्त-ब्राह्मणों के वचनों की एक सूची हम से मंगाई थी।

घोष और विएटर्निट्ज़ की परीक्षा—अवेस्ता की गाथाएं यम-वैवस्त के पूर्वज सोम की कृतियां हैं। अवेस्ता, यस्न (= यज्ञ अथवा यज्ञ ग्रन्थ = ब्राह्मण ग्रन्थ) में लिखा है—

होम वएध्यापति। ६।२७॥

सोम विद्यापति।

इमाओ ते तें होम गाथाओ। १०।१८॥

इमाः ते सोम गाथाः।

---

१. प्रथम भाग, वेदों की शाखाएं, पृ० ४१।

2. Some Problems of Indian Literature, Calcutta University Press, 1925, p. 17.

३. पूर्वत्र, पृ० २०।

४. यह मत मैक्समूलर का था।

अर्थात्—सोम विद्यापति था। तथा हे सोम, ये तेरी गाथाएं हैं।

हैरोडोटस लिखता है—

They (the Persians) likewise offer to the sun and moon, to the earth, to fire, to water, and to the winds.[1]

अर्थात्—फारस के लोग सविता, सोम, इला, अग्नि, वरुण और मरुतों को हवियां देते हैं।

अब घोष महाशयजी को सोचना चाहिए कि अवेस्ता जो स्वयं कहती है, वह मानें, या घोष और विएटर्निट्ज़जी की कल्पनाएं मानें। सोम और इन्द्र भ्राता थे। अतः सोम की गाथाओं का काल इन्द्र अथवा देवों का काल है। अवेस्ता का मूल रूप बहुत पुराना था। सोम का इतिहास हमारे भारतवर्ष का इतिहास पृ० ४६ पर लिखा है। सोम ऐतिहासिक व्यक्ति था। भाषा दो शती में ही बदल जाए, ऐसा नियम नहीं है। अध्यापक ज़िमरमन ने लिखा है कि लैटिन भाषा गत ३००० वर्ष में नहीं बदली।[2] अतः यदि डेरियस के शिलालेखों की तिथियां ठीक पढ़ी गई हैं, तो भी यह आवश्यक नहीं कि अवेस्ता उनसे चार पांच सौ वर्ष पूर्व का ग्रन्थ हो। अच्छा होता, यदि पण्डित जवाहरलालजी इस प्रकार की प्रमाण रहित बातें न लिखते। हम लिख चुके हैं कि मोहेञ्जो-दरो आदि की सभ्यताएं वेद से बहुत-उत्तर काल की सभ्यताएं हैं। मैसोपोटेमियां का प्रधान देव Belus तो असुर वल या बलि था। वह इन्द्र से मारा गया। उससे बहुत-बहुत पूर्व चारों वेद विद्यमान थे।

वेदकाल पर विभिन्न विद्वानों के मत—मैक्समूलर के गुट्ट के अतिरिक्त वेदकाल के विषय में विद्वानों के जो मत हैं, उनमें से कतिपय नीचे लिखे जाते हैं—

१. बाल गङ्गाधर तिलक—विक्रम से लगभग ८०००-५००० वर्ष पूर्व।

२. केतकर—विक्रम से लगभग ७००० वर्ष पूर्व।

३. शाम शास्त्री—विक्रम से लगभग ५००० वर्ष पूर्व।

४. याकोबी—विक्रम से लगभग ३००० वर्ष पूर्व।

५. ज़िमरमन— " " ।[3]

डेविड डिरिंजर की घबराहट—लिपि-विषयक ग्रन्थ में लिखते हुए डिरिंजरजी लिखते हैं—

The fantastic theories such as that of Mr. Tilak who attributed the earliest hymns of the Vedic literature to about 7000 B. C., or that of Mr. Shankar Balkrishna Dikshit who attributed certain Brahmanas to 3800 B. C., can not be taken seriously.[4]

---

1. Book I. Ch. 131.
2. Hymns from the Rigveda, Bombay Sanskrit Series ; Zimmerman, p.
   अखिल भारतीय प्राच्य कान्फ्रेंस, दिसम्बर सन् १६२४ मद्रास, के लिये मुम्बई से आते हुए रेल के डिब्बे में अध्यापक ज़िमरमनजी ने यह बात स्वयं भी हम से कही थी।
3. ऐसे अनेक मतों का संक्षिप्त परिचय, भारतीय विद्या, अंग्रेजी, मई, जून, जुलाई १६४७, पृ० १६५, १६६ पर महोपाध्याय श्री एस. श्रीकण्ठ शास्त्री ने अपने लेख—दि आर्यन्स, में दिया है।
4. The Alphabet, by David Diringer, 1947, p. 333.

अर्थात्—वेदों का काल विक्रम से लगभग ७००० वर्ष पूर्व मानना असत्य और कोरी गप्प है। तिलक और शङ्कर बालकृष्ण के ऐसे असत्य मत गम्भीर विचार के योग्य नहीं हैं।

आलोचना—डिरिङ्गरजी, आप भारत आकर श्रेष्ठ गुरुओं से एक बार संस्कृत पढ़ें। तब आप में योग्यता उत्पन्न होगी। अब वे दिन गए, जब योरुप की अवैज्ञानिक बातों को लोग वैज्ञानिक समझ कर ग्रहण कर लेते थे। यदि शक्ति है, तो हमारे इस बृहद् इतिहास का खण्डन लिखें। हमने शतशः बातें इसमें स्पष्ट की हैं और आप के देश भ्राताओं की फैलाई अनेक भ्रान्तियों का उद्घाटन किया है।

वेदकाल के विषय में हमारे हेतु—अब हम ब्रह्माजी और स्वनिर्दिष्ट वेदकाल के विषय के पोषक नए प्रमाण देते हैं। वेद न्यूनातिन्यून १६००० वर्ष से विद्यमान हैं। संसारमात्र की इस अमूल्य राशि को पाणिनि, कात्यायन, आश्वलायन और शौनक ने पढ़ा था (विक्रम पूर्व २८०० वर्ष)। कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास तो वेद का वर्तमान शाखा-विभाग करने वाले थे, (विक्रमपूर्व ३१५० वर्ष)। व्यास के पिता पराशरजी वेद के पण्डित थे। वे अनेक वेद सूक्तों के द्रष्टा हैं। उन्होंने उन सूक्तों से सिद्धि प्राप्त की, उनका विनियोग बताया और उनका गम्भीर अर्थ प्रकाशित किया। पराशरजी के काल के अनेक राजगण वेद के असाधारण पण्डित थे। दशरथपुत्र श्री राम वेद के ज्ञाता थे, (४४०० वर्ष विक्रम पूर्व)। महाभारत और रामायण में इसके अनेक प्रमाण हैं। श्रीराम से पूर्व रघु, वसिष्ठ, विश्वामित्र, भरद्वाज, भरत चक्रवर्ती और ययाति आदि राजगण और ऋषि वेद के पारङ्गत पण्डित थे। इनसे पूर्व अपान्तरतमा, कपिल और हिरण्यगर्भ ने वेद में अभ्यास किया था। उस समय पुरूरवा ऐल वेद के पण्डित थे। इन सब से पूर्व दीर्घजीवी देवराज इन्द्र वेद के अपूर्व ज्ञाता थे (६००० पूर्व विक्रम)। इन्द्र का पूर्वज विरोचन वेद पढ़ा था। विरोचन-पुत्र बल (बाबल देश का Belus) भी वेद का अध्येता था।

इन्द्र और वेद

वेद में इन्द्र शब्द बहुधा उपलब्ध होता है। वहां इसके अर्थ परमात्मा, आत्मा और सूर्य आदि हैं। इन अर्थों में ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यह शब्द कहीं-कहीं प्रयुक्त हुआ है, पर ब्राह्मणों के अधिकांश स्थानों में इन्द्र एक ऐतिहासिक पुरुष का नाम है। यह ऋग्वेद १०।२८, तथा १०।३८ आदि का ऋषि है। उसकी धर्मपत्नी इन्द्राणी ऋग्वेद १०।१४५ की ऋषिका है। यह देवी पुलोम की कन्या शची थी। शची नाम से यह ऋग्वेद १०।१५६ की ऋषिका है।

लौकिक वैदिक वाङ्मय पर आश्रित देवराज[1] इन्द्र का विस्तृत इतिहास इस ग्रन्थ के द्वितीय भाग में उपनिबद्ध है। पर वैदिक वाङ्मय में इन्द्र विषयक कई विशेष बातें हैं, अतः मैत्रायणी संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर इन्द्र का कुछ वृत्त आगे लिखा जाता है।

१. प्रजापति [कश्यप] का पुत्र—तैत्तिरीय ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

प्रजापतिरिन्द्रमसृजत—आनुजावरं देवानाम्। तै० ब्रा० २।२।१०।६१॥

अर्थात्—प्रजापति ने इन्द्र को जन्म दिया, देवों में यह छोटा था।

---

१. देवों का इन्द्र महान् था।

स परमेष्ठी प्रजापतिं पितरमब्रवीत् । ……………) स प्रजापतिरिन्द्रं पुत्रमब्रवीत् । मा० श० ब्रा० ११।१।६।१७,१८।

अर्थात्—प्रजापति [कश्यप] अपने पुत्र इन्द्र से बोला ।

अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत् सोच्छिष्टमश्नात्। तं वा इन्द्रमन्तरेव गर्भं सन्तम्……। मै० सं० १।१।११॥

अर्थात्—पुत्रकामा अदिति ने भात पकाया । उसका अवशिष्ट भाग उसने खाया । अभी इन्द्र उसके गर्भ में था ।

तै० ब्रा० अ० १, प्र० १, अनु० ६ के ऐसे प्रकरण में लिखा है कि अदिति से इन्द्र और विवस्वान् जन्मे ।

इन वचनों से स्पष्ट हो जाता है कि प्रजापति [कश्यप] पिता और अदिति माता का पुत्र इन्द्र था ।

१. एक सौ एक (१०१) वर्ष का ब्रह्मचर्य—छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है—

स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच ॥१॥ तद्धोभये देवासुरा अनुबुबुधिरे। ते होचुः। हन्त तमात्मानम् मन्विच्छामः। ……इन्द्रो हैव देवानाम् अभिप्रवव्राज। विरोचनोऽसुराणाम्। तौ हासंविदानावेव समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः ॥२॥ तौ ह द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुः [……………]।८।७॥

अर्थात्—देव और असुर बोले, हम आत्मा को जानना चाहते हैं। इन्द्र देवों में से और विरोचन असुरों में से प्रजापति के पास समिधा हाथ में लेकर पहुँचे । उन दोनों ने बत्तीस वर्ष का ब्रह्मचर्यवास किया । कुछ काल पश्चात् इन्द्र अकेला प्रजापति के पास आया । उसने दूसरी बार बत्तीस वर्ष का ब्रह्मचर्य वास किया । इसी प्रकार तीसरी बार । चौथी बार उसने पांच वर्ष का ब्रह्मचर्य-वास किया । इस प्रकार इन्द्र ने (३२+३२+३२+५) १०१ वर्ष प्रजापति के समीप ब्रह्मचर्य वास किया ।

इस प्रमाण से स्पष्ट है कि देवासुर-युग में आत्म-ज्ञान का उपदेश होता था। आत्म-रहस्य उस समय सुविदित थे । पाश्चात्यों ने ब्राह्मण काल के पश्चात् उपनिषत्काल अथवा आत्म ज्ञान-काल की कल्पना की है । यह सब मिथ्या है । आश्चर्य इस बात का है कि ऐसे प्रमाणों की उपस्थिति में लोग आंख मूंद कर मैक्समूलर आदि की पक्षपात-युक्त बातों को कैसे मानते रहे । कई इतिहास न जानने वाले ऐसा भी कहते हैं कि इन्द्र का इतने दीर्घ काल के लिए ब्रह्मचर्य करना अविश्वसनीय है । यह आक्षेप उनकी अल्प-बुद्धि के कारण है । उपनिषद् के वक्ता सत्यभाषी लोग थे । उनका वचन प्रमाण है ।

१. शास्त्र उपदेश—इन्द्र बहुश्रुत विद्वान् होगया । अन्यत्र लिखा है कि उसने बृहस्पति से शब्द शास्त्र पढ़ा । इसका उल्लेख यथा स्थान करेंगे । तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है—

इन्द्रः खलु वै श्रेष्ठो देवतानाम् । उपदेशनात् ।२।२।१।१॥

अर्थात्—इन्द्र निश्चय ही देवों में श्रेष्ठ है । शास्त्रों का उपदेश करने से ।[1]

---

१. विपश्चिदिन्द्रो यथासीत् । वायु० ६६।१४७॥ इन्द्र विद्वान् था । औरों से अधिक विद्वान् था ।

श्री पण्डित युधिष्ठिरजी मीमांसक ने संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, नामक अपूर्व ग्रन्थ में इन्द्रोपदिष्ट शास्त्रों तथा कृतियों का वर्णन किया है।[1]

१. व्याकरण शास्त्र। संस्कृत वाङ्मय का अत्यन्त विशाल प्रथम व्याकरण।

२. आयुर्वेद शास्त्र। अष्टाङ्ग-पूर्ण। यह आत्रेय और भरद्वाज आदि को दिया गया।

३. अर्थ शास्त्र। अपरनाम बाहुदन्तीपुत्र शास्त्र।

४. मीमांसा शास्त्र।

५. पुराण।

६. गाथाएं।

७. छन्द शास्त्र।

८. ब्राह्मण ग्रन्थ।

पं०जी की सूची में अन्तिम दो ग्रन्थों के नाम नहीं हैं। परन्तु पृ० ४८ पर उन्होंने मेरे वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग के प्रमाण से यह लिखा है कि इन्द्र ने छन्द शास्त्र बृहस्पति से पढ़ा था। असुर-गुरु शुक्र ने यह शास्त्र इन्द्र से पढ़ा।[2] इन्द्र ब्राह्मण ग्रन्थों का उपदेष्टा है, इस विषय में ताण्ड्य ब्राह्मण १५।१।२५ में लिखा है—

ऋषयो वै इन्द्रं प्रत्यक्षं नापश्यन्। स वसिष्ठोऽकामयत। कथम् इन्द्रं प्रत्यक्षं पश्येयम् इति। स एतत् निहवम् अपश्यत्। ततो वै स इन्द्रं प्रत्यक्षमपश्यत्। स एनमब्रवीद्—ब्राह्मणं ते वक्ष्यामि।

अर्थात्—इन्द्र ने वसिष्ठ को कहा—मैं तुम्हारे लिए ब्राह्मण कहूँगा।

तथा मैत्रायणी संहिता १।१।१४ में लिखा है—

देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त। स प्रजापतिरेतान् जयान् अपश्यत्। तान् इन्द्राय प्रायच्छत्।

अर्थात्—प्रजापति कश्यप ने जय नामक इष्टियों को इन्द्र के लिए दिया।

प्रजापति कश्यप ने इन्द्र को यज्ञ और अध्यात्म ज्ञान दिया। शांखायन आरण्यक के वंश में लिखा है—

विश्वामित्र इन्द्रात्। इन्द्रः प्रजापतेः।

अर्थात्—विश्वामित्र ने यह ज्ञान इन्द्र से सीखा। इन्द्र ने अपने पिता कश्यप प्रजापति से।

जो विश्वामित्र इन्द्र का शिष्य था, उस शिष्य से इन्द्र ने वेदों का पुनः अभ्यास किया। यह वृत्त आगे लिखा जाएगा।

५. आयुष्काम शस्त्र—प्रजापति के एक अह को इन्द्र जानता था। यह अह दीर्घायु का देने वाला था। उस अह का इतिहास है—

तदेतद् अहः इन्द्रोऽङ्गिरसे प्रोवाच। अङ्गिरा दीर्घतमसे। तत उ ह दीर्घतमा दश पुरुषायुषाणि जिजीव। शांखायन आरण्यक १।१७॥

---

१. अजमेर से मुद्रित। भारतीय साहित्य भवन, नयागञ्ज, देहली, द्वारा विक्रयार्थ प्राप्तव्य। संवत् २००७। पृ० ६१,६४।

२. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, पृ० २४६, २४७।

अर्थात्—प्रजापति का यह ब्रह्म इन्द्र ने अङ्गिरा के लिए कहा। अङ्गिरा ने दीर्घतमा के लिए। तब दीर्घतमा १००० वर्ष जीवित रहा। दीर्घतमा ने वेदमन्त्रों से कई पद लेकर अपना और अपनी माता का नाम बदल लिया।

५. शरीर में शिथिल—निरन्तर ब्रह्मचर्य और विद्याभ्यास के कारण बहुशास्त्रविद् इन्द्र पहले वय में शरीर में शिथिल और बहुत निर्बल था। मैत्रायणी-संहिता में इस बात पर प्रकाश डाला गया है—

अथ वै तर्हि इन्द्रो देवानामासीद् अवमतमः शिथिरतमः। तस्मै वा एतं षोडशिनं प्रायच्छत्। तेनेन्द्रोऽभवत्। ततो देवा अभवन् ।४।७।६॥

अर्थात्—इन्द्र देवों में छोटा और शरीर में शिथिल था। प्रजापति कश्यप ने उसे षोडश यज्ञ दिया। उस से वह इन्द्र बना। तब देव विजयी हुए।

इन्द्र का पहले कुछ और नाम था। इन्द्र नाम वेद के आधार पर बदला गया। बली होने से उस का यह नाम हुआ। वह सब देवों में अधिक बलवान और ओजस्वी हो गया। कौषीतकि ब्राह्मण में लिखा है—

इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः ।६।१४॥

६. ब्राह्मण इन्द्र क्षत्रिय हुआ—प्रजापति कश्यप का पुत्र होने से इन्द्र जन्म से ब्राह्मण था। अपने जीवन के पूर्वतम भाग में वह कर्म से भी ब्राह्मण था। परन्तु उत्तरवर्ती जीवन में वह सर्वथा क्षत्रिय हो गया। मैत्रायणी-संहिता में लिखा है—

कालकाञ्जा वा असुरा इष्टका अचिन्वत। दिवमारोक्ष्यामा इति। तानिन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाण।[1] उपैत। स एतामिष्टकामप्युपाधत्त ।१।६।६॥

इस वचन के अनुसार जब इन्द्र अभी ब्राह्मण था, उस काल की यह घटना है। इन्द्र का ब्राह्मणपन महाभारतसंहिता में भी प्रसिद्ध है—

इन्द्रो वै ब्रह्मणः पुत्रः कर्मणा क्षत्रियोऽभवत्।
ज्ञातीनां पापवृत्तीनां जघान नवतीर्नव ॥ शान्तिपर्व २२।११॥

अर्थात्—[ब्रह्म और ब्राह्मण शब्द बहुधा समानार्थक होते हैं।] ब्राह्मण कश्यप का पुत्र इन्द्र अपने कर्म से क्षत्रिय हुआ। उसने पापवृत्ति सम्बन्धियों का हनन किया। इससे आगे व्यासजी वेद-मन्त्रों के अर्थ की छाया इतिहास में प्रकट करते हैं।

७. इन्द्र और उशना काव्य—जैमिनीय ब्राह्मण १।१६६ में लिखा है कि इन्द्र ने उशना काव्य को अपने पक्ष के लिए वर्श करना चाहा—

स होशनसं काव्यमाजगामासुरेषु। तं होवाचर्षे। कमिमं जनं वर्धयसि। अस्माकं वै त्वमसि वयं वा तव। अस्मान् अभ्युपावर्तस्वेति।

अर्थशास्त्र का उपदेष्टा, राजनीतिज्ञ देवर्षि नारद का सखा ऐसा यत्न क्यों न करता। इस वचन में इन्द्र के मनुष्य होने का एक असाधारण स्पष्ट चिह्न दीखता है।

---

१. तुलना करो, मै० सं० ४।८।१॥

८. विश्वरूप-हन्ता इन्द्र—त्वष्टा का पुत्र विश्वरूप[1] जो विद्वान्, ऋषि और योद्धा था, असुरों का स्वकीय था।[2] इन्द्र ने उसका वध किया। माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण का वचन है—

विश्वरूपं वै त्वाष्ट्रमिन्द्रोऽहन्।१२।७।१।१॥

यह घटना प्रायः सब ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित है।

तै० सं० २।५।१।२ के अनुसार त्रिशिरा पहले देवों का पुरोहित था। वह गुप्तरूप से असुरों की सहायता करने लगा। इस राजद्रोह के कारण इन्द्र ने उसे मारा।

९. असुरों और इन्द्र की सन्धियां—विश्वरूप का कनिष्ठ भ्राता वृत्र अथवा महासुर था। उसने इन्द्र से सन्धि की प्रार्थना की। मैत्रायणी संहिता में इसका अति सुन्दर वर्णन है—

देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त। स वृत्र इन्द्रमब्रवीत्। त्वं देवानां श्रेष्ठोऽस्यहमसुराणां संशकवाव। मा मा अन्योऽन्यंऽवधीदिति। तौ वै समामेतामनभिद्रोहाय।४।३।४॥

अर्थात्—देव और असुर स्पर्धा करते थे। वह वृत्र इन्द्र से बोला। तुम देवों में श्रेष्ठ हो, मैं असुरों में। हम में से कोई एक दूसरे का वध न करे। दोनों द्रोह न करने के लिए सन्धि करें।

नमुचि से सन्धि—ऐसा एक और उल्लेख ताण्ड्य ब्राह्मण में मिलता है—

इन्द्रश्च वै नमुचिश्चासुरः समदधातां न नो नक्तं दिवाऽहन्। नार्द्रेण न शुष्केणेति।१२।६।८॥

अर्थात्—इन्द्र और नमुचि ने सन्धि की। हम दोनों में से कोई रात्रि में न मारा जाए, न दिन में। न समुद्र-युद्ध में, न पृथ्वी-युद्ध में।

१०. वृत्रहन्ता इन्द्र महेन्द्र बना—इन्द्र वृत्र की सन्धि देर तक नहीं रही। वृत्र मारा गया। इन्द्र को महेन्द्र पद प्राप्त हुआ। इसका सप्रमाण उल्लेख पूर्व पृष्ठ १८७ पर हो चुका है। मैत्रायणी-संहिता में भी यही भाव प्रकट किया गया है—

इन्द्रो वै वृत्रमहन्त्सोऽन्यान् देवानत्यमन्यत। स महेन्द्रोऽभवत्।४।६।८॥

ऐतरेय ब्राह्मण में भी यह उल्लेख है—

यन्महान् इन्द्रोऽभवत् तन्महेन्द्रस्य महेन्द्रत्वम्।१२।१०॥

११. इन्द्र कौशिक हुआ—देवासुर-रूपी महान् संग्रामों में बहु-वर्ष व्यग्र रहने के कारण तथा स्वाध्याय के उच्छिन्न हो जाने से, इन्द्र वेदों को भूल गया। पहले वह वेद का अद्वितीय पण्डित था। जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—

स ह वा असुरैर्महासंग्रामं संयेते तद्ध वेदान् निचकार। तान् ह विश्वामित्राद् अधिजगे। ततो हैव कौशिक ऊचे।१।७३॥

अर्थात्—क्योंकि असुरों के साथ महासंग्रामों में लगा रहा, इस कारण वेदों को भूल गया। उन वेदों को इन्द्र ने विश्वामित्र से पढ़ा। इस लिए ही इन्द्र को कौशिक कहते हैं।

१. विश्वरूप नाम बेर से प्राप्त किया गया है।

२. देखो हमारा भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ०५१।

१२. इन्द्र का गुह्यनाम—सायणमाधव का पूर्ववर्ती माधव अपनी ऋग्वेदव्याख्या में वाजसनेयकों का एक पाठ उद्धृत करता है—

एतद्वा इन्द्रस्य गुह्यं नाम [य]दर्जुन (Dragon) इति वाजसनेयकमिति। ऋ० १।११२।१३॥

डाक्टर कुह्नराजजी ने यह ग्रन्थ प्रथमवार मुद्रित किया है। उनका पाठ दर्जुन था। हमने कोष्ठ में [य] जोड़ा है। कारण, माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

अर्जुनो ह वै नामेन्द्रो यदस्य गुह्यं नाम।२।१।२।११ तथा ५।४।३।७॥

१३. इन्द्र ने भरद्वाज को रसायन-सेवन कराया—तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक अद्भुत इतिहास वर्णित है—

भरद्वाजो ह त्रिभिरायुर्भिर्ब्रह्मचर्यमुवास। तं ह जीर्णिं स्थविरं शयानम्। इन्द्र उपव्रज्योवाच। भरद्वाज। यत्ते चतुर्थमायुर्दद्याम्। किमनेन कुर्या इति। ब्रह्मचर्यमेवैनेन चरेयमिति होवाच। ३।१०।११।४५॥

अर्थात्—भरद्वाज तीन आयु पर्यन्त ब्रह्मचर्य-सेवन कर चुका था। वह जीर्ण-शरीर, वृद्ध और चलने फिरने में अशक्त लेटा हुआ था। इन्द्र उसके समीप आकर बोला। हे भरद्वाज ! यदि तुझे चौथी आयु दे दूं, तो उससे क्या करोगे।

इस वचन से स्पष्ट है कि भरद्वाज को इन्द्र ने पहले तीन वार युवा किया था। वह चौथी वार युवा करने के लिए पूछता है। देवराज इन्द्र महान् वैद्य था।[1] उसने भरद्वाज का काया-कल्प कराया। भरद्वाज ऋषियों में दीर्घजीवीतम था।[2] आज इस विद्या का सहस्रांश भी संसार में नहीं है। पाश्चात्य लोग इस विद्या से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। जो इन्द्र दूसरों को आयु देता था, वह यदि स्वयं दीर्घजीवी हुआ, तो इसमें क्या आश्चर्य है।[3]

इन्द्र का आत्मचरित—काशिपति दिवोदास का पुत्र प्रतर्दन था। प्रतर्दन और दाशरथि राम की बड़ी मैत्री थी।[4] प्रतर्दन और इन्द्र की बड़े महत्त्व की कथा शांखायन आरण्यक में उल्लिखित है।

दिवोदास का पुत्र प्रतर्दन इन्द्र के प्रिय स्थान को गया।[5] युद्ध से और पौरुष से। उसको इन्द्र बोला। हे प्रतर्दन वर वरो। वह प्रतर्दन बोला, हे इन्द्रजी, जिसे आप मनुष्य के लिए हिततम मानते हैं, उसे ही मेरे लिए चुन दें। उसे इन्द्र बोला। बड़ा छोटे के लिए वर नहीं वरता। तुम ही वरो। तुम मुझ से अवर हो। प्रतर्दन बोला। इन्द्र सत्य से नहीं हटता, इन्द्र सत्य है। उसे इन्द्र बोला। मुझे ही जानो। यही मैं मनुष्य के लिए हिततम मानता हूँ, मुझे जाने—

त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रमहन्। अरुर्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छन्। बह्वीः संधा अतिक्रम्य दिवि प्रह्लादीयानतृणमहन्। अन्तरिक्षे पौलोमान् पृथिव्यां कालखञ्जान्। तस्य मे तत्र न लोमचनामीयत।५।१॥

अर्थात्—मैंने तीन लोकों में रहने वाले त्वाष्ट्र को मारा। अरुः के आश्रय में चले गए यतियों को अन्य भोजन-भट्ट ब्राह्मणों की ओर धकेल दिया। अनेक सन्धियों को त्याग कर मेरु के समीपस्थ प्रह्लाद के वंशजों को मारा। मध्य एशिया और मध्य योरुप में पुलोम के वंशजों को मारा। पृथिवी लोक के कालखञ्जों को मारा।

---

१. इन्द्र ने आत्रेयी अपाला का खलति रोग दूर किया। जै० ब्रा० १।२२१॥

२. देखो, पूर्व पृष्ठ १४६।

३. शांखायन श्रौतसूत्र १४।१२।१-२ में इन्द्र और भरद्वाज के दीर्घायु-भक्षण का उल्लेख है।

४. हमारा भारतवर्ष का इतिहास, द्वि० सं०, पृ० ११६, ११७।

५. तुलना करो, कक्षीवान् ऋषियों के प्रियधाम को गया। ऐ० ब्रा० ४।४॥ अयास्य ऋषि के प्रियधाम को गया। ऐ० ब्रा० ८।६॥ हिरण्यस्तूप आङ्गिरस इन्द्र के प्रियधाम को गया। ऐ० ब्रा० ११।१३॥

टिप्पण—हम अपने भारतवर्ष का इतिहास में लिख चुके हैं कि अररु का पुत्र धुन्धु "सिन्धुमरु के नीचे और सुराष्ट्र से ऊपर" रहता था।[1] अररु का राज्य अरब में प्रतीत होता है। अरब उस स्थान के सर्वथा समीप था। अरब का खर्जूर सुप्रसिद्ध है। पूर्व पृ० २३६ के टिप्पण ४ में मै० सं० का प्रमाण दिया गया है। तदनुसार यतियों के शिर खर्जूर थे। यति अरब देश में चले गए थे। अररु और यतियों का सम्बन्ध इस बात को स्पष्ट करता है।

वृत्र और नमुचि के साथ सन्धियों का उल्लेख पहले पृ० २७२ पर हो चुका है। उन्हीं का संकेत इन्द्र स्वयं करता है। उन सन्धियों का अतिक्रमण कैसे हुआ, राजनीति की क्या क्या चालें हुईं, इसका स्वल्प संकेत यद्यपि महाभारत में मिलता है, पर इसका पूरा ज्ञान अब नहीं हो सकेगा।

इन्द्र का यह स्वयं कथित चरित दैवयोग से सुरक्षित रहा है। शाखाओं और ब्राह्मणों में जो बातें हमने पहले संकलित की हैं, उनमें से अनेक का शृङ्खलाबद्ध वृत्त यहां एक स्थान में मिलता है। अल्प पठित लोग इसे मिथ्या कल्पना (mythology) कहते रहें, पर विद्वान् जानते हैं कि ये शुद्ध ऐतिहासिक वर्णन हैं।

१४. इन्द्र कुरुक्षेत्र में—मैत्रायणी-संहिता में एक और सुन्दर प्रवचन है—

देवा वै सत्रमासत कुरुक्षेत्रे। अग्निर्मखो वायुरिन्द्रः। तेऽब्रुवन् यतमो नः प्रथम ऋध्नुवत् तं नः सहेति।

अर्थात्—अग्नि, मख, वायु और इन्द्र देव कुरुक्षेत्र में यज्ञ कर रहे थे।

यह घटना उत्तरकाल की है। इन्द्र आदि का देव शरीर अथवा अमृत शरीर था। देव दीर्घजीवी थे। वायु इन्द्र का मौसेरा भ्राता था—

स इन्द्रोऽग्नीषोमौ भ्रातरावब्रवीत्। मा० श० ब्रा० ११।१।६।१६॥

अर्थात्—यह इन्द्र अग्नि और सोम भ्राताओं को बोला।[2]

इन्द्र और सोम निरन्तर एकत्र रहते रहे हैं—

इन्द्रश्च वै सोमश्चाकामयेतां सर्वासां प्रजानाम् ऐश्वर्यम् आधिपत्यम् अश्नुवीवहीति। जैमिनीय ब्रा० ३।६४॥

अर्थात्—इन्द्र और सोम ने कामना की। सारी प्रजाओं का ऐश्वर्य और राज्य प्राप्त करें। वे वस्तुतः प्रजाओं के राजा हो गए। इस सोम से भारतीय सोमकुल या चान्द्रकुल चला।

इन्द्र का अति-संक्षिप्त, सूत्ररूप यह इतिहास चौदह शीर्षकों के अन्तर्गत वैदिक वाङ्मय के आधार पर लिखा गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इस विषय की इससे कहीं अधिक सामग्री है। रामायण, महाभारत आदि इतिहासों की सहायता से इस पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जा सकता है। पूर्वोक्त सामग्री का सम्बन्ध, तथा युक्तियुक्त और कल्पना की उड़ान से मुकार्य पहली बार यहीं लिखा गया है। जो सूक्ष्म बात हम पहले लिख चुके हैं, उसे भूयांस अर्थ के लिए पुनः दोहराते हैं। वेद मन्त्रों में यह ऐतिहासिक अर्थ नहीं लगेगा। विद्वानों को वेद और ब्राह्मण-ग्रन्थों के पाठ की भारतीय परंपरागत विधि सीखनी पड़ेगी। विद्या की आंख रखने वाला कौन पुरुष है, जो पूर्व-लिखित वर्णन में इतिहास की एक अपूर्व छटा नहीं देखेगा। अंग्रेज़ी और जर्मन अनुवादों की सहायता से वेद पढ़ने वाले लोग पक्षपात छोड़ने पर भी इस सूक्ष्मता के जानने में समय लगाएंगे।

---

१. द्वितीय संस्करण, पृ० ६४। तथा देखो, मै० सं० ४।१।१०॥

२. मखुरिन्द्रस्य। मै० सं० ४।८।१॥

असुर ऋषि—इन्द्र ही नहीं, पणयोऽसुराः ऋग्वेद १०।१०८ के १,३,५,७ और ९ मन्त्रों के ऋषि थे। उन्होंने वेद पढ़ा था। नाग जाति का जरत्कर्ण ऐरावत सर्प ऋग्वेद १०।७६ का और अर्बुद काद्रवेय सर्प १०।९४ के ऋषि हैं। इन्होंने भी वेद पढ़ा था। त्वाष्ट्र विश्वरूप ऋषि था, वह वेद पढ़ा था, यह पहले पृ० २४० पर लिखा जा चुका है।

मारीस ब्लूमफील्ड—अमरीका के महोपाध्याय ब्लूमफील्डजी ने ऋग्वेद रैपिटीशन्ज़ नाम का एक ग्रन्थ अंग्रेज़ी में लिखा था। वेद और वैदिक-परंपरा से नितान्त अनभिज्ञता के कारण उन्होंने लिखा कि कात्यायन की ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी (जिसके आधार पर हमने ऋग्वेद के पूर्वोक्त सूक्तों के ऋषि लिखे हैं) में, ऋषियों के अधिकांश परिचय 'दिखावटी इतिहास, और बाललीला की कल्पनाएं हैं'।[1] इसका खण्डन हमने अपने ऋग्वेद पर व्याख्यान नामक ग्रन्थ में पृ० ५३–६८ तक विक्रम संवत् १९७७ में आज से ३० वर्ष पहले कर दिया था।

ब्लूमफील्ड की घबराहट का कारण—वैदिक-ज्ञान को जाने बिना, अपने को पण्डित मान कर लिखने का जो फल हो सकता है, वह ब्लूमफील्ड के लेख से स्पष्ट है। ऋषि मन्त्रों के बनाने वाले नहीं थे। वे इनके अर्थों के द्रष्टा और विनियोग आदि बताने वाले थे। अतः अर्द्ध मन्त्र, एक मन्त्र अथवा एक सूक्त के अनेक ऋषि हैं। इस वास्तविक इतिहास से डर कर, और अपने कल्पित भाषाशास्त्र को असत्य होते देख कर, ब्लूमफील्ड ने कात्यायन के ऊपर कीचड़ उछाला है। कात्यायन ने 'बाल-लीला की कल्पना' नहीं की, प्रत्युत श्रीमान् पक्षपाती ब्लूमफील्ड ही बाललीला कर रहा है। कात्यायन आदि मुनियों ने ऋषिवृत्त सुरक्षित रख कर भारतीय इतिहास पर महान् उपकार किया है।

जिस कात्यायन का गुरु शौनक था, जो कात्यायन आश्वलायन का सहपाठी और पाणिनि आदि का लगभग समकालीन था, जिस कात्यायन ने उन विद्वानों के दर्शन किये थे, जो साक्षात् वेद व्यासजी के शिष्य थे, वह कात्यायन बाललीला की कल्पना करता है, यह लिखना, सारी भारतीयता पर आक्षेप करना है। ऐ योरुप और अमरीका के लेखको, सावधान हो जाओ, अब तुम्हारी वृथा बातों को उखेड़ कर परे फेंका जाएगा, और तुम्हारे मिथ्या अभिमान के टुकड़े किए जाएंगे।

बेल्वल्कर द्वारा ब्लूमफील्ड के एक पक्ष का खण्डन—हमारे ऋग्वेद पर व्याख्यान के लिखे जाने के दो वर्ष पश्चात् पूना के महोपाध्याय श्री बेल्वल्करजी ने इस विषय पर लिखा—

Can we suppose that the names of the Rsis given by the *Anukramnis* were based upon an authentic tradition? There are many facts pointing the other way, one of them being the circumstance that an identical Vedic stanza occuring in two different portions of the Samhitā is at times ascribed to two different seers. On the other hand

---

1. The statements of the Sarvānukramni, ascribed to Kātyāyana, and its commentary, the Vedārthadīpikā of Sadagurushishya, betray the dubiousness of their authority in no particular more than in relation to the repetitions. As is generally known their account of the authors of the hymns is based in part upon a slender stock of true tradition as to the chief families of Vedic poets. But their more precise statements shrink for the most part into puerile inventions. Especially, the Anukramni finds it in its heart to assign, with unruffled insouciance, one and the same verse to two or more authors or to ascribe it to two or more divinities, according as it occurs in one book or another, in one connexion or another. (Rigveda Repititions, M. Bloomfield, p. 631.)

it is too much to believe that the entire Rsi list has been merely the unhistorical and unscrupulous fabrication of a crafty priesthood.[1]

वेल्वल्करजी के लेख के प्रथमार्द्ध में ब्लूमफील्ड की भूल का दोहरानामात्र है। इस विषय पर उन्होंने पूरा ध्यान नहीं दिया। अगले आधे भाग में उन्होंने ब्लूमफील्ड के साथ अपना मतभेद दर्शाया है। यह भाग उचित है।

अधिक क्या लिखें, इन्द्र वेद का पण्डित था। इन्द्र के समकालीन सोम, वायु, विवस्वान्, नारद और विरोचन आदि भी वेद के पण्डित थे।

प्रजापति, वेद का विद्वान्—इन्द्र से पूर्व देवों और दैत्यों के पिता दीर्घजीवी कश्यपजी वेद के ज्ञाता था। उनके श्वशुर दक्ष प्रजापति भी वेद को जानते थे। प्रजापति कश्यप ने ही इन्द्र आदि को वेद पढ़ाया था। वेद श्रुति को प्राजापत्य श्रुति कहते ही इसलिए हैं कि यह श्रुति प्रजापति के प्रवचन की है—

प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे स्मृताः। वायुपु० ६१।७५॥

प्रजापति का काल—जैमिनीय ब्राह्मण में एक महत्त्वपूर्ण सूचना है—

अथ रौहिणकम्। एतेन वै प्रजापतिरेकशफानां पशूनां काममारोहत्। तयत् काममारोहत् तद् रौहिणकस्य रौहिणकत्वम्। कामं पशूनां रोहति य एवं वेद। यथा ह वा इम आरण्याः पशवो मृगा एवमेतऽग्र एकशफाः पशव आसुः। तानेतैरेव रौहिणकस्य किद्किटाकारैर्ग्रामम् उपानयत्।२।१४॥

अर्थात्—अथ रौहिणक साम। इस साम से प्रजापति एकशफ पशुओं को प्राप्त हुए। ....। जैसे ये जंगल के पशु, मृग आदि थे, इसी प्रकार पहले दिनों में पशु एक शफ थे। [गो आदि पहले फटे हुए खुर वाले न थे, घोड़े के समान एकशफ थे।] प्रजापति उन पशुओं को ग्रामों में लाए।

गो आदि जिस काल में एक शफ थे, उस काल में प्रजापति कश्यप वेद जानते थे। यह काल कब था, इसकी पूरी खोज अभीष्ट है।[२]

पितर—प्रजापति कश्यप के प्रारंभ के काल में इस भूमि पर एक पितर जाति निवास करती थी। वायुपुराण ८३।१२१ में लिखा है—पितृणामादिसर्गस्तु, ये पितर वेद के ज्ञाता थे। तै० ब्रा० २।३।८ के अनुसार असुरों के पश्चात् पितर उत्पन्न हुए।

---

1. Second Oriental Conference, Calcutta, 1922, p. 6.

२. पहले पृथिवी छाया थी, मैत्रायणी संहिता १।६।६। पहले वीरुध सूखते न थे, मैत्रायणी संहिता १।६।१॥ पहले पृथिवी शिथिल अर्थात् पिघली अवस्था में थी, और उसमें पर्वत तैरते थे, मैत्रायणी सं० १।१०।१३, ये अवस्थाएं प्रजापति ब्रह्माजी के काल की है।

दरिद्रा आसन् पशवः कृशाः सन्तो व्यस्थकाः।
सौमायनस्य दीक्षायां समसज्यन्त मेदसा॥ इति॥ तां० ब्रा० २४।१६।७॥

पशु पहले कृशा = छोटे और अस्थि-विना थे। सोमपुत्र बुद्ध की दीक्षा में उन पर मांस आया। व्यस्थकाः पाठ रहने से छन्द में एक अक्षर न्यून हो जाता है। अतः पुराना पाठ वियस्थकाः था। (देखो, श्री पं० युधिष्ठिरजी मीमांसककृत—संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, भाग १, पृ० २१।) डाक्टर कालेण्डजी को ताण्ड्य ब्रा० के अंग्रेजी अनुवाद में यह शोध नहीं सूझी।

पहले पशु एकरूप रोहित ही थे, जै० ब्रा० २।१६०॥ पश्चात् श्वेत, रोहित और कृष्ण हो गए। संसार के इतिहास में पूर्वोक्त बातों की परीक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

स्वायंभुव मनु—कश्यप प्रजापति से बहुत पहले स्वायंभुव मनु वेद के अद्वितीय ज्ञाता था। उन्होंने वेद के आधार पर अपना धर्मशास्त्र रचा, जो अब टूटी फूटी दशा में मिलता है।

स्वयंभू ब्रह्म—योगज शक्ति से स्वयं शरीर धारण करने वाले वर्तमान सृष्टि के ये आदि पुरुष थे, जो वेद के देने वाले थे। हमने इस बृहद् इतिहास में इनका न्यूनात् न्यून काल विक्रम से १४००० वर्ष पूर्व रखा है। वस्तुतः यह काल अधिक पुराना हो सकता है। पर इतना सत्य है कि हमारे-निर्दिष्ट काल से न्यून किसी अवस्था में भी नहीं हो सकता। वेद उस काल से विद्यमान है। इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं। विकासवाद के अधिकांश अनृत परिणामों से जो विद्वान् विमोहित नहीं, वे हमारे पक्ष की सत्यता को जान लेंगे।

२. देव युग

भारतवर्ष का इतिहास अपूर्ण रहता है, जब तक उस में देवयुग का स्पष्ट-चित्र उपस्थित न हो। भारत ही नहीं, संसार भर का मूल इतिहास इस देवयुग के वर्णन के बिना, अधूरा है। देवयुग का अस्तित्व एक ऐतिहासिक तथ्य था। उसकी ओर आंखें बन्द किए रहना एक भारी भूल और दुराग्रह है। देव युग का उल्लेख इतिहास के आधारभूत पुरातन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है—

(क) पश्चिमोत्तर शाखीय वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड सर्ग ६ में लिखा है—

एवं स देवप्रवरः पूर्वं कथितवान् कथाम्। सनत्कुमारो भगवान् पुरा देवयुगे प्रभुः। १२॥

(ख) तद्वैवं विद्वान् ब्राह्मणस्सहस्र-सहस्रं देवयुगानि उपजीवति। जैमिनीय ब्रा० २।७५॥

(ग) आयुर्वेदीय काश्यप संहिता शारीरस्थान में आदि युग, देवयुग और कृतयुग के भेद मिलते हैं।

(घ-च) देवयुग विषयक तीन प्रमाण महाभारत से पृष्ठ १५४, १५५ पर दिए गए हैं।

(छ) एक और प्रमाण महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३ में मिलता है—

सोऽब्रवीदहमासं प्राग् गृत्सो नाम महासुरः।
पुरा देवयुगे तात भृगोस्तुल्यवया इव ॥११॥

(ज) तदा देवयुगे तात वाजिमेधे महामखे।
अग्नेर्जन्म तथा श्रुत्वा शाण्डिल्यस्य महात्मनः ॥ हरिवंश, १।१८।६१॥

पूर्वोक्त वर्णन देवयुग-विषयक हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थ इस वर्णन से परिपूरित हैं। इस सूक्ष्म तथ्य को न समझकर योरुप के संस्कृताध्येता लेखकों ने ब्राह्मण ग्रन्थों को "माईथालोजि" अर्थात् मिथ्याकल्पित कथाओं का भण्डार प्रसिद्ध कर दिया है। इस एक अनृतवाद से भारतीय जातीय का महानाश हुआ है। ऋषि लोग कल्पित और असत्य बातें लिखते थे, उन्हें सत्य इतिहास का ज्ञान नहीं था, ये अनर्गल-वाद अब अधिक नहीं ठहरेंगे।

देव युग के इतिहास पर कई स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। भारतवर्ष के जिस प्राचीन इतिहास में इस देवयुग का वर्णन नहीं होगा, वह इतिहास कल्पित समझा जाएगा।

देव युग के प्रधान व्यक्ति—देवयुग के अनेक प्रधान पुरुषों का वर्णन गत अध्याय में हो चुका है। देवों के मूल पुरुष कश्यप प्रजापति और दक्ष प्रजापति थे। दीर्घजीवी नारद का जन्म

उसी काल में हुआ था। महादेव शिव और धन्वन्तरिजी उसी काल में थे। अधिक महा पुरुषों का उल्लेख यथास्थान होगा। देवयुग का काल-परिमाण भावी खोज स्पष्ट करेगी।

निरुक्त १२।४१ में देवयुग शब्द प्रयुक्त हुआ है।

३. कृत युग

काश्यप संहिता के अनुसार देवयुग के पश्चात् कृतयुग था। वाल्मीकीय रामायण में भी इसका संकेत है—

आसन् कृतयुगे राम दितेः पुत्रा महाबलाः। बालकाण्ड।४१।१४॥

अन्य ग्रन्थों में इनका स्पष्ट भेद उल्लिखित नहीं है। संभव है प्राचीन ग्रन्थों के मिलने पर ये भेद अधिक खुलें। कृत युग की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन यथास्थान होगा।

४. त्रेता युग

वैवस्वत मनु से त्रेतायुग का आरंभ निश्चित है।[1] सोम-पुत्र बुध,[2] बुध और इला-पुत्र पुरुरवा, तथा इक्ष्वाकु आदि इस काल के प्रधान पुरुष थे। यज्ञकर्म का विस्तार त्रेता युग में हुआ। मुण्डक उपनिषद् में स्पष्ट कहा है—

तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यन् तानि त्रेतायां बहुधा संततानि।१।२।१॥

अर्थात्—यह सत्य है, पुरातन ऋषियों ने मन्त्रों में जिन कर्मों का विनियोग आदि देखा, वे कर्म त्रेता में बहुत रूपों में विभक्त हुए।

वायुपुराण अध्याय ९१ में इसको स्पष्ट रूप में कहा है—

·········त्रेतायां स महारथः। एकोऽग्निः पूर्वमासीद्वै ऐलस्त्रींस्तानकल्पयत्॥२८॥

अर्थात्—पहले जो अग्नि एक था, त्रेता में उस महारथ पुरूरवा ऐल ने उसे तीन भागों में विभक्त कर दिया।

तदनुसार त्रेता में कर्म का महान् विभाग हुआ। उपनिषद् के पूर्वोक्त वचन का यथार्थ अर्थ बहुत थोड़े भाष्यकारों ने पूर्ण रूप से समझा है। त्रेता की यह बड़ी प्रसिद्ध घटना है। त्रेता के राजाओं के महान् कर्म आदि यथा स्थान लिखे गए हैं।

५. त्रेता-द्वापर की सन्धि (विक्रम पूर्व ५४०० वर्ष)

भारतीय इतिहास में यह निश्चित काल है। इस विषय के निम्नलिखित श्लोक महाभारत में पढ़ने योग्य हैं—

त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः।
असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः॥ आदिपर्व २।३॥

---

१. पार्जिटर का मत कि त्रेतायुग सगर से आरम्भ हुआ—The Treta began approximately with Sagara (पृ० १७७) सर्वथा अशुद्ध है। पार्जिटर की ऐसी भूल अक्षम्य है।

२. ताण्ड्य ब्राह्मण २४।१८।२ में लिखा है—देवा वै सत्याः सत्रमासत बुधेन स्थपतिना। अथ हैतेन देव्या मारया ईजिरे। तेषां बुधः सौम्यः स्थपतिरास। बौधायन श्रौतसूत्र में ताण्ड्य के वचन की प्रति ध्वनि है।

अर्थात्—त्रेता द्वापर की सन्धि में शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भार्गव राम हुआ। क्रोधवश उसने अनेकबार क्षत्र को मारा। जामदग्न्य राम ने अन्तिम अर्थात् इक्कीसवीं बार त्रेता द्वापर की सन्धि के आरम्भ में क्षत्र-नाश किया। जामदग्न्य राम बहुत दीर्घजीवी महर्षि था। इस बात को न समझकर पार्जिटरजी को बहुत भ्रम हुआ है। उन्होंने लिखा है—

Rāma Dāsrathi lived in the interval between the Tretā and Dvāpara ages To Rāma Jāmadagnya is assigned the same position, and the references say he lived in the Tretā age,......................that particularization is clearly wrong, for Rama Jāmadagnya was avowedly prior........, and the allegation that he destroyed all Kshatriyas off the earth twenty one times is wholly incompatible with the story of Rāma Dāshrathi.[1]

अर्थात्—दाशरथि राम और परशु-राम की समकालिकता सिद्ध नहीं हो सकती।

एक पार्जिटर क्या, सैकड़ों विद्वान् जो ऋषियों की दीर्घ आयु को नहीं जानते, इस विषय को पूरा नहीं समझ सकते। त्रेता से लेकर महाभारत युद्ध तक जामदग्न्यजी जीते रहे।

इस क्षत्रनाश के पश्चात् इसी सन्धिकाल में दाशरथि राम का जन्म हुआ—

सन्धौ तु समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च।
रामो दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामि जगत्पतिः॥ शान्तिपर्व ३४८।१९॥

अर्थात्—त्रेता और द्वापर की सन्धि के प्राप्त होने पर दाशरथि राम हुए।

दूसरी गणना—एक विभिन्न गणना के अनुसार त्रेता द्वापर की सन्धि के समय चौबीसवां युग था। परलोकगत श्री पण्डित शिवदत्तजी का मत है कि इसका अभिप्राय राम को २४वें त्रेता के अन्त में रखने का है। यह मत ठीक नहीं। पुराण का पूर्वापर पाठ इस आशय के अनुकूल नहीं। चौबीसवें युग का अभिप्राय जानना चाहिए। हरिवंश में लिखा है—

चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुरः सरः। राज्ञो दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः॥२१॥
लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः।२२।१।४१॥

अर्थात्—चौबीसवें युग में राम और विश्वामित्रजी हुए।

राम के समकालिक रामायण ग्रन्थ के कर्त्ता भार्गव वाल्मीकिजी थे। उनका मूल नाम ऋक्ष था। उन के विषय में वायुपुराण में लिखा है—

परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति।२३।२०६॥

अर्थात्—चौबीसवें परिवर्त (चक्र) में ऋक्ष [वाल्मीकि] व्यास होगा।

यदि इस युग और परिवर्त का रहस्य स्पष्ट होजाए, तो इतिहास का सम्पूर्ण काल क्रम ठीक हो जाएगा। पुरातन आचार्यों ने गणना का कोई निश्चित क्रम ध्यान में रखा है। यथा—

1. A. I. H. T. p. 177.

२४ वें परिवर्त में	ऋक्ष—वाल्मीकि	व्यास था।
२५ वें ,, ,,	वासिष्ठ शक्ति	,, ,,
२६ वें ,, ,,	पराशर	,, ,,
२७ वें ,, ,,	जातूकर्ण्य (पराशर-भ्राता)	,, ,,
२८ वें ,, ,,	कृष्ण द्वैपायन (पाराशर्य)	,, ,,

वाल्मीकि से कृष्ण द्वैपायन तक ४ परिवर्त व्यतीत हुए थे। इस गणना में त्रेता और द्वापर को २८ परिवर्तों = चक्रों में बांटा है। भारतीय इतिहास का वह महान् विद्वान् होगा, जो इस गणना को स्पष्ट करेगा।

युग-परिवर्तन अथवा युग-सन्धि के समय अनेक दुर्घटनाएं होती हैं। उनका वृत्त निम्नलिखित दो श्लोकों में है—

(क) त्रेता द्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः।
असकृत् पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः॥ आदिपर्व २।३॥

(ख) त्रेताद्वापरयोः सन्धौ पुरा दैवव्यतिक्रमात्।
अनावृष्टिरभूद् घोरा लोके द्वादशवार्षिकी॥ शान्तिपर्व १४१।१३॥

अर्थात्—त्रेता द्वापर की सन्धि में भार्गव राम ने अनेक बार क्षत्रिय नाश किया। तथा उस समय बारह वर्ष की घोर अनावृष्टि हुई।

कुल नाशक पुरुषाधम—जिस समय भगवान् कृष्ण दूत बन कर हस्तिनापुर जाने लगे, उस समय पाण्डव भीमसेन उनसे कहता है—

हे मधुसूदन, अठारह राजा प्रख्यात हैं जो कुलघातक थे।

धर्म के पर्यायकाल[1] अर्थात् कृतयुग की समाप्ति पर असुरों में कलि उत्पन्न हुआ। तथा १७ राजा [त्रेता] युग के अन्त में हुए—

युगान्ते कृष्ण संभूताः कुलेषु पुरुषाधमाः॥ उद्योगपर्व॥

इन १७ राजाओं के वंश भीम ने गिनाए। इन वंशों के पुरातन वृत्त इतिहास की शृङ्खला को जोड़ने का काम देंगे।

६. पृथ्वी पर आयुर्वेदावतार (द्वापर आरम्भ)

भारतीय इतिहास में आयुर्वेदावतार की घटना अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है। पहले सम्पूर्ण आयुर्वेद देवलोक में था। श्री ब्रह्माजी, दक्ष प्रजापति, अश्विद्वय, और देवराज इन्द्र परम्परा में आयुर्वेद के ज्ञाता थे। अश्विद्वय, अर्थात् नासत्य और दस्र, घूमते रहते थे और लोगों की चिकित्सा करते थे।[2] उन की कृपा से मनुष्यों में आयुर्वेद का ज्ञान था, पर सर्वाङ्गपूर्ण नहीं।

१. पर्याय का एक अर्थ अवान्तर-प्रलय है। चतुर्युगान्त पर्याये—हरिवंश १।४१।१७ पर नीलकण्ठ टीका करता है—अन्तपर्याये चरमेऽवान्तर प्रलये।

२. अश्वियों ने अमृत प्राप्त करने के लिए क्षीरसागर के पास के चन्द्र और द्रोण पर्वतों पर ओषधियां उगाईं। अश्वियों ने भार्गव च्यवन की चिकित्सा की। उन्होंने मरुत्त के पुत्र श्वेतकेतु का किलास रोग दूर किया।

आयुर्वेद का सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञान भरद्वाज ऋषि की कृपा से मानव संसार में फैला। इस का इतिहास पाश्चात्य भाषा-वाद पर वज्र-प्रहार है। इसका स्पष्ट इतिवृत्त वायुपुराण के प्रमाण से आगे लिखते हैं—

> द्वितीये द्वापरे प्राप्ते शौनहोत्रः प्रकाशिराट्। पुत्रकामस्तपस्तेपे नृपो दीर्घतपास्तथा ॥१८॥
> तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा। काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशकः ॥२१॥
> आयुर्वेदं भरद्वाजश्चकार सभिषक्क्रियम्। तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥२२॥

अर्थात्—देवयुग का धन्वन्तरि द्वितीय द्वापर के प्राप्त होने पर काशिराज शौनहोत्र के घर योगज-शक्ति से जन्मा। उस समय भरद्वाज ने भिषक्क्रिया युक्त आयुर्वेद रचा। उसे आठ तन्त्रों में विभक्त करके शिष्यों को पढ़ाया।

वायु के अनुसार शौनहोत्र का वंश-वृक्ष निम्नलिखित है—
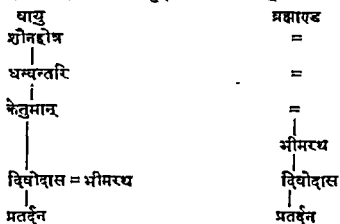
वायुपुराण के जो श्लोक पूर्व उद्धृत किए गए हैं, वही श्लोक हरिवंश १।२९ में मिलते हैं। वहां एक श्लोक के पाठ में थोड़ा सा अन्तर है—

> आयुर्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह भिषजां क्रियाम् ।२७।

अर्थात्—दिवोदास धन्वन्तरि ने अपने मानव जन्म में भरद्वाज से आयुर्वेद प्राप्त किया।

ब्रह्माण्डपुराण उपो० पा० ३।६७।२४ का पाठ भी, भरद्वाजात् है। इससे निश्चित होता है कि धन्वन्तरि ने भरद्वाज से ज्ञान प्राप्त किया।

हिमालय पर ऋषि-सम्मेलन—चरक-संहिता, सूत्रस्थान, अध्याय प्रथम में लिखा है—हिमवान् के शुभ पार्श्व में ऋषि, महर्षि एकत्र हुए। संसार में विघ्नभूत रोग बढ़ रहे हैं। रोग नाश का पूर्ण-ज्ञान अश्वियों के शिष्य इन्द्र के पास है। अतः—

> स वक्ष्यति शमोपायं यथावद् इन्द्रप्रभुः। कः सहस्राक्षभवनं गच्छेत् प्रष्टुं शचीपतिम् ॥ १८ ॥
> अहमर्थे नियुज्येयम् अत्रेति प्रथम वचः। भरद्वाजोऽब्रवीत् तस्माद् ऋषिभिः स नियोजितः ॥ १९ ॥
> स शक्रभवनं गत्वा सुरर्षिगणमध्यगम्। ददर्श बलहन्तारं दीप्यमानमिवानलम् ॥ २० ॥

अर्थात्—ऋषियों ने कहा, वह अमरपति इन्द्र रोगों के शम का उपाय यथावत् कहेगा। देवलोक सुमेरु पर स्थित सहस्राक्ष-इन्द्र के भवन को कौन जाए। भरद्वाज बोला, मैं इस बात

के लिए अपने को लगाऊंगा। भरद्वाज इन्द्रभवन में पहुंचा। उसने बल (Belos of Mesopotamia) दैत्य के हन्ता इन्द्र[1] को देखा।

भरद्वाज का इन्द्र-भवन जाने का कारण—देवगुरु आङ्गिरस बृहस्पति ऋषि का पुत्र भरद्वाज था। वह इन्द्र का घनिष्ठ मित्र था। अतः ऋषियों के प्रस्ताव पर वह सहसा बोल उठा, मैं जाऊंगा। इन्द्र और भरद्वाज का प्रेम पूर्व पृ० २७३ पर लिखा गया है। त्रेता के अन्त में भरद्वाज ने आयुर्वेद का संपूर्ण-ज्ञान इन्द्र से प्राप्त कर लिया था।

भरद्वाज और राम—इसके पश्चात् त्रेता-द्वापर का सन्धिकाल व्यतीत हो गया। इस सन्धिकाल के अन्त में दाशरथि राम जन्मे। दाशरथि राम वनवास की यात्रा पर जारहे थे। वे लक्ष्मण को कहने लगे।

गङ्गा-यमुना के संभेद = मेल पर प्रयाग के समीप भरद्वाज का आश्रम दिखाई देता है। इति।

भरत राम को मिलने वन जा रहे थे। भरद्वाज ने सेना सहित भरत का आतिथ्य किया। वह परमर्षि परम विज्ञानवेत्ता था। उसने सहसा हाथी, घोड़ों के लिए वनस्पति उत्पन्न कर दिए। भला, आज कौन इतना विज्ञान जानता है। वर्तमान काल के अल्प ज्ञानी लोग इसे गप्प कहकर संतुष्ट हो जाएंगे।

दाशरथि राम द्वितीय द्वापर तक जीवित थे। तब दिवोदास के पुत्र काशिराज प्रतर्दन का जन्म हो चुका था। प्रतर्दन और दाशरथि राम मित्र थे।[2]

पुनर्वसु आत्रेय, धन्वन्तरि और भरद्वाज आदि विद्वान् लगभग एक काल में जीवित थे। इन में से भरद्वाज बहुत अधिक दीर्घजीवी था। पुनर्वसु आत्रेय ने, १. अग्निवेश, २. भेल, ३. जतूकर्ण, ४. पराशर, ५. हारीत और ६. क्षारपाणि को आयुर्वेद का उपदेश किया।

अग्निवेशजी द्रुपद और द्रोण के गुरु थे। ऋषि होने से वे दीर्घजीवी हुए। उन्होंने धनुर्वेद और आयुर्वेद में मति-विशेष प्रकट की। आग्निवेश्य श्रौतसूत्र उनका उपदिष्ट प्रतीत होता है। यह उन के जीवन के अन्तिम दिनों का ग्रन्थ है। अग्निवेश के आयुर्वेद तन्त्र का संस्कार वैशम्पायन-चरक ने किया।

जतूकर्ण अथवा जातूकर्ण्य[3] जी व्यासजी के चचा और पराशरजी व्यासजी के पिता थे। जतूकर्ण और पराशर दोनों आयुर्वेद के आचार्य थे। मुनि हारीत ने आयुर्वेद-संहिता और धर्मसूत्र नामक दो महान् ग्रन्थ रचे। ये रचनाएं द्वापर के अन्तिम दिनों की हैं।

कैसा क्रमबद्ध इतिहास है। ऋषियों की दीर्घायु को न समझकर तथा मिथ्या भाषावाद के कारण पाश्चात्यों ने भारतवर्ष को कहीं का नहीं रहने दिया।

रुडल्फ हर्नलि और कीथ—हर्नलि और कीथ प्रभृति अनेक पाश्चात्य लेखक आयुर्वेदीय चरक-संहिता को तुषार-कुल के महाराज कनिष्क के सभ्य चरक-वैद्य की रचना मानते हैं।

---

१. यह इन्द्र वही त्रेता के आरंभ वाला देवासुर-संग्राम वाला बल-हन्ता इन्द्र था। वह वस्तुतः बहुत दीर्घजीवी था। वैशम्पायन आदि इस तथ्य को जानते थे।

२. देखो, हमारा, भारतवर्ष का इतिहास, द्वि० सं० पृ० ११७।

३. इस विषय में हम पूरा निश्चय नहीं कर पाए।

इसका खण्डन हम पहले कर चुके हैं।[1] ऐसे लेखकों और उनके उच्छिष्ट भोजियों[2] ने ध्यान नहीं किया कि चरक-संहिता स्वतन्त्र रचना नहीं है। चरक ने अग्निवेश के तन्त्र का संस्कार मात्र किया। उसने अग्निवेश के तन्त्र का रूप सर्वथा नहीं बदला, प्रत्युत उसका अधिकांश भाग यत्किंचित् परिवर्धित रूप में वर्ता। अग्निवेश ने भी इस तन्त्र को स्वतन्त्र नहीं बनाया। उसने पुनर्वसु आत्रेय का उपदेश इसमें उपनिबद्ध किया। आत्रेय के विषय में भदन्त अश्वघोष अपने बुद्धचरित १।४३ में लिखता है—

चिकित्सितं यच्च चकार नात्रिः पश्चात्तदात्रेय ऋषिर्जगाद।

अर्थात्—चिकित्सा का जो ग्रन्थ अत्रि नहीं लिख सका, उसके पुत्र आत्रेय ने उसका उपदेश किया।

अब सोचने का स्थान है कि इस विषय में हर्नलि, कीथ अथवा राय चौधरी का मत माना जाए, अथवा उनके चरक-संहिता के कल्पित कर्ता चरक के सहकारी अश्वघोष का। आश्चर्य है, इन लोगों की बुद्धि पर। कनिष्क की राजसभा का चरक, चरक-संहिता जानने से चरक कहाया, वह इस संहिता का रचयिता या प्रति-संस्कर्ता नहीं था।

संक्षेपतः इतना तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि आयुर्वेद की अधिकांश मूल संहिताएं भारत-युद्ध से पहले रची जा चुकी थीं। आयुर्वेद का अवतार त्रेता के अन्त में हुआ। भारतवर्ष के सांस्कृतिक इतिहास के लिए यह कालक्रम मूलाधार का काम देता है। यह आयुर्वेद-ज्ञान की महिमा है कि ऋषि लोग दो-दो, तीन-तीन सहस्र वर्ष पर्यन्त जीवित रहे। वर्तमान संसार की शरीर-सम्बन्धी विद्याएं आयुर्वेद के सम्मुख कोई महत्त्व नहीं रखतीं। यदि कोई कहे, सम्प्रति कोई वैद्य दीर्घ-जीवी क्यों नहीं होता, तो इसका उत्तर अत्यन्त सरल और सीधा है। राजाश्रय के बिना कोई विद्या अपना पूरा फल नहीं दिखा सकती, अतः ऐसी मांग व्यर्थ है।[3]

---

१. भारतवर्ष का इतिहास, द्वि० सं० पृ० १५७।

२. (क) श्री हेमचन्द्र राय चौधरी, ऐन एडवान्स्ड हिस्टरी आफ इण्डिया, अध्याय ६ के अन्त में, पृ० १४२ पर लिखते हैं—

The epoch of the Kushanas produced the great work of As'vaghosha,...... ....
Among other celebrities of the period mention may be made of Charaka, Sushruta,.......

(ख) श्री प. सदाशिव अल्तेकरजी, ए न्यू हिस्टरी आफ दि इण्डियन पीपल, सन् १९४६, अध्याय १०, पृ० ४१६ पर लिखते हैं—

The Charaka-samhita and the Sushruta-samhita, which had practically assumed their present form towards the end of the 2nd century A. D.

दोनों लेखकों ने यह नहीं सोचा कि विक्रम से कई सौ वर्ष पूर्व चरक-संहिता के वर्तमान रूप पर भाष्य और वार्तिक लिखे जा चुके थे। सत्य है—गतानुगतिको लोकः। योरप के पक्षपाती लेखकों ने जो "ब्रह्म-वाक्य" कह दिया, वह सब सत्य होना चाहिए। सुश्रुत धन्वन्तरि का शिष्य था। और चरकसंहिता का वर्तमान रूप वैशम्पायन-चरक-प्रदत्त है।

३. यह ईश्वरीय चमत्कार है, कि हम राजाश्रय के बिना इस इतिहास लिखने में सफल हो रहे हैं।

७. व्यास का चरण-प्रवचन (भारत-युद्ध से १००–१५० वर्ष पूर्व)

भ्रान्ति का सतत-परिकथन, हानिकर—होरेस हेमन विल्सन ने सन् १८४० में यह मत प्रकट किया कि विष्णु-पुराण सन् १०४५ के समीप रचा गया।[1] इस भूल का खण्डन होगया। तब भी अनेक लेखक इस भूल को दोहराते रहे। इस बात को उपस्थित करके विन्सेण्ट ए. स्मिथ लिखता है—

The persistent repitition of Wilson's mistake.........[2]

अर्थात्—विल्सन की भूल के निरन्तर दोहराए जाने से.........।

व्यास-विषयक भ्रान्ति—जिस प्रकार विल्सन की भूल निरन्तर दोहराई गई, उस प्रकार मोनियर विलियम्स आदि की व्यास विषयक भूल भी दोहराई गई।[3]

प्रतीत होता है, मोनियर विलियम्स की यह भूलमात्र नहीं थी। उसने अथवा उसके काल के समीप के किसी लेखक ने जान बूझकर यह भ्रान्त मत चलाया। वैबर अपने भारतीय वाङ्मय के इतिहास (सन् १८५२) में पाराशर्य व्यास को कल्पित व्यक्ति नहीं कहता। उत्तर-काल के लेखकों ने देख लिया कि व्यास को ऐतिहासिक व्यक्ति मान कर उनके भ्रान्त-वाद ठहर नहीं सकेंगे, उनका प्रचारित भाषा-वाद अति शीघ्र छिन्न-भिन्न हो जाएगा तथा उनकी स्वीकृत संस्कृत वाङ्मय की तिथियां विश्वास योग्य नहीं रहेंगी, अतः मोनियर विलियम्स तथा मैकडानल प्रभृति ने भारतीय लोगों को अन्धकार में रखने के लिए बड़ी चालाकी से

1. The aggregate of the two periods would be the Kali year 4146, equivalent to A. D. 1045. Vishnu Purana, Eng. tr. Preface, p. CXII. (ed. 1864)
   यह मूल पाठ हमने दिया है।
2. E. H. I. 4th ed. 1924; p. 22.
3. (a) Bādarāyana is very loosely identified with the legendry person named Vyāsa. M. Williams. Indian Wisdom (1876) p. III, footnote [2].
   (b) The sage Vyāsa ('separating, dividing') whom the Indian tradition names as the collector, is the personification of the whole period and activity of collection. Adolf Kaegi, the Rigveda (Eng. tr. 1886) Note 75; p. 118.
   (c) In other words, there was no one author of the great epic, though with a not uncommon confusion of editor with author, an author was recognized, called Vyāsa. Modern scholarship calls him the Unknown, Vyāsa for convenience. W. Hopkins, The great Epic of India (1901), p. 58.
   (d) but this Vyāsa is a very shadowy person. In fact his name probably covers a guild of revisors and retellers of the tale. W. Hopkins, India Old and New (1901), p. 69.
   (e) and traditionlly ascribed to one or the other of the legendry sages Bādarāyana and Vyāsa. L. D. Barnett, Brahma Knowledge (1907), p. 11
   (f) Vyāsa Pārāsarya is the name of a mythical sage. A. A. Macdonell and A. B. Keith, Vedic Index (1912), p. 339.
   (g) Tradition invented as the name of its author the designation Vyāsa ('arranger'). A. A. Macdonell, India's Past, (1927) p. 88.
   To Rāmānuja the legendry Vyāsa was the seer. Ibid, p. 149.
   (h) Fantastic as is all the information imparted to us in the introduction to the Mahābhārata about its supposed author...................M. Winternitz. Indian Literature, (Eng. tr. 1927), p. 324.

भगवान् कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास को कल्पित अथवा कहानियों का (इतिहास से असिद्ध) व्यक्ति सिद्ध करने का इन्द्रजाल रचा।

भयङ्कर फल—इस ऐन्द्रजालिक झञ्झावात का अंग्रेज़ी-शिक्षा प्राप्त भारतीय जन-समुदाय पर असाधारण प्रभाव पड़ा। भारत के वर्तमान (संवत् २००७) महामन्त्री पण्डित जवाहरलालजी ने "डिस्कवरी आफ़ इण्डिया" नामक ग्रन्थ सन् १९४६ में मुद्रित किया। इस ग्रन्थ में पाणिनि, कपिल तथा तथागत बुद्ध आदि अनेक पुरुषों की प्रशंसा तो मिलती है, पर कृष्ण द्वैपायन व्यास के विषय में एक पंक्ति भी नहीं मिलती। जो लोग भारत के महापुरुषों के विषय में इतना स्वल्प ज्ञान रखते हैं, वे भारतीयता के साथ कितना प्रेम रखेंगे।

कृष्ण द्वैपायन के एक निवास-स्थान के विषय में ह्यूनसांग—भगवान् वेद-व्यास का प्रधान निवास स्थान हिमालय में था। पर वे कभी कभी अन्यत्र भी वास कर लेते थे। चीनी यात्री ह्यूनसांग (विक्रम संवत् ६८७) लिखता है—

बिहार में राजगृह के समीप पर्वत के उत्तर की ओर एक एकान्त पहाड़ी है। यहां ऋषि व्यास रहा करता था। उसके शिष्य अब तक यहां रहते हैं।[1] इति।

ऐ पाश्चात्यो, ए स्वयंमन्य पण्डितो, ऐ "वैज्ञानिक" का भयावह रव करने वालो, क्या यह कुटिया कल्पित व्यास की थी।

हेमचन्द्र राय चौधरीजी—भगवान् व्यास के अलौकिक ग्रन्थ महाभारत को न समझकर, तथा हाप्किन्स आदि लेखकों में अन्धविश्वास करके राय चौधरीजी ने भारत-युद्ध काल के समीप के काल के इतिहास का एक सर्वथा मिथ्या कलेवर बना दिया है।[2]

कृष्ण द्वैपायन ब्राह्मण-प्रवक्ता तथा भारत-संहिता-कर्ता

कृष्ण द्वैपायन और उनके चार शिष्यों सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन और पैल तथा पुत्र शुकजी ने, अथवा सुमन्तु आदि के शिष्य-प्रशिष्यों ने वर्तमान ब्राह्मण-ग्रन्थ प्रवचन किए, तथा अन्य अनेक शास्त्र, सूत्र और इतिहास आदि ग्रन्थ बनाए। व्यास और उनके शिष्यों का संसार पर महान् उपकार है। उनकी कृपा से पुरातन संसार की विलक्षण ज्ञान-राशि का एक बहु-मूल्य अंश हमारे पास पहुंच पाया है।

ग्रन्थ संकलन काल—इस ग्रन्थ-संकलन का काल भारत-युद्ध से १००–१२० वर्ष पूर्व था। इसका विस्तृत प्रतिपादन, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, शाखा भाग, पृ० २८, २९ पर हम कर चुके हैं।[3] भारत युद्ध का काल कलियुग के आरम्भ से लगभग ३६ वर्ष पहले है। अतः

1. To the north of the great mountain 3 or 4 li is a solitary hill. Formerly the Rishi Vyâsa (Pi ye-so), (Kwangpo) lived here in solitude. By excavating the side of the mountain he formed a house. Some portions of the foundations are still visible. His disciples still hand down his teaching, and the celebrity of his bequeated doctrine still remains. Beals tr. (ed. 1906) Vol. II, p. 148.
2. P. H. A. I. 5th ed., 1950; pp. 1—57.
३. पार्जिटर यद्यपि सारी बातें नहीं समझ सका, तथापि इतनी बात ठीक समझा है कि वेद-शाखा-प्रवचन भारतयुद्ध से पूर्व हो चुका था—
He (Vyâsa) would probably have completed that work (of Vedic recensions) about a quarter of a century before the Bhârata battle, that is, about 980 B. C. (A. I. H. T. p. 318).
पार्जिटर ने भारतयुद्ध का काल ठीक नहीं समझा। उसकी लिखी अन्य अनेक बातें भी अशुद्ध हैं, पर इतनी मात्र बात ठीक है।

वेद-शाखा प्रवचन विक्रम से ३०४५ + ३६ + १०० = ३१८१ वर्ष पूर्व हुआ। जो लेखक भारत युद्ध को इतना पुराना नहीं मानते, उन्हें भी भारत युद्ध का काल निर्णय करके आगे चलना होगा। वर्तमान ऐतरेय, तैत्तिरीय, (शतपथ), जैमिनीय और ताण्ड्य आदि ब्राह्मण ग्रन्थ उनके स्वीकृत भारतयुद्ध के काल से अवश्य पूर्व के होंगे। भारतयुद्ध काल का निर्णय न करना और आर्ष-ग्रन्थों की मन-मानी तिथियां कल्पित करना ऐतिहासिकों का काम नहीं, दुराग्रही पक्ष-पातियों का काम है।

पाणिनि और वाजसनेय ब्राह्मण—योग्य संस्कृतज्ञ गोल्डस्टकर का मत है कि पाणिनि वाजसनेयि-संहिता और ब्राह्मण को नहीं जानता था।[1] कारण, ये रचनाएं पाणिनि से उत्तरकाल की हैं। अध्यापक राय चौधरी ने इस आधार पर अनेक परिणाम निकाले हैं।[2] गोल्डस्टकर का यह मत सत्य नहीं। पाणिनि महाभारत को जानता था। महाभारत में याज्ञवल्क्य के शत-पथ ब्राह्मण का स्पष्ट उल्लेख है। महाभारत का यह स्थान प्रक्षिप्त नहीं। अतः राय चौधरीजी का मत भी त्याज्य है।

वेद इस शाखा-प्रवचन से बहुत पूर्व विद्यमान थे। यह पहले प्रमाणित किया जा चुका है। व्यास का वेद-चरण-प्रवचन और भारत-संहिता-रचन, तथा वैशम्पायन का याजुष चरक शाखाओं का प्रवचन तथा आयुर्वेदीय चरक-संहिता और महाभारत-संहिता का प्रति-संस्करण आदि इस समय की प्रधान देन हैं। भारतीय इतिहास की मूलाधार बातों में यह एक महत्त्व विशेष की बात है।

८. नग्नजित्, दुर्मुख और निमि समकालिक

अध्यापक हेमचन्द्र राय चौधरीजी ने कुम्भकार जातक के प्रमाण से लिखा है कि दुर्मुख उत्तर-पञ्चालरथ का राजा था। उसकी राजधानी कंपिल नगर थी। वह कलिङ्गराज करण्डु, गान्धार नग्नजित् और वैदेह निमि का समकालीन था। जैन उत्तराध्ययन सूत्र से भी रायजी ने इस अभिप्राय का लेख प्रस्तुत किया है।

उत्तराध्ययन सूत्र मौर्य काल के समीप का ग्रन्थ है।[3] अतः उसके साक्ष्य की परीक्षा आवश्यक है।

(क) दुर्मुख पाञ्चाल

ऐतरेय ब्राह्मण ८।२३ में लिखा है कि बृहदुक्थ ऋषि ने दुर्मुख पाञ्चाल को ऐन्द्र महा-भिषेक का उपदेश दिया। उसके फलस्वरूप दुर्मुख ने पृथ्वी जीती। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में संग्रामजित् दुर्मुख उपस्थित था।[4] संग्रामजित् विशेषण ऐतरेय ब्राह्मण के लेख को पुष्ट करता है।[5]

बृहदुक्थ कब हुआ, इसका ज्ञान निम्नलिखित वंश-परम्पराओं से होगा, जो सर्वानु-क्रमणी के आधार पर बनाई गई हैं—

---

1. Panini, 1914, pp. 99, 100. 2. P. H. A. I., 1950 p. 35.

३. देखो पूर्व पृष्ठ ८९, प्रमाण ११। ४. सभापर्व ४।११॥ ५. ऐ० ब्रा० ९५।८॥

१. कुशिक	अङ्गिरा	ब्रह्मा
२. गाधी	रहूगण	वसिष्ठ
३. विश्वामित्र	गोतम	शक्ति
४. मधुच्छन्दा	वामदेव	पराशर
५. जेता	बृहदुक्थ	व्यास

इससे ज्ञात होता है कि बृहदुक्थ भारत युद्ध से १००-२०० पूर्व जीवित था।

भारतयुद्ध में दुर्मुख का पुत्र—यद्यपि भारत-युद्ध के काल में दुर्मुख का कहीं नामोल्लेख नहीं मिलता, तथापि उसके पुत्र जनमेजय का नाम मिलता है। जनमेजय सोमकात्मज था।[1] वह पाण्डव पक्ष की ओर से लड़ रहा था। कर्ण को सुनाकर आचार्य कृप कह रहा है, जिस युधिष्ठिर के ऐसे सहायक हैं, वह कैसे पराजित हो सकता है—

> धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः। चन्द्रसेनो रुद्रसेनः कीर्तिधर्मा ध्रुवो धरः॥ १८॥
> वसुचन्द्रो रामचन्द्रः सिंहचन्द्रः सुतेजनः। द्रुपदस्य तथा पुत्रा द्रुपदश्च महास्त्रवित्॥ १९॥

यहां श्लोक के द्वितीय चरण में दुर्मुख के पुत्र सोमक जनमेजय का स्पष्ट उल्लेख है। प्रतीत होता है भारतयुद्ध के समय दुर्मुख सोमक की मृत्यु हो चुकी थी।

(ख) नग्नजित् दारुवाह

महाभारत आदिपर्व में नग्नजित् और उसके कुल का विस्तृत वर्णन मिलता है।[2] शतपथ ब्राह्मण ८।१।४।१० में गान्धार नग्नजित् और उसके पुत्र का उल्लेख है। नग्नजित् की कन्या सत्या श्रीकृष्ण से ब्याही गई थी।[3] नग्नजित् अपर नाम दारुवाही राजर्षि और वैद्य था।[4] वह वैदेह निमि का समकालिक था। आयुर्वेद के ग्रन्थों से यह प्रमाणित होता है।

(ग) निमि द्वितीय जनक

हमने इस निमि को द्वितीय लिखा है। नेमि अथवा निमि प्रथम विदेहों के वंश का कर्ता था। उसका पुत्र मिथि था। निमि द्वितीय का पुत्र कराल था। निमि और कराल आयुर्वेद के शालाक्य तन्त्रकार थे। इनका विस्तृत वृत्त हम भारतवर्ष का इतिहास, प्रथम संस्करण (सं० १९९७) पृ० १९७-२००, तथा द्वितीय संस्करण (संवत् २००३) पृ० १८९-१९२ पर लिख चुके हैं। अध्यापक राय चौधरीजी के इतिहास का चौथा संस्करण सन् १९३८ (संवत् १९९५) में प्रकाशित हुआ था। उसमें निमि और कराल विषयक अनेक बातें नहीं थीं, जो हमने अपने इतिहास में पहली बार सप्रमाण लिखी थीं। अब अध्यापकजी के सन् १९५० =

१. कर्णपर्व ८६।१७–१२ श्लोकों को मिलाकर पढ़ने से यह ज्ञात होता है।
२. देखो, पूर्व पृष्ठ १६५, १६६।   ३. हमारा भा. इ. पृ. १४६।
४. हमारा भारतवर्ष का इतिहास द्वि० सं पृ० १४८।

संवत् २००७ के पांचवें संस्करण में पृ० ८१-८३ तक हमारी लिखी अनेक बातें मिलती हैं। विद्वान् सोच लें कि अध्यापक जी ने ये कहां से ली हैं। अस्तु।

इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं कि नग्नजित्, निमि और दुर्मुख समकालिक थे। कलिङ्गों का करण्डु भी उनका समकालीन था। बौद्ध और जैन ग्रन्थों का एतद्विषयक लेख ठीक है।

इन सबका काल भारतयुद्ध से लगभग ५० वर्ष पूर्व का था।

पं० उदयवीरजी का आक्षेप—श्री पं० उदयवीरजी शास्त्री का मत है कि महाभारत के अनुसार कराल जनक त्रेता के आरंभ में होने वाले प्रथम निमि का पुत्र था। इस बात को सिद्ध करने के लिये उन्हें मिथि और कराल नामों का किसी स्वतन्त्र प्रमाण से ऐक्य सिद्ध करना होगा। एक और बात उन्हें स्मरण रखनी चाहिए। महाभारत के इस प्रसङ्ग के अन्त में भीष्मजी कहते हैं कि सांख्य प्रतिपादित यह ब्रह्म-ज्ञान मैंने देवर्षि नारद से प्राप्त किया और नारद ने वसिष्ठ ऋषि से प्राप्त किया। हम तो ऋषि आयु को बहुत दीर्घ मानते हैं, पर पण्डितजी इस प्रसंग में मैत्रावरुणी वसिष्ठ और देवर्षि नारद का आयु कितना मानेंगे। भीष्म साक्षात् नारदजी से सीख रहा है। अब इतना इतिहास पण्डितजी को भी जोड़कर दिखाना होगा। परंपरा प्रकट करने वाले इन श्लोकों को प्रक्षिप्त कहकर पण्डितजी पीछा नहीं छुड़ा सकते। पण्डितजी अधिकांश बातें सन्देह जनक शब्दों में लिखते हैं। यथा-शक्ति, वसिष्ठ के वंश में उत्पन्न हुआ होगा, अथवा उसके पिता का भी नाम वसिष्ठ रहा हो। इति (सांख्य दर्शन का इतिहास, सं० २००७, पृ० ४८८)। अनुमान सदा होते हैं, पर जिस सिद्धान्त से दूसरे का खण्डन किया जाता है, वह अनुमान रूप में नहीं होता। सब पुरातन इतिहासों और ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार शक्ति एक था, और वह दाशरथि राम कालिक वसिष्ठ का पुत्र था। इसका विस्तार यथा स्थान करेंगे। इतिहास में सिद्धान्त निर्णीत करने में अनुमान करके बैठ जाने से काम नहीं चलता।[1]

६. भारतयुद्ध काल

पूर्व पृष्ठ १५८—१६१ पर कलि संवत् का विस्तृत वर्णन हो चुका है। कलि आरंभ से लगभग ३६, ३७ वर्ष पूर्व महाभारत का लोमहर्षण युद्ध हुआ। संसार भर के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व घटना थी। महर्षि कृष्ण द्वैपायन की कृपा से इस काल का लोकोत्तर-इतिहास हमारे पास आज भी उपस्थित है। इस अपूर्व इतिहास-रत्न के विरुद्ध पक्षपाती लेखकों ने एक दूषित आन्दोलन किया है और भारतयुद्ध को कल्पित घटना लिखा है—

विंसेंट ए-स्मिथ की धृष्टता—ब्रिटिश शासन का वेतन-भोगी लेखक स्मिथ लिखता है—

The political history of India begins for an orthodox Hindu more than three thousand years before the Christian era with the famous war waged on the banks of the Jumna, between the sons of Kuru and the sons of Pandu, as related in the vast epic known as the Mahābhārata. But the modern critic fails to find sober history in bardic tales, and is constrained to travel down the stream of time much farther before he comes to an anchorage of solid fact.[2]

---

१. यह पण्डितजी के लेख का अति संक्षिप्त खण्डन है। विद्वान् पण्डितजी इतने मात्र से सब समझ लेंगे।

2. E. H. I. 4th ed. 1924, p. 23.

अर्थात्—परंपरा में विश्वास रखने वाले हिन्दू मानते हैं कि भारत का राजनीतिक इतिहास ईसा से ३००० वर्ष से अधिक पूर्व से आरंभ होता है, जब यमुना के तट पर कुरु-पाण्डवों का प्रसिद्ध-युद्ध हुआ, जो महाभारत में वर्णित है। परन्तु वर्तमान आलोचक भाटों की कहानियों में उचित और युक्त इतिहास नहीं पाता। वह बहुत काल पश्चात् वास्तविक घटनाओं को देखता है।

इस लेख से निम्नलिखित परिणाम निकलते हैं—

१. परंपरा में विश्वास रखने वाले हिन्दू मूर्ख हैं।

२. कुरु-पाण्डव युद्ध यमुना-तट पर हुआ।

३. महाभारत ग्रन्थ भाटों की कहानी है।

४. वर्तमान आलोचक बहुत बुद्धिमान हैं।

५. वर्तमान आलोचक महाभारत आदि की घटनाओं को वास्तविक नहीं मानता।

स्मिथ के इस प्रमत्त-प्रलाप पर हम कोई टिप्पण नहीं करना चाहते। वे दिन गए, जब बृटिश शासन के आश्रय पर ऐसी बातें लिखी जाती थीं। अब तो केवल अंग्रेजी पढ़े, लिखे और स्मिथ आदि के उच्छिष्टभोजी ही ऐसी बातें लिख सकते हैं।

भारत-युद्ध भारतीय-इतिहास के काल-क्रम का एक श्रेष्ठ आधार है। काल-विषयक सब गणनाएं इससे पूर्व और पश्चात् की दृष्टि से सरल रहती हैं। भिन्न भिन्न लेखकों ने भारत-युद्ध के भिन्न भिन्न काल माने हैं। परन्तु महाभारत का जो आन्तरिक साक्ष्य है उसके सम्मुख दूसरे मतों का कोई मूल्य नहीं। अलबेरूनी और कल्हण की भूल का प्रदर्शन हम भारतवर्ष का इतिहास द्वितीय संस्करण, पृ० २०७, २०८ पर कर चुके हैं।

१०. शौनक कुलपति–(भारतयुद्ध से ६०–२६०)

द्वादश वार्षिक सत्र—भारत-युद्ध के लगभग ६० वर्ष पश्चात् महाराज जनमेजय तृतीय के सर्प-सत्र के समय नैमिषारण्य में भार्गव-कुल का कुलपति शौनक बारह वर्ष का सत्र कर रहा था।[1] लोमहर्षण का पुत्र उग्रश्रवा सूत सर्पसत्र की समाप्ति के पश्चात् इस यज्ञ में आया। वह कुलपति शौनक और दूसरे *ऋषियों से मिला। इस कुलपति भृगुकुलोत्पन्न शौनक के विषय में* ऋषियों ने सूत से कहा कि वह शौनक देव, असुर, मनुष्य, उरग=नाग और गन्धर्वों की सब कथाएं जानता है। वह शौनक विद्वान् अर्थात् संहिताकार तथा शास्त्र और आरण्यक में गुरु है।[2] तत्पश्चात् सूत ने महाभारत की कथा सुनाई। महाभारत की कथा सुन कर कुलपति सर्वशास्त्र-विशारद शौनक बोला—

नैमिषारण्ये कुलपतेः शौनकस्तु महामुनिः।
सौतिं पप्रच्छ धर्मात्मा सर्वशास्त्र-विशारदः॥१।१।४॥

अर्थात्—कुलपति और सर्वशास्त्र-विशारद शौनक पूछने लगा कि अब वृष्णि-अन्धकों की कथा सुनाएं।

---

१. आदिपर्व १।१॥४।१॥ २. आदिपर्व, अध्याय ४।४,५॥

शतानीक और शौनक—जनमेजय तृतीय के पुत्र महाराज शतानीक ने शौनक से आत्मोपदेश लिया।[1] शौनक ने उसे पूर्वश्रुत महाभारत-संहिता-अन्तर्गत ययाति चरित सुनाया।[2] मत्स्य पुराण २५।३ में स्पष्ट उल्लेख है—

एतदेव पुरा पृष्टः शतानीकेन शौनकः।

अर्थात्—पुराने काल में शतानीक द्वारा पूछे गए शौनक ने यह कथा कही थी।
चरित श्रवण के अनन्तर शतानीक ने उसे विपुल धन दिया।

कुरुक्षेत्र में दीर्घसत्र—महाराज अधिसीम कृष्ण के काल में नैमिषारण्य-वासी ऋषियों ने कुरुक्षेत्र में दृषद्वती के तट पर एक दीर्घसत्र आरम्भ किया। इस यज्ञ में गृहपति सर्वशास्त्र विशारद [शौनक] उपस्थित था।[3]

पूर्वोक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि महाभारत के प्रथम श्रवण समय शौनक आरण्यक में गुरु था। वह अनेक शास्त्र बना चुका था।

ऐतरेय आरण्यक—वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, पृ० २२५,२२६ पर हम लिख चुके हैं कि ऐतरेय आरण्यक के पहले तीन आरण्यक ऐतरेय प्रोक्त, चतुर्थ आश्वलायन-प्रोक्त और पञ्चम शौनक प्रोक्त हैं। आश्वलायन शौनक का शिष्य था। अतः स्पष्ट है कि नैमिषारण्य में महाभारत-श्रवण के समय अथवा भारत-युद्ध के ६० वर्ष पश्चात् तक शौनक और आश्वलायन ऐतरेय आरण्यक का संपादन कर चुके थे।

द्वादशाहिक सत्र और प्रातिशाख्य निर्माण—गृहपति शौनक दीर्घजीवी ऋषि था। अपने दीर्घजीवन में उसने एक द्वादशाहिक सत्र किया। उसमें उसने ऋक्प्रातिशाख्य का निर्माण किया। ऋक्प्रातिशाख्य का वृत्तिकार विष्णुमित्र अपनी वृत्ति के आरम्भ में परम्परागत एक पुरातन श्लोक उद्धृत करता है—

शौनको गृहपतिर्वै नैमिषीयैस्तु दीक्षितैः। दीक्षासु चोदितः प्राह सत्रे तु द्वादशाहिके॥

अर्थात्—द्वादशाह सत्र में शौनक ने ऋक् पार्षद शास्त्र का अवतार किया।

शौनक कृत शास्त्र

१. आथर्वण शौनक शाखा।
२. ऐतरेय आरण्यक (आ० पञ्चम)।
३. कल्पसूत्र।
४. ऋक् प्रातिशाख्य।
५. ऋग्वेदीय दश अनुक्रमणियां।
६. बृहद्देवता।
७. आथर्वण चतुरध्यायी।
८. चरण व्यूह।
९. ऋग्विधान।

उद्धृत आचार्य

शौनक ने अपने ग्रन्थों में निम्नलिखित शास्त्र तथा आचार्य स्मरण अथवा उद्धृत किए हैं—

१. विष्णु ४।२१।४॥ २. मत्स्य २५।४,६॥
३. वायु १।२१॥

ऐतरेय पञ्चमारण्यक में—जातूकर्ण्य, गालव, आग्निवेश्यायन[1] ।

ऋक् प्रातिशाख्य में—अन्यतरेय, आगस्त्य, गार्ग्य, पञ्चाल, प्राच्य-पञ्चाल, बाभ्रव्य, माण्डव्य, माण्डूकेय, यास्क, व्याडि, शाकटायन, शाकल, शाकल्य वेदमित्र, शाकल्य स्थविर, शाकल्यपिता, शूरवीर-सुत, शैशिरि, प्रदेशशास्त्र,[2] वेदाङ्ग ।

बृहद्देवता में इस प्रसंग के आवश्यक नाम—आश्वलायन, ऐतर, औपमन्यव, और्णवाभ, गार्ग्य, गालव, निदान, नैरुक्त, पैङ्ग्य, यास्क, रथीतर, शाकटायन, शाकपूणि, शौनक ।

शौनक गृह्य में—सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल, सूत्र, भाष्य, भारत, महाभारत, धर्माचार्य।

शौनक से स्मृत ये नाम इतिहास का अत्यन्त निर्मल और स्वच्छ स्वरूप हमारे सामने उपस्थित करते हैं। इनमें से निम्नलिखित कुछ एक नाम इतिहास का कालक्रम जानने के लिए बहुत उपयोगी हैं—यास्क, व्याडि, आश्वलायन, सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन, पैल, सूत्र, भाष्य, भारत, महाभारत, धर्माचार्य ।

व्याडि वैयाकरण पाणिनि का मामा था। वह रसशास्त्र का विशेष आचार्य, अतः दीर्घजीवी पुरुष था। उसका संग्रह नामक ग्रन्थ लक्ष श्लोकात्मक कहा जाता है।[3]

सूत्रकार आश्वलायन नैमिषारण्य के कुलपति शौनक का शिष्य था। आश्वलायन अपने श्रौत-सूत्र के अन्त में शौनक को नमस्कार करता है। षड्गुरुशिष्य लिखता है कि आश्वलायन के श्रौतसूत्र के रचे जाने के कारण गुरु शौनक ने अपना सूत्र प्रचलित नहीं किया।[4]

धर्माचार्य का अर्थ है, धर्मसूत्र रचयिता। सुमन्तुका धर्मसूत्र शौनक के गृह्यसूत्र से पहले रचा जाचुका था। सर्प-सत्र में सामग उद्गाता वृद्ध कौत्स आर्य जैमिनि उपस्थित था।[5] वह अपने कल्पसूत्र और मीमांसासूत्र रच चुका था। उसकी साम-संहिता और जैमिनीय ब्राह्मण और आरण्यक भारतयुद्ध से बहुत पूर्व प्रवचन हो चुके थे।

महाभारत

शौनक महाभारत का नाम स्मरण करता है। पूर्व लिखा गया है कि नैमिषारण्य के द्वादशवर्ष के सत्र में शौनक ने सूत-मुख से महाभारत की अश्रुतपूर्व कथा सुनी। अतः यह निर्विवाद है कि भारत-युद्ध के १०० वर्ष के अन्दर-अन्दर महाभारत ग्रन्थ बन गया था। महाभारत में निरुक्तकार यास्क ऋषि स्मरण किया गया है। इस प्रमाण को सबसे पहले पं० सत्यव्रत सामश्रमीजी ने प्रस्तुत किया था। इतिहासानभिज्ञ लोगों को इसका महत्त्व पता नहीं लगा। उनमें से अनेक ने पक्षपात के कारण इस पर विचार ही नहीं किया।

याज्ञवल्क्य का वाजसनेय अथवा शतपथ ब्राह्मण भी बन चुका था। सांख्य के पञ्चशिख तथा वार्षगण्य आदि के ग्रन्थ उस समय पढ़े जाते थे।

---

१. तै० ब्रा० १२।३२ में भी उद्धृत। २. सांख्ययोग शास्त्र।

३. देखो, पं० युधिष्ठिरजी मीमांसककृत संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पृ० २०१।

४. वेबर सदृश लेखक को यह तथ्य स्वीकार करना पड़ा कि नैमिष का शौनक आश्वलायन का गुरु था—

It is atleast not impossible that the teacher of Âśvalayana and the sacrificer in the Naimisha forest are identical. History of I. literature; (Eng. tr. 1914) p. 34.

५. हमारा, भारतवर्ष का इतिहास, द्वि० सं०, पृ० १११।

यास्क

निरुक्तकार यास्क भारत-युद्ध के समीप का मुनि है। वह अक्रूर की मणिधारण-कथा को जानता था। अक्रूरजी वृष्णि-संघ के मन्त्रियों में से एक थे। यास्क औपमन्यव, शाकपूणि [रथीतर] और मैत्रायणीयों की अवान्तर-शाखा हारिद्रविक का भी स्मरण करता है। शाकटायन और गार्ग्य आदि वैयाकरण उससे पहले हो चुके थे।

औपमन्यव आचार्य का कल्पसूत्र बहुत प्रसिद्ध है। अतः पुराने इतिहास का निम्नलिखित क्रम सर्वथा सत्य है—

कृष्ण द्वैपायन व्यास
|
जैमिनीय ब्राह्मण, सुमन्तु का धर्मसूत्र . सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन, पैल, चरकसंहिता, तै० सं०, तैत्तिरीय ब्राह्मण आदि, शाकपूणि रथीतर का निरुक्त
|
औपमन्यव कल्प याज्ञवल्क्य—शतपथ
|
शाकटायन—व्याकरण
|
शाम्बव्य कल्प और आयुर्वेद शास्त्र का कर्ता यास्क—निरुक्त
|
महाभारत.
|
शौनक—प्रातिशाख्य आदि
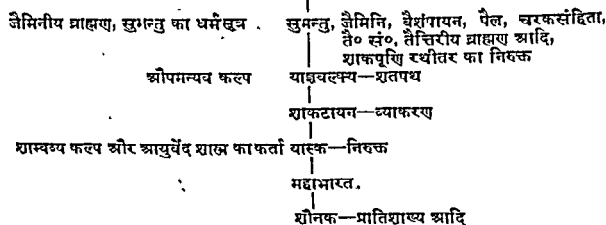
शौनक के शिष्य—आश्वलायन और कात्यायन शौनक के प्रधान शिष्य थे। आश्वलायन का श्रौतसूत्र सुप्रसिद्ध है।

आश्वलायन-स्मृत कतिपय ग्रन्थ या आचार्य—ऐतरेयिण, गौतम, कौत्स, गाणगारि, पुराणविद्या वेद, इतिहासवेद, शौनक, कल्पसूत्र, इतिहास, पुराण, सांख्य आचार्य, सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल, सूत्र, भाष्य, महाभारत, धर्माचार्य, शाम्बव्य। गृह्यसूत्र १।११।१ में—उपनिषदि गर्भलम्भनं, लिखकर बृहदारण्यक का स्पष्ट स्मरण है।

शाम्बव्य का कौषीतकि गृह्यसूत्र—यह सूत्र आश्वलायन के काल से कुछ पूर्व का सूत्र है। धृतराष्ट्र के वनवास ग्रहण करने से पूर्व जो सभा हुई थी, उसमें बह्वृच शाम्बव्य उपस्थित था। गृह्यसूत्र महाभारत की रचना के पश्चात् बना है। इसमें आश्वलायन सूत्र के समान सुमन्तु और व्यास शिष्य स्मृत हैं। महाभारत भी स्मृत है। बाभ्रव्य का नाम सोमशर्मा लिखा है और पाञ्चाल वेदमित्र है। आचार्य शौनक स्मृत है। बिना नाम सांख्य आचार्य स्मरण किए गए हैं। मनु के अनेक श्लोक इस सूत्र में उद्धृत हैं। पाश्चात्य मिथ्या भाषा-वाद का आश्रय लेने वाले बूहलर, जालि, काणे आदि लेखकों ने वर्तमान मनुस्मृति का काल विक्रम के समीप का माना है। इस आपत्ति को देखकर यौवन में परलोक गमन करने वाले हमारे मित्र टी. आर. चिन्तामणि जी ने कौषीतकि गृह्य की भूमिका[1] में लिखा—

---

१. मद्रास विश्वविद्यालय संस्करण, सन् १९३४, पृ० १७, १८।

The only thing that could be said without hesitation is that the Grihya is later than the Manusmriti.............. Modern orientalists place him (Manu) between the 2nd century B. C. and the 2nd century A. D............. Anyway, all are agreed on this fact the Manusmriti was in existence before the 2nd century A D. Since the Grihya Sutra of the Kaushitakins cites from the Manusmriti, it may be said that the work must have been composed sometimes after the 2nd century, A. D.; but this is not definite. The work might have been much older.

अर्थात्—पाश्चात्य लेखक मनुस्मृति को ईसा से दूसरी शताब्दी पूर्व से ईसा की दूसरी शताब्दी तक का मानते हैं। अतः मनुस्मृति के श्लोकों को उद्धृत करने के कारण शाम्बव्य का कौषीतकि गृह्यसूत्र ईसा की दूसरी शती से पश्चात् का ग्रन्थ हो सकता है। पर यह निश्चित नहीं। गृह्यसूत्र बहुत पुराना ग्रन्थ भी हो सकता है। चिन्तामणिजी कैसी द्विविधा में पड़े हैं। इतो व्याघ्र इतस्तटी। इधर भय है कि यदि वे मनुस्मृति के काल को ईसा की दूसरी शती से बहुत पूर्व का मानें तो पाश्चात्य लेखक उन्हें विद्वान् नहीं मानेंगे, और उधर भय है कि गृह्यसूत्र का काल ईसा की दूसरी शती से पश्चात् का कैसे हो सकता है। असमञ्जस है। वे अपना मार्ग नहीं देख सके। उनमें इतना कहने का साहस नहीं हुआ, कि मनुस्मृति बहुत पुराना ग्रन्थ है।

भारत के सुन्दर, स्वच्छ शृङ्खलाबद्ध सत्य इतिहास को स्वार्थी, पक्षपाती ईसाई लेखकों ने कितना नष्ट किया है, उसका यह मुंह-बोलता चित्र है। शाम्बव्य भारत-युद्ध काल का मुनि था। उसे आश्वलायन स्मरण करता है। वह विक्रम से ३००० वर्ष पूर्व जीवित था। मनुस्मृति उससे बहुत पूर्व विद्यमान थी। उसने अपने जीवन के परवर्ती काल में महाभारत ग्रन्थ सुन लिया था। और तत्पश्चात् गृह्यसूत्र रचा था। इन सत्य घटनाओं को न मानना मानवता के साथ द्रोह करना है। ऐ "Sober", "Scientific" और "Critical" लेखको! तुम्हारे पाप का पारावार नहीं है। तुमने संसार की सब से उन्नत, ज्ञानवती और महती जाति और उसके वाङ्मय को जो कलुषित सिद्ध किया है, उसका खण्डन पढ़ो और अपनी योग्यता का उद्घाटन देखो।

कात्यायन और पाणिनि

आश्वलायन का सहपाठी पर वय में बहुत छोटा साथी मुनि कात्यायन था। कात्यायन से कुछ बड़ा और मुनि व्याडि का भागिनेय वैयाकरण पाणिनि था। इनका समकालिक और जैमिनि के मीमांसा सूत्रों पर भाष्य रचने वाला आचार्य उपवर्ष था।

कात्यायन के ग्रन्थ—श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, शुल्बसूत्र, ऋक् बृहत् सर्वानुक्रमणी, वाजसनेय प्रातिशाख्य, कर्मप्रदीप, भ्राज श्लोक, याजुष परिशिष्ट आदि। व्याकरण के वार्तिक कात्यायन पुत्र वररुचि के हैं, यह पं० युधिष्ठिरजी ने लिखा है।[१] कात्यायन अपने कर्मप्रदीप में गोभिल का स्मरण करता है। कर्म प्रदीप ३।१०।६ में भीष्मस्य दद्यतः पिण्डान् पाठ है। स्पष्ट है तब भारत युद्ध हो चुका था। कर्मप्रदीप ३।७।२१ में गौतम, शाण्डिल्य और शाण्डिल्यायन स्मृत हैं।

१. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पृ० २१२।

गोभिल गृह्यसूत्र का भाष्यकार भट्टनारायण कर्मप्रदीपकार को ३।१०।८ तथा ४।१।२१ में वाक्यार्थविद् लिख कर प्रकट करता है कि कर्मप्रदीप का कर्ता वाक्यकार अथवा वार्तिककार था।

कात्यायन के भाष्यकार—जो लोग कात्यायन को तीसरी शती पूर्व ईसा में रखते हैं, उन्होंने कात्यायन के विषय में कभी गंभीर विचार नहीं किया। कात्यायन श्रौत के भाष्यकार भर्तृयज्ञ और पितृभूति तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से कहीं पूर्व के हैं। इनका वर्णन कल्पसूत्रों के इतिहास में करेंगे।

बौधायन

पाणिनि का उत्तरवर्ती बौधायन मुनि था। बौधायन ने कल्पसूत्र रचा और वेदान्तसूत्र वृत्ति लिखी। अपने कल्पसूत्र प्रवराध्याय ३ में वह काशकृत्स्न, पाणिनि और आपिशलि का स्मरण करता है। ये तीनों महा वैयाकरण थे।[1] अपने धर्मसूत्र में बौधायन महाभारत का श्लोक उद्धृत करता है,[2] तथा लिखता है—

काण्वं बौधायनं तर्पयामि। आपस्तम्बं सूत्रकारं तर्पयामि। सत्याषाढं हिरण्यकेशिनं तर्पयामि। वाजसनेयिनं याज्ञवल्क्यं तर्पयामि। आश्वलायनं शौनकं तर्पयामि। व्यासं तर्पयामि।२।५।६।१४॥

ये सब आचार्य उसके पूर्ववर्ती थे। काण्व-बौधायन शुक्ल-याजुष शाखाकार है।

श्रौतसूत्र में कात्यायन—वात्स्य, भारद्वाज, कार्ष्णाजिनि, लौगाक्षि आदि का स्मरण करता है।

वायु और मत्स्य पुराण

इन सब के पश्चात् वायु और मत्स्य आदि पुराणों का अधिकांश वर्तमान भाग रचा गया। अतः शौनक के पश्चात् का कालक्रम निम्नलिखित है—

गोभिल मशक
|
उपवर्ष, आश्वलायन, कात्यायन, पाणिनि,
|
आपस्तम्ब,[3] सत्याषाढ
|
बौधायन
|
वायु और मत्स्य पुराण
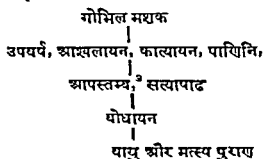
इस प्रकार ज्ञात होता है कि कल्पसूत्रकारों में बौधायन अन्तिम है। बौधायन के पश्चात् वायु और मत्स्य पुराणों का संकलन हुआ।

---

१ तत्रैव, पृ० ११८। २. देखो पूर्व पृ० ८१।

३. आपस्तम्ब धर्मसूत्र में स्मृत कुछ एक ग्रन्थ और आचार्य—वाजसनेयि ब्राह्मण, हारीत, कौत्स, काण्वायनि, कण्व, पुष्करसादि, पुराण, भविष्यत्पुराण।

श्रौतसूत्र में—वाजसनेयिन, वाजसनेयक, आश्मरथ्य, आलेखन।

इस परंपरा को स्पष्ट समझने के लिए एक अन्य वंशक्रम ध्यान करने योग्य है—

कौरव जनमेजय तृतीय
- चन्द्रापीड
  - सत्यकर्ण समकालिक पिप्पलाद और कौशिक भ्राता
    - श्वेतकर्ण
      - अजपार्श्व[1]
- सूर्यापीड
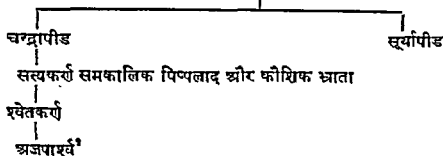
कौशिक ने आथर्वण कौशिक सूत्र बनाया। उधर जनमेजय और उसके उत्तर काल में शौनक और आश्वलायन आदि मुनि थे।

अध्यापक कालेण्ड और बौधायन का काल—राथ, वैबर, मैक्समूलर, मैकडानल और कीथ की अपेक्षा यूट्रेख्ट (हालेण्ड) के अध्यापक कालेण्डजी संस्कृत के अधिक पण्डित थे। यदि उन्हें भारतीय-शिक्षा मिलती, तो वे बहुत चमक उठते। उनका हमारा पत्र-व्यवहार बहुत दिन रहा। उनके अनेक लेख यद्यपि इतिहास ज्ञान का साक्ष्य नहीं देते, पर गम्भीरता से विचार-योग्य हैं। वे लिखते हैं—

In either case Āpastamba may be left out of account, as is also the case with Hiranyakesin whose sutra is undoubtedly younger than the Apastambiya, as well as with the Vaikhānasa, the latest of all the adhvaryu sutras. As to Bhāradvaja little can be said at present. His sutra is probably very closely related to that of Hiranyakesin though it is perhaps somewhat older. There remains, then, to be taken into account the Sutra of the Baudhāyaniyas which, not withstanding Hillebrandts remarks in the Gott. Gel. Anz. (1903, page 945) I continue to regard as the oldest Sutra of the Taittiriya Sākha. (p. 94).

That the Sutra of Baudhāyana must have been known to the authors of the Vajasneyi Brahmana. (p. 98)

अध्यापक कालेण्ड के पूर्वोक्त लेख के अनुसार इन ग्रन्थों का निम्नलिखित परंपरा-क्रम बनता है—

बौधायन
|
वाजसनेय शतपथ ब्राह्मण
|
आपस्तम्ब
|
भरद्वाज
|
हिरण्यकेशीय
|
वैखानस

१. जर्मन किर्फेल का पुराण पञ्चलक्षण, पृ० ५५६।
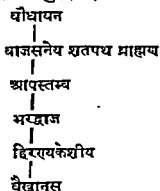
यह क्रम इतिहास विरुद्ध—यदि यह क्रम स्वीकार कर लिया जाए तो इसमें निम्नलिखित दोष आते हैं—

१. बौधायन अपने सूत्र में काशकृत्स्न, आपिशलि और पाणिनि का स्मरण करता है। पाणिनि के गणपाठ में वाजसनेयिन् स्मरण किए गए हैं। यह गण प्रक्षित नहीं हैं।

२. बौधायन श्रौतसूत्र तथा गृह्य और धर्म सूत्र एक व्यक्ति की रचना हैं। बौधायन धर्मसूत्र में महाभारत आदिपर्व का एक श्लोक उद्धृत है। बौधायन यदि आदिपर्व की तत्सम्बन्धी कथा को जानता था, तो महाभारत को अवश्य जानता था। महाभारत में वाजसनेय ब्राह्मण के प्रवचन का वृत्त मिलता है। बौधायन से स्मृत पाणिनि भी महाभारत ग्रन्थ को जानता था।

३. बौधायन ने वेदान्तसूत्र पर वृत्ति लिखी। वह वेदान्त सूत्रों का परवर्ती था। ये वेदान्त सूत्र महाभारत के रचन के पश्चात् लिखे गये थे। अतः बौधायन बहुत उत्तर काल का है। जो कोई ऐसा न माने उसे दो बौधायन सिद्ध करने पड़ेंगे। इस सिद्धि के बिना उसे पक्ष स्थापित करने का साहस नहीं करना चाहिए।

बादरायण के ब्रह्मसूत्रों से पूर्व अन्य ब्रह्मसूत्र—गीता में ब्रह्मसूत्र का उल्लेख है। ये ब्रह्मसूत्र पञ्चशिख आदि आचार्यों के थे। इस का विस्तृत वर्णन अन्यत्र करेंगे।

४. बौधायन की वेदान्त वृत्ति का पाणिनि के समकालिक आचार्य उपवर्ष ने संक्षेप किया था। बौधायन की आयु को लम्बा मानकर भी यह आक्षेप अपरिहार्य रहेगा कि वाजसनेय ब्राह्मण बौधायन के उत्तर काल में नहीं बना। वाजसनेय ब्राह्मणान्तर्गत बृहदारण्यक की अनेक श्रुतियां मूल वेदान्त सूत्रों में प्रतीक से उद्धृत हैं। उन श्रुतियों पर बौधायन ने वृत्ति लिखी। बौधायन के पश्चात् उपवर्ष ने भी उन्हीं श्रुतियों पर अपनी टीका की। उपवर्ष और बौधायन की वृत्तियों का अस्तित्व शङ्कर और रामानुज दोनों मानते हैं। अतः यह कहने से काम नहीं चल सकता कि वेदान्तसूत्र ईसा की प्रथम शती में बने अथवा उपवर्ष ने इन पर भाष्य नहीं लिखा, अथवा उपवर्ष तीसरी, चौथी शती ईसा का व्यक्ति है।[1]

इन हेतुओं से कालेण्ड की कल्पना अपास्त होती है।

आश्वलायनसूत्र में महाभारत शब्द और पाश्चात्य लेखक—अध्यापक वेबर अपने इतिहास में लिखता है—

We must assume with Roth, who first pointed out the passage in Asvalayana, that this passage, as well as the one in the Sānkhāyana, has been touched up by later interpolation; otherwise the dates of these two Grihya Sutras would be brought down too far.[2]

---

१. ऐसी अज्ञान की बात अध्यापक हेमचन्द्र राय चौधरीजी ने वार्षगण्य सांख्याचार्य के विषय में लिखी है—It (The Adi Parva) mentions,......................Varshaganya, the Samkhya philosopher who probably flourished in the fourth or fifth century after Christ .... (P. H. A. I. 5th ed. 1950, p. 5) अर्थात् सांख्याचार्य वार्षगण्य ईसा की चौथी या पांचवीं शती में था।

यह मत अध्यापकजी ने अपने पाश्चात्य गुरु कीथ से ग्रहण किया। गुरु, चेले दोनों का ज्ञान दिखाई दे जाता है।

2. H. I. L. p. 58.

अर्थात्—राथ के समान वेबर मानता है कि आश्वलायन तथा शांखायन के गृह्यसूत्रों में ऋषि-तर्पण के प्रकरण में भारत, महाभारत आदि पद प्रक्षिप्त हैं, अन्यथा इन सूत्रों का काल बहुत नया मानना पड़ेगा। इति।

इसी कथन को वह पुनः दोहराता है।[1]

केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया में हाप्किन्स इस विषय के सम्बन्ध में लिखता है—

Although the words are assumed by modern scholars to be interpolated, the reason given, 'because otherwise it would make the Sutra too late', has never been very cogent, since the end of the Sutras and beginning of the epics probably belong to about the same time.[2]

अर्थात्—यद्यपि आधुनिक विद्वान् आश्वलायन और शांखायन के सूत्रों में भारत और महाभारत पाठ को प्रक्षिप्त मानते हैं, परन्तु उनके हेतु युक्त नहीं हैं। सूत्रों का अन्तिम रचन और रामायण, महाभारत का आरम्भ संभवतः एक काल में हुआ।

इस सम्बन्ध में विण्टर्निट्ज़ का लेख—जर्मन अध्यापक विण्टर्निट्ज़ लिखता है—

The date of the Aśv. Grihya is, however, entirely unknown, and lists of this nature could easily have been enlarged at any time in Asvalayanas *school*. For this reason we are not justified in drawing a chronological conclusion from this passage.[3]

अर्थात्—आश्वलायन गृह्यसूत्र का काल सर्वथा अनिश्चित है। और ऐसी सूचियां उस शाखा वाले कभी भी बढ़ा सकते थे। अतः ऐसे वचनों से कालक्रम का कोई परिणाम नहीं निकालना चाहिए। इति।

वाह विण्टर्निट्ज़जी, आप सबके गुरु निकले। प्रत्येक शाखा वाले जिस सावधानी से अपने पाठ सुरक्षित रखते थे, उतनी ही असावधानी का आरोप आप उन पर लगा रहे हैं। अपने असत्य अनुमान को, अपनी सारहीन कल्पना को आप हेतु कहते हैं, यह आपकी विद्या का उदाहरण है। शौनक, आश्वलायन, शांखायन और कौषीतकि सब के गृह्यसूत्रों में क्या एक सा प्रक्षेप होना था। आश्वलायन का काल सर्वथा निश्चित है, ऐसा हम पहले लिख चुके हैं। उस काल को अनिश्चित कहना पाश्चात्य विद्वत्ता का खोखलापन है, उसकी लाचारी है।

आश्वलायन के तद्विषयक सूत्र के पाठ पर पहला गम्भीर विचार श्री एन. बी. उत्तीकरजी ने किया था।[4] उन्होंने सिद्ध किया कि आश्वलायन के पाठ में प्रक्षेप नहीं है।

राय चौधरी और आश्वलायन—राय चौधरीजी ने शौनक-शिष्य आश्वलायन को बुद्ध का समकालीन अस्सलायन बना दिया है। एकदेशीय विचार का कुफल उनके विचार में स्पष्ट दीखता है।

1. The mention of the "Bhārata" and of the "Mahābhārata" itself in the Grihya Sutras of Asvalayana (and Sankhayana) we have characterised as in interpolation or else an indication that these sutras are of very late date. (p. 185)
2. p. 251.
3. H. I. L. (1927) p. 471, note 2.
4. Proceedings of the All India Oriental Conference, Vol II, pp. 46......

कुलपति शौनक और तत्सम्बन्धी अनेक विषयों का कुछ विस्तृत उल्लेख इसलिए किया गया है कि भारतीय इतिहास के कालक्रम में शौनक एक निश्चित आधारशिला है। भारतीय ऐतिहासिकों ने शौनक सम्बन्धी घटनाओं का स्वच्छ चित्र सुरक्षित रखा है। हम उनको शतशः धन्यवाद देते हैं और इतिहास के स्पष्टीकरण में आगे चलते हैं।

११. पुराण संकलन—भारत युद्ध के पश्चात् २६०-३०० वर्ष

धन्य थे वे सूक्ष्म-बुद्धि आर्य विद्वान् जिन्होंने इतिहास के क्रम को याथातथ्य से सुरक्षित किया। कौरव राज अधिसीम कृष्ण, कोसलक दिवाकर, और मागध सेनाजित् समकालिक राजा थे। सेनाजित् के २३वें वर्ष में नैमिषारण्य वासी मुनि कुरुक्षेत्र में दृषद्वती के तट पर यज्ञ कर रहे थे। दीर्घसत्र के पांचवें वर्ष में सेनाजित् के राज्य का २३वां वर्ष आ रहा था। तब पुराण-संकलन हुआ। ब्रह्माण्ड, वायु और मत्स्य पुराण उस काल की रचनाएं हैं। यह बात भारतयुद्ध से २६०-३०० वर्ष तक की है। इसका व्योरा निम्नलिखित प्रकार से है—

भारत-युद्ध में जरासन्ध-पुत्र सहदेव के मारे जाने पर सोमाधि राजा हुआ। सोमाधि का राज्यकाल ५८ वर्ष, श्रुतश्रवा ६४ वर्ष अयुतायु २६ वर्ष, निरमित्र ४० वर्ष, सुक्षत्र ५६ वर्ष, बृहत्कर्मा २३ वर्ष, सेनाजित् २३ वर्ष। पूर्ण योग २६० वर्ष। कुछ पुरातन कोशों में राज्यकाल कुछ न्यूनाधिक है। अतः २६०—३०० वर्ष का काल हमने स्वीकार किया है। इसका अधिक वर्णन भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० २२६—२२८ पर देखें।

प्रश्न होता है कि वायु आदि पुराणों में गुप्त-राजाओं तक का उल्लेख मिलता है, अतः निश्चित होता है कि वायु और मत्स्य पुराण का वर्तमान रूप गुप्तकाल के अन्त का है, बहुत पुराना नहीं।

उत्तर में हमारा कथन है, यद्यपि हम भविष्य-कथन को पूर्ण संभव मानते हैं, तथापि उसका प्रसंग न लाकर इतना ही कहना चाहते हैं कि वायु, ब्रह्माण्ड और मत्स्य में केवल राजवंशों का भाग समय समय पर पीछे से जोड़ा गया है। पुराण-संकलन गुप्त-काल में नहीं हुआ। वायु और मत्स्य के थोड़े से प्रक्षिप्तांशों को छोड़कर शेष भाग का संकलन भारतयुद्ध के ३०० वर्ष पश्चात् होगया था। यह तिथि बड़े महत्त्व की है। उस काल के पश्चात् ऋषि और मुनियों का लगभग अभाव होता गया।

१२. तथागत बुद्ध-निर्वाण—भारतयुद्ध के १३५० वर्ष पश्चात् अथवा विक्रम से १७३० वर्ष पूर्व

यह तिथि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी गणना पुराणों की मागध राज्य-वर्ष गणना के आधार पर की गई है। बार्हद्रथ राजाओं ने १००० वर्ष, प्रद्योतों ने १३८ वर्ष तथा शैशुनागों के षष्ठ राजा अजातशत्रु के ८वें वर्ष तक १७२ वर्ष हुए। इनका योग १३१० वर्ष है। यह गणना पाठों की न्यून वर्ष गणनाओं के अनुसार है। इसमें न्यूनता के भेद मिटाने के लिए ४० वर्ष और जोड़े हैं। इस प्रकार इस गणना में युधिष्ठिर राज्य से बुद्ध-निधन तक १३५० वर्ष बने। इसमें से कलि आरम्भ से पूर्व के ३६ वर्ष न्यून किए जाने चाहिएं। तब १३१४ कलि संवत् अथवा १७३० विक्रम पूर्व तथागत बुद्ध का निर्वाण हुआ।

पूर्व पक्षी—पाश्चात्य इतिहास-लेखक कहता है, यह सर्वथा अशुद्ध है, असम्भव है। बुद्ध-निर्वाण की जो तिथि पाश्चात्यों ने निश्चित की है, वही ठीक है। इस तिथि को कैसे मान सकते हैं। सिकन्दर काल यवन वाङ्मय में निश्चित है। चन्द्रगुप्त मौर्य और सिकन्दर समकालिक थे। बुद्ध चन्द्रगुप्त मौर्य से लगभग २०० वर्ष पूर्व था। अतः बुद्ध-निर्वाण की यह तिथि नहीं मानी जा सकती।

उत्तर पक्ष—यह तिथि अशुद्ध नहीं, सर्वथा ठीक है। न यह असम्भव है। यह तिथि पुरातन बौद्ध, जैन और आर्य गणना के अनुकूल है। सिंहल की गणना, जिस पर योरुप के लेखकों का आधार है, अनेक स्थानों पर अशुद्ध है। निर्वाण विषयक चीनी गणना का इतिवृत्त पूर्व पृ० १२१ पर लिखा गया है। बहुमत वाली चीनी गणना के अनुसार बुद्ध का परिनिर्वाण विक्रम से लगभग १००० वर्ष पूर्व हुआ। ह्यून सांग इन बहु-मतों के विषय में लिखता है—

And for the same reason occur the mistakes about the time of Tathāgata's......... Nirvāna.[1]

According to the general tradition, Tathagata was eighty years old when, on the 15th day of the second half of the month Vaishakha, he entered Nirvāna. This corresponds to the 15th day of the 3rd month with us. But Sarvāstivadins say that he died on the 8th day of the second half of the month Kartika, which is the same as the 8th day of the 9th month with us. The different schools calculate variously from the death of Buddha. Some say it is 1200 years and more since then. Others say, 1300 and more. Others say 1500 and more. Others say that 900 years have passed, but not 1000 since the Nirvana.[2]

अर्थात्—ह्यूनसांग के काल में बुद्ध-निर्वाण की भिन्न २ तिथियां भारत के बौद्ध-संप्रदायों में प्रचलित थीं।

निस्सन्देह ह्यूनसांग के काल के बौद्ध विद्वान् इतिहास से अनभिज्ञ हो गए थे। आर्य ग्रन्थों ने इतिहास को बहुत अधिक सुरक्षित रखा है।

यवन लेखकों की गणनाएं भी सर्वथा विश्वास योग्य नहीं हैं। दशम शती के लेखक मासूदी के ग्रन्थ का अनुवाद है—

The Persians and other nations are greatly at variance regarding the chronology of Alexander, a fact many people forget.[3]

अर्थात्—ईरानी और अन्य जातियों में सिकन्दर के काल-क्रम के विषय में बड़ा मतभेद है।

इस परिस्थिति में यवन-लेखकों के ग्रन्थों के आधार पर सिकन्दर का काल निश्चय करना और अन्य जातियों के ऐतिहासिक लोगों का परित्याग बहुत हानिकर हुआ है। हमने

1. Beals tr. Vol. I. p. 73.
२. तत्रैव भाग २, पृ० ३३.
3. Quoted in, Zoroaster and His World, by Ernst Herzfeld ; 1947 ; p. 13.

आज तक एक ग्रन्थ नहीं देखा, जिसमें बुद्ध अथवा सिकन्दर के काल का निर्णय करने के लिए सम्पूर्ण सामग्री एक स्थान में एकत्र की गई हो। अतः अधूरी बातों को स्वीकार करके पुराणों के वर्णन को तिलाञ्जलि देना अनुचित है।

सिकन्दर के काल के विषय में मासूदी का एक आवश्यक लेख भावी खोज के लिए नीचे दिया जाता है—

फौर = पोरस	का वंश	१४० वर्ष
दब्सचेलिम	का वंश	१२० वर्ष
यलिथ	का वंश	८० अथवा १३० वर्ष
फौरोस	का वंश	१२० वर्ष

तब भारतीय विभक्त होगए। उनके अनेक राज्य होगए। सिन्धु प्रदेश में एक राजा था, एक कनौज में, एक कश्मीर में और चौथा मनकिर के नगर में। इसे हौज़ महान् कहते थे। इस राजा की उपाधि बलहरा (= बल्लभराज) थी।[1] इति।

मासूदी ने ये अङ्क कहां से लिए, यह जानना भविष्य की खोज पर निर्भर है। अस्तु।

इस विषय में एक और महत्त्वपूर्ण बात है। पुराणों के मागध-वंश में महाराज रिपुञ्जय के पश्चात् १३८ वर्ष राज्य करने वाला बालक-प्रद्योत वंश है। रैपसन आदि लेखकों ने इस वंश को अवन्ति का चण्ड-प्रद्योत वंश बनाया है। इस भ्रान्ति से पुराणों की गणना में एक अन्तर डालने का यत्न किया गया है। हमने इस मत का सप्रमाण खण्डन भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० २३२–२३३ पर किया है। राय चौधरी आदि लेखकों ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया, और अपनी कल्पना को अपने सन् १९५० के संस्करण में पुनः दोहराया है। विद्वानों को यह शोभा नहीं देता।

बुद्ध के काल के विषय में अलबेरूनी का एक लेख इस विषय पर बड़ा प्रकाश डालता है। अलबेरूनी लिखता है—

"पुराने काल में खुरासां, पर्सिस, इराक, मोसुल, सीरिया की सीमा तक का देश बौद्ध-मतावलम्बी था। तब आधरबैज़ान से जरथुश्तर आगे बढ़ा। उसने बल्ख में मग (अर्थात् पारसी) मत का प्रचार किया। उसका सिद्धान्त गुश्तास्प को रुचिकर लगा। उसके पुत्र इस्फेन्दियाद ने नए धर्म को पूर्व और पश्चिम में बल और सन्धियों द्वारा फैलाया।"[2] इति। ज़ोरास्ट्र ने श्रमणों को अपना शत्रु बना लिया।[3] इति।

1. Masoudi, who wrote about the years 947, and had been in India, throws some light, in his Golden Meadows, upon the time in which Deva Shaila lived. "The dynasty of Phour, who was overcome by Alexander, lasted 40 years; then came that of Dabschelim, which lasted 120 years. That of Yalith was next, and lasted 80 years; some say 130."............ "The next dynasty was that of Couros, it lasted 120 years."
"Then the Indians divided, and formed several kingdoms; there was a king in the country of Sind; one at Kannoj; another in Kashmir; and a fourth in the city of Mankir; called also the great Houza; and the prince, who reigned there, had the title of Balhara." Asiatic Researches, Vol. IX. p. 181.

२. अंग्रेजी अनुवाद से भाषा में अनुवादित, भाग १, पृ० २१॥

३. अध्याय ८, पृ० ११।

अरथुश्तर अथवा ज़ोरास्ट्र, गुश्तास्प और इस्फेन्यािद् का काल ईसा पूर्व ५०० से पूर्व का था। उस समय बौद्धमत इतनी दूर तक फैल गया था। अतः गौतम-बुद्ध का काल इस समय से बहुत पूर्व था। यह बाहर का साक्ष्य भारतीय मत को सत्य सिद्ध करता है।

अलबेरूनी के इस लेख पर राय चौधरी—कलकत्ता विश्वविद्यालय के अध्यापक हेमचन्द्र राय चौधरीजी अलबेरूनी के लेख की आलोचना करते हुए लिखते हैं—

The statement that Buddhism flourished in the countries of Western Asia before Zoraster is clearly wrong.[1]

अर्थात्—अलबेरूनी का कथन कि अरथुश्तर से पूर्व पश्चिम एशिया के प्रदेश में बौद्ध मत प्रचलित था, स्पष्ट रूप से अशुद्ध है।

हमारी आलोचना—चौधरीजी ने बुद्ध की एक भ्रान्ति-युक्त तिथि स्वीकार करली है, अतः उन्हें सब दूसरे विचार अशुद्ध दिखाई देते हैं। वस्तुतः अलबेरूनी सत्य कह रहा है। अलबेरूनी ने फारसी इतिहासों में यह पढ़ा था। उन मूल ग्रन्थों की खोज होनी चाहिए। अथवा उन देशों में पुरातत्त्व विभाग को खुदाइयां करके ऐसे प्रमाण निकालने चाहिएं।

पुरातन जैन वाङ्मय म महावीर स्वामीजी का काल—जैन और बौद्ध ग्रन्थ गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी की समकालिकता में सहमत हैं। दिगम्बर जैन ग्रन्थ तिलोय पराणति (विक्रम की पञ्चम शती) में श्री महावीर-निर्वाण और गुप्तराज्य के आरम्भ में ७२७ वर्ष का अन्तर माना है। गुप्त-संवत् विक्रम-संवत् के समीप का संवत् है। इस प्रकार तिलोय पराणति के लेखानुसार महावीरजी विक्रम से लगभग ७२७ वर्ष पहले हुए थे। इस गणना के अनुसार यही काल बुद्ध का है। श्वेताम्बर ग्रन्थ तित्थो गाली में वीर-निर्वाण और कल्की का अन्तर १६२८ वर्ष का लिखा है। कल्की से पूर्व लगभग २५० वर्ष का गुप्त-राज्य था। इस प्रकार विक्रम से लगभग १६७८ वर्ष पूर्व महावीर स्वामीजी का निर्वाण हुआ। यह गणना हमारी पूर्व लिखित गणना के बहुत समीप आजाती है।

कोई विद्वान् लेखक इन प्रमाणों को सहसा परे नहीं रख सकता। हमने सूक्ष्म विवेचना के अनन्तर पुराण-गणना को ठीक माना है। स्थानाभाव से सारा विवेचन यहां नहीं हो सका।

१३. सिकन्दर और सैण्ड्राकोटस

सर विलियम जोन्स—जोन्सजी ने भारत में आकर संस्कृत भाषा का थोड़ासा अध्ययन किया। विशाल संस्कृत वाङ्मय को पढ़ने का उन्हें अवसर नहीं मिला। वे यवन भाषा जानते थे। उन्होंने भारत-विषयक यवन-लेखों का कुछ अध्ययन किया। उसके फलस्वरूप उन्होंने सर्व प्रथम यह मत प्रचलित किया कि सिकन्दर के समकालिक यवन-लेखकों का पलिबोथ्र नगर बिहार प्रान्त का पाटलिपुत्र नगर और उनका सण्ड्रोकोटेस अथवा सएड्रोकोटस चन्द्रगुप्त मौर्य है। जोन्स के इस कथित-अन्वेषण पर मैक्समूलर आदिकों ने महती प्रसन्नता प्रकट की। योरुप के लेखकों ने इस बात का महा-रव मचाया कि भारतीय इतिहास की मूलभित्ति ज्ञात हो गई है। वे चन्द्रगुप्त मौर्य को यवन सिकन्दर का समकालिक लिखने लग पड़े। जोन्स के

१. पो. हि. ए. इ. पञ्चम संस्करण, पृ० ११५।

परवर्ती लेखकों के लिए यह भ्रान्त-ऐक्य महावाक्य बन गया। इस मत का अन्धाधुन्ध अनुकरण हुआ। आज यह कहना सिद्धान्त विरुद्ध (heresy) समझा जाता है कि इस ऐक्य-स्थापन के प्रमाण निर्बल और अपर्याप्त हैं। परन्तु सत्यमार्ग पर चलने के लिए इन स्वीकृत-प्राय: प्रमाणों की गम्भीर परीक्षा परमावश्यक है। इस परीक्षा के फलस्वरूप यह निश्चित हो जायगा कि यवन-लेखकों का पलिबोथ्र निस्सन्देह मगध का पाटलिपुत्र नहीं था। तब यह भी माना जा सकेगा कि सेण्ड्रोकोटोस का भारतीय पर्याय चन्द्रकेतु भी हो सकता है।

मेगास्थनेस आदि यवन-लेखक अविश्वसनीय—जिन यवन-लेखकों को जोन्स, मैक्समूलर, विण्टर्निट्ज़ और जवाहरलालजी आदि ने परम-प्रामाणिक ऐतिहासिक माना है, उनके विषय में जर्मन देशीय डाक्टर श्वेन बेक, जो यवन-लेखकों के विषय में असाधारण ज्ञान रखते थे, मेगास्थनेस के लेखों के संकलन की भूमिका (बान, सन् १८४६) में लिखते हैं—

यह निश्चित नहीं कि मेगास्थनेस बहुधा भारत में आया।[1] इति। यवन-देश के प्राचीन लेखक भारत के विषय में मेगास्थनेस के लेखों को असत्य और प्रमाण कोटि से बहुत दूर का समझते हैं। केवल अरायन मेगास्थनेस को कुछ अधिक ठीक समझता है। एराटोस्थेनेस, स्ट्रैबो और प्लायनि मेगास्थनेस को अप्रामाणिक समझते हैं।[2] इति। भला, जिस ग्रन्थकार की सत्यता के विषय में उसके लगभग समकालिक देशवासी विद्वान् सन्देह करते हैं, उसका प्रमाण मानकर हम भारत का इतिहास लिखें, और तद्विषयक बातों में प्रशस्त भारतीय ग्रन्थकारों के मत की अवहेलना करें, इससे बढ़कर पाश्चात्य-दासता की मनोवृत्ति का ज्वलन्त-उदाहरण अन्यत्र न मिलेगा। वस्तुत: अंग्रेज़ी-शिक्षा के कलुषित-फलों में से यह एक फल है। भारतीय साक्ष्य के सम्मुख हमें यवन-साक्ष्य का अणुमात्र आदर नहीं करना चाहिए। तथापि तुष्यतु दुर्जन-न्याय से हम जोन्स के मत के आधारभूत वचनों की परीक्षा करते हैं।

यवन-लेखकों का पलिबोथ्र

प्रस्तुत विषय में यवन-लेखकों का मूलाधार पुरुष राजदूत मेगास्थनेस, जो उनके कथनानुसार बहुत दिन पलिबोथ्र में निवास करता रहा, लिखता है—

1. "That Megasthenes frequently visited India, recent writers, all with one consent, following Robertson, are wont to maintain, nevertheless this opinion is far from being certain........... Robertson's conjecture appears, therefore, uncertain not to say hardle creditble." (Cal. ed. p. 16)

2. "The ancient writers, whenever they judge of those who have written on Indian matters, are without doubt wont to reckon Megasthenes among those writers who are given to lying and least worthy of credit,...............Arrianus alone has judged hetter of him,..............."

"The foremost amongst those who disparage him is Eratosthenes, and in open agreement with him are Strabo and Pliny." (Cal. ed. p. 17)

"Plinius says: 'India was opened upto our knowledge.........even by other Greek writers, who, having resided with Indian kings,.........as for instance Megasthenes and Dionysius,......... It is not, however, worth while to study their accounts with care, so conflicting are they, and incredible. (Cal. ed. p. 20)

(क) वह (सुरकुलेश = विष्णु) अनेक नगरों का निर्माता था। उनमें सब से प्रसिद्ध पलिबोथ्र था।[1]

(ख) परन्तु प्रसई शक्ति में बढ़े चढ़े हैं………। उनकी राजधानी पलिबोथ्र है। यह बहुत बड़ा और धनी नगर है। इस नगर के कारण अनेक लोग इस प्रदेश के निवासियों को पलिबोथ्री कहते हैं। यही नहीं, गङ्गा के साथ साथ का सारा भूभाग इसी नाम से पुकारा जाता है।[2]

(ग) जोमेनेस = यमुना नदी पलिबोथ्र में से बहती हुई, मेथोरा = मथुरा और करिसोबर (करूष-?) के मध्य में गङ्गा मे मिलती है।[3]

(घ) परन्तु एक पथ भी है, जो पलिबोथ्र में से होकर भारतवर्ष को जाता है।[4]

पूर्वोक्त चार उद्धरणों से निम्नलिखित भाव स्पष्ट ज्ञात होते हैं—

(१) यवन-लेखकों का पलिबोथ्र नगर विष्णु का बसाया हुआ था। यह उदायी का बसाया बिहार-देश का पाटलिपुत्र अथवा वर्तमान् पटना नगर नहीं था। पलिबोथ्र में वास रखने वाला, भारतीय वंशावलियों के एक अंश को उद्धृत करने वाला मेगास्थनेस अपने निवास के नगर के निर्माण-विषय में इतनी भूल करे, यह असंभव है। यदि जोन्स का स्वीकृत नामैक्य मान लिया जाए, तो निस्सन्देह मेगास्थनेस बहुत मिथ्यावादी समझा जाएगा। पुनः उसके किसी लेख पर भी विश्वास करना मूर्खता होगी।

(२) पलिबोथ्र प्रसई (प्रइसई, प्रवसई, फर्रसई, प्रोएसीडेस, प्रसिअकोस) की राजधानी थी। भारतवर्ष अथवा मगध की राजधानी नहीं थी। उससे कोसों आगे पीछे का देश पलिबोथ्री था।

(३) यमुना नदी पलिबोथ्र में से बहती थी। उसके एक ओर मथुरा और दूसरी ओर कलिसोबर था। पलिबोथ्र को पाटलिपुत्र मानने पर ये दोनों बातें नहीं घटतीं।

(४) यवनों का इण्डिया अथवा भारतवर्ष पलिबोथ्र के परे था।

अब विद्वान् पाठक विचार सकते हैं कि पलिबोथ्र के उपर्युक्त लक्षणों में से एक लक्षण भी पाटलिपुत्र में नहीं घटता। कहां यमुना और कहां पाटलिपुत्र। इस पर प्रश्न होता है, फिर जोन्स ने ऐसे असिद्ध ऐक्य का अनुमान क्यों किया। इसका तत्त्व जानने के लिए जोन्स के मन की परीक्षा आवश्यक है।

---

1. He (Herakles) was the founder, also, of no small number of cities, the most renowned and greatest of which he called Palibothra. Frag. L, Diod. II, 35—42 ; (Cal. ed. p. 37)
2. But the Prasii surpass in power............their capital being Palibothra, a very large and wealthy city, after which some call the people itself the Palibothri,............nay, even the whole tract along the Ganges..........Frag. LVI, Article 22 (p. 141) Pharrasii (Curtius). Praxii.

   अन्य पाठान्तर कलकत्ता संस्करण, पृ० ४५ के टिप्पण में देखो।
3. The river Jomanes flows through the Palibothri into the Ganges between the towns Methora and Carisobora (ibid)

   अन्तिम नाम के पाठान्तर—

   Chrysolbon, Cyrisoborca, Cleisobora.
4. but also a road that led into India through Palimbothra. (p. 30)

जोन्स की भ्रान्ति का कारण

अपने भ्रम को एक बहुमूल्य अन्वेषण मानकर जोन्स लिखता है—

पलिबोथ्र नगर गङ्गा और Erranoboas (एर्रनोबोअस) के संगम पर स्थित था ।[1] पूर्ण ठीक लिखने वाले एम. ए. अन्विल्ल का कथन था कि एर्रनोबोअस यमुना का नाम है। केवल यही एक कठिनाई दूर होगई, जब मैंने एक संस्कृत पुस्तक में, जो लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व की है, यह पढ़ा कि हिरण्यबाहु अथवा सोने के बाहुवाला, अथवा स्नेह पूर्ण सर-सर करने वाला नद, सोन नाम के नद के अतिरिक्त और कोई नहीं। यद्यपि मेगास्थनेस ने अज्ञान अथवा असावधानी से इन्हें पृथक् पृथक् लिखा है।[2] इति।

जोन्स संकेतित संस्कृत ग्रन्थ—अमरकोश १।१०।३३ में लिखा है—शोणो हिरण्यबाहु स्यात्। अर्थात्—शोणनद का दूसरा नाम हिरण्यबाहु है। प्रतीत होता है, जोन्स का संकेत अमरकोश ग्रन्थ की ओर था। अमरकोश के अतिरिक्त हर्षचरित के आरम्भ में भी शोण के लिए हिरण्यबाहु नाम का प्रयोग मिलता है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि शोण का एक नाम हिरण्बाहु है। परन्तु मेगास्थनेस का Erranoboas संस्कृत भाषा का हिरण्यबाहु है, इसमें पूर्ण सन्देह है। जोन्स को यह बात खटकती थी, पर साम्य सिद्ध करने के उत्साह में उसने गम्भीर विचार नहीं किया। उसकी शीघ्रता ने उत्तरवर्ती आलस्य-युक्त लेखकों को धोखे में डाल दिया।

जोन्स का असमञ्जस और आपत्ति

अपनी भ्रान्ति को सत्य कोटि में लाने के लिए जोन्स ने मेगास्थनेस पर एक दोष आरोपित किया—

though Megasthenes, from ignorance or inattention has named them separately.

अर्थात्—मेगास्थनेस ने अज्ञान अथवा असावधानी से हिरण्यबाहु और सोन को यद्यपि पृथक् पृथक् लिखा है। इति।

---

१. पलिबोथ्र में से यमुना नदी बहती अवश्य थी। परन्तु गङ्गा और हिरण्यबाहु के संगम पर पलिबोथ्र स्थित था, यह जोन्स-कथन उचित नहीं। अरायन (पृ. ३६) के अनुसार प्रस्सी जनपद में वह संगम-स्थान था।

2. While Palibothra stood at the junction of the Ganges and Erranoboas, which the accurate M. D' Anville had pronounced to be the Yamuna : but this only difficulty was removed, when I found in a Sanskrit book, near two thousand years old, that Hiranyabahu, or golden armed, which the Greeks changed into Erranoboas, or the river with a lovely murmur, was in fact another name for the Sona itself, though Megasthenes from ignorance or inattention, has named them separately. Works of Sir William Jones, Vol. III, 1807, London, pp. 219, 220.

एतद्विषयक मेगास्थनेस का लेख—गङ्गा में उन्नीस नदियां मिलती हुई कही जाती हैं। इन में से पूर्वकथित नदियों के अतिरिक्त कोण्डोचटेस, एरॉनोबोअस, कोसोएगस और सोनस में नौकाएं चल सकती हैं।[1] इति।

प्रथम आपत्ति—इस लेख में एरॉनोबोअस और सोनस दो पृथक् नदियां मानी गई हैं। जोन्स ने इस आपत्ति से पीछा छुड़ाने के लिए इतना कथन पर्याप्त समझा कि इस विषय में "मेगास्थनेस ने अज्ञान अथवा असावधानी" से काम लिया है।

जोन्स का दोषारोपण अन्वेषकवृत्ति के विपरीत

यदि मेगास्थनेस पलिबोथ्र में राजदूत के रूप में रहता रहा था, तो वह उस नगर की प्रमुख बातों से परिचित था। उसने उस नगर के वर्णन में "अज्ञान अथवा असावधानी दिखाई," यह सर्वथा अयोग्य-कथन है। इस से अन्वेषण का मार्ग बन्द हो जाता है, सत्य का गला घोंटा जाता है और पक्षपात व्यक्त होता है। जोन्स की विवशता पूर्ण स्पष्ट है।

जोन्स के मत में अन्य आपत्तियां

जोन्स लिखता है कि उसके प्रदर्शित नाम-साम्य में केवल यही एक आपत्ति थी, अर्थात् पलिबोथ्र में से यमुना बहती है। शोक है कि विचारशील जोन्स ने दूसरी आपत्तियों का ध्यान भी नहीं किया। हम अपना कर्तव्य समझते हैं कि विद्वानों के सम्मुख अन्य आपत्तियां भी रख दें।

दूसरी आपत्ति—मेगास्थनेस और अन्य यवन-लेखकों के अनुसार पलिबोथ्र नगर प्रसई के प्रान्त में था। प्रसई शब्द को जोन्स के मतानुयायी भारतीय प्राच्य शब्द का रूपान्तर अनुमान करते हैं। परन्तु उनके पास मेगास्थनेस के अगले लेख का कोई उत्तर नहीं है—

सिन्धुतट प्रस्सी अथवा प्रसई की सीमाओं पर है।[2] इति।

यह कौनसा सिन्धुतट है, इस पर विद्वानों ने पूरा विचार नहीं किया। इसका स्पष्टीकरण आगे किया गया है।

तीसरी आपत्ति—मेगास्थनेस लिखता है—

(क) इनके पश्चात् परन्तु अधिक अन्दर की ओर मोनेडेस (मन्दाः)[3] और सुआरी हैं। जिनके प्रदेश में मलेउस (Maleus) अर्थात् मल्ल पर्वत है।[4]

---

1. Nineteen rivers are said to flow into it (Ganges), of which, besides those already mentioned, the Condochates, Errannoboas, Cosoagus and Sonus are navigable. Frag. XX. B. (Pliny), p. 62.
   अरायन पूर्वोक्त लेख की प्रतिध्वनि करता है—
   Ganges......... it receives as tributaries the river Kainas, and the Erannoboas, and the Kossoanos, which are all navigable. It receives, besides, the river Sonos and the Sittokatis .... p. 191.
2. *The Indus skirts the frontiers of the Prasii. Frag. LVI. Pliny 22, (p. 5 2)143.*
३. प्राच्य जनपदों में एक मुण्ड जनपद था। अनेक लेखकों ने मुण्ड का रूपान्तर मोनेडेस माना है। यह युक्त नहीं।
४. मेगास्थनेस के उद्धरणों के संकलन का कलकत्ता संस्करण, पृ० ५१,१४१।

(ख) पलिबोथ्र से आगे मलेउस पर्वत है।[1] इति।

यदि पाटलिपुत्र को पलिबोथ्र माना जाए, तो मलेउस पर्वत नाम का संस्कृत रूप उपस्थित करना होगा। अन्वेषक यूल के अनुसार यह बिहार का पार्श्वनाथ पर्वत था।[2] पार्श्वनाथ पर्वत मल्ल जनपद में था अवश्य, पर उस का नाम मल्लपर्वत नहीं था। स्मरण रहे, एक मल्ल जाति मध्य प्रदेश में शाल्वों और युगन्धरों के साथ रहती थी। कुरु देश के चारों ओर के जनपदों का वर्णन करते हुए महाभारत विराटपर्व में लिखा है—मल्लाः शाल्वाः युगन्धराः।[3]

चौथी आपत्ति—यवन ग्रन्थकार टाल्मी के अनुसार प्रसीअके (प्रसई ?) प्रान्त के नीचे सौरबतिस प्रान्त है। भिन्न भिन्न लेखकों के अनुसार सौरबतिस का भारतीय रूप—चन्द्रावती, अथवा छत्रावती (अहिच्छत्र) हो सकता है। हमें छत्रावती अधिक युक्त दिखाई देता है। अतएव अहिच्छत्र के परे यवन-लेखकों का प्रसई प्रान्त होना चाहिए। स्मरण रहे, सौरबतिस का मूल शूरवती अथवा शूर + वत्स भी हो सकता है।

पलिबोथ्र और पाटलिपुत्र का साम्य मानकर टाल्मी आदि का लेख असत्य ठहरता है।

पांचवीं आपत्ति—मेगास्थनेस तथा पुराने यवन-लेखकों के आधार पर अरायन लिखता है—

मेगास्थनेस सण्ड्राकोटोस की राजसभा में रहता था। वह भारत में सबसे बड़ा राजा था। मेगास्थनेस पोरोस की राजसभा में भी रहता था। पोरोस सण्ड्राकोटोस से भी बड़ा राजा था।[4] इति।

पोरोस पञ्जाब के दो ज़िलों का राजा था। तदनुसार सण्ड्राकोटोस भारत का सम्राट् नहीं हो सकता। वह कोई छोटा राजा था। मेगास्थनेस जो इन दोनों राजाओं को प्रत्यक्ष जानता था, भूल नहीं करता।

छठी आपत्ति—मेगास्थनेस के अनुसार पलिबोथ्र प्रसई, प्रस्सी अथवा प्रसइअके की राजधानी थी। जोन्स के अनुयायी प्रस्सी का साम्य प्राच्य से करते हैं। प्राच्य कोई विषय-विशेष नहीं था। प्राच्य शब्द दिशा का द्योतक है। महाभारत आदि ग्रन्थों में दिशा के संकेत के लिए इस शब्द का प्रयोग बहुधा होता है। यथा, भीष्मपर्व में—

तथा प्राच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्योत्तरापथाः ।९७।

मेगास्थनेस के अनुसार पलिबोथ्र के आगे Monedes (मन्दा) और Suari (शूर) प्रदेश थे। इन के देश में मलेउस पर्वत है।

इस लेख से स्पष्ट होता है कि मेगास्थनेस का प्रसई एक जनपद-विशेष था। यह प्राच्यों का मगध नहीं था। आश्चर्य है कि मेगास्थनेस आदि के लेखों में मगध नाम अथवा

---

१. मेगास्थनेस का कलकत्ता संस्करण, पृ० ५२ तथा १६१।
2. Ind. Ant. Vol. VI, p. 127.
३. देखो, हमारा भारतवर्ष का इतिहास, दूसरा संस्करण, पृ० १०२। कनिंघम के अनुसार मण्डली और मोनेडेस एक ही थे। (Anct. Geog. of India, pp. 508—9) पर मण्डली मेदीमण्डल का यवन-रूपान्तर प्रतीत होता है।
४. कलकत्ता संस्करण, पृ० १००।

इसका यवन-अपभ्रंश एक बार भी नहीं मिलता। पाटलिपुत्र मगध की राजधानी थी, सारे प्राच्य-दिशास्थ जनपदों की नहीं। प्राच्य जनपदों में अङ्ग, वङ्ग, सुह्म और मगध आदि अनेक जनपद थे। उनकी राजधानियां पृथक्-पृथक् थीं। राजधानी में रहने वाला राजदूत ऐसी भूल कदापि नहीं कर सकता कि अनेक जनपदों में से एक जनपद को प्राच्य कह दे। उसका प्रसई यमुना के मार्ग में मध्यदेश में था, प्राच्यदेशों में नहीं।

सातवीं आपत्ति—सायनी लिखता है—

Thence to the confluence of the Jomanes and Ganges 625 miles, and to the town Palimbothra 425. (p.130)

अर्थात्—वहां से गङ्गा-यमुना के संगम तक ६२५ मील और पलिबोथ्र नगर तक ४२५ मील।[1]

इस प्रकार पलिबोथ्र से गङ्गा-यमुना का संगम २०० मील आगे था। इस वचन का दूसरा अर्थ नहीं बनता। खेंचतान करने वाले "Scientific" लेखकों ने अर्थ का अनर्थ करके यवन-लेखकों के समस्त साक्ष्य के विरुद्ध लिखा है कि गङ्गा-यमुना के संगम से आगे पलिबोथ्र था। यह बात यवन-लेखकों को स्वप्न में भी ज्ञात न थी।

इन हेतुओं से ज्ञात हो जाता है कि जोन्स का अनुमान, ठीक अनुमान नहीं और सर्वथा प्रमाण-शून्य है। पलिबोथ्र और पाटलिपुत्र शब्दों की समता मानने के लिए ध्वनिमात्र की लङ्गड़ी लूली साम्यता के अतिरिक्त कोई अन्य सुदृढ़ प्रमाण नहीं है।

ऐसी परिस्थिति में बहुत संभव है, सण्ड्राकोटोस चन्द्रकेतु का अपभ्रंश सिद्ध हो।

योरुपीय लेखकों ने टाल्मी का ग्रंथ भ्रष्ट कर दिया

जो पाश्चात्य लेखक अपने को सत्य का अवतार, "सूक्ष्मदर्शी आलोचक", "वैज्ञानिक लेखक" आदि लिखते हैं, उन्होंने अपनी असत्य कल्पना को प्रमाणभूत बनाने के लिए टाल्मी का ग्रन्थ भ्रष्ट कर दिया।

यूल का लेख—टाल्मी-वर्णित भारतीय नगरों और जनपदों की सूचियों के विषय में यूल लिखता है—

Where the tables detail cities that are in Prasiake, cities among the Pornari, &c., we must not assume that the cities named were really in the territories named.[2]...............

अर्थात्—सूची में जहां प्रसीअके के नगरों का विस्तार है, हमें यह नहीं मानना चाहिए कि वे नगर उसी प्रान्त में थे।

आश्चर्य है, वाङ्मय के साथ इतना अत्याचार, और कोई बोला नहीं। पलिबोथ्र प्रसई में है, यमुना नदी प्रसई और पलिबोथ्र में से बहती है, प्रसई के ऊपर का भूभाग अहिच्छत्र है, पलिबोथ्र से आगे मलेउस पर्वत है, प्रसई की सीमा पर सिन्धुतट है, तथा पोरोस सण्ड्रा-

१. दूरी की गणनाओं में विभिन्न यवन-लेखक भिन्न २ मत रखते हैं।

२. टाल्मी, कलकत्ता संस्करण, पृ० १११।

कोटोस से महानतर था, इन बातों का निर्णय किए बिना पलियोथ्र और पाटलिपुत्र का ऐक्य-स्थापन करना महती धृष्टता है, तथा अज्ञान और पक्षपात की चरमसीमा है।

पक्षपाती लैसन पर दोषारोपण

यूलजी ने टाल्मी के लेख को बदलने का मार्ग दिखाया। उनसे पूर्व टाल्मी के वास्तविक क्रमानुसार उसके ग्रन्थ का प्रयोग लैसन कर चुका था। यूल इसे सहन नहीं कर सका। उसने लिखा—

Lassen has so much faith in the uncorrected Ptolemy that he accepts this; and finds some reason why Prasiake is not the land of the Prasii but something else.[1]

अर्थात्—टाल्मी के ग्रन्थ के शुद्ध न किए हुए पाठ में लैसन की इतनी श्रद्धा थी कि उसने टाल्मी की सूचियों में नगरों और जनपदों के स्थानों को पूर्ववत् रहने दिया। वह प्रसीअके और प्रसई को एक नहीं मानता।

हम जानते हैं कि मेगास्थनेस और टाल्मी के ग्रन्थों को, चाहे वे पूर्ण सत्य थे अथवा नहीं, न यूल समझा और न लैसन। इनका अनुकरण करने वालों ने तो क्या समझना था। ऐसी अवस्था में पलिबोथ्र की स्थिति के विषय में यदि पाश्चात्य लेखकों ने इतनी गड़बड़ उत्पन्न कर दी है, तो प्रश्न होता है कि पलिबोथ्र क्या था।

पलिबोथ्र, प्रभद्र अथवा पारिभद्र

(१) संस्कृत भाषा का प-वर्ण यवन भाषा में प=p रहता है। सिन्धु और समुद्र संगम पर एक पुराना पाताल नगर था। यवनभाषा में उसे Patāline लिखा जाता है। पलियोथ्र के पलि में भी प्रथम वर्ण प, संस्कृत प का ही रूप है।

(२) संस्कृत भाषा के प, के यवन-भाषा में ब होनेका उदाहरण हमें नहीं मिला। प्रत्युत संस्कृत का व तथा भ यवन भाषा में ब होगया है। यथा महाभारत और काशिका आदि वृत्तियों में वर्णित भुलिङ्ग[2] शब्द प्लायनी में बोलिङ्गी और टाल्मी में बार्योलिङ्गी बन गया है। तथा चन्द्रभागा नाम के यवन-रूपान्तरों में भ वर्ण ब में बदल गया है।[3] अतः बोथ्र शब्द का ब वर्ण संस्कृत मूल में या तो व था अथवा भ। यह पुत्र शब्द का प वर्ण कदापि न था। भाषा-शास्त्र का आश्रय लेने वालों को संस्कृत के यवन भाषा-विषयक रूपान्तरों के मूल नियमों का पूर्ण निश्चय करना चाहिए।

भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है कि पञ्चालों के साथ एक प्रभद्र, प्रभद्रक अथवा पारिभद्र जनपद था। उसकी सीमाएं, अपने पुस्तक-भण्डार के अभाव में, हम अभी पूर्णतया

---

१ टाल्मी, कलकत्ता संस्करण, पृ० १३३।

२. महाभारत संहिता के पूना संस्करण के भीष्मपर्व १०। ४० में भुजिङ्गाश्च अशुद्ध छपा है। इसके स्थान में भुलिङ्गाश्च पाठ शुद्ध है। महाभारत के इस पाठ के साथ युगन्धर और मद्र आदि स्मृत हैं। इससे भुलिङ्ग पाठ की शुद्धता व्यक्त है। (देखो, हमारा भारतवर्ष का इतिहास, पृ० १७२) चान्द्र व्याकरण की वृत्ति के अनुसार भी भुलिङ्गाश्च पाठ शुद्ध है।

३. देखो, हमारा भारतवर्ष का इतिहास, द्वि० सं०, पृ० २६३।

बता नहीं सकते, पर इस प्रदेश में से यमुना नदी बहती अवश्य थी। इस प्रदेश के साथ सिन्धु-पुलिन्द देश था।

पाञ्चाल धृष्टद्युम्न प्रभद्रक रथमुख्यों का नेता था—

धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यस्तेषां गोप्ता महारथः।
सहितः पृतनाशूरं रथमुख्यैः प्रभद्रकैः॥ भीष्मपर्व ११।२१॥

प्रभद्रकों का उल्लेख भीष्मपर्व ४५।५४ तथा १०७।४८ में भी है। पराशर कृत ज्योतिष-संहिता और वराहमिहिर की बृहत्संहिता में भद्र जनपद वर्णित है। पुराणों में भद्रकार जनपद उल्लिखित है। काशिका वृत्ति के अनुसार भद्रकार जनपद मध्यदेश का साल्वावयव जनपद था।

काबुल अथवा नैश जनपद से पलियोथ्र की दूरी—मैगास्थनेस के लेखों का संकलन-कर्त्ता जर्मन-विद्वान् श्वनबेक लिखता है[1]—स्ट्रैबो द्वारा उद्धृत मेगास्थनेस के लेख के अनुसार पश्चिम (अर्थात् काबल) से पलियोथ्र तक १०,००० स्टेडिया की दूरी है।[1] पलियोथ्र से गङ्गा के जलमार्ग द्वारा समुद्र तक ६००० स्टेडिया की दूरी अनुमान की जाती है।

श्वनबेक पुनः टिप्पण करता है कि १० स्टेडिया के तुल्य कोई भारतीय मान है। वह क्रोश से छोटा मान नहीं हो सकता।[3]

अब यह स्पष्ट है कि भारतीय क्रोश लगभग १$\frac{1}{4}$ मील के तुल्य है। इस विषय में कैपटेन विल्फर्ड का लेख द्रष्टव्य है—

The royal road, from the banks of the Indus to Palibothra, may be easily made out from Pliny's account, and from the Pentengarian tables. According to Dionysius Periegetes, it was called also the Nyssaean road, because it led from Palibothra to the famous city of Nysa. It had been traced out with particular care, and at the end of every Indian itinerary measure there was a small column erected. Megasthenes does not give the name of the Indian measure, but says that it consisted of ten stades. This, of course, could be no other than the astronomical, or Panjabi coss; one of which is equal to 1.23 British mile.[4]

अर्थात्—यवन-लेखक दायोनिसिअस के अनुसार नैश नगर से पलियोथ्र तक एक पथ था। इस पर प्रति क्रोश पर एक छोटा स्तम्भ रहता था। इस स्तम्भ पर दूरी अङ्कित थी। क्रोश १० स्टेडिया का था। और एक क्रोश १.२३ बृटिश मील के बराबर है। इस प्रकार यवन-लेखकों के अनुसार नैश से पलियोथ्र तक १००० क्रोश की दूरी थी। अथवा स्थूल गणना से १२५० मील बने। नैश जनपद अफगानिस्तान में था। काबुल भी अफगानिस्तान में है। अब विचारना चाहिए कि कौन विज्ञ पुरुष काबुल से पटना तक १२५० मील की दूरी मान सकता है। अतः निश्चित है कि जोन्स की कल्पना अनुमान कोटि में भी नहीं आ सकती।

१. कलकत्ता संस्करण में पृ० ४६,४७ पर टिप्पण।

२. तत्रैव, पृ० ४८।

३. तत्रैव, पृ० ४८ टिप्पण।

4. Essay on Anugangam, by Captain F. Wilford, Asiatic Researches, Vol. IX, 1809, p. 48.

मेगास्थनेस का इस प्रकरण का सिन्धुतट

राजदूत मेगास्थनेस लिखता है—

The Indus skirts the frontiers of the Prasii.[1]

अर्थात्—सिन्धु पुलिन्द प्रसई की सीमाओं पर है।

यह सिन्धु पुलिन्द पाटलिपुत्र वाले मगध जनपद के दूर-दूर तक नहीं है, न था। फिर क्या यह सिन्धु-सौवीरों का सिन्धु पुलिन्द था। नहीं, कदापि नहीं। फिर यह कौन सिन्धु पुलिन्द था। इस विषय में जोन्स और उसके अनुयायी मौन हैं। अन्ततः इस जटिल प्रश्न का उत्तर भारतीय इतिहास के अनुपम ग्रन्थ महाभारत से मिलता है। भीष्मपर्व के आरंभ में प्राच्य, पश्चिम आदि विभाग के अनुसार, मध्यदेश के जनपदों के वर्णन के प्रसंग में लिखा है—

चेदिवत्साः करूषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः।

अर्थात्—चेदि, वत्स, करूष, भोज और सिन्धु-पुलिन्दक आदि जनपद मध्यदेश में थे। मेगास्थनेस का अभिप्राय मध्यदेश के इस सिन्धुपुलिन्द से है। इसे आज भी काली सिन्ध कहते हैं। इसके माने बिना मेगास्थनेस के लेख का अभिप्राय बन ही नहीं सकता। श्वनबेक के ग्रन्थ का जो अंग्रेज़ी अनुवाद मक्क्रिण्डल ने प्रकाशित किया, उसमें प्राचीन भारत का एक मानचित्र मुद्रित है। इस मानचित्र में यमुना में मिलने वाली उपनदियों में पर्णाशा अथवा चर्मण्वती(चंबल) से नीचे एक सिन्धु नदी दिखाई गई है। इस सिन्धु के चारों ओर सिकन्दर के काल में प्रसई जनपद था। कितना उचित वर्णन है। जोन्स के अनुयायिओं ने अर्थ का अनर्थ किया है और भारतीय इतिहास को कल्पित नाम-साम्य की भित्ति पर खड़ा करके पूर्ण-विकृत कर दिया है।

मेगास्थनेस और Errannoboas

पलिबोथ्र में निवास करने वाले राजदूत को जोन्स ने झूठा सिद्ध किया है। जोन्स मानता है कि मेगास्थनेस के अनुसार शोण और Errannoboas दो पृथक् नदियां हैं। फिर भी अपना कल्पित ऐक्य स्थापन करने के लिए उसने इस कथन को राजदूत की भूल कहकर टाल दिया है। इसके विपरीत हमें प्रतीत होता है कि मेगास्थनेस के ज्ञान में यमुना और एर्रानोबोअस एक ही नदी थी। इस विषय में एम. ड. अन्विल्ले का मत ठीक था। इसका कारण है। यमुना के पर्याय-नामों में अर्कजा, सूर्यजा, सूर्यकन्या आदि नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। सूर्य का एक नाम अरुण है। अतः सूर्यकन्या आरुणी है। आरुणी के साथ पदान्त में नदी वाची "वहा" शब्द लगाने से आरुणीवहा नाम स्पष्ट हो जाता है। यही नाम यवन-लेखकों के ग्रन्थों में Errannoboas रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं। अरायन के लेख में Iobares के रूप में यह नाम बहुत अधिक विकृत हुआ है।[2]

---

१. मेगास्थनेस के अवशिष्ट-लेख का संकलनकर्ता जर्मन-विद्वान् श्वनबेक यवन ग्रन्थकार अप्पियनस Appianus का वचन उद्धृत करता है। उसका अंग्रेज़ी अनुवाद है—Sandrakottos was king of the Indians around the Indus, कलकत्ता संस्करण, भूमिका, पृ० ६, टिप्पण। सिन्धु के चारों ओर के भारतीयों का राजा सण्ड्रोकोटोस था।

२. पृ० २०१।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्रसई जनपद अहिच्छत्र के दक्षिण में था। उसकी राजधानी प्रभद्रा अथवा पारिभद्रा थी। उसमें से यमुना नदी बहती थी। यह नगरी प्रयाग से मथुरा को आते हुए लगभग २०० मील पहले थी। यहां के क्षत्रिय प्रभद्रक अथवा पारिभद्र कहाते थे। उनका राजा चन्द्रकेतु था। इस पारिभद्रा राजधानी के समीप सिन्धु पुलिन्द अथवा काली सिन्ध का तट था। सिन्धु पुलिन्द से परे प्रयाग की ओर करूप-सरोवर था।

पूर्वोक्त लेख में हमने संक्षेप में लगभग सब बातें स्पष्ट करदी हैं। अतः यह निश्चय है कि विन्सेंएट स्मिथ, रैपसन, राय चौधरी और जायसवाल आदि के लिखे भारत के सब इतिहास, जो इस असत्य नाम-साम्य के आश्रय पर लिखे गए, आमूलचूल अशुद्ध हैं।

मेगास्थनेस चाणक्य से अपरिचित

आठवीं आपत्ति—अब विद्वान् पाठक समझ सकेंगे कि मेगास्थनेस के वर्णन में चन्द्रगुप्त मौर्य के महामन्त्री, अर्थशास्त्र के कर्ता, ब्राह्मणप्रवर विष्णुगुप्त कौटल्य के विषय में एक पंक्ति भी क्यों नहीं मिलती। जिसका प्रताप भारत के कोने कोने में पहुँच चुका था, जो तप और त्याग का उज्ज्वल दृष्टान्त था, वह महापुरुष मगास्थनेस को अज्ञात रहा, यह नहीं माना जा सकता। निश्चय है कि चन्द्रगुप्त मौर्य की राजधानी में मेगास्थनेस कभी नहीं रहा। यदि वह भारत में आया तो वह पारिभद्र के राजा किसी चन्द्रकेतु की राजधानी में रहा था।

GANDARITAN—यवन-लेखक लिखते हैं कि जब सिकन्दर रावी तक बढ़ता हुआ आरहा था, तब उससे लोहा लेने के लिए तथा उसकी द्रुतगति पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए गन्दरितन और प्रसई के राजा विशाल सेना के साथ गङ्गा-तट पर डेरा डाले थे।[1] प्रसई जनपद के साथी ये गन्दरितन कौन थे। गन्दरितन क्षत्रिय साल्वों का एक अवयव युगन्धर थे और भद्रकारों के साथी थे। वे यमुना-तट पर रहते थे।[2] वे प्राच्य दिशा के जनपदों के निवासी नहीं थे। मेगास्थनेस आदि लेखकों ने स्पष्ट लिखा है कि गन्दरितन और प्रसई जातियों के दो राजा सिकन्दर का विरोध करने के लिए खड़े थे। इस लेख के अनुसार प्रसई का राजा वैसा ही राजा था जैसा गन्दरितन का राजा। वह मगध का शक्तिशाली सम्राट् नन्द कदापि नहीं था।

पूर्वोक्त आठ आपत्तियों का सन्तोष-प्रद समाधान किए विना, और गन्दरितन नाम का मूल खोजे विना, पलिबोथ्र का पाटलिपुत्र से नाम-साम्य मान लेना एक अक्षम्य भूल है। इस मिथ्या नामैक्य से भारतीय इतिहास की सारी तिथि-परम्परा अति विकृत करदी गई है। आलसी लेखक इस असत्य के प्रचार में सहयोग देकर पाप के भागी बने हैं।

अशोक के शिलालेखों में वर्णित यवन-राजा

अब प्रश्न होता है कि प्रियदर्शी अशोक के शासनों में जो यवन-राज वर्णित हैं, वे कौन थे और कब हुए थे। इन प्रश्नों के उत्तर के लिये भारत के पश्चिमी प्रदेशों के इतिहास को जानने की आवश्यकता है। जब भारत-युद्ध के काल में अर्थात् अशोक राज के काल से

१. हमारा भारतवर्ष का इतिहास, द्वि० सं०, पृ० ११६।
२. वहीं, पृ० १७१।

लगभग १७०० वर्ष पूर्व भारत की पश्चिमोत्तर सीमाओं के परे यवन-जाति रहती थी, तब इतना निश्चित है कि अशोक के शासनों में उल्लिखित यवन-राज उन्हीं यवनों के उत्तरवर्त्ती राजा थे। उनके बहुत काल पश्चात् सिकन्दर ने पञ्जाब पर आक्रमण किया। इन विषयों का अधिक स्पष्टीकरण भावी खोज पर आश्रित है। भारत के भावी विद्वान् जो भारतीय सामग्री को प्रधानता देकर इतिहास-विषय में अपनी लेखनी उठाएंगे, वेही उन यवन-प्रदेशों का सत्य-इतिहास लिख सकेंगे। अधिक सामग्री के लिए देखिए, हमारा भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० २७०।

पूर्वपक्षी कहता है—अहो क्या हमारा सारा परिश्रम वृथा गया, क्या हमारी सतत-रट कि यवन-लेखकों से भारतीय इतिहास की ठीक ठीक तिथियां जानी गई हैं, असत्य सिद्ध हुई, क्या हमारे लिखे इतिहास अप्रामाणिक ठहरे, क्या हम ऐतिहासिक न माने जाएंगे।

इस पर हमारा उत्तर है, कि अज्ञान का जो फल हो सकता है- वह आपको अवश्य भोगना पड़ेगा। भारतीय परंपरा के खण्डन में जो अनुचित शब्द आपने वर्ते, वे सब आप पर ही लागू होंगे। आपकी scientific "वैज्ञानिक" विद्वत्ता का खोखलापन उद्घाटित कर दिया गया है।

वस्तुतः सत्य मार्ग एक ही है। भारतवर्ष के पुरातन इतिहास के शृङ्खला बद्ध करने में संस्कृत और पाली-प्राकृत आदि ग्रन्थों की ऐतिहासिक सामग्री ही प्रधान रूपेण सहायता देती है। उसकी अवहेलना, जो मुख में विना लगाम दिए की गई, पापकर्म था। निश्चय है कि भविष्य में कोई व्यक्ति भारतीय इतिहास का अध्यापक अथवा महोपाध्याय नहीं बन सकेगा, जो संस्कृत और प्राकृतों के परंपरागत-सत्य कथनों का महान् और पारंगत पण्डित न होगा, तथा जिसने भारतीय परंपरा के अनुसार इतिहास का आमूलचूल अध्ययन न किया होगा। रामायण, महाभारत, और ब्राह्मण ग्रन्थों आदि की सूचियों से काम चलाने वाले ऐतिहासिकम्मन्य अध्यापकों का युग अब गया। अस्तु।

१४. शतपथ ब्राह्मण-भाष्यकार हरिस्वामी (कलि संवत् ३७४०)

विक्रम संवत् १९८४ में मैं काशी गया। वहां क्वीन्स कालेज के सरस्वती-भण्डार में माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण के हविर्यज्ञ अर्थात् प्रथम काण्ड पर हरिस्वामी के भाष्य का एक हस्तलेख देखा। उसके आरम्भ में निम्नलिखित श्लोक देखने में आए—

नागस्वामी तत्र[सा] श्रीगुहस्वामीनन्दनः।
तत्र याजी प्रमाणज्ञ आढ्यो लक्ष्म्या समेधितः ॥५॥
तन्नन्दनो हरिस्वामी प्रस्फुरद्वेदवेदमान्।
त्रयीव्याख्यानधौरेयोऽधीततन्त्रो गुरोर्मुखात् ॥६॥
यः सम्राट् कृतवान् सप्तसोमसंस्थास्तथर्क्श्रुतिम्।
व्याख्या[ं]कृत्वाध्यापयन्मां श्रीस्कन्दस्वाम्यस्ति मे गुरुः ॥७॥

अर्थात्—श्री गुहस्वामी का पौत्र और नागस्वामी का पुत्र याज्ञिक, प्रमाणज्ञ और लक्ष्मी से युक्त हरिस्वामी था। वह वेदों के व्याख्यान में प्रवीण और गुरु-मुख से विद्या पढ़ा हुआ था। जिसने सात सोम संस्था करके सम्राट् की पदवी प्राप्त की और ऋग्वेद का व्याख्यान करने के पश्चात् मुझे पढ़ाया था, वह श्री स्कन्दस्वामी मेरा गुरु है।

हरिस्वामी का काल—तथा इसी प्रथम काण्ड के भाष्य के अन्त में हरिस्वामी पुनः लिखता है—

> यदाब्दानां कलेर्जग्मुः सप्तत्रिंशच्छतानि वै।
> चत्वारिंशत्समाश्चान्यास्तदा भाष्यमिदं कृतम्॥

अर्थात्—जब कलि के ३७४० वर्ष बीत गए, तब यह भाष्य रचा गया।

प्रथम काण्ड के ब्राह्मण भाष्य के अनेक अध्यायों की समाप्ति पर हरिस्वामी ने निम्न-लिखित श्लोक लिखे हैं—

> नागस्वामिसुतो ऽवन्त्यां पाराशर्यो वसन् हरिः।
> श्रुत्यर्थं दर्शयामास शक्तितः पौष्करीयकः॥
> श्रीमतो ऽवन्तिनाथस्य विक्रमार्कस्य भूपतेः।
> धर्माध्यक्षो हरिस्वामी व्याख्यच्छातपथीं श्रुतिम्॥

अर्थात्—पराशर गोत्र वाले, नागस्वामी के पुत्र, पुष्कर-निवासी, अवन्तिनाथ विक्रमार्क के धर्माध्यक्ष, हरिस्वामी ने शतपथ की श्रुति का व्याख्यान किया।[1]

डाक्टर कुहनन् राजजी का मत है कि हरिस्वामी का पूर्व-लिखित काल सन्देह से परे है।[2]

स्कन्दस्वामी का काल—हरिस्वामी के काल के ज्ञात होते ही भारतीय इतिहास की अनेक तिथियों में एक स्थिरता आ गई। हरिस्वामी ने विक्रम संवत् ६९६ में शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड का भाष्य समाप्त किया। अपने गुरु ऋग्वेद-भाष्यकार स्कन्दस्वामी से विद्या पढ़े उसे १० वर्ष अवश्य हो चुके थे। उससे लगभग ६ वर्ष पूर्व स्कन्दस्वामी ने अपना ऋग्वेद भाष्य समाप्त किया होगा। अतः स्कन्दस्वामी विक्रम-संवत् ६८० के समीप अपना ऋग्वेद भाष्य लिख रहा था।

हरिस्वामी के भाष्य का त्रिवन्द्रम का हस्तलेख—हरिस्वामीकृत शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड के भाष्य के प्रारंभिक अंश का एक हस्तलेख त्रिवन्द्रम के विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में भी सुरक्षित है। वहां के अध्यक्ष जी की कृपा से उसके आरंभ के भाग की देवनागरी प्रतिलिपि मुझे लाहौर में प्राप्त होगई थी। तदनुसार हरिस्वामी कुमारिल भट्ट और प्रभाकर मत वालों (इति प्राभाकराः)[3] का स्मरण करता है। स्कन्द-महेश्वर की निरुक्त-भाष्य-वृत्ति ८।२ में भट्टारक [कुमारिल] के श्लोकवार्तिक का एक श्लोक तथा इसी प्रकरण में भट्ट-भट्टारक के तन्त्रवार्तिक का एक श्लोक और वृत्ति ३।१० तथा १०।१६ में भामह के श्लोक उद्धृत हैं। स्कन्द अपनी निरुक्तभाष्य-टीका १।१ में निरुक्त वृत्तिकार भगवद् दुर्ग का स्मरण करता है।

---

१. अपनी इस महत्त्वपूर्ण खोज का विस्तृत उल्लेख हमने वैदिक वाङ्मय का इतिहास, वेदों के भाष्यकार भाग, पृ० १—३ पर संवत् १९८८ में कर दिया था।

2. The date of Harisvāmin can not be questioned, since he gives a very definite Kali day and that day is 638 A. D. (Des. Cat. Sank. Mss. Intro. Adyar, 1942. Vol. I, Vedic, p. xxiii).

३. देखो पं० युधिष्ठिरजी कृत, संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पृ० ३५१, टिप्पण २।

इस से निश्चय होता है कि—प्रभाकर, कुमारिल, भामह तथा दुर्ग संवत् ६८० से कई वर्ष पूर्व अपने ग्रन्थ रच चुके थे।

गौडपाद स्कन्द-महेश्वर का पूर्ववर्ती—डा० कुञ्हन्राजजी ने स्कन्द तथा महेश्वर का सम्बन्ध गुरुशिष्य का माना है।[1] यह अनुमान युक्त प्रतीत होता है। फिर राजजी ने लिखा है कि निरुक्तवृत्ति ३।११ तथा ७।१८ में स्वल्प पाठान्तर से गौडपाद कारिका १।१७ का आधा भाग उद्धृत है। फलतः गौडपाद भी संवत् ६८० से पूर्व अपनी कारिकाएं रच चुका था। डा० राजजी का निकाला परिणाम उचित है।

स्कन्द, महेश्वर को गुरु-शिष्य[1] मानकर डा० राज ने प्रस्तावित किया है कि भर्तृहरि और कुमारिल का काल पीछे की ओर धकेला जाना चाहिए। कुमारिल ईसा की आठवीं तो क्या, सातवीं शती से भी पूर्व का माना जाना चाहिए।

"The quotations from Kumarils works found in Maheshvara's Nirukta commentary forms a strong evidence for pushing the dates of Bhartrihari and Kumarila back by a few centuries, perhaps by two or two and a half".[2]

डाक्टर राजजी को ज्ञात नहीं था कि शतपथ ब्राह्मण भाष्य में हरिस्वामी कुमारिल और प्रभाकर का साक्षात् स्मरण करता है। फिर भी उनका निकाला परिणाम सर्वथा निर्विवाद है।

तिथि-निर्णय पद्धति—अज्ञात तिथियों वाले ऐतिहासिक पुरुषों, ग्रन्थों अथवा ग्रन्थकारों का कालनिर्णय करने के लिए विद्वान् एक पर-सीमा और दूसरी अवर-सीमा निर्धारित कर लेते हैं। पर-सीमा का अर्थ है—उन ग्रन्थों अथवा ग्रन्थकारों का उत्तरवर्ती होना, जिन्हें कोई ग्रन्थकार उद्धृत अथवा स्मरण करता है। अवर-सीमा का अर्थ है—किन्हीं निश्चित-तिथि के ग्रन्थों में इस ग्रन्थ का उद्धृत होना। जिन निश्चित-काल के ग्रन्थों में यह विशिष्ट ग्रन्थ अथवा ग्रन्थकार उद्धृत अथवा स्मृत है, उनसे यह निस्सन्देह पूर्ववर्ती है। काल-निर्धारण का यह मार्ग उचित, उपयुक्त, सर्वसम्मत और निर्दोष है, यदि इस पर सावधानी से चला जाए।

पूर्वोक्त पद्धति के दोषयुक्त प्रयोग का भयङ्कर-परिणाम—वर्तमान लेखकों की असावधानी ने भारतीय इतिहास के शतशः विख्यात पुरुषों के काल-निर्धारण में भयानक भूलें उत्पन्न करदी हैं। आलसी लेखक उन्हीं भूलों को सत्य मानकर अपने ग्रन्थों में अभी तक अनेक महापुरुषों के अशुद्ध काल लिखते आरहे हैं। विचारणीय बात है—यदि किसी ग्रन्थ में स्मृत वा उद्धृत ग्रन्थ अथवा ग्रन्थकार की स्वीकृत तिथि कल्पना का फल है, और उसका मूलाधार परंपरा द्वारा सम्यक् सुरक्षित कोई निश्चित तिथि नहीं, तो कल्पित तिथि को निश्चित तिथि मानकर काल-निर्धारण की एक अन्ध-परम्परा चल पड़ती है। अन्ध-परम्परा की यह भूल संस्कृत ग्रन्थों अथवा ग्रन्थकारों की तिथियां निश्चित करने में बहुधा की गई हैं।

---

1. "Maheshvara must be a disciple of Skandasvāmin as within the work he cites a passage from the Rigveda commentary of Skandasvāmin as Upadhyāya vacana. Compare Dr. Sarup's edition, vol II, p. 157 and vols. III, IV, p. 20. Des. Cat. of Sans. mss. vol I. Vedic, 1942, p. 296.

2. Des. Cat. Sansk. Mss. Adyar, 1942; Vol. I. Vedic, Intro. p. XXIII.

कहीं-कहीं कोई ठीक बात लिख देने वाला जर्मन-अध्यापक विन्टर्निट्ज़ इस भयंकरता का अनुभव कर चुका था। वह लिखता है—

कल्पित तिथियों को सत्य मानकर कोई परिणाम निकालना लाभ के स्थान में हानिकर हो जाता है। स्पष्टरूप से यह तथ्य स्वीकार करना अधिक अच्छा है कि भारतीय इतिहास के अति पुरातन युग में तिथियां निश्चित नहीं हैं। उत्तरकाल में दो चार तिथियां ही निश्चित हैं।[1] इति।

अध्यापक विन्टर्निट्ज़ के लेख का प्रथम भाग सर्वथा युक्त है, परन्तु उत्तरभाग का लेख, कि—"अति पुरातन युग में भारतीय साहित्य के इतिहास की तिथियां निश्चित नहीं हैं", सर्वथा अयुक्त, पक्षपातपूर्ण और महान् अज्ञान का द्योतक है। शूद्रक, कालिदास, विष्णुगुप्त कौटल्य, बौधायन, पाणिनि, शौनक और यास्क आदि पुरातन ग्रन्थकारों की तिथियां पूर्णतया निश्चित हैं।

अध्यापकजी के लेख के प्रथम भाग का दृष्टान्त दुर्गकाल विषयक निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होगा।

निरुक्तवृत्तिकार दुर्गसिंह का काल—जर्मन लेखक अडोल्फ कएगी ने अपने ग्रन्थ "दि ऋग्वेद" में लिखा है—

Yaska is himself commented by Durga (13th century).[2]

अर्थात्—यास्कीय निरुक्त पर दुर्ग की व्याख्या है। दुर्ग का काल ईसा की १३वीं शती है।

डाक्टर लक्ष्मणसरूप और दुर्गकाल—हमारे सहपाठी परलोकगत डा० लक्ष्मणसरूपजी ने निघण्टु और निरुक्त का एक पर्याप्त सुन्दर संस्करण, सन् १९२७ में लाहौर से प्रकाशित किया था। उसके प्राक्कथन (preface) के पृ० १६ पर उन्होंने लिखा—

The commentary of Durga, written about the thirteenth century A. D.

अर्थात्—दुर्ग की व्याख्या, जो १३वीं शती के समीप लिखी गई।

पुनः पृ० २६ पर उन्होंने लिखा—

It will not be far from the truth therefore, to place Durga about the beginning of the fourteenth century A. D.

अर्थात्—यह सत्य से अधिक दूर नहीं कि दुर्ग १४वीं शती के आरम्भ में हुआ था। स्पष्ट है कि डा० लक्ष्मणसरूपजी ने आर्थर एलथर्नि मैकडानल आदि विद्या-ग्रहण करने के कारण अडोल्फ कएगी आदि लेखकों की प्रतिध्वनि मात्र की है।[3]

---

1. "But every attempt of such a kind is bound to fail in the present state of knowledge, and the use of hypothetical dates would only be a delusion, which would do more harm than good. It is much better to recognise clearly the fact that for the oldest period of Indian literary history we can give no certain dates, and for the later periods only a few." Ind. Lit. 1927, p. 25.
2. Second ed. 1880; Eng. tr 1886; p. 102.
३. सन् १९२८ में कल्पद्रुकोश की भूमिका, पृ० ६ पर, पं० रामावतार शर्मा ने भी ऐसा ही मत प्रकाशित किया।

कुछ काल पश्चात् डा० सरूपजी ने निरुक्त पर स्कन्द-महेश्वर वृत्ति का प्रकाशन हाथ में लिया। इस ग्रन्थ का एक सम्पूर्ण हस्तलेख मैंने उन्हें दिया था। उन्हीं दिनों आचार्य हरिस्वामी के शतपथ ब्राह्मण भाष्य का रचन-तिथि-विषयक लेख भी मैंने प्रकाशित कर दिया था। उससे निश्चित होगया कि दुर्ग का काल स्कन्दस्वामी से अर्थात् विक्रम-संवत् ६८० से पूर्व का है। इस खोज के पश्चात् डा० लक्ष्मणसरूपजी ने दुर्ग का काल ईसा की प्रथम शती के समीप का माना। यथा—

"Durga can thus be approximately assigned to the first century A. D."[1]

सोचने का स्थान है कि कहां ईसा की १४वीं शती और कहां ईसा की प्रथम शती। इस एक ही खोज से संस्कृत-वाङ्मय की तिथियों में एक विप्लव आगया। दुर्ग की निरुक्तवृत्ति में अनेक ग्रन्थकार उद्धृत हैं। वे सब न्यून से न्यून संवत् ६०० विक्रम के पूर्ववर्ती होगए।

कुमारिल का काल—हम पूर्व लिख चुके हैं कि स्कन्द-महेश्वर भट्ट कुमारिल के श्लोकों को उद्धृत करते हैं। अतः कुमारिल के काल विषय में भी लेखकों की सम्मतियां देखने योग्य हैं—

(क) अध्यापक आर्थर बेरिडेल कीथ अपनी कर्ममीमांसा पुस्तक में कुमारिल को ईसा सन् ७०० से पूर्व का नहीं मानता।[2]

(ख) काशीनाथ-च-पाठक का भी यही मत था।[3]

(ग) अध्यापक विनटर्निट्ज़ एक ही ग्रन्थ में एक स्थान पर सन् ७०० के समीप और दूसरे स्थान पर सन् ७५० के समीप का मानता है।[4]

(घ) पाण्डुरङ्ग वामन काणेजी लिखते हैं—

क्योंकि विश्वरूप कुमारिल के श्लोकवार्तिक के श्लोक उद्धृत करता है, अतः वह सन् ७५० से पश्चात् का है।[5] इति।

उनका अभिप्राय यही है कि कुमारिल का काल सन् ७५० के समीप का है।

(ङ) मद्रास प्रान्त के श्री वी. ए. रामस्वामी शास्त्री एम. ए. ने सुप्रसिद्ध दार्शनिक वाचस्पतिमिश्र कृत तत्त्वबिन्दु का सम्पादन किया है। इस ग्रन्थ की अंग्रेज़ी भूमिका में उन्होंने कुमारिल का काल ईसा की सातवीं शती माना है।[6]

(च) एच. आर. कपाडियाजी ने आचार्य हरिभद्र सूरिकृत अनेकान्तजयपताका द्वितीय खण्ड पृ० २६० के टिप्पण में कुमारिल का काल ईसा सन् ६०० माना है।

---

1. Com. of Skanda and Maheshvara on Nirukta, Vols. III, IV, Lahore, 1934; Intro. p. 101.
2. "Kumaril's date is determinable within definite limits, he used the Vakyapadiya of Bhartrihari; neither Hiuen Thsang nor It-sing mentions him; he was before Shankara; .... On the other hand, he is freely attacked by Vidyānanda, and Prabhachandra, who died before 838 A. D............The upper limit of date is, therefore, not earlier than 700 A. D." The Karma Mimāmsā, 1921; p. 11.
3. J B B R A S. XVIII, p. 213.
4. The philosopher Kumārila (about 700 A. D.) A. His. Ind. Lit., 1927, p. 403.
   The philosopher Kumārila (about 750 A. D.) ibid, p. 526.
5. "As Vishvarupa quotes Kumaril's Shlokavārtika, and is mentioned by the Mits.......... it follows that he flourished between 750 A. D. and 1000 A. D." His. Dharma, p. 261.
6. "Kumārila bhatta (C. A. D. 62 —700). Kumārilabhatta ....refers to Bhartrihari's Vakyapadiya ....who, according to It-sing, died about A. D. 650............ So he may be assigned to the 7th century." Tattvabindu, 1936; Intro. p. 28.

पूर्वोक्त मतों की अप्रामाणिकता—आचार्य हरिस्वामी का काल ज्ञात होते ही यह निश्चित होगया कि भट्ट कुमारिल और प्रभाकर सन् ६०० से पूर्व के आचार्य थे। हरिस्वामी और उसके गुरु स्कन्दस्वामी के काल की सूचना हमने सन् १९३१ में देदी थी। आश्चर्य है कि वी. ए. रामस्वामीजी ने सन् १९३६ तक इस बात को नहीं जाना। इसी प्रकार पूर्वोक्त अन्य सब मत भी कोरी कल्पनाएं हैं और इनसे इतिहास का अनिष्ट हुआ है।

धर्मकीर्ति का काल—कुमारिल के काल के साथ बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति के काल का भी सम्बन्ध है। तिब्बत देश वासी लामा तारानाथ के अनुसार कुमारिल और धर्मकीर्ति समकालिक थे। अतः धर्मकीर्ति का काल भी सन् ६०० से पूर्व का मानना पड़ेगा। हमारे मित्र श्री राहुल साङ्कृत्यायनजी ने धर्मकीर्ति-रचितप्रमाणवार्तिक की भूमिका पृ० ८ पर (सन् १९४३) धर्मकीर्ति का काल सन् ६०० माना है। चाहिए था कि "सन् ६०० से पूर्व" ऐसा वे लिखते। हमारा विचार है कि भावी खोज कुमारिल और धर्मकीर्ति का काल अधिक पुराना सिद्ध करेगी। इस समय तक यही कहना श्रेष्ठ है कि कुमारिल के काल के विषय में कीथ, विन्टर्निट्ज़ और काणे आदि के अनुमान अशुद्ध सिद्ध हुए हैं। धर्मकीर्ति के साथ अन्य अनेक आचार्यों का काल भी लगभग निश्चित हो जाता है। उसका संक्षिप्त उल्लेख नीचे किया जाता है—

आनन्दवर्धन—ध्वन्यालोक-वृत्ति का कर्ता। (कल्हण ५।३४ के अनुसार ८वीं शती)

|

धर्मोत्तर—आनन्दवर्धन ने धर्मोत्तर के ग्रन्थ पर टीका लिखी।[1]

|

अर्चट—धर्माकरदत्त

|

धर्मकीर्ति—अर्चट का गुरु

|

ईश्वरसेन[3]—धर्मकीर्ति का गुरु

|

दिङ्नाग—ईश्वरसेन का गुरु (समुद्रगुप्त[4] का समकालिक)

|

वसुबन्धु—(तिब्बतीय ग्रन्थों के अनुसार दिङ्नाग का गुरु) ज्येष्ठ भ्राता, असङ्ग

|

मनरोथ—वसुबन्धु का गुरु

---

१. आनन्दवर्धन लिखता है—

यत्त्वनिर्देश्यत्वं सर्वलक्षणविषयं बौद्धानां प्रसिद्धं तत् तन्मतपरीक्षायां ग्रन्थान्तरे निरूपयिष्यामः। तृतीयोद्योत।

इस वचन की व्याख्या में अभिनवगुप्त लिखता है—

ग्रन्थान्तर इति विनिश्चयटीकायां धर्मोत्तर्यां या विवृतिरमुना ग्रन्थकृता कृता तत्रैव तद्व्याख्यातम्।

२. आनन्दवर्धन और धर्मोत्तर के काल का अन्तर अभी अनिश्चित है। परन्तु लामा तारानाथ के अनुसार धर्मोत्तर का गुरु अर्चट था। राजतरं० ४।४९८ के अनुसार एक धर्मोत्तर उद्भट का समकालिक था।

३. धर्मकीर्ति के गुरु ईश्वरसेन ने चरक संहिता पर व्याख्यान लिखा। अर्चट के ग्रन्थ पर आलोक का लिखने वाला दुर्वेकमिश्र ऐसा लिखता है। इस बात का विशद् उल्लेख श्री पूरणचन्दजी बी. ए. कृत आयुर्वेदशास्त्र के इतिहास में मिलेगा। शास्त्र-ज्ञाता ईश्वर का उल्लेख यूनत्सांग करता है। (वाटर्स, भाग १, पृ० २१७)

४. भारतीय परंपरा के अनुसार विक्रम की प्रथम शती।

राहुलजी ने 'वादन्याय' की अंग्रेज़ी भूमिका, पृ० ६ पर लिखा है कि धर्मोत्तर (सन् ७२८) का गुरु कल्याणरक्षित था। धर्मोत्तर का काल ईसा सन् ७२८ से बहुत पहले था।

युवन च्वङ्ग अथवा ह्युनत्सांग के अनुसार मनोरथ बुद्ध-निर्वाण के १००० वर्ष पश्चात्[1] अथवा चीनी गणना के अनुसार विक्रम की लगभग प्रथम शती में अथवा उससे कुछ पहले था। इस प्रकार गहरे अनुसन्धान से धर्मकीर्ति का काल संवत् ६०० से बहुत पूर्व का ठहरेगा। यह लेख प्रसङ्गवश किया गया है। बौद्ध विद्वानों की तिथियों का पाश्चात्यों ने बहुत अशुद्ध रूप प्रस्तुत किया है। हमने यथार्थ तिथियां जानने का मार्ग प्रदर्शित कर दिया है।

ईश्वरसेन के अतिरिक्त किसी अन्य बौद्ध ईश्वर को हम नहीं जानते। चरकसंहिता की चक्रपाणिकृत टीका सिद्धिस्थान ११२०-२१ पर ईश्वरसेन, जो संभवतः जज्झट का उत्तरवर्ती है, स्मरण किया गया है—

बहूनि चात्र व्याख्यानानि टीकाकृताम्-अङ्गिरिसैन्धव-जेज्झट-ईश्वरसेनादीनां सन्ति। अन्यैस्तु तद्व्याख्यानानि दोषोद्धारादेव निरस्तानि। चरकसंहिता का अन्य व्याख्याकार भिषक् ईशानचन्द्र राजतरंगिणी ४।२१६ में उल्लिखित है।

आयुर्वेद के कतिपय अन्य व्याख्याकारों का निश्चित पौर्वापर्य निम्नलिखित है—

७. आषाढवर्मा, सुवीर, नन्दि, वराह, हरिचन्द्र, स्वामिदास, क्षेमदेव, हिमदत्त
|
६. जज्झट
|
५. गयदास, भास्कर, (पञ्जिकाकारी), माधवकर
|
४. ब्रह्मदेव, गोवर्धन (कौमुदी तथा रत्नमालाकार), गदाधर
|
३. चक्रपाणि संवत् ११०० के समीप
|
२. डल्हण
|
१. हेमाद्रि

१. अष्टाङ्गहृदय-व्याख्या में हेमाद्रि डल्हण को बहुधा उद्धृत करता है।

२. सुश्रुत तन्त्र, उत्तरतन्त्र ४६।१८-२० की निबन्धसंग्रह व्याख्या में डल्हण चक्रपाणि का स्मरण करता है—पञ्चमूली महतीति चन्द्रिकाकारः, स्वल्पेति चक्रपाणिः।

३. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान ३।२१७ की टीका में चक्रपाणि ब्रह्मदेव आदि का स्मरण करता है—अयं च पाठः पूर्वटीकाकृद्भिर् भट्टारहरिचन्द्र-स्वामिदास-आषाढवर्म-ब्रह्मदेव प्रभृतिभिरपि व्याख्यातत्वान्न प्रतिक्षेप्तव्यः।

४. निबन्ध संग्रहकार डल्हण लिखता है कि ब्रह्मदेव आचार्य गयदास का मत मानने वाला था—गयदासाचार्येणायं पाठोऽनार्ष एव इत्युक्तः। तन्मतानुसारेण ब्रह्मदेवेन क्वचिद् व्याख्यातः। (सूत्रस्थान, १६।१८॥)

1. "This Master made his auspicious advent within the 1000 years after the Budha's decease." T. Watters. Vol. I. p. 211.

निश्चल के अनुसार गोवर्धन और गदाधर चक्रपाणि के पूर्ववर्ती थे। (इ० हि० क्वा० सन्, १६५७ मास जून, पृ० १४०, १४१)
इन तीनों का पौर्वापर्य अभी निश्चेतव्य है।

५. डल्हण के अनुसार पञ्जिकाकार गयदास और भास्कर जेज्जट के उत्तरवर्ती हैं—
जेज्जटस्तु शिर इत्यादि संग्रहश्लोकत्वेन पठति। तदपि पञ्जिकाकारौ न मन्येते। (सूत्र स्थान, ४१।१३०—१३१॥)

निश्चल के अनुसार माधवकर जेज्जट का अनुयायी था। जेज्जटस्तु द्विगुणमिच्छति। तदनुयायी योगव्याख्यायां माधवकरः। (इ० हि० क्वा०, पृ० १४३)

६. आचार्य जेज्जट आषाढवर्मा (लाहौर सं० भाग, २ पृ० ६००, ६३४,…) सुवीर नन्दी, वराह और गूढपदभङ्ग टिप्पण आदि का स्मरण करता है।

अब प्रकृत विषय का अनुसरण करते हैं।

भामह का काल—अलङ्कार शास्त्र वेत्ता भामह का काल भी, सन् ६०० अथवा संवत् ६५७ से पूर्व का था। यह स्कन्द-महेश्वर से उद्धृत है। डा० एस. के. दे. जी ने भामह को ७-८ शती ईसा में रक्खा है। परलोक गत गणपति शास्त्रीजी ने भामह को कालिदास का पूर्ववर्ती माना है।[1]

हरिस्वामी और विक्रम—पूर्व लिखा गया है कि हरिस्वामी विक्रम संवत् ६८७ में अपने को अवन्तिनाथ-विक्रम का धर्माध्यक्ष लिखता है। यह अवन्तिनाथ-विक्रम कौन था। पुलकेशी द्वितीय के कोदणेर के ताम्रशासन पर लिखा है—

> द्विपञ्चाशदधिके शकाब्दपञ्चके विजयी साहसैकरति……
> स्वभुजबललब्ध…विक्रमाख्यः……पूर्वापराम्बुनाथः …… ।[2]

इससे प्रतीत होता है, चालुक्य वंश तिलक पुलकेशी द्वितीय अपर नाम सत्याश्रय श्री पृथ्वीवल्लभ विक्रम की उपाधि से विभूषित था। ऐहोल के शिलालेख से ज्ञात होता है कि पुलकेशी ने लाट, मालव और गुर्जर विजय किए थे।[3] अतः अवन्ति देश उसके अधिकार में था। पुलकेशी का पुत्र विक्रमादित्य था।

वह अपने पिता के जीवन काल में मालव आदिकों का विषयपति था। अतः प्रतीत होता है कि हरिस्वामी पुलकेशी-विक्रम अथवा उसके पुत्र विक्रमादित्य का स्मरण करता है।

हरिस्वामी का काल भारतीय इतिहास की तिथि-श्रृङ्खला में वस्तुतः एक मूलाधार का काम दे रहा है

इस अध्याय में भारतीय इतिहास की कालगणना के मूलाधार स्तम्भों का अति संक्षिप्त वर्णन कर दिया गया है। इस ग्रन्थ के अगले भागों में इनका विस्तृत वर्णन होगा। स्थानाभाव से हम अनेक मूलाधारों को यहां सन्निविष्ट नहीं कर सके।

---

१. स्वप्नवासवदत्ता की भूमिका।

2. Sources of Mediaeval Hist. of Deccan, by Khare, Vol. I. pp. 19.

३. प्रतापोपनता यस्य लाटमालवगूर्जराः। इण्डियन एण्टिक्वेरी भाग ५, सन् १८७६, पृ० ७०।

द्वादश अध्याय

माईथोलोजि (Mythology) का मिथ्यात्व

माईथोलोजि का प्रभाव—पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त प्रायः वर्तमान लेखक सहस्रों पुरातन बातों को माईथोलोजि कहकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। माईथोलोजि के इस भूत ने, जो यवन देश से योरुप में गया, और योरुप से भारत में आया, पुरातन इतिहास का अधिकांश नाश किया है। माईथोलोजि के ज्वर के कारण त्रिकालज्ञ ऋषियों के लेख असत्य माने जा रहे हैं। इसी की रट लगाकर अनेक अल्प पठित लोग अपने को पण्डित मान रहे हैं, तथा अपने को वैज्ञानिक (साइण्टिफिक) विचारक कहकर आत्मवञ्चना कर रहे हैं और भारत का उद्धार पश्चिम के अनुकरण में मानते हैं।

माईथोलोजि शब्द का अर्थ—यह शब्द अंग्रेज़ी भाषा में प्रयुक्त होता है, अतः अंग्रेज़ी के कोशों से इस शब्द का अर्थ दिया जाता है।

"मिथ"—किसी प्राकृतिक अथवा ऐतिहासिक घटना के विषय में जनसाधारण का विचार, जो शुद्ध कल्पित कथानक हो और जिसमें लोकोत्तर व्यक्तियों, कर्मों अथवा घटनाओं का सम्मिश्रण हो। इति। तथा, प्रायः कल्पित अथवा मनघड़त व्यक्ति। इति। और मिथिक का अर्थ है—जो वास्तविक घटना न हो। इति। माईथोलोजि, इन कल्पित घटनाओं अथवा लोकोत्तर कर्मों आदि की व्याख्या को कहते हैं। इति।[1]

यवन-ग्रन्थों में इस शब्द के मूल का अर्थ—अंग्रेज़ी के "मिथ" शब्द का मूल यवन-भाषा का म्यूथस (meuthus) शब्द है।[2] इस शब्द का प्रयोग स्ट्रैबो के भुवनवृत्त विषयक ग्रन्थ में बहुत अधिकता से मिलता है। तदनुसार, आश्चर्यजनक घटनाओं[3], धर्मशास्त्रकारों द्वारा उद्धृत पुरातन वृत्तों,[4] अलौकिक कथनों अथवा वृत्तान्तों[5] विष्णु के कृत्यों अथवा देवों की कृपाओं,[6]

---

1. "Myth. 1. A purely fictitious narrative usually involving supernatural persons, actions, or events, and embodying some popular idea concerning natural or historical phenomena. Often used vaguely to include any narrative having fictitious elements.
2. A fictitious or imaginary person or object 1849.
Mythic,—al. 1. b. Having no foundation in fact, 1870. Mythology. The exposition of myths." The Shorter Oxford English Dictionary, Vol. I. 1933.
2. Strabo, Geography, 1. 2. 35.
3. When Homer indulges in myths he is atleast more accurate than the later writers, since he does not deal wholly in marvels, but for our instruction he also uses allegory, or revises myths. I. 2. 7.
4. I remark that the poets were not alone in sanctioning myths, for long before the poets the states and the law-givers had sanctioned them as a useful experiment. I. 2. 8.
5. The reason for this is that myth is a new language to them a language that tells them, not of things as they are, but of different sets of things. I. 2. 8.
6. The poets narrate mythical deeds of heroism, such as the Labours of Heracles or of Theseus, or hear of honours bestowed by gods, I. 2. 8.

ईश्वर और धर्म-विषयक सब पुरानी बातों[1] और देवताओं के आविष्कारों के संग्रह[2] को "मिथ" और इन विषयों की विद्या को माईथोलोजि कहते हैं।

अंग्रेजी-अर्थ और यवन-अर्थ में अन्तर—स्ट्रैबो द्वारा प्रदर्शित अर्थ के अनेक अंशों से पता लगता है कि वह अथवा उसके काल के अन्य यवन-ग्रन्थकार "मिथ" को केवल कल्पित बात नहीं कहते थे, प्रत्युत कहीं कहीं इसे इतिहास भी मानते थे। ये इतिहास देव-विशेषों के इतिहास थे। वर्तमान पाश्चात्य लेखकों ने, जिन्हें देव-इतिहासों का अणुमात्र ज्ञान नहीं, "मिथ" शब्द के अर्थ में से देववृत्तों का अर्थ सर्वथा लुप्त कर दिया और इन्हें नितान्त कल्पित सिद्ध करने का यत्न किया। यवन अर्थ से पुराने इतिहास का कुछ अनिष्ट हुआ और अंग्रेजी अर्थ से इतिहास का सर्वथा-नाश हुआ।

भारत पर प्रभाव—जिन बातों को पाश्चात्य लेखकों ने "मिथिकल" अथवा "मिथ" कहा, वे सब कल्पित मानी जाने लगीं। तदनुसार वेद, ब्राह्मण-ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, निरुक्त, आयुर्वेद और अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थों के सहस्रों उल्लेख कल्पित घटनाओं से सम्बन्ध रखने वाले कहे गए।

प्रश्न होता है कि महायोगी, सत्यवक्ता ऋषि, मुनि क्या ऐसी कल्पनाएं किया करते थे, अथवा पाश्चात्य लेखकों की यह निजी निराधार असत्य कल्पना है। इसकी विवेचना अगली पंक्तियों में की गई है।

सत्यवृत्तों को मिथिकल कहने की प्रवृत्ति—यवन-लेखक हैरोडोटस ने शक-देश विषयक पुरातन इतिहास की निम्नलिखित घटना लिखी—

One generation before the attack of Darius they were driven from their land by a large multitude of serpants which invaded them.[3]

अर्थात्—दारयवहु के आक्रमण से एक पीढ़ी पहले नागों ने न्यूरिअन जाति पर आक्रमण किया। इति।

इस घटना को उत्तरवर्ती ग्रन्थकार समझ नहीं सके। स्ट्रैबो ने इसे माईथोलोजि लिख दिया। वह भूल गया कि नाग मनुष्य जाति के अङ्ग थे और न्यूरिअन जाति के समीपवर्ती जंगलों और देशों में रहते थे।

माईथोलोजि का मूल, ग्रन्थकारों का अज्ञान—इस उदाहरण से और इस इतिहास के पूर्व पृष्ठों के पाठ से ज्ञात हो जाता है कि यवन ग्रन्थकार तथा वर्तमान पाश्चात्य लेखक जिन बातों को समझ नहीं सके, अथवा जो पुरातन इतिवृत्त उन्हें आश्चर्यकर और असंभव लगे, उन्हें वे "मिथ" कहने लग पड़े। वस्तुतः यह उनका अपना अज्ञान था। स्वल्प पठित और पण्डितं-

1. For the thunderbolt, aegis, trident, torches, snakes, thyrsus-lances,—arms of the gods—are myths, and so is the entire ancient theology, I. 2. 8.
2. So, for instance, he (Homer) took the Trojan war, an historical fact and decked it out with his myths; —I. 2. 9.
so, says Polybius, each one of the gods came to honour because he discovered something useful to man. I. 2. 15.

३. देखो, पूर्व पृष्ठ ११५।

मन्य वर्तमान लेखक जिन पुरातन इतिहासों को समझ नहीं सकते, उन्हें वे "मिथ" अथवा "मिथिकल" कह कर सन्तुष्ट होजाते हैं और उनसे अपना पीछा छुड़ाते हैं।

यवन-ग्रन्थकारों की भूल का कारण—धन्यवाद का पात्र है हैरोडोटस, जिसने प्राचीनकाल के अनेक ऐतिहासिक तथ्य सुरक्षित कर दिए। पूर्व पृ० २१६, २२० पर हैरोडोटस के प्रमाण से लिखा जा चुका है कि यवन-ग्रन्थकार देव-इतिहासों से अपरिचित थे। उन्होंने इन इतिहासों का थोड़ा-सा भाग मिश्रवालों से लिया। यथा—

लगभग सब देवों के नाम मिश्र से यवन-देश में आए। देवों का पृथक् २ जन्म, उनका अनादिकाल से अस्तित्व, उनके रूप, इन विषयों में यवन लोग हैरोडोटस से कुछ पूर्व तक कुछ नहीं जानते थे। होमर और हैसिअड ने पहले पहले देववृत्त संग्रहीत किए। इति।

इस लेख से स्पष्ट ज्ञात होता है कि देवों का इतिवृत्त समझने के लिए यवनों के ग्रन्थ अत्यल्प सहायक हो सकते हैं। यवन इन विषयों को स्पष्टरूप से नहीं जानते थे। अतः अस्पष्ट अथवा भ्रमपूर्ण ज्ञान के कारण उन्होंने पुरातन इतिहासों को "मिथ" लिखा। यवनों की अपेक्षा मिश्रदेश के विद्वानों को देव-वृत्तों का अधिक ज्ञान था। मिश्रदेश का सर्व प्रथम राजा मनु था। वह स्वयं देव-सन्तान था। देववृत्तों का सर्वाङ्ग-रक्षण भारतीय इतिहासों में ही है।

एक अंग्रेज की सम्मति—आज से ११० वर्ष पूर्व अल-मासूदी के अरबी ग्रन्थ मरूज-अल-ज़हब का आङ्गलभाषा अनुवादक आलोयस स्प्रेंजर (Aloys Sprenger) अपनी भूमिका, पृ० ३६ (XXXVI) पर लिखता है—

"Our purpose here is to show, that the Greek history of mythology consists of misunderstood fragments, of a more ancient system; and, therefore, that Greek history has, without the knowledge of the East, no beginning, and does not lead to those results of the study of history which gives it an *infinite importance*."........................April 1841.

अर्थात्—पुराने देववृत्तों का यवन इतिहास अधूरा है। अतः यवन ग्रन्थकार अपने इतिहास का आरंभ नहीं बता सके।

यह एक ऐसा सत्य है, जो गंभीर अध्ययन करने वाले किसी विद्वान् की समझ में आ जाएगा।

ईसाई और यहूदियों की भूल का कारण—ईसाई और यहूदी बाईबिल को मानते हैं। बाईबिल का मत मूसा (Moses) के उपदेश से प्रचलित हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि मूसा ने सारा ज्ञान मिश्र से सीखा था।[1] इस ज्ञान के आश्रय पर मूसा ने देवों में से एक को अपना ईश्वर अथवा परब्रह्म मान लिया। मूसा के स्वीकृत देव के विषय में लिखा है—

Lord, the God of heaven. (Genesis 24.2)

O Lord God of hosts. (Jeremiah 15.16)

1. "And Moses was learned in all the wisdom of the Egyptians." The Acts ch. 7. 22.

the Lord, the Lord of hosts, (Isaiah 3.1)

And David arose,.........to bring up.........the ark of God, whose name is called by the name of the Lord of hosts. (Samuel 6.2)

for God is in heaven, and thou upon earth. (Ecclesiastes 5.2)
Of a truth it is, that your God is a God of gods. (Daniel 2.47)
and (Moses) came to the mountain of God. (Exodus 3.1)

And the angel of God. (Genesis 3.11)

And God spoke unto Moses.........my name J E H O V A H (Exodus 6.2,3)

पूर्वोक्त उद्धरणों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि बाईबिल में किसी देवविशेष का उल्लेख है। वह ईश्वर नहीं। वह संसार के प्राचीन इतिहास के अनेक देवों में से एक देव है। वह स्वर्ग अर्थात् मेरु-पर्वत का रहनेवाला सेनानी है। संभवतः वह इन्द्र है। अतः इस भय से कि बाईबिल का ईश्वर एक देव ठहरेगा, तथा आर्यधर्म के वृत्त अति प्राचीन और ऐतिहासिक सिद्ध होंगे, और ईसाई मत से वैदिक धर्म बहुत उत्कृष्ट माना जाएगा, वर्तमान ईसाई-यहूदी लेखकों ने "मिथ" का मिथ्यावाद सर्वत्र प्रचलित किया। इसके साथ यह भी निर्विवाद है कि पुरातन ज्ञान के अभाव में योरुप के अनेक लेखकों को अपने मत का भी पूर्ण ज्ञान नहीं है। इन कारणों से उन्होंने आर्यों के सत्य इतिहासों को "मिथ" बना दिया।

पाश्चात्यों की भ्रान्ति का कुफल—भ्रान्ति का परिणाम सदा दुःखदाई होता है। पर शतशः लेखकों का सतत भ्रान्ति-प्रसार जातियों का सत्य मार्ग उलट देता है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास में विलियम जोन्स से विण्टर्निट्ज़ तक और तत्पश्चात् भी प्राचीन इतिहास पर लिखने वाले सब पाश्चात्य लेखकों पर सकारण, और उनके भारतीय उच्छिष्ट-भोजियों पर अपने अन्न-दाताओं के प्रति कृतज्ञता-प्रदर्शन के हेतु, इस माइथोलोजि की भ्रान्ति का भूत पूरा सवार रहा है। उन्होंने इस की रट लगा कर बहुत वृथा लेख लिखे हैं। कुछ श्रेष्ठ लिखने वाला जर्मन अध्यापक पाल डाइसन (Paul Deussen) भी इस भूत के प्रभाव से बच नहीं सका। वह कपिल ऋषि को सर्वथा मिथिकल (entirely mythical)[1] लिखता है। वह समझ नहीं सका कि अति प्राचीन काल में अर्थात् आज से न्यूनातिन्यून ग्यारह सहस्र वर्ष पूर्व इतना महान् वैज्ञानिक विद्वान् कैसे हो सकता था।

वेदार्थ भ्रष्ट किया गया—पश्चिम के तीन ग्रन्थकारों ने प्रधानतया वेदमन्त्रों से माईथोलोजि निकाली। उनमें से—

प्रथम—ए. हिल्लिब्रण्ट ने "वेडीश माईथोलोजि" (सन् १८९१-१९०२)
तीन भागों में ब्रैसला से प्रकाशित कराई। (द्वितीय संस्करण, १९२७)

द्वितीय—एच. ओल्डनबर्ग ने "रिलिजन डस वेद"(सन् १८९४ में) प्रकाशित कराया।

तृतीय— आर्थर एनथनि मैकडानल ने "वैदिक माईथोलोजि" लिखी।

---

१. पूर्व पृष्ठ १३१ का टिप्पण १।

इन अल्पश्रुत, उलटी दिशा में परिश्रम करने वाले, पंडितंमन्य लेखकों से वेद भय भीत हो गया। इन्होंने मन्त्रों का ऐसा कलुषित अर्थ उपस्थित किया, कि त्राहि माम्, त्राहि माम्। बहुत दिन हुए, मैकडानल के व्याख्यान हमने लाहौर में श्रवण किए थे। उसकी स्थूल-विद्या का परिचय उस समय हमें बहुत अधिक मिला था।[1] इन्हीं अर्ध-शिक्षित लोगों का किया वेदार्थ पढ़कर अनेक भारतीय विद्यार्थी वेद पर अश्रद्धा प्रकट करते हैं।

इनमें से ग्रोक्सन-अध्यापक मैकडानल का कथन है कि "प्राथमिक (अशिक्षित) और विज्ञान-हीन युग में प्राकृतिक घटनाओं को समझने के लिए मानव-मन ने मिथस को जन्म दिया।[2] इति। हिलिब्रण्ट ने आर्यों को अर्धबर्बर की उपाधि से विभूषित किया।[3]

मैकडानल जी को ज्ञान नहीं था कि अति पूर्व-काल में मनुष्य अत्यधिक ज्ञानवान् था। यह अब शारीरिक और मस्तिष्क तथा मन की शक्तियों में बहुत दुर्बल हो गया है। प्राचीन भारतीय इतिहास के पृष्ठ इस सत्य की घोषणा उच्च-स्वर से कर रहे हैं।

इस पर पाश्चात्य विकास-वादी कहता है, यह असम्भव है, असत्य है। परन्तु इस विवाद का अन्त प्रतिज्ञा-मात्र से नहीं हो सकता। इस विषय पर हमारे प्रमाणों का जबतक कोई सम्यक् उत्तर नहीं देगा, तबतक उसका कथन प्रलाप-मात्र समझा जायगा। ब्रह्मा, स्वायंभुव मनु, कपिल, हिरण्यगर्भ, बृहस्पति, शिव, नारद, सोम और इन्द्र आदि के ज्ञान का समकक्ष आज एक व्यक्ति भी संसार भर में नहीं है। अतः पहला युग विज्ञानहीन युग अथवा अर्ध-बर्बर आर्यों का युग था, ऐसा कथन ज्ञानी का कथन नहीं है। अस्तु।

पहला युग सत्य-विज्ञान का युग था। फलतः अशुद्ध आधारपर लिखा गया हिलिब्रण्ट और मैकडानल आदि का सारा लेख भ्रान्त और वृथा-कथन है।

लूडर्स—सन् १९४२ में परलोकगत होने वाले जर्मन अध्यापक लूडर्स ने भी वरुण की माइथोलोजि पर एक ग्रन्थ लिखा था। उनके शिष्य एल. आल्सडोर्फ ने २१ मार्च सन् १९५१, बुधवार ४½ बजे सायं देहली विश्वविद्यालय में लूडर्स के एतद्विषयक मत पर व्याख्यान दिया। व्याख्यान के पश्चात् हमने उनसे कहा कि भारत में आकर वे यहां से कुछ सीख कर जाएं, अन्यथा उनका द्रव्य-व्यय और यात्रा-परिश्रम व्यर्थ जाएगा। परन्तु वे विचार के लिए उद्यत न हुए। ये लोग वृथा बातें बहुत करते हैं।

---

१. एक व्याख्यान में मैकडानल ने पक्ष उपस्थित किया था, कि ऋग्वेद में पुनर्जन्म का उल्लेख नहीं है। जब उसकी दृष्टि—अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः ॥ ऋग्वेद १०।१६।३ मन्त्र की ओर कराई गई, तो वह खेंचातानी करने लगा "दि वैदिक एज" पृ. ३४६ पर इस मन्त्र का अधूरा अर्थ है।

2. Religion in its widest sense includes on the one hand the conception which men entertain of the divine or supernatural powers......... .....Mythology is connected with the former side of religion as furnishing the whole body of myths or stories which are told about gods and heroes and which describe their character and origin, their actions and surroundings. Such myths have their source in the attempt of the human mind in a primitive and unscientific age, to explain the various forces and phenomena of nature with which man is confronted. (Vedic Mythology, p. 1.)

By far the most important source of Vedic Mythology is the oldest literary monument of India, the Rigveda (ibid, p. 3).

3. Half barbarian Aryans. Hille brandt second ed. 1927.

विएटर्निट्ज़ का लेख—सब लेखकों का सार विएटर्निट्ज़ के निम्नलिखित लेख[1] से प्रकट हो जाएगा—

ये सब प्राकृतिक घटनाएं हैं, जो इसी रूप में स्तुति, पूजा और आह्वान की गई हैं। केवल शनैः २ ऋग्वेद के गीतों में ही, इन प्राकृतिक घटनाओं का रूपान्तर माईथोलोजिकल रूपों में पूर्ण हुआ है। इसी रूपान्तर से देव और देवियां बनी हैं। यथा—सूर्य, सोम, अग्नि, द्यौ, मरुत, वायु, अप, उषा, पृथिवी से। इनके नाम अब भी निर्विवाद रूप से प्रकट करते हैं कि ये मूल में क्या थे। अतः ऋग्वेद के गीत सिद्ध करते हैं कि माईथोलोजि की अत्यधिक प्रसिद्ध मूर्तियां मन को अति-प्रभावित करने वाली प्राकृतिक घटनाओं को पुरुषाकार बना लेने से हुई हैं। माईथालोजिकल खोज उन देवताओं के विषय में भी सफल हुई है कि जिनके नाम अब इतने स्पष्ट नहीं हैं कि उनसे सिद्ध किया जाए कि मूल में सूर्य, सोम आदि के समान ये प्राकृतिक घटनाओं के अतिरिक्त और कुछ न थे। इन माईथोलोजिकल रूपों में इन्द्र, विरुण, मित्र, अदिति और विष्णु हैं? इति।।

तथा च, ब्राह्मणान्तर्गत सारे कथानक पुरानी मिथ और कहानियों से नहीं उपजे। परन्तु वे प्रायः किसी यज्ञ-संस्कार के व्याख्यान के लिए घड़े गए थे।[2] इति

इन कथानकों में भी, ऐसे हैं, जो धर्म का निरूपण करनेवाले ब्राह्मणों द्वारा ही घड़े गए थे। इनके साथ ही, दूसरे ऐसे कथानक या आख्यान हैं, जो पुरानी सर्वप्रिय मिथों और कहानियों के काल के हैं, अथवा एक ऐसी परम्परा पर आश्रित हैं, जो यज्ञ-विद्या से स्वतन्त्र हैं।[3] इति।

स्पष्ट है और अति स्पष्ट है कि ईसाई लेखकों ने जब बाईबिल में परब्रह्म का वर्णन न देकर, और एक स्वर्गवासी देव को ईश्वर का स्थानापन्न मान लिया, तो उन्होंने वेदों में से भी उसी प्रकार के अर्थ की कल्पना की। वैदिक प्रक्रिया से वे सर्वथा अनभिज्ञ थे। अतः अज्ञान और पक्षपात के कारण उन्होंने सिद्ध करने का यत्न किया कि सूर्य आदि को पुरुषा-

1. "All these natural phenomena are as such, glorified, worshipped, and invoked. Only gradually is accomplished in the songs of the Rigveda itself, the transformation of these natural phenomena into mythological figures, into gods and goddesses such as Surya (Sun), Soma (Moon), Agni (Fire), Dyaus (Sky), Maruts (Storms), Vayu (Wind), Apas (Waters), Ushas (Dawn), and Prithivi (Earth), whose names still indubitably indicate what they originally were. So the songs of the Rigveda prove indisputably that the most prominent figures of mythology have proceeded from personifications of the most striking natural phenomena. Mythological investigation has succeeded also in the cases of the deities whose names are no longer as transparent in proving that they originally were nothing but just natural phenomena similar to sun, moon, and so on. Among such mythological figures..............are Indra, Varuna, Mitra, Aditi, Vishnu ...." (Ind. Lit. by Winternitz Eng. tr. 1927, pp. 75, 76).
2. Moreover, by no means all the narratives which we find in the Brahmanas, are derived from old myths and legends, but they are often only invented for the explanation of some sacrificial ceremony.
3. Among these narratives, too, there are such as were merely invented by Brahmana theologians, while others date back to old, popular-myths and legends, or atleast are founded upon a tradition independent of the sacrificial science. (ibid, p. 218.)

कार मानकर ही वेदों के अनेक मन्त्रों का ठीक व्याख्यान हो सकता है। वेदों के आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक विषयों का उन्हें ज्ञान न था। इसके जानने की उनकी इच्छा भी न थी। अतः वे यथार्थ वेदार्थ पर नहीं पहुँच पाए। भाषा क्या होती है, पद क्या है, यौगिक और योगरूढ़ आदि शब्द क्या हैं, वेदमन्त्र व्यवहार की भाषा में नहीं हैं, इत्यादि परम गम्भीर विषयों का उन्हें आभासमात्र भी न था।

प्राकृतिक घटनाओं को पुरुषाकार देने से देव और देवियां बनीं, यह कथन बाल-लीला मात्र है। वेद में न तो ऐसे देवों और न देवियों का उल्लेख है। और ब्राह्मण ग्रन्थों तथा रामायण, महाभारत आदि इतिहासों में, जहां इन्द्र आदि देवों के इतिहास वर्णित हैं, वहां वे स्पष्ट ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इस सूक्ष्मतत्त्व से अपरिचित पुरुष वेद का अर्थ जान ही नहीं सकता। वेद व्यास कृष्ण द्वैपायन ने आज से पांच सहस्र वर्ष से भी पूर्व यह घोषणा की थी कि इतिहास और पुराण को न जानने वाला पुरुष विद्वान् नहीं और वह वेद का ज्ञाता नहीं हो सकता।

ऋषि, मुनि इतिहासों की कल्पना नहीं करते थे। यह सत्य है कि अनेक ऐतिहासिक महापुरुषों के नाम वेदों से शब्द लेकर रखे गए थे। शब्द और लिए भी कहां से जाते। मनुष्य के पास दूसरा स्रोत तो था नहीं। पर वेदों में उन उत्तरवर्ती मनुष्यों के इतिहास नहीं हैं, और न ही इतिहास की घटनाओं के साथ वेदमन्त्रों का पूरा सामञ्जस्य बैठ सकता है ? दोनों अपने स्वतन्त्र रूप रखते हैं। अतः उपनिषद्गत प्राण आदिकों के आख्यानों के समान इतिहास-ग्रन्थों में इन्द्र आदिकों के आख्यान कल्पित नहीं हैं। ऐसी अवस्था में माईथोलोजि का कहीं अस्तित्व ही नहीं रहता। इतिहास, इतिहास है और मन्त्र अपना पृथक् अर्थ रखते हैं। इतिहास में ब्रह्मा, स्वायंभुव मनु, इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सोम, अदिति, कश्यप, दक्ष, वैवस्वत मनु, पुरुरवा, उशना काव्य, बृहस्पति, इक्ष्वाकु, विश्वामित्र और वसिष्ठ आदि वैसे ही ऐतिहासिक पुरुष हैं, जैसे चन्द्रगुप्त मौर्य, कौटल्य और समुद्रगुप्त आदि। इतिहास में यदि इन्द्र आदि कल्पित होते, तो आयुर्वेद, सांख्य और अर्थशास्त्र आदि के वैज्ञानिक ग्रन्थकार इन्हें ऐतिहासिक न मानते। ऐसे महापुरुषों को मिथिकल (*mythical*) कहना अपने अज्ञान का परिचय देना है।

इसके विपरीत वेदमन्त्रों में इडा, अग्नि, सोम, वायु, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विनौ, मनु आदि के अर्थ ईश्वर तथा भौतिक पदार्थ के हैं। अग्नि आदि भौतिक पदार्थों को पुरुषाकार देकर प्रकृति पूजा का वर्णन वेद में नहीं है।

यास्क का महत्त्व—निरुक्त की अति-स्तुतियों में यास्क मुनि ने इस विषय का अत्यन्त विशद प्रतिपादन किया है। यास्क के सम्मुख राथ, वैयर, ह्विट्लिमएट और मैकडानल के अणुमात्र भी प्रमाण नहीं। निघण्टु २।२० में वज्र के १८ नाम पढ़े गए हैं। उनमें एक नाम कुत्स है। एक ऋषि ने भी अपना नाम कुत्स रख लिया। यास्क ने निरुक्त ३।११ में इस सूक्ष्म भेद का प्रदर्शन कर दिया है। यास्क ने महती सूक्ष्मेक्षिका से वेद के सत्यार्थ का रक्षण किया है। इसी कारण राथ, मैकडानल और कीथ आदि पाश्चात्य लेखक यास्क की अवहेलना में तत्पर रहे हैं। जिस यास्क के ग्रन्थ को वे समझ भी नहीं सके, उसकी निन्दा करना उन के जीवन का लक्ष्य था। यास्क का वेदार्थ माईथोलोजि के भूत को दूर भगा देता है।

१. इस का सुन्दर दृष्टान्त दि वैदिक एज पृ० १०७ पर देखिए लेखक इस को न जान कर गड़बड़ में पड़े हैं।

मन्त्र का अर्थ इतिहास के आख्यानगत अर्थ से इसलिए भिन्न है कि इतिहास मन्त्र को अपने से पूर्व-काल का मानता है। मन्त्र में अग्नि पद ईश्वर और भौतिक अग्नि वाची है, और इतिहास में अग्नि पुरुषाकार नहीं, प्रत्युत पुरुष था। तैत्तिरीय संहिता—"अग्नेस्त्रयो ज्यायांसो भ्रातर आसन्" ।२।६।६ के अनुसार उसके तीन ज्येष्ठ भ्राता थे। जैमिनीय ब्रा० १।६३ के अनुसार अग्नि देवों का ब्रह्मा था। अग्नि देवों का दूत भी था। अरे ईसाई और यहूदी लेखको! यह अग्नि था-जो बाईबिल में देव का दूत कहा गया है। ये अग्नि आदि पुरुष प्राकृतिक घटनाओं से पुरुषाकार नहीं बनाए गए। वस्तुतः पाश्चात्य लेखकों के अज्ञान का कोई पारावार नहीं है। उन्होंने ऋषियों को मिथ्या-कल्पना करने वाला लिखा। ऋषि तो ऐसे नहीं थे, पर पाश्चात्य लेखक स्वयं ऐसे अवश्य हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती—यह स्वामी दयानन्द सरस्वती के भाग्य में था कि वह पाश्चात्यों की इस महाभ्रान्ति को दूर करता। वेदार्थ की गौण बातों में स्वामी दयानन्द सरस्वती से कोई कितना ही मतभेद कर ले, परन्तु इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं, कि वेद के सत्यार्थ का अपूर्व आर्य मार्ग इस युग में स्वामी जी ने ही दर्शाया है। स्वामी जी ही यास्क और ब्राह्मण आदि ग्रन्थों को ठीक समझ सके हैं।

पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी—स्वामी जी के पश्चात् विज्ञान के महोपाध्याय, प्रखर-प्रतिभा युक्त पण्डित गुरुदत्त एम० ए० ने पाश्चात्यों के माईथोलोजि के भूत का सुन्दर निराकरण किया और उनकी खोखली विद्या का उद्घाटन किया। इतिहास के क्षेत्र में गम्भीर काम करने का इन दोनों महापुरुषों को अवसर नहीं मिला। दोनों महात्मा दीर्घजीवी नहीं हुए। अन्यथा माईथोलोजि का जो घना जङ्गल भारत के विश्वविद्यालयों में उग पड़ा है, वह न उग सकता।

भारतीय विश्वविद्यालयों में माईथोलोजि के गीत-गायक—साधारणतया भारतीय विश्वविद्यालयों में अनेक अध्यापक माईथोलोजि के गीत गाते हैं। हम उनका उल्लेख नहीं करते। इनमें से पाण्डुरङ्ग-वामन काणे जी कुछ अधिक योग्य हैं। उन्होंने भी पाश्चात्यों से योग्यता का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने का यही प्रकार ठीक समझा कि वे आर्य ऋषि, मुनियों को मिथिकल (mythical) कहें। अपने धर्मशास्त्र के इतिहास, भाग प्रथम में वे लिखते हैं—

It is almost impossible to say who composed the Manusmriti. It goes without saying that the mythical Manu, progenitor of mankind even in the Rigveda, could not have composed it. (p. 13.)

अर्थात्—यह कहना असम्भव है कि मनुस्मृति को किसने बनाया। ऋग्वेद-वर्णित मिथिकल मनु, जो मनुष्य जाति का मूल पुरुष है, इसे नहीं बना सका होगा।

ऋग्वेद में तो मनु नामक किसी मनुष्य-विशेष का वर्णन नहीं है। कारण, ऋग्वेद की श्रुति सामान्यमात्र है। और इतिहास-सिद्ध महापुरुष मनु को मिथिकल कहना बुद्धि को तिलांजलि देना है। जिस मनु के अस्तित्व में जैन और बौद्ध-विद्वानों को भी अविश्वास नहीं हुआ, उसे मिथिकल कहना श्रेष्ठ-पुरुष का काम नहीं है। स्वायंभुव मनु, प्राचेतस मनु और वैवस्वत मनु की ऐतिहासिकता पूर्व पृष्ठ ११३ पर प्रमाणित की गई है। तै० सं० ६।६।६. के अनुसार [वैवस्वत] मनु का इन्द्र ने यज्ञ कराया। वैवस्वत मनु और स्वायंभुव मनु को मिथिकल कहने वाले की आंख पर पश्चिमीय चश्मा चढ़ा है।

काणेजी पर मिथ्या विकासवाद का आतङ्क भी छाया है। अतः उन्होंने ऐसा लेख लिखा है।

पं० विश्वबन्धुजी की भ्रान्ति—अंग्रेज और जर्मन लेखकों को परम प्रामाणिक मानने वाले, इतिहास शास्त्र से सर्वथा अपरिचित, पर परिश्रम शील, श्री पण्डित विश्वबन्धुजी अपने पदानुक्रम कोश की भूमिका, पृ० २५ पर लिखते हैं—

And mythological allusions as found in the Brahmana texts.

अर्थात्—ब्राह्मण ग्रन्थों में माईथोलोजि के संकेत हैं।

भला इतिहास के उत्कृष्ट ज्ञान के बिना ब्राह्मण ग्रन्थ समझ कैसे आ सकते हैं। सत्य है, ये लेख प्रतिज्ञामात्र हैं, और गम्भीर आलोचन के योग्य नहीं।

पं० शिवशङ्करजी की कल्पना—पं० विश्वबन्धुजी पाश्चात्यानुकरण करते हुए एक पराकाष्ठा पर पहुँचे, और योग्य विद्वान् शिवशङ्करजी पाश्चात्य मतों के खण्डन करने में कई बार अनेक निर्मूल कल्पनाएं करते हुए दूसरी पराकाष्ठा पर। कल्पना की उड़ान में शिवशङ्करजी ने सब इतिहास ही उड़ा दिए। वेद में तो इतिहास नहीं, पर ब्राह्मण ग्रन्थान्तर्गत शतशः इतिहास तो इतिहास ही हैं। पण्डितजी वैदिक इतिहासार्थ निर्णय में लिखते हैं—

वेद में शर्याति, सुकन्या…………इत्यादि की कोई वार्ता नहीं है। इन सबको मनोहरार्थ और उपदेशार्थ श्री याज्ञवल्क्यजी [शतपथ में] कल्पना करते हैं। इति। पृ० २६८।

वेदार्थ को ले ब्राह्मण ग्रन्थ किस उत्तम रीति से काल्पनिक इतिहास बनाते हैं। इति पृ० ३०७।

पण्डितजी को मन्त्र और ब्राह्मण के अर्थ का पार्थक्य ज्ञात नहीं था, अतः उन्होंने ऐसी कल्पना करली।

पण्डितजी ने यास्क, कात्यायन और शौनक आदिकों का (भूमिका, पृ० २३) वृथा खण्डन किया है।

प्रसंगवश इतना लिख कर अब विण्टर्निट्ज़जी के लेख की परीक्षा करते हैं।

विण्टर्निट्ज के लेख की परीक्षा—काणेजी के मन पर पूर्वोक्त कलुषित संस्कार विण्टर्निट्ज़ आदि के लेखों का फल है। अतःअधिक उदाहरण न देकर हम विण्टर्निट्ज़ के केवल एक मत की आलोचना यहां करेंगे। वह लिखता है—

The very old myth, already known to the singers of the Rigveda of Pururavas and Urvashi, narrated in the Shatapatha Brahmana. XI. 5.1.[1]

अर्थात्—शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित पुरुरवा और उर्वशी की कथा एक मिथ है। ऋग्वेद के गाने वाले इसे बहुत काल पहले जानते थे। इति।

वैदिक प्रक्रिया से नितान्त अपरिचित होने के कारण जर्मन अध्यापक ने यह नहीं जाना कि मन्त्रों में पुरुरवा और उर्वशी का अर्थ विद्युत् विषयक है है। इतिहास के अनुसार पुरुरवा एक राजा था और उर्वशी अप्सरा थी। शतपथ ११।५।१।१ में—

1. His. of Ind. Lit. Vol. I. p. 209

उर्वशी हाप्सराः । पुरूरवसमैदं चकमे । तं ह विन्दमानोवाच ।

उर्वशी और पुरूरवा शुद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। पं० शिवशङ्करजी को भी यह तथ्य पूर्णतया ज्ञात नहीं हुआ।[1] कौटल्य सदृश महा-विद्वान् पुरूरवा को ऐतिहासिक राजा मानता है। काठक संहिता ८। १० का एतद्विषयक प्रमाण, भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० ५३ पर दिया जा चुका है। मैत्रायणी सं० १।६।१२ में भी पुरूरवा और उर्वशी इतिहास-सिद्ध व्यक्ति हैं। महाज्ञानी याज्ञवल्क्य, कठ, और मैत्रायण ने कल्पित व्यक्तियों को ऐतिहासिक नहीं बनाया। हे विण्टर्निट्ज़ जी! पुरूरवा ब्रह्मवादी था। वह मन्त्रद्रष्टा था। उसने यज्ञाग्नियां तीन भागों में बांटीं। उसकी ऐतिहासिक कथा को मिथ (myth) कहना भारतीय-संस्कृति के मूल आधारों को उखाड़ना है। समय आ गया है कि आर्य-विद्वान् अपनी संस्कृति पर किये गए ऐसे मिथ्या वादों के आक्रमणों का सबल-प्रतिकार सर्वत्र करें और पाश्चात्य लेखकों के मिथ्या ग्रन्थों का भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम से बहिष्कार कराएँ।

विण्टर्निट्ज़ की शरारत—शतपथ ब्राह्मण के एक वचन का अनर्थ करते हुए विण्टर्निट्ज़ लिखता है—

Therefore it is said:-"it is not true what is reported of the battles between Gods and Asuras, partly in narratives (anvākhyāna) partly in legends (itihāsa)." Shat. Br. (XI. 1. 6.)

इस वचन पर वे अगली टिप्पणी लिखते हैं—

Note. This is tantamount to declaring all the numerous legends of the Brāhmanas, which tell of the battles between Gods and Asuras, to be lies.

अर्थात्—अतः कहा है—देवासुर संग्रामों का जो वर्णन, कुछ अन्वाख्यान और कुछ इतिहास (legend) में है, यह सत्य नहीं है।

टिप्पण—इस का यह अभिप्राय है कि देवासुर संग्रामों को कहने वाले सब इतिहास अनृतभाषण हैं। इति।

शतपथ के पाठ का वास्तविक अर्थ—शतपथ ब्राह्मण ११।१।६।९ का प्रस्तुत वचन हम पूर्व पृ० २२ पर उद्धृत कर चुके हैं। उसका स्पष्ट शब्दार्थ ऐसा है—

इसलिए पुरातन विद्वान् कहते हैं—प्रजापति ब्रह्मा की सृष्टि के जो देवासुर हैं, [जिनका मन्त्रों में प्राण आदि के विभिन्न-रूपों में उल्लेख है] उनका यह नहीं है, जो दैवासुर था, जो अन्वाख्यान तथा इतिहास में स्पष्ट लिखा है,। अर्थात्—इतिहास और अन्वाख्यान के दैवासुर मन्त्रगत, आलङ्कारिक दैवासुर से भिन्न हैं। शतपथ में इस पाठ के आगे प्रमाण-स्वरूप एक मन्त्र उद्धृत है, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि मन्त्र में जो मघवा इन्द्र है, उसका कोई शत्रु नहीं। उसके युद्ध अलङ्कारमात्र हैं। इस अभिप्राय का पाठ निरुक्त २।१६ में भी है। उसका व्याख्यान करते हुए निरुक्त-भाष्यकार दुर्गसिंह (विक्रम छठी शती से पूर्व) लिखता है—

---

१. वै. इ. निर्णय, पृ० ४४१-४५१।

एवम् एतस्मिन् मन्त्रे मायामात्रत्वमेव युद्धम् इति श्रूयते ।
विज्ञायते च—तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद्दैवासुरम् इति ॥

मन्त्र और इतिहास के अर्थपार्थक्य का यहाँ सुन्दर निदर्शन है। स्मरण रहे कि इतिहास के देवासुर संग्राम कश्यप प्रजापति की सन्तान में हुए थे।

इस सीधे अर्थ को तोड़ मरोड़ कर अपना अर्थ निकालना और संसार की आँखों में धूल डालने का यत्न करना कि भारतीय इतिहास के देवासुर संग्राम सब अनृतभाषण का फल हैं, शरारत के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

ब्राह्मणवादों में कहीं-कहीं अलङ्कार हैं, पर बहुधा ऐतिहासिक प्रसङ्ग भी हैं। वे प्रसङ्ग भारतीय इतिहास का एक अति विपुल स्रोत हैं। यह निश्चय है कि ब्राह्मणों में रूपक और उपमाएँ तो हैं, पर माईथोलोजि अथवा असत्य कल्पना कहीं नहीं। मन्त्रों में तो इसका स्वप्न भी नहीं लिया जा सकता।

ब्राह्मणों और रामायण आदि में माईथोलोजि मानने वाले तथा इतिहास में पुरातत्त्व के केवल पत्थरिया प्रमाण मानने वालों की परीक्षा

कलकत्ता विश्वविद्यालय के महोपाध्याय श्री डा० सुनीतिकुमार चट्टोपाध्यायजी पर पश्चिमीय रङ्ग अत्यधिक चढ़ा है। उसी की तरङ्ग में वे लिखते हैं—

दूसरी बात यह है कि हमें रामायण, महाभारत और पुराणों में बड़े-बड़े राजाओं के नाम मिलते हैं, एक प्रौढ़ सभ्यता का पता भी इन ग्रंथों से हमें चलता है। परन्तु रामायण, महाभारत और पुराण के युग की (अर्थात् कम से कम तीन चार हज़ार बरस पूर्व के हिन्दू-युग की) पुरानी इमारतें, हाथ के काम, शिल्प के निदर्शन, ये सब कुछ भी नहीं मिलते। केवल कई हज़ार बरस के "पुराण" और "इतिहास" की कहानियाँ हमारी प्राचीन हिन्दू-संस्कृति के अस्तित्व की एक मात्र प्रमाण स्वरूप विद्यमान हैं। इस साहित्यिक आधार के सिवा दूसरा आधार, जिसे हम "पत्थरिया आधार" कह सकते हैं, हमारे पास मौजूद नहीं। क्या मौर्य-युग की पूर्व-कालीन हिन्दू संस्कृति के निदर्शन कुछ भी नहीं हैं? मिसर, बाबिल देश, असीरिया, लघु एशिया, क्रीट द्वीप—इन सब स्थानों में अब से तीन, चार, पांच हज़ार बरस पूर्व की चीज़ें मिली हैं, वे सचमुच चार या पांच हज़ार बरस के पहली की हैं, परन्तु वे आर्य जातीय लोगों के हाथ के काम नहीं, जो पण्डित इस विषय पर अनुसन्धान कर रहे हैं, उनका विचार तो यही है।[1] इति।

पुनः—आर्यों में (४००० ईसा पूर्व में) शिल्प विद्या विषयक जागृति भी न हो सकी।[2] इति

तथा—अपनी पितृभूमि (मध्य या पूर्व यूरोप का कोई अंश) में आर्य लोग सभ्यता के उच्च स्तर पर पहुँच न सके। वास्तव सभ्यता में ये लोग प्राचीनकाल की सुसभ्य जातियों के बहुत पीछे ही थे।[3] इति।

---

१. भारतीय अनुशीलन, संवत् १९९०, पृ० ८९। २. तत्रैव, पृ० ८६।
३. तत्रैव, पृ० ८६।

ये विचार श्री बाबू सुनीतिकुमारजी के हैं। योरुपीय पद्धति के अनुसार शिक्षा-प्राप्त वर्तमान समाज, जो केवल योरुपीय विचार-धारा से परिचित है, उन्हें बड़ा विद्वान् मानता है। ऐसे विद्वान् की आलोचना पाप समझी जाती है। पर कर्त्तव्य ऐसा करने पर बाधित करता है। देखना है कि इन विचारों में तथ्य कितना है।

पूर्वोद्धृत लेख में सुनीति बाबूजी ने निम्नलिखित बातें कही हैं—

१. रामायण, महाभारत और पुराणों में बड़े-बड़े राजाओं के नाम मिलते हैं।
२. इन ग्रन्थों से एक प्रौढ़ पुरातन सभ्यता का पता चलता है।
३. रामायण, महाभारत और पुराण का युग आज से कम-से-कम तीन चार सहस्र वर्ष पूर्व का युग है।
४. इन ग्रन्थों में वर्णित इमारतें, हाथ के काम और शिल्प-आदि खुदाइयों में नहीं मिले।
५. रामायण, पुराण और इतिहास के ग्रन्थ कहानियाँ मात्र हैं।
६. साहित्यिक आधार निकृष्ट होता है।
७. मिस्र, बाबिल आदि देशों के पुराने स्थानों की खुदाईयों में, चार, पाँच सहस्र वर्ष के पूर्व की वस्तुएँ मिली हैं।
८. भारत में मौर्य-युग की पूर्वकालीन हिन्दू-संस्कृति के ऐसे निदर्शन नहीं मिले।
९. मिस्र आदि देशों में हुई खुदाइयों में आर्येतर जाति के लोगों के हाथ के शिल्प मिले हैं। वे आर्यों से पूर्वकालीन लोग थे।
१० खुदाइयों के पण्डितों का ऐसा विचार है। श्री सुनीतिकुमारजी उनसे सहमत हैं।
११. प्राचीन आर्य शिल्प-विद्या नहीं जानते थे।
१२. आर्य लोग बाहर से आकर भारत में बसे। सभ्यता में आर्य लोग पुरानी सुसभ्य जातियों के बहुत पीछे थे।

यह है, सुनीति बाबूजी के उद्गारों का निष्कर्ष। बाबूजी ने समझा था, जो मन में आए, लिखदो। कोई पूछेगा नहीं। पर, ए, इन विषयोंपर अनुसन्धान करने वाले पण्डितो "कलेजा थाम लो, अब बारी मेरी आई।" सोचलो, दूसरे भी विद्वान् हैं, जिन्होंने इन विषयों में अनुसन्धान किया है।

आलोचना—पूर्वोक्त बारह बातें अधिकतर प्रतिज्ञामात्र हैं, पर यतः लेखक "सत्यानुसंधित्सा" की घोषणा करता है, अतः इनकी परीक्षा आवश्यक हो जाती है। इस परीक्षा के द्वारा आर्य-इतिहास का सत्यपक्ष हम संसार के सामने धरते हैं।

१. यह सत्य है कि रामायण, महाभारत और पुराणों में बड़े-बड़े राजाओं के नाम मिलते हैं। रामायण आदि इतिहास ग्रन्थ हैं और इन में राजाओं का नामानुकीर्तन होना ही चाहिए। इस नामानुकीर्तन की सत्यता में निम्नलिखित प्रबल-प्रमाण हैं।

प्रथम—रामायण, महाभारत और पुराणों में ऐसे संकेत हैं, जिनसे उन राजाओं का निश्चित काल जाना जा सकता। काल-गणना इतिहास का अङ्ग है। इसका स्पष्टीकरण हमारे भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण में देखें।

द्वितीय—रामायण आदि ग्रन्थों में राजाओं के नाम कल्पित नहीं, कारण—

(क) इन राजाओं में से अनेक के नाम, कठ, मैत्रायणीय आदि वेद-शाखाओं ऐतरेय, जैमिनीय आदि ब्राह्मणों, कल्पसूत्रों, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्रों, और आयुर्वेदीय तथा अन्यान्य परम वैज्ञानिक ग्रन्थों में भी मिलते हैं।

(ख) पूर्वोक्त सब ग्रन्थों के कर्ता सत्यनिष्ठ, अलोलुप और बहुशास्त्र-विशारद ऋषि, मुनि थे।

(ग) उन ऋषियों का ज्ञान विस्तृत था और अविच्छिन्न परंपरा पर आश्रित था।

(घ) विभिन्न शास्त्रों के रचने वाले इन सब ऋषियों ने कोई महती सभा एकत्र करके, असत्य कल्पनाओं के प्रचार का सर्व-सम्मत-प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया था।

(ङ) भारतीय परंपरा ने तथा तपस्वी ब्राह्मणों ने घोर त्याग द्वारा कण्ठस्थ रखकर इन ग्रन्थों को सहस्रों वर्ष तक सुरक्षित रखा है। इन ग्रन्थों में इस सुदीर्घ काल में प्रक्षेप अत्यल्प हुए हैं।

अतः रामायण आदि ग्रन्थों में वर्णित बड़े-बड़े राजा ऐतिहासिक राजा थे।

तृतीय—इन महान् राजाओं के बसाए अनेक नगर आज भी भारत में विद्यमान हैं। कल्पित राजाओं के नाम पर संसार में नगर नहीं बसे। गङ्गा का नाम भागीरथी और जाह्नवी सकारण है।

चतुर्थ—गत २५०० वर्ष के शिला लेखों, और ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण लेखों में इन राजाओं में से अनेक के नाम आदर, मान और गौरव के साथ स्मरण किए गए हैं। कल्पित राजाओं के प्रति ऐसा मान असंभव है।

पञ्चम—अधिक क्या लिखें, इन बड़े-बड़े राजाओं में से अनेक के नामों का निर्देश यवन, पारसीक, बाबली और मिश्री वाङ्मय में भी मिल गया है। तब इन्द्र, मनु, यम, काव्य उशना तथा सगर आदि राजाओं के अस्तित्व में कौन विज्ञ पुरुष सन्देह कर सकता है।

सुनीति बाबूजी, आपके पक्ष का श्री गणेश ही आपके सदोष ज्ञान का परिचय करा रहा है। आपकी निराधार कल्पनाएँ बताती हैं कि आप अनुसन्धान किए बिना लिखने लग पड़े हैं।

२. अब आई श्रीमानों की दूसरी प्रतिज्ञा। इन ग्रन्थों से एक प्रौढ़ सभ्यता का पता चलता है। यह बात कुछ ठीक है। इसके साथ हम इतना और जोड़ते हैं कि इन ग्रन्थों में शतशः बातें इतनी उच्च और अनुपम हैं कि उनका शतांश भी आज संसार में नहीं पाया जाता। न ही संसार की किसी और जाति में इतनी उच्चता तथा इतना ज्ञान था। हम केवल आयुर्वेद की इतनी असाधारण बातें बता सकते हैं, जिनका संसार को आज तक ज्ञान नहीं। यथा—जिस बालक के दांत आठवें मास के उत्तरार्ध से पहले अर्थात् चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें अथवा आठवें के आरंभ में निकलते हैं, वह चिरजीवी नहीं होगा। इसका सूक्ष्म कारण है। एक-एक शास्त्र की इन वैज्ञानिक बातों का संग्रह हम पृथक् ग्रन्थ में कर रहे हैं।

३. तीसरी प्रतिज्ञा के अन्तर्गत श्री सुनीति बाबूजी कहते हैं— रामायण आदि का युग आज से कम-से-कम तीन, चार सहस्र वर्ष पूर्व का युग है। यह प्रतिज्ञा सर्वथा भ्रान्त है। इसके खण्डनात्मक हेतु इस ग्रन्थ के पूर्व पृष्ठों में भरे पड़े हैं।

४. इन ग्रन्थों में वर्णित इमारतें, हाथ के काम और शिल्प आदि खुदाइयों में नहीं मिले।

अब आई श्री सुनीतिकुमारजी की चौथी प्रतिज्ञा—उन्होंने यह बात क्यों लिखी। केवल इसलिए कि वे श्रद्धावान् आर्यों को कहें कि रामायण आदि में अनृत बातें लिखी हैं। और यदि वे आर्यों के विश्वासों को नष्ट करने में सफल होजाएँ, तो योरुप के लोग उन्हें बड़ा और पक्षपात रहित विद्वान् मानेंगे। देखिए; जब रामायण और महाभारत का शुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ होना भारत के सहस्रों विद्वान्, जो सुनीति बाबू और उनके गौराङ्ग गुरुओं से सहस्रों गुणा अधिक पठित थे, मानते आए हैं, तो सुनीति बाबू के इस सारहीन कथन का कोई मूल्य नहीं। हमने भारतीय इतिहास के स्रोत नामक चतुर्थ अध्याय में इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

सुनीति बाबूजी नहीं जानते कि उत्कृष्ट सभ्यता की सैकड़ों बातें ब्राह्मण ग्रन्थों में भी पाई जाती हैं। ये ग्रन्थ आज से पांच सहस्र वर्ष और उससे भी पहले के ग्रन्थ हैं। क्या ब्राह्मण ग्रन्थों के वचन भी अनृत हैं। ऐसा कथन सुनीति बाबूजी ही कर सकते हैं। जिन ग्रन्थों के एक-एक अक्षर को सुरक्षित रखने का यत्न किया गया है, तथा जिनका प्रवचन सत्य वक्ता ऋषियों ने किया, उनमें ऐसी बात है नहीं।

भारतीय सभ्यता की उत्कृष्टता रामायण और महाभारत से ही व्यक्त नहीं है, अपितु उन शतशः ग्रन्थों से भी ज्ञात होती है, जो अन्य अनेक विद्याओं से सम्बन्ध रखते हैं।

प्रश्न होता है फिर पुरानी इमारतें मिलती क्यों नहीं।

इस प्रश्न का उत्तर सीधा है।

(क) अशोक के काल तक के भवनों के भग्नावशेष आज तक की खुदाइयों में मिल चुके हैं। अशोक के स्तंभों पर बने सिंह असाधारण प्रस्तर कला का दृष्टान्त हैं। प्रस्तर पर जो जिला है, वह इतना काल बीतने पर आज भी अपनी अलौकिक छटा रखे हुए है। इस काल को लगभग २५०० वर्ष हो चुका है। उस से तीन सौ वर्ष से अधिक पूर्व तथागत बुद्ध का काल था। बुद्ध के इतिहास से ज्ञात होता है कि बुद्ध के काल में भी विशाल भवन भारत में विद्यमान थे। उससे पूर्व के मोहेञ्जोदरो और हड़प्पा के पुराने नगर अब खोदे जा चुके हैं। ये नगर आर्यों और असुरों के मिले-जुले नगर हैं। आर्य सभ्यता इन नगरों के काल से सहस्रों वर्ष प्राचीन है। ये नगर भारत के ही हैं, मैसोपोटेमियाँ के नहीं। इन नगरों के प्रदेश आर्य राजाओं के अधीन थे। मोहेञ्जोदरो सिन्धु-सौवीर राज सुबल के अधीन और हड़प्पा मद्राधिपति शल्य के अधीन था। अतः श्री सुनीतिकुमारजी का प्रथम प्रश्न सर्वथा वृथा है।

सुनीति बाबूजी एक और भी बात भूलते हैं। मैसोपोटेमियाँ के [भी] कारीगर भारतीय कारीगरों के सम्बन्धी ही तो थे।

(ख) आर्यों के अति पुरातन काल के दो-चार भवन और नगर खुदाइयों [में] अब भी मिल सकते थे। पर उन भग्नावशेषों के मिलने के उचित स्थानों [को] खोदने का अभी तक यत्न नहीं हुआ।

(ग) परन्तु भारत में खुदाइयाँ होने पर भवनों और शिल्प आदि के बहुत अधिक चिह्न नहीं मिलेंगे। कारण, भारत के अनेक प्राचीन राजाओं ने धनान्वेषण के लिए पुरातन भग्नावशेषों के मिलने के अनेक स्थान बहुत पहले खोद लिए थे। खोदे हुए स्थानों में जल-वायु के स्पर्श से भूमि को शोरा खा जाता है। मोहेंजोदरो में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो रही है। प्राचीन राजाओं ने खोदवाने के पश्चात् वे स्थान जब अरक्षित छोड़ दिए, तो वहाँ के भवन, शोरा के प्रभाव से अथवा वर्षा-जल के सैकड़ों वर्षों तक पड़ने के कारण, नष्ट-भ्रष्ट हो गए। अलबेरुनी ऐसे एक राजा श्री हर्ष का उल्लेख करता है। देखिए, हमारा भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण पृ० ३०४।

(घ) भारतवर्ष में एक-एक क्षत्रिय-कुल का राज्य चार सहस्र, पाँच सहस्र वर्ष से भी अधिक काल तक रहा।[1] और पुरातन भारत की भूमि एक सौ से अधिक राजकुलों में विभक्त थी। प्रतीत होता है, जब कभी भूकम्पों के कारण किसी राजकुल से शासित कोई नगर दब गया, तो उस कुल के उत्तरवर्ती राजाओं में से किसी ने राजभवन और दूसरी विशेष इमारतें खुदवा कर उसकी सम्पत्ति निकलवाली। ऐसे खोदे गये नगर खुदाई के कुछ काल पश्चात् नष्ट हो गए। संसार के दूसरे देशों में भूकम्प द्वारा नगरों के नाश के साथ-साथ कई बार राजकुलों का भी उच्छेद हो गया। तदनन्तर उत्तरवर्ती राजाओं ने नई राजधानियाँ बनालीं। और दबे हुए स्थान यथावत रह गए। गत दो सहस्र वर्ष में पुरातन स्थानों का खोद लेना थोड़ा हो गया। और जहाँ कुलों का उच्छेद नहीं हुआ, वहाँ उत्तरवर्ती राजा आलस्य युक्त रहे अथवा धनाभाव आदि के कारण दबे हुए स्थानों को शीघ्र खुदवा नहीं सके। कालान्तर में वे स्थान विस्मृत हो गए। भारतेतर देशों में निधि-ज्ञान विद्या पूर्ण न थी, अतः नगर दबे के दबे रह गए।

ऐसी स्थिति में भी, जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, यत्न करने पर भारत में भी कुछ और ऐसे स्थान निकल सकेंगे, जहाँ से ५००० वर्ष से अधिक पुराने काल के

---

१. भारतीय इतिहास की इस सत्यता को न समझ कर, और इतिहास तथा संस्कृत-विद्या से शून्य होने के कारण सुनीति बाबूजी ने एक लेख लिखा—

India and Polynesia, Austric bases of Indian Civilisation and thought (*Bharata Kaumudi, part I, pp. 193-208*)

इस लेख में उन्होंने सिद्ध करने का यत्न किया है कि अनेक संस्कृत शब्द पोलिनीशियन भाषा से संस्कृत में आए हैं। जिस संस्कृत भाषा के महा व्याकरण ग्रन्थ आज से दस सहस्र वर्ष से पूर्व लिखे गए, उसके विषय में ऐसा अनर्गल प्रलाप वृथा है।

सुनीति बाबूजी ने सन् १६४६ के जनवरी मास के आरंभ में हमें ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र का मूल निम्नलिखित रूप में स्वयं लिख कर दिया था—

अग्निम् इड्दइ पुरज्‌हितम्, यज्ञस्य दइवम् ऋत्विगम्, ह्वउतारम् रत्नधातमम् ॥

उनकी अविद्या का यह ज्वलन्त प्रमाण है। मूल सिद्धान्तों पर वे हम से बात नहीं कर सके। हम चाहते हैं कि वे और उनके साथी एकबार सामने वाद करें, तो उनकी विद्या का ज्ञान सबको हो जाएगा।

भवन आदि निकलेंगे। यह काम वे लोग कदापि नहीं कर सकते, जिन्हें पुरातन वाङ्मय का आमूल चूल ज्ञान नहीं है। वस्तुतः पुरातन वाङ्मय की सहायता से ही ऐसे स्थानों का पता लग सकता है।

(ङ) यह ऐतिहासिक तथ्य है कि पुराना हस्तिनापुर गङ्गा की बाढ़ में बह गया।[1] अहिच्छत्र की खुदाई गत कई वर्ष चलती रही। फिर मध्य में छोड़ दी गई। जो खुदाई हुई, उसका पूरा-विवरण आज तक कहीं प्रकाशित नहीं किया गया। उज्जयन की खुदाई कठिन है, क्योंकि वर्तमान नगर पुराने नगरांशों पर खड़ा है। इसकी खुदाई के लिए विशेष प्रकार की सुरङ्गें लगेंगी। द्वारिका, श्री कृष्णजी के देह-त्याग के पश्चात् समुद्र में डूब गई। अन्य अनेक पुराने नगरों का भाग्य भावी खोज प्रकट करेगी।

(च) मिश्र और मैसोपोटेमियाँ आदि देशों में जल-वायु अन्य प्रकार का था। वहाँ ऋतुएँ कुछ विभिन्न थीं। भारत में गरम ऋतु बड़ा कड़ा प्रभाव रखती है। अतः प्राचीन भारत में ग्रामों और अधिकतर नगरों के घर जान-बूझ कर सब पक्की ईंटों के नहीं बनाए जाते थे। विशाल पक्की इमारतें होती थीं, पर बहुत अधिक नहीं। आज पक्की ईंटों के घरों, पत्थरों के घरों और कोले की तार से ढकी सड़कों के कारण, गरमियों में ताप के अत्यधिक प्रभाव से, रोग, विशेष कर सन्तत ज्वर आदि बहुत बढ़ गए हैं। इन रोगों से बचने के लिए पाश्चात्य पद्धति पर शिक्षा-प्राप्त वैद्य जो तीक्ष्ण टीके लगाते हैं, उनसे मानव आयु न्यून हो गई है। पुराने दिनों में इन बातों से बचने के लिए उज्जयन आदि नगरों में सैकड़ों वापियाँ और तालाब रहते थे।

(छ) श्री सुनीतिकुमारजी ने इस विषय पर लिखते हुए, रामायण, महाभारत और पुराण का ध्यान किया है। उन्हें ज्ञात नहीं कि भारतीय वास्तु-शास्त्र के अनेक आचार्य रामायण आदि के काल से बहुत प्राचीन काल के थे। मत्स्य पुराण अध्याय २५२।२-४ श्लोकों में अठारह वास्तु शास्त्र के उपदेष्टा लिखे हैं। इनमें से मय, भृगु, और शुक्र असुर देशों के थे। शेष पन्द्रह अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, नारद, बृहस्पति और वासुदेव कृष्ण आदि भारतीय थे। यदि भारत में वास्तु-विद्या का प्रदर्शन न होता, तो उत्तरोत्तर इस विषय के शास्त्र रचयिता न होते। श्री कृष्ण ने न केवल वास्तुशास्त्र रचा, प्रत्युत द्वारिका के दुर्ग और प्राकार को इतना सुदृढ़ बना दिया कि वहाँ रहने वाली देवियाँ भी भयङ्कर शत्रुओं से लड़ने में समर्थ हो गई। यदि भारत में वास्तु कला न होती, तो संस्कृत-वाङ्मय में वास्तु-शास्त्र के तोरण, शाल भञ्जिका, कुट्टिम आदि शतशः शब्द उपलब्ध न होते। आर्यों ने ये शब्द संसार को दिए, और किसी से लिए नहीं। कौन विज्ञ पुरुष कह सकता है कि भिन्न भिन्न आकार वाली ईंटों के लिए जो शब्द संस्कृत वाङ्मय में मिलते हैं, वे कहीं बाहर से लिए गए हैं। ये शब्द पाँच सहस्र, छः सहस्र वर्ष से भी पुराने संस्कृत ग्रन्थों में पाए जाते हैं।

१. भारतवर्ष का इतिहास, द्वि० सं०, पृ० २११।

(ज) प्राचीन काल में जो बड़े-बड़े तड़ाक और लम्बी तथा चौड़ी कुल्यायें बनती थीं, वे उत्कृष्ट सभ्यता की परिचायिक हैं।[1] एक अंग्रेज़ जल-सूत्रद ने पाण्ड्य-कुल्या की भूरि-प्रशंसा की है।[2] वेद में सहस्र स्थूण शब्द से सहस्र-स्तम्भों पर खड़े प्रासाद के निर्माण का उपदेश है। वेद से पुरानी कोई सभ्यता नहीं। भाषा-शास्त्र को न जानने वाले इसे नहीं समझ पाए। वर्तमान भाषा-ज्ञान बहुत असत्य है। पूर्वोक्त सब बातों को एक साथ देखने से ज्ञात होजायगा कि श्री सुनीतिकुमारजी का चौथा प्रश्न सिद्ध हेतु का काम नहीं दे रहा। यह लङ्गड़ा हेतु है, फलतः त्याज्य है।

५—अब हम बाबूजी की पाँचवीं प्रतिज्ञा को लेते हैं। वे कहते हैं कि रामायण, पुराण, और इतिहास के ग्रन्थ कहानियाँ हैं।

अब बिल्ली अपनी बोरी से निकल आई। वस्तुतः बाबूजी ने यही बात कहनी थी, और इसके लिए वे पहली बातों की भूमिका बांध रहे थे। इस विषय में बाबूजी के मत-पोषक श्री यदुनाथ सरकार आदि भी हैं।[3] बाबूजी ने रामायण और महाभारत आदि को किसी सद् गुरु से पढ़ा होता, तो ऐसी बात न कहते। वाल्मीकि और व्यास की रचना को समझने के लिए इतिहास की पूर्ण जानकारी अभीष्ट है। इन ग्रन्थों में भुवन-कोश का असाधारण वृत्त, युगों और तिथियों की गणना का महा वैज्ञानिक-प्रकार, तथा सैकड़ों विद्वानों का इन्हें इतिहास मानना, बाबूजी के विरुद्ध डिगरियाँ हैं।। इन सब बातों का उल्लेख पहले हो चुका है, अतः यहाँ नहीं लिखा।

रामायण आदि ग्रन्थ शुद्ध इतिहास-परक हैं, इस पक्ष में एक प्रबल हेतु है। महाभारत युद्ध से भी बहुत पहले के भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में लिखा है कि नाटक की कथा-वस्तु इतिहास में उल्लिखित किसी बड़े राजा या ऋषि के जीवन से ली जानी चाहिए। तदनुसार गत २५०० वर्ष के भारत के उद्भट नाटककार ऐसी कथावस्तु रामायण आदि से लेते रहे हैं। वे इन ग्रन्थों को इतिहास मानते थे। अतः ये ग्रन्थ कहानियाँ नहीं, प्रत्युत इतिहास के ग्रन्थ हैं। वर्तमान युग के पाश्चात्य लेखक इन इतिहासों के तत्त्व को समझ नहीं सके।

बाबूजी एक ओर इन्हें इतिहास लिखते हैं, और दूसरी ओर कहानी। बाबूजी के ऐसे उच्छृङ्खल लेख पर हमें दया आती है।

६—आगे चल कर बाबूजी कहते हैं कि इतिहास में साहित्य का आधार निकृष्ट होता है। यह बाबूजी की निराली सूझ है। वस्तुतः यह पाश्चात्य गुरुओं का उच्छिष्टमात्र है। इस सारहीन पाश्चात्य मत का संग्रह गोर्डन चाइल्डे (Gordon Childe) ने भी किया है। वह लिखता है—

Written history contains a very patchy and incomplete record of what mankind has accomplished in parts of the world during the last five thousand years......... Archeology surveys a period a hundred times long.[4]

---

१. देखो, Irrigation in India Through Ages, by Shri Satya Shrava M. A. 1951, Central Board of Irrigation.
२. तत्रैव, पृ० ४।
३. हमारा भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण की भूमिका, पृ० ५।
4. What Happened in History, by Gordon Childe, 1942, p. I.

गुरुजी एक पग पीछे थे। उन्होंने लिखित वृत्तों की इतनी अवहेलना नहीं की। पर चेलाजी एक पग आगे चले। उन्होंने लिख दिया कि रामायण आदि ग्रन्थ कहानियाँ हैं। परन्तु एक विषय में चाइल्डे और बाबूजी एक मत हैं। उनके अनुसार लिखित इतिहास का आधार, पथरिया प्रमाण की अपेक्षा थोड़ा है। दोनों विकासवादी हैं, अतः दोनों की बुद्धि संसार का पुरातन इतिहास जानने में मन्द है। हमारे अनुसार संसार के वर्तमान चक्र में मानव की उत्पत्ति श्री ब्रह्माजी से हुई और उस काल से लेकर आर्य लोगों ने इतिहास को सुरक्षित रखा। अतः लिखित इतिहास उन घटनाओं को भी बताता है, जो खुदाइयों में न मिल सकेंगी। भारतवर्ष में सैकड़ों पुराविद् हो चुके हैं। हमारे पूर्व पृष्ठों में इस बात पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

पूर्वोक्त दोनों सज्जनों के विरुद्ध एक आर्कियोलोजिस्ट लिखता है—

Scientific study of evidences available and construction of history do not, logically speaking consist, as is generally imagined now a days, merely in the exposition of the archeological, epigraphical and numismatic evidence only, since these do not reach effectively and satisfactorily the distant limits in the past to which, literature and Tradition, better custodians, in some respects, of the nations historic memoirs, extend.[1]

इस लेख में कृष्णमचार्लु ने साहित्य और परम्परा को अधिक प्रामाणिक माना है।[2]

सांख्य शास्त्र का विषय देखें। कपिलजी आज से न्यून से न्यून ११००० वर्ष पहले हुए, उसी समय हिरण्यगर्भजी हुए। उसके आस पास इन्द्र ने संसार भर में पहला और संस्कृत भाषा का अनुपम व्याकरण शास्त्र रचा। इत्यादि शुद्ध ऐतिहासिक घटनाएं वाङ्मय द्वारा ही जानी जा सकती हैं। आर्कियोलोजि यहां अशक्त है।

अतः सुनीति बाबूजी से हमारा इतना निवेदन है कि वे घर में बैठकर मिथ्या कल्पनाएं न किया करें। अपने विरोधी पक्ष वालों से वाद की टक्कर लें, तो सत्यासत्य का निर्णय हो जाए। हम इसके लिए सदा उद्यत हैं।

भारतवर्ष के साहित्य का इतिहास में महान् आधार है। आर्कियोलोजि के सब प्रमाण इसके अनुकूल बैठ रहे हैं। ये प्रमाण अच्छे हैं, पर गौण हैं।

७ और ८ प्रश्नों का उत्तर पहले हो चुका है।

६—बाबूजी को भ्रांति है कि मिश्र में आर्येतर जाति रहती थी। मिश्र का प्रथम सम्राट् मनु था। वही भारत का प्रथम सम्राट् था। मिश्र के लोग शनैः शनैः आर्य मर्यादाओं

1. The Cradle of Indian History, by Rao B. C. R. Krishnama charlu, Ex Epigraphist to the Government of India, 1947, p. 2

२. कृष्णमचार्लूजी इस तत्त्व को सन् १६२७, २८ में ही जान चुके थे। शकवत्सर १४६१ के तिरुमल प्रथम के पेनुगुलुरु के ताम्र शासन का, एपिग्राफिया इण्डिका भाग १६, लेख संख्या १८ में, सम्पादन करते हुए, परीक्षित से आठवें शासक पाण्डव कुल के नन्द राज के नाम पर पृ० २५४, टिप्पण ३ में वे लिखते हैं—

The Telugu work Ramarajiyam, which also supplies the ancestry of the kings of the Vijayanagar dynasty, gives interesting and sometimes historically important details concerning Nanda, Chalikya and others. This militates against the supposition that these were fanciful names, poetically introduced into the genealogy with the object of establishing connection with some of the ruling families of ancient India.

से परे हटे। अतः बाबूजी का कथन मिथ्या कल्पना है। मिश्र के लोग आर्यों के पूर्वकालीन
नहीं थे। आर्य लोग ब्रह्माजी के काल से अथवा जलप्लावन के पश्चात् से चले आ रहे हैं।
१०—खुदाइयों के पण्डितों का विचार ही सुनीति बाबूजी का विचार है। हमने
खुदाई विभाग के पण्डित सी. आर. कृष्णमचार्लू का मत पूर्व उद्धृत कर दिया है। अतः
सुनीतिबाबूजी को दूसरा पक्ष भी सोचना चाहिए। खुदाई के एक दूसरे 'पण्डित' मार्टिमर
व्हीलरजी से हम स्वयं मिले हैं। उनको संस्कृत वाङ्मय का अणुमात्र ज्ञान नहीं है, पर
सम्मति वे ऋग्वेद पर भी देते हैं। यह बात अनुचित है। खुदाई के एक पण्डित परलोक-
गत श्री दयारामजी साहनी हमारे मित्रविशेष थे। हमने उनके मुख से कभी ऐसी सारहीन
बात नहीं सुनी। और जिस प्रकार सैकड़ों मजदूरों और कर्मचारियों के ऊपर प्रधान वास्तु
शास्त्री ही परम प्रमाण होता है, उसी प्रकार भारत की पुण्य भूमि में, जहां सहस्रों वर्ष तक
साहित्य सुरक्षित रहा, सपूर्ण वाङ्मय का प्रकाण्ड पण्डित ही खुदाई वाले पंडितों के ऊपर प्रमाण
है। खुदाइयों की व्याख्या वाङ्मय की सहायता के बिना हो नहीं सकती। वाङ्मय ही बताता है
कि कथित Pre-Historic (प्रागैतिहासिक) युग का भारतीय इतिहास में अस्तित्व नहीं है।

११—फिर बाबूजी कहते हैं कि प्राचीन आर्य शिल्प-विद्या नहीं जानते थे।
प्राचीन आर्यों के धनुर्वेद, जो अब नष्टप्राय हैं, अश्वशास्त्र, गोशास्त्र, कृषिशास्त्र,
पायस शास्त्र, विमान शास्त्र, संगीत शास्त्र, जिसमें संगीत के वादित्र वर्णित हैं, नाट्य शास्त्र,
आयुर्वेद के शल्य चिकित्सा के शास्त्र, सब शिल्प के परम उत्कृष्ट दृष्टान्त थे और हैं। बाबूजी
को इन शास्त्रों के तत्त्व जानने का समय नहीं मिला। ये शास्त्र आज से छः, सात, आठ,
सहस्र वर्ष पहले भी विद्यमान थे। बाबूजी भी क्या करें। उनके गुरुओं का मिथ्या "भाषा-
ज्ञान" उन्हें बेतरह कुचा रहा है।

१२—आर्य लोग बाहर से आकर भारत में बसे। यह भी बे शिर-पैर की बात है।
आर्य लोग पृथुवैन्य के काल में, वैवस्वत मनु के काल में, पुरूरवा के काल में, भरत
चक्रवर्ती, रघु और राम के काल में यहीं रहते थे। बाबूजी जी, इस सत्य इतिहास को आप
परे नहीं फेंक सकते। इस बाहरवें प्रश्न के उत्तर-भाग का उत्तर पूर्व पृष्ठों में भी व्यक्त है।

सभ्यता के आधार, जो कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ओत-प्रोत हैं, दूसरे देशों
में इतनी उन्नत दशा में नहीं थे। सभ्यता के ये आधार-कौटिल्य से पूर्व के अर्थ शास्त्रों में भी
वर्णित थे। अतः मैसोपोटेमियां आदि के विद्वानों ने सभ्यता का पराकाष्ठा भारत से सीखी थी।

दुःख से कहना पड़ता है, कि अंग्रेजी शासन ने भारत के श्रेष्ठ महाशयों की बुद्धि
को कैसे नष्ट कर दिया है। ईश्वर करे, यह रोग भारत से दूर हो और माईथोलोजि का
ज्वर अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों का पिण्ड छोड़े। माईथोलोजि ... दोष प्रकट करने वाला अति
संक्षिप्त अध्याय यहीं समाप्त किया जाता है।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य वैदिकधर्म-पुनः-संस्थापक वेदोद्धारक आर्यग्रन्थप्रचारक-
[illegible] परमहंसमीनि[illegible] श्रीमद्दयानन्दसरस्वतिस्वामिनां
[illegible] श्रीपाणि[illegible] शिष्येण [illegible] श्रीपरम-
[illegible] विनिर्मित [illegible] इतिहासविद् भगवद्दत्तेन
रचितः भारतवर्षीय बृहदितिहासस्य प्रथमो भागः समाप्तः।